UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186393

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 674.3 P 18 K Accession No. H 3449

Author पांडे, जगन्नाथ

Title काष्ठ परिरक्षण 1961

This book should be returned on or before the date last marked below.

काष्ठ-परिरक्षण

हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला—४७

काष्ठ-परिरक्षण

लेखक

श्री जगन्नाथ पांडे

प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग

उत्तर प्रदेश

प्रथम संस्करण

१९६१

मूल्य

दस रुपये

मुद्रक

पं० पृथ्वीनाथ भार्गव,

भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, वाराणसी

प्रकाशकीय

निर्माण-सामग्री के रूप में काष्ठ का प्रयोग प्रायः मानव सभ्यता के आरम्भ से ही होता आ रहा है। गृह-निर्माण में प्रयुक्त होनेवाली बल्लियों, धरनों आदि के लिए तथा खेती के औजार, नावें, जहाज, पुल, बैलगाड़ियाँ आदि बनाने के लिए लोग मुख्य रूप से लकड़ी, बाँस, बेंत आदि से काम लेते रहे हैं। लोहा, सीमेण्ट, आदि की तुलना में ये चीजें अधिक सुगम और सस्ती हैं। मोटे और बड़े आकार के इमारती काष्ठ मकानों में आग लगने पर उन्हें गिरने से बचाने में लोहे की अपेक्षा अधिक सहायक होते हैं। रेल के स्लीपरों के लिए तो काष्ठ ही अधिक उपयुक्त होता है। काष्ठ में एक बड़ा दोष यही है कि दीमक, कवक, समुद्रकीट आदि काष्ठ-विनाशकों से तथा हवा, पानी, मिट्टी आदि के प्रभाव से वह शीघ्र क्षतिग्रस्त हो जाता है किन्तु अब ऐसे उपाय ढूंढ़ निकाले गये हैं और ऐसे यंत्र बना लिये गये हैं जिनकी सहायता से काष्ठ अधिक सुरक्षित और स्थायी बनाया जा सकता है। इस पुस्तक में इन्हीं सबका वर्णन किया गया है।

अमेरिका, ब्रिटेन आदि में काष्ठ-परिरक्षण का इतना विकास हो गया है कि वहाँ समुचित उपचार-क्रिया से काष्ठ की सेवा-आयु ५ से १० गुनी तक बढ़ गयी है। हमारा देश इस मामले में बहुत पिछड़ा हुआ है और उसे इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए अभी बहुत कुछ करना है।

श्री जगन्नाथ पांडे ने इस विषय की अधिक-से-अधिक जानकारी करा देने और उपचारित काष्ठों की उपयोगिता की ओर समुचित ध्यान आकर्षित करने के उद्देश्य से ही यह पुस्तक लिखी है, जो हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला के ४७ वें पुष्प के रूप में प्रकाशित की जा रही है। श्री पांडे देहरादून की वन-अनुसंधानशाला में सहायक काष्ठ-परिरक्षण अधिकारी और इस विषय के विशेषज्ञ हैं। आशा है, आपकी यह कृति हिन्दी में इस विषय के साहित्य की पूर्ति में यथेष्ट योगदान करने में समर्थ होगी।

अपराजिता प्रसाद सिंह

सचिव, हिन्दीसमिति

विषय-सूची

भाग १

पृष्ठ

अध्याय १—काष्ठ के गुण १

(१) निर्माण-सामग्री के रूप में काष्ठ का महत्त्व १; (२) अन्य निर्माण-वस्तुओं से काष्ठ की तुलना १

अध्याय २—काष्ठ-संपत्ति ७

(१) संसार में काष्ठ की प्राप्यता ७; (२) भारत में काष्ठ-का कुछ सांख्यिक विवरण ७

अध्याय ३—काष्ठ-परिरक्षण का क्षेत्र १५

(१) काष्ठ सुरक्षित रखने के लाभ १५; (२) काष्ठ परि-रक्षण से आर्थिक लाभ १५; (३) वन-संरक्षण तथा अन्य दिशाओं में काष्ठ-परिरक्षण का महत्त्व २०

अध्याय ४—काष्ठ-परिरक्षण की आवश्यकता २४

(१) काष्ठ का स्थायित्व २४; (२) दूसरी श्रेणी के अप्रसिद्ध जातियों के काष्ठों का प्रयोग २५; (३) काष्ठ-परिरक्षण उद्योग का विकास २९

अध्याय ५—काष्ठ-परिरक्षण का ऐतिहासिक वृत्तान्त ... ३१

(१) प्राचीन समय में काष्ठ-परिरक्षण ३१; (२) वैज्ञानिक रीति से काष्ठ-परिरक्षण का प्रारम्भ ३२; (३) आधुनिक काल में काष्ठ-परिरक्षण ३३; (४) संयुक्त राज्य अमेरिका में काष्ठ-परिरक्षण की प्रगति ३४; (५) जर्मनी में काष्ठ-परिरक्षण की प्रगति ३५; (६) स्वीडन में काष्ठ-परिरक्षण की प्रगति ३६; (७) प्राचीन भारत में काष्ठ-परिरक्षण ३६; (८) भारत में निकट-भूत काल में काष्ठ-परिरक्षण ३७; (९) भारत का आधुनिक काष्ठ-परिरक्षण ३८; (१०) वन-अनुसन्धानशाला में काष्ठ-परिरक्षण के अन्वेषण-कार्य का आरम्भ ३९; (११) काष्ठ-परिरक्षण संबंधी अन्वेषण के परिणाम ४५

भाग २

पृष्ठ

अध्याय १–काष्ठ की शारीर रचना ५९

(१) सामान्य वर्णन ५९; (२) शकुधारी अथवा कोमल काष्ठ ५९; (३) उरुपाती अथवा चौड़ी-पत्ती वाले कठोर काष्ठ ६२; (४) रसकाष्ठ और सारकाष्ठ ६७

अध्याय २–काष्ठ-विनाश प्रतिकारक .. ७०

(१) कवक ७०, (२) कीट ८३, (क) छिद्रक कीट ८४, (ख) दीमक ८६, (ग) समुद्री छिद्रककीट ९२, (३) अग्नि ९९; (४) यान्त्रिक टूट-फूट और ऋतुक्षरण १००

अध्याय ३–काष्ठ का प्राकृतिक स्थायित्व ... १०२

(१) स्थायिता के कारण १०२, (२) काष्ठों के प्राकृतिक स्थायित्व का निश्चय करने के लिए परीक्षण १०३, (३) प्राकृतिक स्थायिता के अनुसार भारत मे काष्ठो का वर्गीकरण १०५

भाग ३

अध्याय १–काष्ठ-परिरक्षी १२५

(१) काष्ठ-परिरक्षण के सिद्धान्त १२५, (२) आदर्श परिरक्षी के आवश्यक गुण १२६, (३) परिरक्षी को परखने के साधन १२९; (४) परिरक्षियो के प्रकार १४६; (५) परिरक्षियो का चुनाव १६८, (६) सयुक्त राज्य अमेरिका मे प्रयुक्त किये गये परिरक्षियो का विवरण १७१, (७) भारत मे काष्ठ-परिरक्षियो की माँग १७२

अध्याय २–उपचार के लिए काष्ठ की तैयारी १७५

(१) छीलना १७५; (२) क्षतिरोधक उपाय १७७; (३) मशोपण १७८; (४) पूर्व कटाई और छिद्रण १८९; (५) भेदन १९२

अध्याय ३–उपचार-विधाएँ १९४

(१) अनिपीड विधाएँ १९५; (क) आदहन १९५; (ख) कूर्चन और शीकरन १९५; (ग) डूबन १९६; (घ) चूषण १९७; (ङ) आसारण और प्रसारण १९८; (च) रस-विस्थापन

पृष्ठ

२०१; (छ) तापन और शीतन, खुले कुण्ड मे २०४; (२) निपीड विधियाँ २१० (क) पूर्ण-कोशा २१४; (ख) रिक्त-कोशा २१६; (ग) सयुक्त वाष्पीकरण एव बोल्टन विधि २१९, (घ) उच्च निपीड विधा २२१; (३) स्थानीय उपचार २२२ (क) 'कोब्रा विधि' २२४, (ख) पट्टीबन्धन और मृदाजीवाणुहनन २२५; (ग) छिद्रण और भरण २२६

अध्याय ४–उपचार-देयता २२९

(१) काष्ठ उपचार्यता २२९

(क) शकुधारी और उरुपाती काष्ठो की सरचना मे भेद २३०, (ख) रसकाष्ठ और सारकाष्ठ २३०, (ग) किनारीदार और साधारण गर्त २३१, (घ) लीमा-प्रणाली २३२, (ड) घनत्व २३२; (च) परिरक्षी प्रवेशन की दिशा २३३, (छ) काष्ठ-जाति और बॉसो का परिरक्षी प्रवेश्यता के अनुसार वर्गीकरण २३४, (ज) विभिन्न वर्गो के उपचारित काष्ठो के प्रयोग २४०

(२) उपचार कार्य-प्रणाली २४१

(क) विधाप्ररूप २४१, (ख) परिरक्षी आचरण २४६, (ग) आलगत्व और ताप २४९, (घ) निपीड प्रचण्डता और अवधि २५०

(३) प्रचूषण और प्रवेशन का निर्धारण २५१

(क) प्रचूषण २५१; (ख) प्रवेशन २५२

अध्याय ५–काष्ठ-अग्निरोधन २५५

(१) काष्ठ का प्राकृतिक अग्निरोधन २५५; (२) अग्नि-रोधी सिद्धान्त व अग्निरोधी रसायन २५६, (३) अग्नि-रोधी गुणो को परखने के साधन २५८; (४) काष्ठ, बॉस और छादन-घास का उपचार २५९

भाग ४

अध्याय १–उपचार अथवा साधन संयन्त्र २६७

(१) लेपन और शीकरन उपचार-संयन्त्र २६७; (२) डूबन और चूषण उपचार-संयन्त्र २६८; (३) तापन और शीतन उपचार-संयन्त्र २६८; (४) निपीड-उपचार-संयन्त्र २७१ (क) उपचार

पृष्ठ

रम्भ २७२; (ख) सेवा और सग्रह-कुण्ड २७५; (ग) पम्प, इत्यादि २७५; (घ) सघनक २७६; (ङ) नल, कपाट, अभिलेखक तापमान और मापक यन्त्र २७६; (च) प्रागण २७७, (छ) अन्य सभार २८०, (ज) गृह-कार्य २८१

अध्याय २–उपचारित काष्ठों का प्रयोग २८२

(१) रेलवे-स्लीपर २८२, (२) बिजली व तार के खम्भ और आधार स्तम्भ २८९, (३) अन्य सरचनात्मक कार्य ३०७, (क) कम खर्चवाले गृह ३०७, (ख) काष्ठ-नाड और काष्ठ-कुण्ड ३१८; (ग) शीतन स्तम्भ, पुल, नाव, इत्यादि-इत्यादि ३२५

अध्याय ३–काष्ठ उपचार के अतिरिक्त भी काष्ठ को सुरक्षित रखने के साधन ३३२

(१) कवको से बचाव ३३२, (२) दीमकों से बचाव ३३३, (३) छिद्रक कीटो से बचाव ३३७, (४) सामुद्रिक कीटो से बचाव ३३८, (५) आर्द्रता और यान्त्रिक क्षतिरोधन ३४१

अध्याय ४–भारत में उपचार संयन्त्रों की योजना और परिरक्षी-रसायनों की प्राप्ति . . ३४३

(१) उपचार-सयन्त्र स्थापना सम्बन्धी योजना ३४३, (२) सामुदायिक विकास के लिए तापन-शीतन विधि द्वारा काष्ठ-उपचार योजना ३५०, (३) उपचार-सयन्त्र निर्मानाओं के पते और मूल्यकथन ३५३, (क) निपीड सयन्त्र ३५३, (ख) अनि-पीड सयन्त्र ३५७, (ग) उपसाधित्र ३५९, (४) परिरक्षी-रसा-यनो के निर्माता, उत्पादन और मूल्य ३६१

परिशिष्ट—१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११ और १२ ... ३६९

चित्र-सूची

१. काष्ठ, इस्पात और सबलित कक्रीट की सरचनाओं की आग लगने के बाद की दशा (काष्ठट्रस) ... ३

२. ,, ,, (स्टील ट्रस) ... ३

३* ,, ,, रीइंफोर्स्ड कंक्रीट गृह ... ३

४* ,, ,, स्टील गृह ... ३

५* ,, ,, काष्ठ गृह ... ३

पृष्ठ

६. बम्बई के समुद्र में धातु की पट्टियों का संक्षरण . ४
७. जम्मू में काष्ठ-संग्रह भाडार ५
८. देहरादून की वन-अनुसधानशाला मे उपचारित काष्ठ खंभों का परीक्षण .. २६
९. लखनऊ उद्योग प्रदर्शनी मे लगाया गया आपट्टित काष्ठ का पुल २७
१०. त्रावणकोर राज्य मे उपचारित काष्ठ का पुल २८
११ दक्षिण रेलवे मे परीक्षणार्थ लगाये गये उपचारित काष्ठ स्लीपर . २८
१२. कोदाइ कैनाल मे आसारण प्रक्रिया द्वारा उपचारित काष्ठ-खभ ४९
१३ अग्निरोधी-स-परिरक्षित काष्ठ स्लीपर ५८
१४. शकुधारी अथवा कोमल काष्ठ का भाणुचित्र ६४
१५. उरुपानी अथवा कठोर काष्ठ का भाणुचित्र ६५
१६. लट्ठे का अनुप्रस्थ छेद जिसमे रसकाष्ठ और सारकाष्ठ दर्शाया गया है ६८
१७ एक काष्ठ लट्ठे मे अभिरजक कवको द्वारा बनाया गया नील वर्ण का दाग ७२
१८ काष्ठनाशक और काष्ठ-अभिरजक कवक सूत्रो का शकुधारी काष्ठों मे प्रसरण ... ७६
१९ बीजाणु मे कवक सूत्र का प्रसरण .. ७७
२०. काष्ठनाशक कवक का फलकाय . ७७
२१ काष्ठनाशक कवक द्वारा काष्ठ की क्षति . ७८
२२, २३. काष्ठछिद्रक कीटो के दृश्य और उनके द्वारा हुई काष्ठ की क्षति ८७,८८
२४. दीमको का जीवन-चक्र .. ९१
२५ * काष्ठ पर दीमक-समूह . ९१
२६ मौलुस्कन तथा कस्टेशियन छिद्रक ९७
२७, २८. उक्त कीड़ो द्वारा काष्ठ की क्षति . ९८
२९. सामुद्रिक छिद्रकों द्वारा काष्ठ पर हुए आक्रमण के लक्षण ... ९९
३०, ३१. कवको के प्रति विषालुतामान परीक्षणो की प्रयोगशाला मे परीक्षित भिन्न विधियो का प्रदर्शन १३१,१३२
३२.* ,, ,, काष्ठ न्यादर्शों को स्तूपो के अदर डालकर मिट्टी से बन्द कर दिया जाता है ... १३२

पृष्ठ

३३.* वन-अनुसधानशाला, देहरादून का काष्ठ-शवागण .. १३८
३४. उपचारित काष्ठ स्लीपरो का सेवापरीक्षण .. १४२
३५ सेवाकार्य मे लगे हुए उपचारित काष्ठ खभो का दृश्य . १४२
३६,३७ परिरक्षी-प्रवेशन के कुछ दृश्य १४३,१४४
३८ वल्क छीलने की द्विहस्तक दरांती .. १७६
३९ बाड-खभ छीलने की मशीन १७७
४० प्रतिविपटन लोह पत्तियां . १८०
४१ रेलवे स्लीपरों, बिजली तार व बाड-खभो के वायु-मशोपण चट्टे १८१
४२,४३ ,, ,, ,, १८२,१८३
४४. वायु-मशोपण शालिकाएं १८४
४५ आपाक सशोपण के लिए भट्ठी ... १८६
४६. शून्यक के अनुसार जल के उबलने का तापक्रम .. १८८
४७* धिलवाँ क्रियोजोटीकरण सयत्र मे स्लीपरो के टक्कर काटना . १९०
४८. मशीन द्वारा रेल-आसन छीलना . १९०
४९. हाथ द्वारा प्रकील-छिद्रण ... १९१
५०. स्लीपरो पर अक्षर लिखना और उन्हे क्रमाकित करना ... १९१
५१. काष्ठो का भेदन करने की मशीन ... १९३
५२,५३ कोदाइ कैनाल मे आसारण विधि द्वारा काष्ठ खभ का उपचार १९९,२००
५४* हरे काष्ठ खभो का उपचार ... २०३
५५* हरे काष्ठ खभो का उपचार ... २०४
५६* पूर्णगोल हरे बाँसो का उपचार .. २०३
५७. वन-अनुसधानशाला मे आयताकार अछादित कुड .. २०७
५८. क—ड्रमों को काटने से बनाया गया कुड ... २०७
ख—सीमेंट कक्रीट का बना अप्रत्यक्ष रूप से गरम किया जानेवाला कुड २०७
५९ खभमुडो के उपचार के लिए ड्रम टकी ... २०८
६०. मन्द शून्यक और निपीड तापन-शीतन कुंड ... २०९
६१. धिलवाँ मे स्थापित निपीड-उपचार यंत्र ... २११
६२. क्लटरवकगंज (बरेली) मे स्थापित निपीड-उपचार यत्र ... २१२
६३. उपचारार्थ स्लीपरों का ले जाया जाना ... २१३

पृष्ठ

६४. रंभ के अंदर प्रवेशन ... २१४
६५. रभ का बन्द करना ... २१५
६६* उपचार पश्चात् रभ खोलना ... २१७
६७. पूर्णकोशा और रिक्तकोशा मे भेद ... २१९
६८. वन-अनुसंधानशाला मे उच्च निपीड-उपचार-संयंत्र .. २२१
६९ रेखाचित्र द्वारा निपीड विधियों का स्पष्टीकरण ... २२३
७०. कोब्रा विधि से काष्ठ खंभ का उपचार .. २२४
७१. निपीड अर्गला छिद्र उपचारक . २२७
७२ किनारीदार गर्त का रेखाचित्र .. २३१
७३. बाह्य निपीड उपचार सयत्र––कलकत्ते का बना . २४७
७४. बाह्य निपीड उपचार सयत्र––जर्मनी का बना ... २४८
७५ परिरक्षी विलयन, आलगत्व और ताप के सम्बन्ध मे वक्र . २४९
७६,७७. सवृद्धि-छिद्रामान (इक्रीमेण्ट बोरर) २५३,२५४
७८ अग्निरोधी गुणों के परीक्षणार्थ साधित्र ... २५९
७९. सेवापरीक्षणार्थ लगायी गयी उपचारित छादन-घास .. २६२
८०. खभ-मुड छोर उपचार सयत्र .. २६९
८१. तापन-शीतन का आयताकार खुला कुण्ड ... २७०
८२ काष्ठखभ उठाने का हुक ... २७१
८३,८४ उपचार सयत्र के निपीड चालक का कमरा २७७,२७८
८५. निपीड सयत्र का रेखाचित्र ... २७९
८६ उपचारित साल के अर्धगोल स्लीपरो की १६ वर्ष सेवा-आयु के बाद की दशा . २८३
८७ विभिन्न देशो मे काष्ठ रेलवे स्लीपरो के आकार (अनुप्रस्थ छेद) ... २८४
८८. फ्रास मे ,, ,, ,, ... २८५
८९. प्रतिशत नवीकरण सख्या द्वारा स्लीपरों की संभाव्य सेवा-आयु का निश्चयन ... २८६
९०. काष्ठ-खभ को स्वच्छ, सीधा और उचित ढाल मे बनाने की मशीन ... ३०३
९१,९२ काष्ठ खभों का एक प्रकार का जोड़ ३०५,३०६
९३. काष्ठ-खभ का सड़ा भाग निकालकर पुनः स्थापन की रीति ... ३०७

पृष्ठ

९४. छत के ट्रसों मे छोटे आकार के उपचारित काष्ठ बत्तो का डबल डिस्क जोड़ से निर्माण . ३०८
९५. जमिया मिलिया स्कूल के एक भवन के लिए निर्मित बाँसो का ट्रस .. ३०९
९६. कम लागतवाली गृह सरचनाओं के अनुविक्षेप (प्लैन) . ३१०
९७ १९५४ की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी में प्रदर्शित कम लागत के गृह का नमूना . ३१४
९८ वन-अनुसधानशाला की काष्ठ अभियात्रिकी शाखा द्वारा निर्मित काष्ठ-शालिका .. ३१५
९९ वनअनुसधानशाला मे उपचारित बास गृह . ३१६
१००. उपचारित फरकाष्ठ की छत का भीतरी भाग . ३१६
१०१ वन-अनुसधानशाला मे सपूर्ण उपचारित-काष्ठ की बड़ी शालिका ३१७
१०२. सम्पूर्ण उपचाग्नि काष्ठ का बना बस स्टैण्ड .. ३१८
१०३ उपचारित काष्ठ और उपचारित छादन-घास का बना आरामगृह ३१९
१०४ तारबन्धित काष्ठनाड (वुडन पाइप) . ३२०
१०५ अमेरिका मे काष्ठनाड का एक दृश्य ३२०
१०६ सतत-पट्टिका नाड ३२१
१०७ अमेरिका की पत्रनिर्माण शाला मे प्रयुक्त काष्ठ की टकी ३२३
१०८ उपचारित काष्ठ का बना शीतन-स्तभ .. ३२६
१०९ अमेरिका की एक झील पर बना ससार का सबसे बडा उपचारित काष्ठ का पुल, जिसके ८० प्रतिशत मे भी अधिक अग५४ वर्ष की सेवा के बाद भी सुरक्षित है . ३२७
११० आम की उपचारित लकड़ी की बनी आलमारी ... ३३०
१११ सुजलोत्मारित तथा अल्प जलोत्मारित भूमि पर गृह-निर्माण ३३३
११२ धातु की बनी दीमक ढालों का स्थिरीकरण स्थान ... ३३५
११३ दीमक समूह को विषधूलि से मारने की फुँकनी ... ३३६

* तारकाकित चित्र अलग छपे है।

भाग १

अध्याय १

काष्ठ के गुण

१. निर्माण-सामग्री के रूप में काष्ठ का महत्त्व

काष्ठ या लकड़ी ऐसा प्रधान वन्य पदार्थ है जो आदि काल से ही मनुष्य के गृह-निर्माण, कृषि संबंधी औज़ारों, रेलवे स्लीपरों, बिजली या तार के खम्भों, खानों के आधार-स्तम्भों, नावों, जहाजों, पुलों इत्यादि के बनाने में काम आता रहा है। बाँस, बेंत, घास-फूस आदि गौण वन-पदार्थ छप्पर छाने तथा अन्य कार्यकर सामग्री के रूप में प्रयुक्त होते रहे हैं। ये पदार्थ सर्वत्र सरलता से पर्याप्त मात्रा में मिल सकते हैं और तत्काल काम में भी लाये जा सकते हैं। वनों में, नदियों और नहरों के किनारे तथा बेजोती जमीनों में भी वे सुगमता से उगाये जा सकते हैं। काट लेने के पश्चात् फिर भी उन्हें खेती की तरह निरन्तर उपजाया जा सकता है। इसके विपरीत लोहा, सीमेन्ट इत्यादि वस्तुएँ, जिनका निर्माण-सामग्री के रूप में उपयोग वर्तमान युग में प्रायः किया जाता है, केवल परिमित मात्रा में ही मिलती हैं और उन्हें विधिपूर्वक परिष्कृत करने के बाद ही प्रयोग में लाया जा सकता है। विधिपूर्वक निर्मित इन पदार्थों के इतनी अधिक मात्रा में प्रयोग किये जाने पर भी, कुछ विशेष निर्माण-कार्यों और उद्योगों के लिए सामान्यतः आज भी काष्ठ पर ही निर्भर रहा जाता है। मूल्य के विचार से भी काष्ठ सस्ता है।

२. अन्य निर्माण-वस्तुओं से काष्ठ की तुलना

काष्ठ में कई गुण हैं। यह हलका होता है और सरलता से प्राप्य है। मनुष्य दक्ष न होने पर भी इसका उपयोग अनेक प्रकार के कार्यों में कर सकता है। इसे काटने-फाड़ने के लिए विशेष प्रकार के यंत्रों की आवश्यकता नहीं होती, अपितु साधारण यन्त्रों से ही कार्य किया जाता है। इसके विपरीत, लोहे और लोह-छड़ों द्वारा संवलित सीमेन्ट कांक्रीट के निर्माण कार्य के लिए कुशल और निपुण मनुष्यों की आवश्यकता होती है। भारीय तुलना की दृष्टि से काष्ठ उतना ही बलिष्ठ होता है जितना कि लोहा।

सीमेन्ट-कांक्रीट से यह पॉच या छः गुना बलिष्ठ है। काष्ठ मे ध्वनिशोषण गुण है, अर्थात् इसमे आवाज को रोकने की शक्ति है। यह लचीला होता है और बोझ पडने पर यदि झुक भी गया तो बोझ उठा लेने के बाद अपने पहले आकार मे आ जाता है। झुका या मुड़ा नही रहता। काष्ठ मे विद्युत सवाहन गुण नही है, लोहा विद्युत संवाहक है। काष्ठ मे अल्प-ताप सचालनता गुण है, जब कि लोहा और सीमेट ऐसे नही हैं जो गर्मी को शीघ्र ही फैलाने मे सहायता देते और स्वयं भी गरम हो जाते हैं। काष्ठ का आपेक्षिक ताप भी कम है, अर्थात् गरम होने पर इसका तापक्रम कम वढता है और ठडा होने पर कम घटता है। काष्ठ का ताप-लम्ब-प्रसारी होता है अर्थात् गरम होने से इसका फैलाव, धातुओ की अपेक्षा, अत्यन्त कम होता है। निम्नलिखित सारणी १ मे उपर्युक्त गुणों की साख्यिक गणना दी गयी है।

सारणी–१ (निर्देश ७ क, पृष्ठ ५५ पर देखिए)

निम्नलिखित सन्निकट अर्हाएँ हं और कई संख्याओं के माध्य आँकड़े भी

भौतिक और यात्रिक गुण	काष्ठ	इस्पात	सीमेट
१. ताप-सवाहिता (कैलोरी /सेन्टीमीटर/सेकिन्ड /०°से०)	०.००० ३२ (तन्तु के समानातर)	०.१०८	०.०००७१. (काक्रीट पत्थर ०.००२२)
२. आपेक्षिक ताप (कैलोरी/ग्राम)	० ४२	० १०७	०.२०
३. घनत्व (ग्राम/सेन्टीमीटर^3)	०.८	७ ७	२ ३-३ ० (जमा) २.३ (काक्रीट का)
४. ताप प्रसार (लम्ब गुणक)	६×१०^{६} (२°-३४° से०)	$१३ २ \times १०^{६}$ (४०° से०)	१२×१०^{६}
५. ध्वनि शोषण (५१२ वारंवारता पर गुणक)	०.०३ (फर्श मे) ०.०६ (दीवारों मे)	–	०.०२५ (०.०१५-काक्रीट पत्थर का)
६. लचक मापांक घनत्व	२८००	३९००	–
७. आतनन बल, पौंड/वर्गइंच घनत्व	२७०००	८४००	१६२
८. संपीडन बल, पौड/वर्गइंच घनत्व	११०००	५३००	१०८२ (सात दिन मे जमने पश्चात्) ६०६ (कांक्रीट का)

अवकाश कम मिलता है। अग्नि से लोहे और सीमेन्ट के बने मकान तुरन्त गिर जाते हैं और गृह-निवासी सामान को तो क्या, स्वयं अपने-आप को भी बचा सकने में असमर्थ रहते हैं। चित्र १, २, ३, ४, ५, में आग लगने के पश्चात् तीनों प्रकार के मकानों की दशा का प्रदर्शन किया गया है।

वर्तमान युग में बराबरी के अन्य निर्माण-पदार्थों का अधिक मात्रा में उत्पादन होने पर भी कुछ प्रकार के उपयोगों के लिए काष्ठ को अब भी महत्त्व दिया जाता है। रेलवे स्लीपरों के लिए काष्ठ से अधिक सन्तोषजनक अन्य कोई वस्तु नहीं है। इसके कम-फैलाव गुण के कारण पटरियों के बीच की दूरी स्थिर रहती है। इसके ऊपर गाड़ी चलने से खड़खड़ाहट कम होती है और यात्रियों को सुख मिलता है। कम झटकों के कारण रेल-डिब्बों की आयु भी बढ़ जाती है। पटरी को रोकने के लिए काष्ठ-स्लीपरों में जड़े स्पाइक्स (कीले) यदि ढीले पड़ जायँ तो उस भाग को शीघ्रता से थोड़ा हटाकर स्पाइक्स पुनः दृढ़तापूर्वक ठोके जा सकते हैं। यदि ऐसा न भी किया जाय तो स्पाइक्स के ढीले छिद्रों में दृढ़ करने का मसाला भर दिया जाता है, जिससे उन्हें फिर जैसे का तैसा बना देना सम्भव होता है। रेल-डिब्बों के लिए भी काष्ठ एक उपयोगी वस्तु है। छोटे पुलों और बाड़ के खम्भों के लिए भी काष्ठ उपयोगी है, क्योंकि शीघ्र बढ़नेवाले वृक्षों के कटान से प्राप्त होने के बाद ये खम्भे थोड़े समय के भीतर उन वृक्षों से ही अथवा वन के अन्य वृक्षों से प्राप्त हो सकते हैं। पानी के नलों और बिजली-तार के आवरणों के लिए काष्ठ-पट्टियाँ उपयुक्त होती हैं। उनको दृढ़ता से मिलाकर जोड़ने से बड़े व्यास वाले नल बन सकते हैं। काष्ठ में मोर्चा नहीं लगता, अतः सागरीय निर्माण कार्य के लिए भी काष्ठ एक अत्यंत उपयोगी वस्तु सिद्ध हुआ है। चित्र ६ में दर्शाया गया है कि समुद्र में प्रयुक्त होनेवाले धातवीय (धातु सम्बन्धी) पदार्थों में शीघ्र मोर्चा लग जाता है, किन्तु काष्ठीय पदार्थ उससे सुरक्षित रहते हैं।



चित्र ६—बंबई के समुद्र में धातु की पट्टियों का संक्षरण।

यही कारण है कि काष्ठ के कुण्ड, अम्लीय अथवा क्षारीय रासायनिक पदार्थों के संग्रह के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होते हैं, क्योंकि काष्ठ पर धातुओं की अपेक्षा रासायनिक पदार्थों का प्रभाव कम पड़ता है। काष्ठ के बने भंडार में अन्न सुरक्षित रखे जा सकते हैं। जम्मू में बनाया गया ऐसा एक भंडार चित्र ७ में दिखाया गया है।



चित्र ७—**जम्मू में काष्ठ-संग्रह भाण्डार ।**

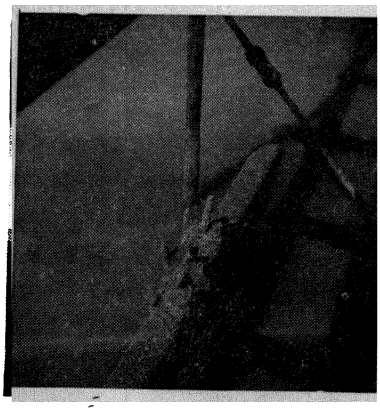
सेवा के उपयुक्त आयु की समाप्ति के बाद काष्ठ अन्य कार्यों में भी लगाया जाता है। अतः लोहे और सीमेन्ट की अपेक्षा नाश-रक्षण-अर्हा[1] इसे अधिक मिलती है। काष्ठ स्लीपर अथवा खम्भ के सड़ गये या खराब हो चुके भाग को काटकर शेष बचे भाग को अन्य किसी साधारण उपयोग में लाया जा सकता है। यदि उसका कुछ भी न बन सके तो ईंधन के काम में तो वह आ ही सकता है। किन्तु लोहा और सीमेन्ट का, खराब हो जाने के बाद, कूड़ा करकट के अतिरिक्त और कुछ उपयोग हो ही नहीं सकता।

जब काष्ठ की किसी संरचना का चलन नहीं रहता तो थोड़े से व्यय से ही उसमें ऐसा परिवर्तन किया जा सकता है कि वह फिर से समयानुकूल बन जाय। उदाहरण के लिए यदि बहुत समय पहले लकड़ी का पुल बनाया गया हो तो आधुनिक यातायात की आवश्यकतानुसार उसे बढ़ाकर बड़ा करने में थोड़ी ही लागत लगेगी, जब कि लोहे या सीमेन्ट के पुल को बड़ा बनाने के लिए उसे तोड़कर उसका एकदम पुनर्निर्माण करना होगा और इस कार्य के लिए निपुण कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होगी। लकड़ी

1 Salvage Value.

अवकाश कम मिलता है। अग्नि से लोहे और सीमेन्ट के बने मकान तुरन्त गिर जाते हैं और गृह-निवासी सामान को तो क्या, स्वयं अपने-आप को भी बचा सकने में असमर्थ रहते हैं। चित्र १, २, ३, ४, ५, में आग लगने के पश्चात् तीनों प्रकार के मकानों की दशा का प्रदर्शन किया गया है।

वर्तमान युग में बराबरी के अन्य निर्माण-पदार्थों का अधिक मात्रा में उत्पादन होने पर भी कुछ प्रकार के उपयोगों के लिए काष्ठ को अब भी महत्त्व दिया जाता है। रेलवे स्लीपरों के लिए काष्ठ से अधिक सन्तोषजनक अन्य कोई वस्तु नहीं है। इसके कम-फैलाव गुण के कारण पटरियों के बीच की दूरी स्थिर रहती है। इसके ऊपर गाड़ी चलने से खड़खड़ाहट कम होती है और यात्रियों को सुख मिलता है। कम झटकों के कारण रेल-डिब्बों की आयु भी बढ़ जाती है। पटरी को रोकने के लिए काष्ठ-स्लीपरों में जड़े स्पाइक्स (कीले) यदि ढीले पड़ जायँ तो उस भाग को शीघ्रता से थोड़ा हटाकर स्पाइक्स पुनः दृढ़तापूर्वक ठोके जा सकते हैं। यदि ऐसा न भी किया जाय तो स्पाइक्स के ढीले छिद्रों में दृढ़ करने का मसाला भर दिया जाता है, जिससे उन्हें फिर जैसे का तैसा बना देना सम्भव होता है। रेल-डिब्बों के लिए भी काष्ठ एक उपयोगी वस्तु है। छोटे पुलों और बाड़ के खम्भों के लिए भी काष्ठ उपयोगी है, क्योंकि शीघ्र बढ़नेवाले वृक्षों के कटान से प्राप्त होने के बाद ये खम्भे थोड़े समय के भीतर उन वृक्षों से ही अथवा वन के अन्य वृक्षों से प्राप्त हो सकते हैं। पानी के नलों और बिजली-तार के आवरणों के लिए काष्ठ-पट्टियाँ उपयुक्त होती हैं। उनको दृढ़ता से मिलाकर जोड़ने से बड़े व्यास वाले नल बन सकते हैं। काष्ठ में मोर्चा नहीं लगता, अतः सागरीय निर्माण कार्य के लिए भी काष्ठ एक अत्यंत उपयोगी वस्तु सिद्ध हुआ है। चित्र ६ में दर्शाया गया है कि समुद्र में प्रयुक्त होनेवाले धातवीय (धातु सम्बन्धी) पदार्थों में शीघ्र मोर्चा लग जाता है, किन्तु काष्ठीय पदार्थ उससे सुरक्षित रहते हैं।



चित्र ६—बंबई के समुद्र में धातु की पट्टियों का संक्षरण।

यही कारण है कि काष्ठ के कुण्ड, अम्लीय अथवा क्षारीय रासायनिक पदार्थों के संग्रह के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होते हैं, क्योंकि काष्ठ पर धातुओं की अपेक्षा रासायनिक पदार्थों का प्रभाव कम पड़ता है। काष्ठ के बने भंडार में अन्न सुरक्षित रखे जा सकते हैं। जम्मू में बनाया गया ऐसा एक भंडार चित्र ७ में दिखाया गया है।



चित्र ७—जम्मू में काष्ठ-संग्रह भाण्डार ।

सेवा के उपयुक्त आयु की समाप्ति के बाद काष्ठ अन्य कार्यों में भी लगाया जाता है। अतः लोहे और सीमेन्ट की अपेक्षा नाश-रक्षण-अर्हा[1] इसे अधिक मिलती है। काष्ठ स्लीपर अथवा खम्भ के सड़ गये या खराब हो चुके भाग को काटकर शेष बचे भाग को अन्य किसी साधारण उपयोग में लाया जा सकता है। यदि उसका कुछ भी न बन सके तो ईंधन के काम में तो वह आ ही सकता है। किन्तु लोहा और सीमेन्ट का, खराब हो जाने के बाद, कूड़ा करकट के अतिरिक्त और कुछ उपयोग हो ही नहीं सकता।

जब काष्ठ की किसी संरचना का चलन नहीं रहता तो थोड़े से व्यय से ही उसमें ऐसा परिवर्तन किया जा सकता है कि वह फिर से समयानुकूल बन जाय। उदाहरण के लिए यदि बहुत समय पहले लकड़ी का पुल बनाया गया हो तो आधुनिक यातायात की आवश्यकतानुसार उसे बढ़ाकर बड़ा करने में थोड़ी ही लागत लगेगी, जब कि लोहे या सीमेन्ट के पुल को बड़ा बनाने के लिए उसे तोड़कर उसका एकदम पुनर्निर्माण करना होगा और इस कार्य के लिए निपुण कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होगी। लकड़ी

1 Salvage Value.

के कार्य के लिए एक सामान्य बढ़ई ही पर्याप्त होता है। काष्ठ खम्भो का भी उसी प्रकार सरलता से आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सकता है। अतः अन्य निर्माण-सामग्री की अपेक्षा काष्ठ अधिक लाभप्रद पदार्थ है।

यदि आर्थिक दृष्टि से भी देखा जाय तो अन्य सरचनीय पदार्थो की अपेक्षा काष्ठीय निर्माण के आरम्भ और अन्तिम काल में काष्ठ पर कम व्यय लगता है। इसका पूर्ण विवरण अगले अध्यायो (भाग १, अध्याय ३) मे दिया गया है। वर्तमान काल मे हुए काष्ठ-परिरक्षण अनुसन्धानो के कारण बाहर खुले क्षेत्रो मे प्रयुक्त हुए काष्ठ की आयु ५ से १० गुना तक बढा दी जा सकती है, जिससे यह लोहे इत्यादि जैसे अन्य निर्माण पदार्थों से स्पर्धा कर सकता है। आर्थिक दृष्टि से किसी भी सरचना की कसौटी उसके उस आर्थिक वार्षिक मूल्य पर निर्भर रहती है, जो उस सरचना के आरम्भकालिक मूल्य और उसकी आयु का अशानुपाती हो। यह आगे (भाग १, अध्याय ३ मे) दिये उदाहरणो से स्पष्ट हो जायगा। आधुनिक काल मे **स्तरकाष्ठ**[1] और **आपट्टित काष्ठ**[2] के रूप मे काष्ठ का अधिकाधिक प्रयोग होता जा रहा है, जिससे यह सिद्ध होता है कि काष्ठ आदर्श सरचनात्मक सामग्री के रूप मे एक अत्यत आवश्यक पदार्थ सिद्ध हो चुका है।

1 Plywood. 2 Laminated wood.

अध्याय २

काष्ठ-सम्पत्ति

१. संसार में काष्ठ की प्राप्यता

संसार में कुल मिलाकर ९ अरब १२ करोड़ ५० लाख एकड़ भूमि पर वन हैं। यह क्षेत्र समग्र भूतल का लगभग $\frac{1}{3}$ भाग है। सारणी २(१क*) को देखिए। उसमें ३५ प्रतिशत **शंकुधारी** (सुई के आकार की पत्तियोंवाले), १५ प्रतिशत शीतोष्ण **उरुपाती** (चौड़ी पत्तीवाले) और शेष ५० प्रतिशत उष्ण उरुपाती वन हैं। इन वनों से प्रतिवर्ष १ अरब ६ करोड़ टन काष्ठ का उत्पादन होता है। यदि विश्व की जनसंख्या लगभग २ अरब १६ करोड़ ६० लाख मान लें तो प्रति मनुष्य २४.५ घनफुट काष्ठ प्राप्त हो सकता है। यथार्थ में काष्ठ का निर्माण रासायनिक और उद्योगधन्धों के उपयोग के लिए उत्तरी अमेरिका में ६३.५ घनफुट प्रति मनुष्य से लेकर मध्यपूर्व में १.१ घनफुट प्रति मनुष्य है। काष्ठ के इस उपभोग की भिन्नता के दो मुख्य कारण हैं—(१) संसार में वनों का विषम फैलाव, जैसे कैनाडा में ७५ एकड़ प्रति मनुष्य और सीरिया में ०.०७५ एकड़ प्रति मनुष्य। (२) उद्योगधन्धों के लिए शंकुधारी काष्ठों की **उरुपाती**[1] काष्ठों की अपेक्षा ८५ प्रतिशत अधिमान्यता। पिछड़े देशों में आधुनिक नयी मशीनों का अभाव भी इस न्यून उपभोग का एक कारण है। अतः प्रति मनुष्य का अधिक मात्रा में काष्ठ का उपयोग करना सभ्यता का मापदण्ड है। इसी प्रकार काष्ठ का अधिकाधिक प्रयोग उच्च रहन-सहन का द्योतक है।

२. भारत में काष्ठ का कुछ सांख्यिक विवरण

भारत में वनों का कुल क्षेत्रफल (२क*) सन् १९५५ में २७८०८३ वर्गमील था, जब कि भारत का विस्तार १२६६९८० वर्गमील है, अर्थात् सकल भूमि के क्षेत्रफल के २२ प्रतिशत भाग में वन हैं। राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार भूमि के एक तिहाई

* भाग १ के अन्त में निर्देश-सूची देखिए।

1 Broad-leaved.

सारणी—२

संसार के काष्ठों का वितरण, क्षेत्रफल, उत्पत्ति और उपभोग

	सोवियट रूस के संयुक्त राज्य को छोड, अन्य यूरोप	सोवियट रूस के सयुक्त राज्य	मध्य पूर्व और उत्तरी अफ्रीका	उत्तरी अमेरिका	मध्य और दक्षिणी अमेरिका	उत्तरी अफ्रीका को छोड़ अन्य अफ्रीका	दक्षिण और पूर्व एशिया	पैसिफिक क्षेत्र	समस्त ससार
१. जन सख्या (१०) लाख मे)	३९२	१७८	९८	१४३	१३०	११५	१०९९	११	२१६६
२. बन क्षेत्र (१० लाख एकड मे)	३३०	२४००	१०२ ५	१५८७ ५	२०३७ ५	१२८०	१२५०	१३५	९१२५
३. प्रति मनुष्य क्षेत्र (एकड़ मे)	० ·७५	१३ ·५	१	११	१५ ७५	११	१	१२ ·२५	४ ·२५
४. कटा सपूर्ण काष्ठ (१० लाख घन फुट मे)	१०८७२ ४	९२४८ ६	१७६ ·५	१३८३७ ६	६२८३ ·४	१५८८ ५	१०५९०	३५३	५२९५०
५. प्रति एकड़ (घन फुट)	३२ ·९	३ ·८५	१ ७८	८ ·७२	३ ·०८	१ २४	८ ४७	२ ·६१	५ ·८
६. प्रति मनुष्य (घन फुट)	२७ ·७	५१ ९५	१ ८	९६ ·७६	४८ ३३	१३ ·८	९ ६४	३२ ·०९	२४ ·४४
७. उपभोग : औद्योगिक									
कुल काष्ठ (१०लाख घन फुट मे)	६३८९ ·३	३८१२ ·४	८ ·२५	९२१३ ·३	११८२५ ५	४२३ ६	३३३८ ·८	२११ ·८	२४७१०
प्रति मनुष्य (घन फुट)	१७ ·६५	२१ ·१८	१ ·०६	६३ ·५४	१ ·०६	३ ·५३	३ ५३	१७ ·६५	१० ·५९

(अर्थात् कुल क्षेत्रफल के ३३ ३ प्रतिशत) भाग मे वन होना भारत का लक्ष्य है। पर्वतो मे, जैसे—हिमालय, दक्षिणी पठार और अन्य पर्वतीय प्रदेशो मे वनोन्मूलन को रोकने के लिए भूमि के ६० प्रतिशत, और मैदानो मे, भूमि को कटाव से बचाने के लिए, २० प्रतिशत भाग में वन होने चाहिए। अत ऊपर की माँगों की पूर्ति के लिए जगलो के विस्तार के हेतु योजनाबद्ध उपायों का होना आवश्यक है। सारणी ३ (२ ख) मे अभी तथा भविष्य मे समुपयोज्य वनो का विवरण दिया गया है। (निर्देश २ ख, पृ० ५५ दे०)

सारणी ४ (२ ग, पृ० ५५) मे काष्ठ (मुख्य वन पदार्थ) का उत्पादन और सारणी ५ (२ घ) मे काष्ठ और काष्ठ-वस्तुओ का आयात-निर्यात दिया गया है। बास और बेतों (२ ङ, पृ० ५६) (केन, गौण वन पदार्थो) का कुल उत्पादन लगभग १ करोड और १७ लाख रुपया (८७८ हजार स्टर्लिंग पौड) के लगभग १९५५–५६ मे हुआ है।

भारत के वनो को बढाने का भरसक प्रयत्न किया जा रहा है। इसमे कहाँ तक सफलता होगी, यह कहना कठिन है। इस समय यदि कहा जाय तो जनसख्या १.५ प्रतिशत चक्रवृद्धि के अनुपात मे बढ रही है और जगलो के लिए भूमि प्राप्त करना एक असाधारण कार्य हो गया है, जब कि जन-जीवन के विकास और खेती के लिए भूमि की आवश्यकता बढती जायगी। अत. जो कुछ भी वन इस समय विद्यमान हैं उनकी उपज बढाने का प्रयत्न करना और जो लकड़ी प्राप्य है उसको सुरक्षित रखने के उपाय अपनाना जरूरी है।

यद्यपि जगलों से प्राप्य काष्ठ की उपज तथा आय की निश्चित संख्या देना सम्भव नही है, किन्तु स्थूल गणना के अनुसार वर्तमान उपज १० करोड घन फुट के लगभग कूती जा सकती है। इससे यही अनुमान लगाया जा सकता है कि समस्त वनों से वार्षिक उपज ० ६ घनफुट प्रति एकड़ हुई। यदि इसका दुगुना चोटी, डाल-कटाई, छटाई और ईधन के रूप मे व्यर्थ हुआ माना जाय, तो वार्षिक उपज लगभग २ घनफुट प्रति एकड़ मानी जा सकती है। हमारे वनो की यह माध्य-वार्षिक वृद्धि अत्यन्त कम है, जब कि आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड-जैसे दक्षिण-पूर्व एशिया के देशो मे यह माध्य-वार्षिक वृद्धि ७० घनफुट से लेकर २०० घनफुट तक है, जो स्थानविशेष पर निर्भर रहती है। हमारे देश-जैसे जलवायु मे २० से लेकर २५ घनफुट प्रति एकड़ तक माध्य-वार्षिक वृद्धि की आशा करना दुराशा न होगी।

यदि काष्ठ-उपभोग की दृष्टि से देखा जाय तो भारत विश्व मे काष्ठ का सबसे कम प्रयोग करनेवाले देशो मे से एक है (पृ० १४ देखिए)। मलाया और बर्मा मे, जो

सारणी—३

भारत के वनों का वर्गीकरण, १९५५ (वर्गमील में)

वनों की कक्षाएँ (१)	राजकीय वन (२)		सामुदायिक वन (३)		निजी (प्राइवेट) वन (४)		योग (५)		कुल वनो के क्षेत्रफल का प्रतिशत (%) (६)	
	(क) स्थायी	(ख) अन्य	(क) स्थायी	(ख) अन्य	(क) स्थायी	(ख) अन्य	(क) स्थायी	(ख) अन्य	(क) स्थायी	(ख) अन्य
(क) संचयन योग्य										
१. कोमल काष्ठ (शकुधारी)	६११५	७५०	१५	..	१२	४७४	६१४२	१२२४	२ ६८	२ ·४७
२. मिश्रित काष्ठ	१८८४	१९९	..	११	१७	३३२	१९०१	५४२	० ·८३	१ ·०९
३. कठोर काष्ठ (उरुपाती)	१७०२०९	२९०७५	१३८	..	४५११	३००	१७४८५८	२९३७५	६६ ·२२	५९ ·२४
योग	१७८२०८	३००२४	१५३	११	४५४०	११०६	१८२९०१	३११४१	७९ ·७३	६२ ·८०

(ख) संभाव्य संचयन योग्य										
१. कोमल काष्ठ (शंकुधारी)	६४७	४२४	..	..	४	..	६५१	४२४	०.२८	०.८६
२. मिश्रित काष्ठ	३८०	३७	..	..	..	..	३८०	३७	०.१७	०.०७
३. कठोर काष्ठ (उरुपाती)	१६४८०	१३११८	..	..	१८	३००	१६४९८	१३४१८	७.१२	२७.०६
योग	१७५०७	१३५७९	..	..	२२	३००	१७५२९	१३८७९	७ ६४	२७.९९
(ग) अन्य भूमि (वनों की कक्षा मे)	२८९०५	३१९९	४	१८८	५७	११७९	२८९६६	४५६६	१२.६३	९.२१
कुल योग	२२४६२०	४६१०२	१५७	१९९	४६१९	२५८५	२२९३९७	४९५८६	१००	१००
कुल वनों के क्षेत्रफल का प्रतिशत (%)	९७.३		०.१		२.६		१००		—	

सारणी—४

१९५५-५६ में स्वदेशी काष्ठ का उत्पादन (छाल के नीचे का गोल काष्ठ हजार घन फुट में)

वनो और काष्ठ की कक्षाएँ	काष्ठ	गोल काष्ठ	गोर्द काष्ठ (पल्प वुड)	औद्योगिक काष्ठ का योग	ईंधन तथा कोयले की लकड़ी	कुल योग
(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)
राजकीय						
(क) कोमल काष्ठ (शकुधारी)	३४३१२	१३२२	.	३५६३४	८४१२	४४०४६
(ख) कठोर काष्ठ (उरुपाती)	५५०५०	३५७४६	३६८८	९४४८४	३१८९५३	४१३४३७
योग	८९३६२	३७०६८	३६८८	१३०११८	३२७३६५	४५७४८३
सामुदायिक						
(क) कोमल काष्ठ (शंकुधारी)	४	६६	..	७०	४८७	५५७
(ख) कठोर काष्ठ (उरुपाती)	३०७	२४०५	८	२७२०	१६०४७	१८७६७
योग	३११	२४७१	८	२७९०	१६५३४	१९३२४
निजी (प्राइवेट)						
(क) कोमल काष्ठ (शकुधारी)	३६९	१६०	..	५२९	५९१	११२०
(ख) कठोर काष्ठ (उरुपाती)	५२१४	७८६७	४२	१३१२३	४८६५०	६१७७३
योग	५५८३	८०२७	४२	१३६५२	४९२४१	६२८९३
योग						
(क) कोमल काष्ठ (शंकुधारी)	३४६८५	१५४८	.	३६२३३	९४९०	४५७२३
(ख) कठोर काष्ठ (उरुपाती)	६०५७१	४६०१८	३७३८	११०३२७	३८३६५०	४९३९७७
कुल योग	९५२५६	४७५६६	३७३८	१४६५६०	३९३१४०	५३९७००

सारणी—५

काष्ठ और काष्ठ से बनी वस्तुओं का आयात और निर्यात (११५५-५६)

कक्षा	सकल आयात		सकल निर्यात		शुद्ध आयात (+), या निर्यात (—)	
	हजार घन फुट मे	भाड़ा मिला कर (सी० आई० एफ०) मूल्य पौड मे	हजार घन फुट मे	नौतल पर्यन्त नि शुल्क (एफ० ओ० बी०) मल्य, पौड मे	हजार घन फुट में	मूल्य पौड में
(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)
कठोर काष्ठ (उरुपाती) लट्ठे						
स्लीपर (चिरान और छिली ल०	..	..	(अ)	..	(अ)	..
अन्य चिरान और छिली लकडी	..	७५२	.	७६७	..	(—)१५
कुल कोमल और कठोर काष्ठ	..	७५२	..	७६७	..	(—)१५
ईधन	..	६४	..	..	..	(+)६४
अन्य लकड़ी	..	१७७१	..	५६३	..	(+)१२०८
कुल कठोर काष्ठ	..	२५८७	..	१३३०	..	(+)१२५७

भारत के पड़ोसी और मिलते-जुलते देश हैं, काष्ठ का माध्य उपयोग भारत से लगभग दस गुना है। इसके कुछ कारण यह भी है कि हमारे गाँवों में गृह-निर्माण के लिए मिट्टी, ईट और बाँसो का अधिक प्रयोग होता है। प्रगतिशील देशो मे अधिकाधिक प्रयोग का एक कारण कागज भी है, जो काष्ठ-जैसे कोषाध् (सैल्लोज) पदार्थो पर निर्भर है। ज्यो-ज्यो भारत प्रगति करता जायगा, काष्ठ की खपत भी बढती जायगी। काष्ठ का वार्षिक व्यय ५ या ६ घनफुट प्रति मनुष्य के हिसाब से गिनने पर, अगले दस वर्षो मे बढी जनसख्या को ध्यान मे रखते हुए, अनुमान लगाया गया है कि हमे लगभग २ अरब २० करोड घनफुट काष्ठ की आवश्यकता पडेगी। इसकी पूर्ति के लिए प्रतिवर्ष १२ या १३ घनफुट काष्ठ प्रति एकड प्राप्त होना चाहिए।

हमारे वनों मे काष्ठ की कम उत्पत्ति के निम्नलिखित कारण हैं —

(१) घने वनों का अभाव और कम उपज,

(२) कुछ थोडी-सी प्रसिद्ध काष्ठजातियो का ही उपयोग मे लाया जाना।

पहली कमी उचित वन-सवर्धन प्रणाली द्वारा दूर हो सकती है। योग्य पोषण-क्रिया और गहन वनरोपण नीति के द्वारा भारत सरकार अगले ३० वर्षो मे इस कमी की पूर्ति करने का प्रयत्न कर रही है। यह वनकला (सिल्वीकल्चर) शाखा का कार्य है।

दूसरी कमी की पूर्ति अन्य गौण या द्वितीय श्रेणी की लकड़ियो के प्रयोग से की जा सकती है। अब तक इनका प्रयोग अत्यत कम ही होना है, क्योकि इनकी आयु और अन्य गुण भी प्रसिद्ध या श्रेष्ठ काष्ठो के मुकाबले मे कम हैं। तथापि उचित काष्ठ-परिरक्षण साधनो द्वारा द्वितीय वर्ग के इन काष्ठो की आयु बढा दी जा सकती है, जिसमे स्थायीपन मे वे साल, सागौन, शीशम, देवदार आदि नामी काष्ठों की बराबरी कर सके। काष्ठ-परिरक्षण साधनो से उन अभिजात काष्ठो की भी, जिनकी माँग अधिक है और जो पर्याप्त मात्रा मे प्राप्य भी नही हैं, आयु बढाने मे सहायता मिलती है। इससे वे अधिक समय तक चल सकते हैं। इन परिरक्षण साधनो से हमारे वनों पर काष्ठ की निकामी का भार कम पड़ेगा और परोक्ष रूप से वनो के संरक्षण में सहायता मिलेगी। इसके अतिरिक्त काष्ठ के नष्ट होने की निरन्तर चिन्ता भी न बनी रहेगी तथा वनो के नष्ट होने के उपरान्त भी उनके पुन'-स्थापन-व्यय मे बचत हो जायगी।

काष्ठ-परिरक्षण-साधनो का वैज्ञानिक रूप से अन्वेषण-कार्य वन-अनुसन्धानशाला देहरादून की काष्ठ-परिरक्षण शाखा मे विस्तारपूर्वक हो रहा है।

अध्याय ३

काष्ठ-परिरक्षण का क्षेत्र

१. काष्ठ सुरक्षित रखने के लाभ

काष्ठ-परिरक्षण का उद्देश्य काष्ठ की आयु अथवा उसका स्थायित्व बढ़ा देना है, जिससे किसी भी कार्य में उसका उपयोग करने के उपरान्त उसकी उपयोज्य दशा व अवस्था बढ़ जाय। दीमक, घुन, कवक, समुद्रकीट और अग्नि आदि काष्ठ-विनाशकों से काष्ठ को बचाये रखने का कार्य ही **काष्ठ-परिरक्षण** है। लकड़ी की भौतिक दशा यानी उसके फटन या ऋतुक्षरण आदि में सुधार करने के लिए उसे ठीक प्रकार से सुखाने और यांत्रिक उपघात से बचाने की रीतियाँ अपनाना सहायक होगा। परन्तु काष्ठ की जैविक[1] (बायोलोजिकल) दशा यानी कवक और कीड़ों द्वारा उसे सड़ने-गलने और नष्ट होने से बचाने के लिए रासायनिक पदार्थों द्वारा उपचार या साधन करना ही काष्ठ-परिरक्षण का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग समझा जाता है। इस पुस्तक में काष्ठ-परिरक्षण शब्द मुख्यतः काष्ठ की जैविक दशा सुधारने के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। अगले प्रकरणों में संक्षेप से काष्ठ-संरचना, काष्ठ-विनाशक कारकों तथा काष्ठ-परिरक्षण की रीतियों आदि का विवरण दिया गया है। उनका यथार्थ स्वरूप तथा उपयोज्य रीतियाँ बतलाना भी इस पुस्तक का उद्देश्य है। लघु श्रेणी के काष्ठों को उपचारित करके उन्हें उच्च श्रेणी के (कीमती) काष्ठों के तुल्य या उनसे अधिक टिकाऊ बना सकने की विधियाँ बताना हमारा लक्ष्य है। साल, शीशम, सागौन आदि उच्च श्रेणी के काष्ठ अधिक दुर्लभ होते जा रहे हैं और उनके मूल्य भी बढ़ते जा रहे हैं, अतः काष्ठ-परिरक्षण-रीतियों का प्रयोग राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के सुधार में भी सहायक सिद्ध हो सकता है।

२. काष्ठ-परिरक्षण से आर्थिक लाभ

किसी भी निर्माण-वस्तु का पुल, बिजली और तार के खम्भे, आधार स्तम्भ, सामुद्रिक तटपट तथा गृह आदि के रचनाकार्य में प्रयोग करने के पूर्व यह जानना आवश्यक

1 Biological.

हो जाता है कि उससे अन्य सुविधाओं के अतिरिक्त कितनी बचत हो सकती है। ऊपर लिखित निर्माण कार्य के लिए लोहा, सीमेन्ट काक्रीट, मिश्रित धातु, स्तर काष्ठ, आपट्टित काष्ठ, ठोस काष्ठ इत्यादि अनेक वस्तुएँ प्रयुक्त की जाती है। उनका चुनाव निम्नलिखित बातो पर निर्भर होता है —

१. **स्थानीय प्रथम मूल्य**—अर्थात् किसी वस्तु के प्रतिस्थापन मे लगा कुल मूल्य, जिसमे श्रम, वेतन इत्यादि व्यय सम्मिलित रहते है। परिरक्षित काष्ठ की सरचना का प्रथम मूल्य अन्य निर्माण-वस्तुओ की अपेक्षा सदा कम रहता है, क्योकि काष्ठ एक सस्ता पदार्थ है। उदाहरण के लिए रेलवे स्लीपर को ही लीजिए। काष्ठ के स्लीपर का मूल्य लोहे और सीमेन्ट काक्रीट के स्लीपर से कम होता है। इसी प्रकार काष्ठ की इमारते भी अन्य निर्माण योग्य पदार्थो से कम मूल्य की होती है। यदि परिरक्षित रसकाष्ठ[1] का प्रयोग किया जाय तो मूल्य मे और भी कमी की जा सकती है। रसकाष्ठ को साधन क्रियाओ द्वारा परिरक्षित करना सारकाष्ठ[2] (हार्ट वुड) की अपेक्षा अधिक सरल और प्रभावी होता है। अर्थात् काष्ठ-परिरक्षण क्रियाओ द्वारा रसकाष्ठ को सारकाष्ठ की अपेक्षा अधिक टिकाऊ बनाया जा सकता हे। अतः मितव्ययिता के विचार से रासायनिक उपचार द्वारा तैयार की गयी लकडी की वस्तु उतने ही मूल्य मे तैयार की जा सकती है, जितने मे बहुव्ययी निर्माण पदार्थ से बनी वस्तु।

२. **उपयोज्य दशा अथवा कार्य-अवधि**—जितने समय तक कोई सरचना काम के योग्य रहे वह अवधि उसकी कार्य-अवधि होती है। किसी भले या बुरे निर्माण पदार्थ को चुनने के लिए यह भी एक प्रमाप है। इसके साथ-साथ यह भी देखना आवश्यक होता है कि वह सरचना कितने काल तक उपयोज्य दशा मे रह सकेगी। यद्यपि यह स्पष्ट है कि लोहे और सीमेंट काक्रीट के पुल, खम्भे इत्यादि काष्ठ की अपेक्षा अधिक समय तक चल सकते हैं, परन्तु इस बात पर भी ध्यान देना होगा कि समयानुसार यातायात के बढने पर पुल या खम्भे के आकार मे परिवर्तन न करना पडे। यदि ऐसा करना आवश्यक हो जाय तो सेवाकाल या अवधि के पूर्व ही लोहे या सीमेंट काक्रीट की सरचना को तोड-फोड़कर नूतन सामयिक आवश्यकतानुसार दूसरी सरचना का निर्माण करना होगा। इसमे कई गुना अधिक व्यय लगेगा। उपचारित काष्ठ मे इतनी असुविधा न होगी। थोडे ही व्यय मे कार्य पूर्ण किया जा सकेगा, क्योंकि बहुत-से काष्ठ भाग सुरक्षित दशा मे होगे और उन्हे पुन. प्रयोग करना

1 Sap wood. 2 Heart wood.

सम्भव हो सकेगा। यदि उन्हे उखाड़ा न भी जाय तो उसी सरचना मे पूरी तरह परिवर्तन किया जा सकता है।

३. **संधारण-व्यय**—किसी भी सरचना को बनाये रखने मे जो व्यय लगता है वही उसका सधारण-व्यय है। लोहे की इमारतो को मोरचा लगने से बचाने के लिए निरन्तर रगलेप करना आवश्यक होता है। सीमेन्ट की रचना के फटने पर उसकी मरम्मत करनी पडती है, पर भली प्रकार उपचारित काष्ठ पर पुन किसी प्रकार का लेप करने या उसकी मरम्मत करने की आवश्यकता नही पडती। सधारण-व्यय की दृष्टि से उपचारित काष्ठो की सरचनाएँ कम व्ययसाध्य होती है।

४ **नाशरक्षण-शुल्क**—किसी भी वस्तु की सेवा-अवधि पूर्ण होने पर जो मूल्य अन्त मे मिलता है वही उसका नाशरक्षण-शुल्क है। अन्य पदार्थो की अपेक्षा काष्ठ से, विशेषत उपचारित काष्ट से, नाशरक्षण-शुल्क अधिक मात्रा मे मिलता है। उदाहरणार्थ, अनुभव मे आया है कि शोधित काष्ठ के स्लीपरो को सेवा-अवधि की परिसमाप्ति के उपरान्त मुख्य (मेन) लाइन से हटाकर ब्रान्च लाइन मे और इसके बाद रेलवे साइडिंग्स या पथिकाओ और अन्त मे बाड के खम्भो के रूप मे भी उपयोजित किया जा सकता है। इसी प्रकार बिजली के खम्भो के धरातल से ऊपर के भाग के टूट जाने पर उसे छोटे खम्भे के रूप मे काम मे लाया जा सकता है। लोहे और सीमेन्ट की सरचना से ऐसा शुल्क नही मिलता। किन्तु इसके विपरीत उसे उखाडने के लिए भी अतिरिक्त व्यय की आवश्यकता पड जाती है और उससे क्षेप्य अर्हा (टूटी-फूटी चीज की कीमत) कुछ भी नही मिल सकती। नाशरक्षण-शुल्क के विचार से भी उपचारित लकडी अन्य निर्माण पदार्थो की अपेक्षा कही अधिक लाभप्रद होती है।

५ **वार्षिक मूल्य**—किसी भी पदार्थ की निर्माणकार्य के लिए उपयोगिता उसके वार्षिक मूल्य पर निर्भर रहती है। वार्षिक मूल्य उस व्यय को कहते है जो किसी निर्माण-पदार्थ के प्रयोग-काल मे उपयोज्य समय तक प्रतिवर्ष लगाया जाता है। इस व्यय को ऐसी वार्षिक पूँजी समझ लेना चाहिए जो चक्रवृद्धि ब्याज सहित उस अवधि तक लगातार ऋण अदा करने के लिए देय होती है जब तक उस वस्तु की सरचना उपयोज्य रूप मे बनी रहे अथवा वह वस्तु काम मे आती रहे। यह ऋण वह मूल्य है जो उस वस्तु की मूल बनावट तैयार करने आदि पर प्रारम्भिक रूप से लगे। इसकी गणना निम्नलिखित गुरु के आधार पर की जाती है —

अ=वार्षिक मूल्य या सालाना व्यय।

प=वहआदिम व्यय अथवावह व्यय जो उस पदार्थ को स्थापित करने में पहले-पहल लगे।

र=व्याज की दर दशमलव मे।

न=आदि से अन्त तक की वर्ष सख्या अर्थात् वह काल (वर्षो मे) जब तक कि सरचना उपयोज्य दशा मे रहे।

इस सूत्र के अनुसार बार-बार गणना न करनी पड़े, इसलिए सारणी (४ क) तैयार की गयी है। इसके निर्देशन से तुरन्त ही वार्षिक मूल्य निकाला जा सकता है। इस सारणी मे उपर्युक्त सूत्र के आधार पर गणित अक रहते है। अत. इसका निर्देशन एक सुगम कार्य है। ये अक सारणी ६ मे दिये गये है।

सारणी—६

स्थित निर्माण-पदार्थ के प्रति इकाई व्यय पर वार्षिक मूल्य

पुन: स्थापन के पूर्व आयु वर्षो मे	व्याज की दर		
	र=३ प्रतिशत	र=४ प्रतिशत	र=५ प्रतिशत
१	१.०३०००००	१.०४०००००	१.०५०००००
२	०.५२२६१०८	०.५३०१९६१	०.५३७८०४९
३	०.३५३५३०४	०.३६०३४८५	०.३६७२०८६
४	०.२६९०२७०	०.२७५४९००	०.२८२०११८
५	०.२१८३५४६	० २२४६२७१	०.२३०९७४८
६	०.१८४५९७५	०.१९०७६१९	०.१९७०१७५
७	०.१६०५०६४	०.१६६६०९६	०.१७२८१९८
८	०.१४२४५६४	०.१४८५२७८	० १५४७२१८
९	०.१२८४३३९	० १३४४९३०	० १४०६९०१
१०	०.११७२३०५	०.१२३२९०९	०.१२९५०४६
११	०.१०८०७७४	०.११४१४९०	०.१२०३८८९
१२	०.१००४६२१	०.१०६५५२२	०.११२८२५४
१३	०.०९४०२९५	०.१००१४३७	० १०६४५५८
१४	०.०८८५२६३	०.०९४६६९०	० १०१०२४०
१५	०.०८३७६६६	० ०८९९४११	०.०९६३४२३
१६	०.०७९६१०८	०.०८५८२००	०.०९२२६९९
१७	०.०७५९५२५	०.०८२१९८५	० ०८८६९९१
१८	०.०७२७०८७	० ०७८९९३३	०.०८५५४६२
१९	०.०६९८१३९	०.०७६१३८६	०.०८२७४५०

पुनः स्थापन के पूर्व आयु वर्षों मे	व्याज की दर		
	र=३ प्रतिशत	र=४ प्रतिशत	र=५ प्रतिशत
२०	०.०६७२१५७	०.०७३५८१७	०.०८०२४२६
२१	०.०६४८७१८	०.०७१२८०१	०.०७७९९६१
२२	०.०६२७४७४	०.०६९१९८८	०.०७५९७०५
२३	०.०६०८१३९	०.०६७३०९१	०.०७४१३६८
२४	०.०५९,०४७४	०.०६५५८६८	०.०७२४७०९
२५	०.०५७४२७९	०.०६४०१२०	०.०७०९५२५
२६	०.०५५९३८३	०.०६२५६७४	०.०६९५६४३
२७	०.०५४५६४२	०.०६१२३८५	०.०६८२९१९
२८	०.०५३२९३२	०.०६००१३०	०.०६७१२२५
२९	०.०५२११४७	०.०५८८७९९	०.०६६०४५५
३०	०.०५१०१९३	०.०५७८३०१	०.०६५०५१४
३५	०.०४६५३९३	०.०५३५७७३	०.०६१०७१७
४०	०.०४३२६२४	०.०५०५२३५	०.०५८२७८२
४५	०.०४०७८५२	०.०४८२६२५	०.०५६२६१७
५०	०.०३८८६५५	०.०४६५५०२	०.०५४७७६७
६०	०.०३६१३३०	०.०४४२०१८	०.०५२८२८२
७०	०.०३४३३६६	०.०४२७४५१	०.०५१६९९२
८०	०.०३३१११७	०.०४१८१४१	०.०५१०२९६
९०	०.०३२२५५६	०.०४१२०७८	०.०५०६२७१
१००	०.०३१६४६७	०.०४०८०८०	०.०५०३८३१

इस सारणी की सहायता से निम्नलिखित उदाहरण ४ (ख) मे दी गयी विधि से वार्षिक मूल्य का निर्धारण किया जा सकता है।

(क) मान लिया कि एक सामान्य (अनुपचारित) काष्ठ का पुल बनाने में १०,००० रुपये लगे और उसकी आयु ८ वर्ष की है, तो ४ प्रतिशत व्याज की दर से, उसका वार्षिक मूल्य = ०.१४८५२७८ × १०,०००रु०
= १४८५ २८ रुपया होगा।

(ख) रासायनिक-उपचार करने पर उसी काष्ठ के पुल का मूल्य १४,००० रुपया होगा, अर्थात् अनुपचारित काष्ठ के पुल से ४० प्रतिशत अधिक और उसकी आयु कम से कम ३० वर्ष मानने पर, ४ प्रतिशत व्याज की दर से उसका वार्षिक मूल्य = ०.०५७८३०१ × १४,००० रु०
= ८०९.६२ रुपया होगा।

(ग) यदि वही पुल सीमेन्ट-काक्रीट से बनाया जाय, तो बनाने मे लगभग ३०,००० रु०, अर्थात् सामान्य काष्ठ के पुल से तिगुना रु० लगेगा, और उसकी आयु अधिक से अधिक १०० वर्ष मानने पर, ४ प्रतिशत ब्याज की दर से—

उसका वार्षिक मूल्य = ०.०४०८०८० × ३०,००० रु०

= १२२४ २४ रुपया होगा ।

ऊपर के तीनो उदाहरणो से यही स्पष्ट हुआ कि सबसे कम वार्षिक-व्यय उपचारित काष्ठ मे लगा जो ८०९.६२ रुपया है, यद्यपि उसकी आयु ३० वर्ष की ही मानी गयी है । सीमेन्ट का पुल इससे ५१ प्रतिशत प्रतिवर्ष अधिक कीमती रहा । यदि लोहे और सीमेन्ट के खम्भे, स्लीपर, इत्यादि से बने पुलो की काष्ठ के बने पुलो से तुलना की जाय, तो पता चलेगा कि उपचारित-काष्ठ सरचना मे न्यूनतम वार्षिक-व्यय लगता है । इससे राष्ट्रीय कोष मे यथेष्ट बचत हो सकती है । लोहा अपेक्षित मात्रा मे प्राप्य भी नही है ।

३. वन-संरक्षण तथा अन्य आर्थिक दिशाओं में काष्ठ-परिरक्षण का महत्त्व

निर्माण-कार्य के लिए लोहा और कक्रीट काष्ठ का स्थान ले रहा है, परन्तु पाश्चात्य देशो मे लोहे का पर्याप्त मात्रा मे उत्पादन होने पर भी काष्ठ को अब भी मान्यता दी जाती है । उपचार करने के उपरान्त काष्ठ अन्य निर्माण पदार्थो से मूल्य मे स्पर्धा कर सकता है। रासायनिक उद्योग-धन्धो मे, कागज, रेशा-पट्ट तथा अन्य निर्माण-कार्यो आदि मे, काष्ठ का उपयोग होने के कारण उसकी मांग बढती जा रही है और अब आवश्यक हो गया है कि परिरक्षण की विधियाँ अधिकाधिक उपयोग मे लायी जायँ, ताकि इसका स्रोत सरक्षित रह सके । जिन देशो मे काष्ठ प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है वे उसे सुरक्षित करके विदेशी मुद्रा प्राप्त करने मे सलग्न है । अतः इस कार्य से राष्ट्रीय कोष भरने मे सहायता मिल सकती है ।

एक स्थूल गणना (५क[१]) के अनुसार समस्त यूरोप मे साधारण अशोधित काष्ठ स्लीपर की आयु ७ वर्ष होती है । उसी स्लीपर का क्रियोजोट द्वारा उपचार करने के पश्चात् वह आयु २१ वर्ष हो जाती है । वहाँ ३२ करोड़ ८० लाख रेलवे स्लीपर है जिनके बनाने मे ५ करोड़ ५० लाख घन मीटर काष्ठ लगा है । इन स्लीपरों के उपचार

१. देखिए निर्देश-सूची, पृ० ५६ ।

से प्रतिवर्ष ५० लाख घन मीटर लकड़ी की बचत हुई है। कनाडा मे काष्ठीय रेल स्लीपरो के उपचार से प्रतिवर्ष २८ लाख ८० हजार डालरो की बचत होती है। सयुक्त राज्य अमेरिका मे काष्ठ-परिरक्षण क्रिया के कारण स्लीपरो के दैनिक व्यय मे प्रतिदिन १ लाख ४५ हजार डालर की बचत होती है।

यूरोप मे बिजली के काष्ठ खम्भो की सख्या १० करोड है और अनुमान है कि इनमे लगभग ८० लाख घन-मीटर काष्ठ लगा होगा। इन खम्भो की परिरक्षण क्रिया से ४ लाख घन मीटर काष्ठ की वार्षिक बचत हुई है। काष्ठ का अशोधित खम्भा लगभग ९ वर्ष चलता है जब कि क्रियोजोट द्वारा उपचारित अथवा शोधित (क्रियोजोटेड[1]) खम्भे की औसत आयु २९ वर्ष होती है।

सयुक्त राज्य अमेरिका मे सन् १९४८ मे ३४० करोड़ बोर्डफुट लकड़ी कोयले की खानो के खम्भो मे लगी थी जिसमे से ५३ करोड ८० लाख बोर्डफुट स्थायी रूप से प्रयोज्य होना थी। अनुपचारित काष्ठ की आयु ३ वर्ष और उपचारित काष्ठ की आयु कम से कम १२ वर्ष मानने पर, उपचारित काष्ठ के प्रयोग से कुल १२ × ५ लाख ३८ हजार × ३६ दशमलव ६७ डालर अर्थात् २३,६७,४१, ५२० डालर प्रतिवर्ष बचत होने की गणना की गयी थी।

सान्फ्रान्सिस्को मैरीन पाईलिंग कमेटी (अमेरिका) की रिपोर्ट है कि अनुपचारित काष्ठ खम्भ को समुद्रकीट दो या तीन वर्ष के अन्दर ही नष्ट कर डालते है जब कि पूर्ण कोशा (फलमेल[2]) विधि से पकाया हुआ (उपचारित) काष्ठ खम्भ ३५ वर्ष या उससे भी अधिक अवधि तक चलता है, यहाँ तक कि समुद्री काम मे प्रयोग किये जाने पर भी उपचारित काष्ठ खम्भो की औसत आयु ४८ ५ वर्ष तक पायी गयी है।

उपर्युक्त उदाहरण के अतिरिक्त अन्य कई उदाहरणो से भी यह सिद्ध किया जा सकता है कि काष्ठ-परिरक्षण के कारण राष्ट्रीय व्यय मे कितनी बचत हो सकती है। सन् १९३९ मे हुई इग्लैण्ड की एक साधारण गणना (५ग*) से पता चलता है कि सड़न से काष्ठ को पहुंची हानि की मरम्मत करने मे १० लाख पौण्ड से कम व्यय नही हुआ। यदि वहाँ उपचारित काष्ठ का प्रयोग किया जाता तो इसमे से अधिकाश व्यय बच सकता था।

ससार के सभी प्रगतिशील देशो मे काष्ठ का स्थान ले सकने योग्य अन्य निर्माण-पदार्थो का अधिक उत्पादन होने पर भी काष्ठ-परिरक्षण-कार्य निरन्तर बढ़ता ही जा

1 Creosoted. 2 Full-Cell. * निर्देश-सूची, पृ० ५५ पर देखिए।

रहा है। अमेरिका मे हुई एक गणना से पता चला कि उपचारित काष्ठ की मात्रा मे पिछले ४२ वर्षो मे (१९०८ से १९५० तक), प्रतिवर्ष औसतन् २२ लाख ६० हजार वर्गफुट की वृद्धि हुई है । यदि काष्ठ-परिरक्षण-कार्य न किया जाता तो ३ से ६ गुना अधिक काष्ठ की आवश्यकता होती जिसका परिणाम यह होता कि काष्ठ-सरचना के व्यय मे आदि मूल्य और वार्षिक मूल्य बढते जाते और इसी कारण वह अन्य निर्माण-पदार्थो से स्पर्धा न कर पाता ।

बिजली, तार, वाड और आधार स्तम्भो के लिए जगलो के छटान किये छोटे पेड भी उपयुक्त होते है । अत. उन कार्यो के लिए लम्बे बडे वृक्षो की आवश्यकता नहीं होती और अल्प काल मे ही अपेक्षित परिमाण के पेड प्राप्त हो सकते है । इस कारण काष्ठ-खम्भो का मूल्य कम होता है और वे पर्याप्त सख्या मे मिल सकते है । वृक्ष को परिपक्व होने मे सौ से डेढ सौ वर्ष तक लग जाते है, परन्तु खम्भ की प्राप्ति के लिए २० या ३० वर्ष के उपरान्त ही यथार्थ परिमाण मे पेड मिल सकते है और थोडे ही परिश्रम से उन्हे गिराया जा सकता है ।

काष्ठ-परिरक्षण के उद्योग-क्षेत्र मे हजारो व्यक्ति कार्य कर रहे है । छोटे पैमाने के ऐसे उद्योग मे अधिक पूँजी की आवश्यकता नही होती । अगले पृष्ठो के (भाग ४, अध्याय ३) पढ़ने से स्पष्ट हो जायगा कि भारत-जैसे कृषि-प्रधान देश के लिए यह उद्योग अति उपयुक्त है । ग्रामोद्योग के लिए भी काष्ठ-परिरक्षण का विशेष महत्त्व है क्योकि गाँवो के लोगो के गृह-निर्माण के लिए वह कम खर्चीला साधन है । थोड़े समय मे शीघ्र उगने बढनेवाले पेड़ लगाकर काष्ठ-परिरक्षण की सरल रीतियो से उन्हे अधिक टिकाऊ और कीमती काष्ठो के तुल्य बनाया जा सकता है । सारणी ३० (परिशिष्ट) मे एक सूची दी गयी है जिसमे बताया गया है कि इस प्रकार के शीघ्र बढ़नेवाले पेड़ो से प्राप्त हुए द्वितीय श्रेणी के काष्ठ उपचार के पश्चात् टीक और साल-जैसे नामी और बहुमूल्य काष्ठो का स्थान ले सकते है ।

साल, सागौन, शीशम, पैडाक इत्यादि प्रख्यात पेडो से काष्ठ प्राप्त करने के लिए डेढ सौ वर्ष से अधिक समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है । ये काष्ठ यद्यपि स्थायी है, परन्तु अब ये अधिक दुर्लभ होते जा रह है । जैसा ऊपर कहा जा चुका है उपचारित अस्थायी काष्ठ इनका स्थान ले सकते है । अस्थायी काष्ठ बहुधा शीघ्र बढनेवाले वृक्षों से प्राप्त होते है । इन अस्थायी काष्ठों की प्राप्ति के लिए एक लम्बे अवसर तक प्रतीक्षा नही करनी पडती तथा प्रख्यात काष्ठो के प्राप्तिकाल के अन्तर्गत इन अस्थायी काष्ठो के वृक्ष कई बार उपजाये और काटे जा सकते है । अतः काष्ठ-परिरक्षण-

क्रिया राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था को सुधारने में सहायक सिद्ध हो सकती है । प्रगतिशील पाश्चात्य देशों में ऐसा ही हुआ है । काष्ठ-उपचार का वन-संरक्षण पर अतुल प्रभाव पड़ा है । यह कहावत सत्य है कि एक पेड़ का परिरक्षण पाँच या छः पेड़ उगाने के तुल्य है, क्योंकि परिरक्षण क्रिया द्वारा काष्ठ को कम से कम पाँच या छः गुना टिकाऊ बनाया जा सकता है ।

अध्याय ४

काष्ठ-परिरक्षण की आवश्यकता

१. काष्ठ का स्थायित्व

सभी प्रकार के काष्ठों के दो भाग होते हैं। इनमें से एक तो वृक्ष के तने का बाह्य भाग है जो कुछ दूरी तक बाहरी घेर के अन्दर की ओर रहता है। इसकी कोशाएँ (सेल्स[1]) खाद्य पदार्थ और जल का संवाहन करती हैं। इस बाह्य भाग को कच्ची लकड़ी अथवा बाह्य काष्ठ या रसकाष्ठ कहते हैं। अंग्रेजी में वह सैपवुड[2] नाम से प्रसिद्ध है। वृक्ष के तने का शेष भाग जो मध्य तक रहता है, पिथ[3] कहलाता है। वह हिन्दी में सारकाष्ठ, अन्तर काष्ठ अथवा पक्की लकड़ी कहलाता है। इसी सारकाष्ठ के कारण पेड़ को दृढ़ता मिलती है और उसको अंग्रेजी में हार्ट वुड[4] कहते हैं। सारकाष्ठ की कोशाएँ जीवित नहीं रहतीं, किन्तु मरी रहती हैं। सभी काष्ठ-जातियों का बाह्य अथवा रसकाष्ठ दीमक, घुन, कवक इत्यादि काष्ठ-विनाश-कारकों के कारण शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, परन्तु कुछ वृक्षों की पक्की लकड़ी, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट होता है, टिकाऊ होती है। इसी कारण सारकाष्ठ को मान्यता दी जाती है। रसकाष्ठ बहुधा रद्द कर दिया जाता है। साल, सागौन, शीशम, देवदार इत्यादि कुछ ऐसे काष्ठ हैं जिनका सारकाष्ठ टिकाऊ होता है। इस स्थायी वर्ग में थोड़े ही काष्ठ हैं (सारिणी ८ देखिए)। भारत के अधिकतर काष्ठ कम टिकाऊ अर्थात् अस्थायी हैं, और विनाशकारक तत्त्वों का आक्रमण सहन नहीं कर सकते। अतः काष्ठ का स्थायित्व अथवा उसकी आयु बढ़ाने के लिए उसका रासायनिक उपचार करना आवश्यक होता है। यह उपचार सभी काष्ठ-जातियों के रसकाष्ठ और अस्थायी काष्ठों के सारकाष्ठ पर किया जा सकता है। शक्ति या बल सहन करने की दृष्टि से रसकाष्ठ और सारकाष्ठ में कोई अन्तर नहीं है। यांत्रिक संभार ग्रहण करने की दोनों काष्ठों में समान शक्ति है, अतः उपचार किये जाने पर रसकाष्ठ में

1 Cells. 2 Sap wood. 3 Pith. 4 Heart wood.

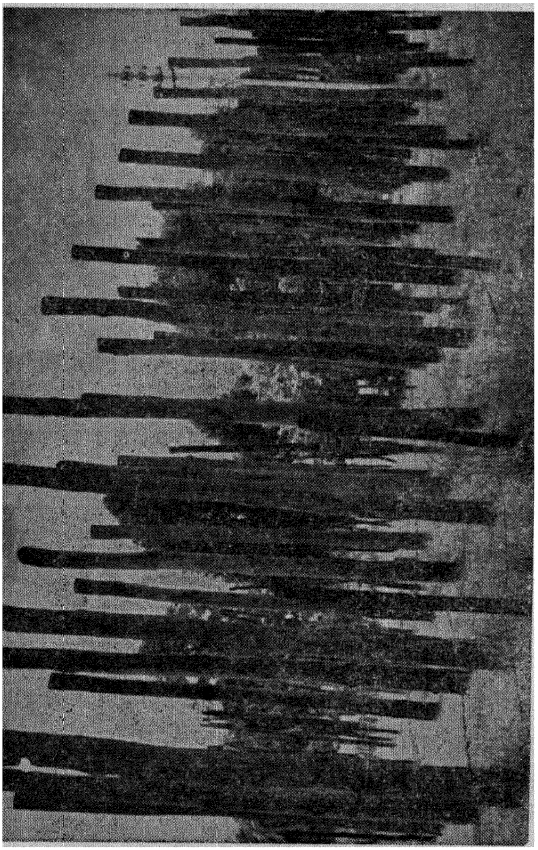
बोझ-धारण क्षमता सदा उसी प्रकार बनी रहेगी जैसी कि सारकाष्ठ में । एक स्थूल अनुमान के अनुसार भारत की वर्तमान काष्ठ-उत्पत्ति १० करोड़ घनफुट है । इसमें दस प्रतिशत काष्ठ, यानी एक करोड़ घनफुट, शकुधारी (कोनोफरस)[1] काष्ठ है और शेष ऊरुपाती यानी चौड़ी पत्तीवाला (ब्राडलीफ्ड)[2] काष्ठ है। स्थूल विचार से इन सबका $\frac{1}{3}$ भाग स्वाभाविक टिकाऊ काष्ठ है, परन्तु शेष $\frac{2}{3}$ भाग कृत्रिम विधियो से टिकाऊ बनाया जा सकता है। जो काष्ठ स्वभावत. टिकाऊ है, उन्हे लम्बी आयु प्रदान करने के लिए रासायनिक उपचार का प्रयोग करना चाहिए । कुछ विशेष दशाओ मे, जैसे कि समुद्री कार्यो मे, अति आक्रमणकारी सामुद्रिक कीटों से यदि काष्ठ की रक्षा करनी हो तो स्थायी काष्ठो को रासायनिक उपचार द्वारा कीटप्रतिकारी बनाना होगा।

२. दूसरी श्रेणी के अप्रसिद्ध जातीय काष्ठों का प्रयोग

कुछ वर्षो से भारत प्रतिवर्ष लगभग २० लाख घनफुट टीक काष्ठ यानी सागौन की लकडी, जिसका मूल्य प्राय. २.७ करोड़ रुपया होता है, बर्मा, स्याम, इन्डोनेशिया आदि देशो से आयात कर रहा है । इससे हमारी विदेशी मुद्रा पर भारी प्रभाव पड़ रहा है । सदा के लिए यह दशा बनाये रखना उचित नही है । इसका प्रत्युपाय क्या है ? इसका उपाय यही है कि निम्न जाति के तिरस्कृत तथा अनुपयोगी काष्ठों को रासायनिक उपचार द्वारा उच्च जाति के काष्ठो के अनुरूप बना दिया जाय ताकि वे टीक-जैसी उच्च जाति की लकड़ियों का स्थान ले सकें। बिजली, तार तथा समुद्री खम्भों आदि-जैसे बाहरी कार्यो के लिए काष्ठ का प्रयोग करते समय काष्ठ-विनाशकारक कीटो के पनपने की आदर्श अवस्थाएं मौजूद होती है । कवक, जिसके आक्रमण से काष्ठ सड़कर गल जाता है, बाहर के नम-उष्ण स्थानो मे अधिक पनपता है । दीमक भी धरती के नीचे के नमीवाले स्थानो मे भीटे बना लेती है । ऐसी कीटानुकूल तथा काष्ठ-प्रतिकूल परिस्थितियो मे टीक-जैसा काष्ठ भी अधिक समय तक नही चल पाता । काष्ठ के सामुद्रिक उपयोग की परिस्थितियाँ तो और भी भयानक रहती है । दक्षिणी अमेरिका मे पाये जानेवाले ग्रीनहार्ट काष्ठ को छोड़कर अन्य कोई भी काष्ठ समुद्री कीटों के आक्रमण से बच नही पाता । वे प्राय. सभी काष्ठों को शीघ्र नष्ट कर देते है । इन प्रतिकूल स्थितियो मे तो भली प्रकार उपचारित काष्ठ ही टिक सकते है। टीक के खम्भे समुद्र मे पाँच से लेकर ९ वर्ष तक ही चल सकते है, जब कि क्रियोजोट

1 Coniforous. 2 Broad-leafed. 3 Secondary species.

द्वारा उपचारित काष्ठ १५ वर्ष से भी अधिक समय तक उपयोगी दशा में पाये जाते हैं । उपचार करने में जितना अधिक रसायन पदार्थ काष्ठ-कोषों में व्यापित किया



चित्र ८—देहरादून का वन-अनुसंधानशाला में उपचारित काष्ठस्तंभों का परीक्षण ।
(खंभे २३ वर्ष उपरान्त सुरक्षित दशा में हैं)

जायगा उतने ही अधिक समय तक काष्ठ सुरक्षित रह सकता है । यह परिरक्षी-प्रचूषण गुण उच्च श्रेणी के टीक-जैसे काष्ठों में नहीं होता, परन्तु निम्न जाति के काष्ठों

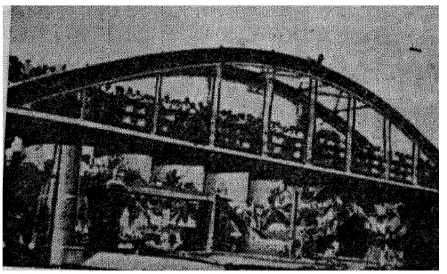
में यह गुण बहुधा अधिक मात्रा में पाया जाता है। भारत में बहुत-से ऐसे काष्ठ हैं जिनमें सरलता से परिरक्षी-प्रचूषण कराना सम्भव है। ऐसे काष्ठ चीड़, सेमर, आम, पपीता, काजू, हल्दू होलाँग, होलाक, बहेड़ा, सैन इत्यादि हैं। (भाग ३, अध्याय ४, ६ देखिए।) रसकाष्ठ को उपचार करने के पश्चात्, एक आदर्श काष्ठ बनाया जा सकता है क्योंकि उसकी कोशाएँ खुली रहती हैं और प्रत्येक कोशा में यथोचित मात्रा में परिरक्षी-प्रचूषण कराया जा सकता है जो कई वर्षों तक निश्शेष नहीं होता। इसलिए उस से रसकाष्ठ अथवा बाह्य काष्ठ को, जिसे साल आदि के काष्ठ स्लीपर बनाते समय बहुधा फेंक दिया जाता है और जो वनों में भी नष्ट हो जाता है, परिरक्षण करने के उपरान्त एक उपयोगी वस्तु बनाया जा सकता है। चित्र ८ में उपचारित चीड़, सैन, साल आदि के खम्भे (रस काष्ठ सहित) दिखलाये गये हैं। वन-अनुसन्धान-शाला, देहरादून के परीक्षण प्रांगण (टेस्टयार्ड) में ये खम्भें २३ वर्ष की सेवा के



चित्र ९—लखनऊ उद्योग प्रदर्शनी में लगाया गया आपट्टित काष्ठ (plywood) का पुल।

उपरान्त भी सुरक्षित खड़े हैं। गोल खम्भों में प्रायः ५० प्रतिशत से ऊपर रसकाष्ठ रहता है जो अनुपचारित दशा में शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। चित्र ९ में काष्ठ

के लट्ठों से (जिनमें रसकाष्ठ भी सम्मिलित है) प्राप्त पट्टियों को श्लिष्ट करके (यानी उन्हें सरेस या श्लेष से जोड़कर) एक पुल में जो १९३५ की लखनऊ उद्योग-प्रदर्शिनी में काम में लाया गया था, उपयोजित दिखाया गया है । इन काष्ठ-पट्टियों



चित्र १०—ट्रावनकोर राज्य में उपचारित काष्ठ का पुल।

को उपचारित करने के पश्चात् ही प्रयुक्त किया गया था । काष्ठ का निर्माण-कार्य में प्रयोग चित्र १० में भी दिखाया गया है।



चित्र ११—दक्षिण रेलवे में परीक्षणार्थ लगाये गये उपचारित काष्ठ-स्लीपर ।

देहरादून की वन-अनुसन्धानशाला ने कई हजार विभिन्न जातियों के काष्ठों से बने रेलवे स्लीपरों को पृथक्-पृथक् रासायनिक पदार्थों द्वारा शोधन करके परीक्षण हेतु रेलवे लाइनों में लगाया था। इन परीक्षणों से यह अनुभव प्राप्त हुआ कि चीड़, सैन, होलाँग, होलाक इत्यादि जाति के शोधित काष्ठ स्लीपरों की सेवा-आयु २० से २५ वर्ष तक रही, जब कि अशोधित अथवा अनुपचारित दशा में यही आयु दो से लेकर ४, ५ वर्ष तक पायी गयी। चित्र ११ में ऐसे उपचारित (क्रियोजोटेड) स्लीपरों का भारत की दक्षिण रेलवे द्वारा किया गया संपरीक्षण दिखाया गया है। वहाँ विनाश-कर्ताओं द्वारा, विशेषकर कवकों द्वारा, सड़कर इन स्लीपरों के क्षय होने का अत्यंत भय रहता है।

दूसरी पंचवर्षीय योजना के अनुसार भारतीय रेलवेज को ३ करोड़ २० लाख काष्ठ स्लीपरों की आवश्यकता है। इनमें से ४२.५ लाख स्लीपर विदेशों से आयात करने का विचार है। (लोकसभा में ५ मई, १९५८ को किये गये प्रश्नों के उत्तर में प्रकाशित सूचना के अनुसार)।

३. काष्ठ-परिरक्षण उद्योग का विकास

यहाँ संक्षेप में इतना ही लिखना आवश्यक है कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, ब्रिटिश संयुक्त राज्य, जर्मनी, कनाडा इत्यादि प्रगतिशील देशों मे काष्ठ-परिरक्षण का कार्य रेलवे, विद्युत्, टेलिफोन, तार, जहाजों और बन्दरगाहों आदि के विकास के साथ-साथ विकसित हुआ है। वहाँ पर सैकड़ों काष्ठ-उपचार संयंत्र हैं, जिनसे हर प्रकार का करोड़ों टन काष्ठ उपचारित होकर विभिन्न प्रकार के निर्माण-कार्यों में लगाया जाता है। वहाँ की अनुसन्धान-प्रयोगशालाओं में ऐसे नये परिरक्षी रसायनों का, जो सस्ते और देशी कच्चे माल से तैयार किये जा सकें, आविष्कार होता जा रहा है, जिससे काष्ठ-परिरक्षण आर्थिक दृष्टि से मितव्ययी हो सके। एतद् विषयक आँकड़ों से पता चलता है कि काष्ठ-उपचार क्रिया से काष्ठ की सेवा-आयु खुले स्थानों मे ४ या ५ गुनी और भीतरी स्थानों में ७ से १० गुनी तक अधिक बढ़ जाती है।

किन्तु अभी भारत में इस दिशा में इतनी प्रगति नहीं हुई। इसका मुख्य कारण यह है कि यहाँ बड़े पैमाने पर काष्ठ-उपचार संयन्त्र और तत्सम्बन्धी अन्य मशीनें बनाने की सुविधा प्राप्त नहीं है। इन संयन्त्रों में बड़े व्यास के इस्पात के खम्भों (सिलिन्डरों) की आवश्यकता होती है जिनमें काष्ठ प्रविष्ट कराने के उपरान्त निपीड-क्रिया से दबाव के साथ परिरक्षी को काष्ठ-कोशाओं में व्याप्त कराया जाता है।

इनके साथ ही वातिक और द्रव निपीड-पम्पों की भी आवश्यकता पड़ती है जिनके द्वारा निपीड-उपचार किया जा सके। अब उच्च श्रेणी के इस्पात-पट्ट (प्लेट) प्राप्त होने पर इन संयन्त्रों के निर्माण का प्रयत्न किया जा रहा है। रासायनिक-परिरक्षियों के उत्पादन में भी प्रगति होती जा रही है। देहरादून वन-अनुसन्धानशाला की काष्ठ परिरक्षण शाखा में नये आविष्कारों के अनुसार छोटे-छोटे उपचार-संयन्त्रों की रचना की गयी है जो ग्रामोद्योग के लिए सुविधाजनक होंगे। इसके अतिरिक्त सस्ते परिरक्षी-रसायनों की उपयोगिता पर परीक्षण किये जा रहे हैं जिनका उद्देश्य मूल्य में कमी और इन पदार्थों की आत्मनिर्भरता स्थापित करना है। आशा है कि शीघ्र ही काष्ठ-परिरक्षण उद्योग को नया अनुस्थापन देकर एक सरल कार्य बना दिया जायगा जिससे पंच-वर्षीय योजना के अधीन ग्रामों के सामूहिक विकास निर्माण-कार्य में विशेष सहायता मिल सकेगी। अपने-अपने कार्यों के लिए काष्ठ, बाँस और छादन-घास का स्वतः ही उपचार करने पर इन विकास खंडों के निवासी अपनी आर्थिक अवस्था सुधारने में समर्थ हो सकेंगे।

अध्याय ५

काष्ठ-परिरक्षण का ऐतिहासिक वृत्तान्त

१. प्राचीन समय सें काष्ठ-परिरक्षण

सदियों पूर्व मानव-जाति की यही आकांक्षा थी कि काष्ठ को, जो स्वतः सरल व प्राप्य वस्तु थी, सेवा-कार्य में कैसे टिकाऊ व स्थायी बनाया जाय ।

यद्यपि वनों में उस समय काष्ठ बहुतायत से मिलता था, किन्तु उसे बदलते रहने अथवा उसके पुनःस्थापन में पर्याप्त धन और श्रम की आवश्यकता पड़ती थी । अतः कालान्तर में अनुसन्धान कार्यकर्त्ताओं का ध्यान उसकी सेवा-आयु बढ़ाने की ओर आकर्षित होता रहा ।

प्लीनियस[1] ने इस यग के आरम्भ काल में इफीसस[2] की डिआना[3] की प्रसिद्ध काष्ठ-मूर्ति में बहुसंख्यक छिद्र बनाने और उनमें उच्च स्थान पर रखे गये एक बर्तन से लगातार तेल बहते रहने का उल्लेख किया है । उसने यह भी लिखा है कि एक हजार वर्ष ईसवी पूर्व चीनी लोग निर्माण-कार्य में लगाने के पहले अपने काष्ठों को नमकीन पानी की झीलों में डुबोये रखते थे । मेसीडोनिया के सिकन्दर बादशाह ने यह आदेश निकाला था कि पुल-निर्माण के काष्ठ और उसके आधार-खम्भों पर जैतून के तेल (ओलिव आयल) का लेप किया जाय जिससे वे सड़ने अथवा गलने से सुरक्षित किये जा सकें । रोम के बादशाहों ने भी निर्माण-काष्ठ को आर्द्रता से बचाने के लिए यही उपाय अपनाया था ।

प्राचीन मिस्र निवासियों ने आज से दो हजार से लेकर चार हजार वर्ष तक शव रखने के बक्सों और काष्ठ प्रकीलों को सुरक्षित रखने के लिए "विट्यमन"[4] का प्रयोग किया था । काष्ठ को कीटों के आक्रमण से रोकने के लिए सिरके में उबाले हुए लहसुन के अर्क का प्रयोग किया जाता था । १०२५–१०३३ में "इरिक दि रेड" ने अमेरिका जाने से पहले अपनी नाव पर काष्ठ टार का लेप किया था । ईसा से

1 Plinius. 2 Ephissus. 3 Diana. 4 Vitumen.

७५० वर्ष पूर्व "फिरीड्ज औफ दि बोल्ड" के सागा ने अपने जहाज का नाम "टारलेपित हवाई घोड़ा" रखा था ।

इन सब उपायों के करते रहने पर भी पूर्ण सफलता प्राप्त नही हुई, क्योकि लकडी के सड़ने के वैज्ञानिक कारण ज्ञात न थे। बाद मे पता लगा कि काष्ठ-विनाश एक विशेष प्रकार के अणु जीवो और कीटो के कारण होता है । काष्ठ पर इनके आक्रमणो को रोकना ही उसको सुरक्षित रखने का आम उपाय है । यह तभी सम्भव हो सकता था जब इन जीवाणुओ को मारने के हेतु विषैले पदार्थो का प्रयोग किया जाता । सन् १९०५ मे काष्ठ को सड़ने से रोकने के लिए मर्क्युरिक क्लोराइड[1] का व्यवहार किया गया और इसके पश्चात् 'कौपर सल्फेट'[2] (नीला थोथा) का प्रयोग किया गया। १८०५ मे फर-जैसे सस्ते और अल्प स्थायी प्रकाष्ठो मे, विख्यात और टिकाऊ प्रकाष्ठ टीक के छोटे टुकड़ों मे से खीचे गये अर्क का, अन्त.-क्षेपण किया गया ।

२. वैज्ञानिक रीति से काष्ठ-परिरक्षण का प्रारम्भ

ब्रिटिश-जलसेना ने अपने जहाजों को शुष्क-सडन (ड्राइरौट[3]) से बचाने के लिए काष्ठ-परिरक्षण का विकास किया। सन् १८३२ के लगभग क्यान ने जो एक रसायनज्ञ ('कैमिस्ट') थे मरक्यूरिक क्लोराइड के विलयन और सर विलियम वैनेट (ब्रिटिश एडमिरैल्टी मैडिकल चीफ) ने जिक क्लोराइड[4] के विलयन का उपयोग लकडी को उसमे डुबाने के लिए किया। सन् १८३७ मे डाक्टर बूशरी ने हरे पेड और खभो को कौपर सल्फेट और जिक क्लोराइड के विलयन (घोल) से शोधित करने की नूतन विधि निकाली । यह हरी लकडी मे परिरक्षी द्वारा रस-विस्थापन (सैप डिस्प्लेसमेन्ट)[5] की प्रक्रिया थी । प्राचीन समय में काष्ठ के बाह्य-स्तर को सावधानी से जलाकर काष्ठागार बनाना (चारिग) भी सुरक्षित रखने का एक ढग था। इस विधि से काष्ठ के चहुँ ओर कुछ काष्ठ-राल ('वुडटार'[6]) बन जाता था जो काष्ठ-नाशक जीवाणुरोधी होने से काष्ठ को सुरक्षित रखता था । 'इफीसस्' मे 'डियाना' का मदिर नष्ट हो जाने पर यह पता लगा कि वह काष्ठागारित खंभो के ऊपर बनाया गया था । 'हरक्यूलेनियम्'[7] मे २००० वर्ष पुराना आंगारित काष्ठ अच्छी दशा मे परिरक्षित था । १८३१ (५घ*) मे बर्नेट ने एक प्रक्रिया का एकस्व (पेटैन्ट)

1 Mercuric Chloride. 2 Copper Sulphate. 3 Dry Rot.
4 Zinc Chloride. 5 Sap Displacement. 6 Wood Tar.
7 Herculanneum.

* निर्देश पृ० ५६ पर देखिए।

लिया जिसके द्वारा लोहे के एक पात्र मे परिरक्षी को दबाव से काष्ठ मे भरा जाता था। १८३८ मे इसी प्रक्रिया से 'बेथल' ने काष्ठ की कोशाओ मे क्रियोजोट को अन्त: व्यापित किया था। इस 'फुलसेल'[1] (पूर्णकोशा) प्रक्रिया द्वारा आवश्यकता से अधिक परिरक्षी काष्ठ के अन्दर भर जाता था। १९०२ मे वासरमैन ने एक एकस्व, रिक्त-कोशा ('एम्टीसल') विधा पर लिया था, जिसको रचूपिग ने व्यवहृत किया, और यह 'रर्चापग प्रोसेस' के नाम से विख्यात है। इस प्रक्रिया का यही उद्देश्य था कि परिरक्षी केवल कोशाभित्तियों मे ही लिप्त रहे और कोशा का आन्तरिक स्थान रिक्त हो। १९०६ मे अमेरिका के 'लौरी' ने एक एकम्व इसी रिक्त-कोशा विधा का 'लौरी प्रोसेस' नाम से लिया। १८७९ मे बोल्टन ने इग्लैड मे काष्ठ की 'शून्यक मे उबालने' ('बौइलिग अन्डर वैकुअम्') नामक विधा का एक एकस्व लिया। इन विधाओ का विस्तारपूर्वक वर्णन भाग ३, अध्याय ३ मे दिया गया है।

३. आधुनिक काल मे काष्ठ-परिरक्षण

काष्ठ-परिरक्षण को सबसे अधिक प्रोत्साहन (१ ख*) भाप ('स्टीम') इजन का आविष्कार होने पर मिला। स्टीफन और ब्रूनल जैसे अभियन्ताओ ने ('इञ्जिनियर्स्'), जिन्होने प्रथम रेलवे-लाइन बिछायी, 'क्यान' प्रक्रिया से उपचारित स्लीपरों का प्रयोग किया था। इस समय ससार की रेल-पटरियो के नीचे काष्ठ स्लीपर सपूर्ण रेल-लाइन के दो तिहाई भाग से भी अधिक लम्बाई मे बिछे हुए है। लगभग १८ करोड़ स्लीपर, जिनको बनाने मे २ करोड़ १० लाख टन काष्ठ लट्ठो के रूप मे लगा है, रेलवे के नवीकरण तथा प्रतिस्थापन मे प्रति वर्ष लगता है। उपचारित काष्ठ का दूसरा महत्त्वपूर्ण उपयोग गढो और खानो के आधार-स्तम्भों के लिए है। ससार के समस्त कोयला-खानो के आश्रय के लिए और भी २ करोड़ १० लाख टन काष्ठ की आधार-स्तम्भो के रूप मे आवश्यकता है। तार, टैलीफोन, बिजली, जहाज, रेलडिब्बो, इत्यादि के निर्माण-उद्योग, शोधित काष्ठ के सबसे अधिक उपभोक्ता है। उपचारित काष्ठ की माँग अन्य निर्माणकार्यो, जैसे आपट्टित ('लेमीनेटेड्') काष्ठ, के लम्बे-व्यास के पुलो, विमान-गृहों और बड़े कारखानों की छतो के 'ट्रसो' के लिए भी, बढती जा रही है। सभी प्रगतिशील देशो मे काष्ठ-परिरक्षण एक सुप्रतिष्ठापित उद्योग है और नये-नये परिरक्षियो का पृथक्-पृथक् प्रकार के निर्माण-कार्यो के लिए आविष्कार होता जा रहा है। इसके अतिरिक्त, परिरक्षियो

1 Full-Cell. * अध्याय के अन्त मे निर्देश-सूची देखिए।

का ऐसा रासायनिक संगठन किया जा रहा है जिससे कि काष्ठ मे परिरक्षण के साथ ही साथ अग्नि-रोधी गुण भी प्रतिष्ठित हो सके। व्यावहारिक दृष्टि से काष्ठ-परिरक्षण सभी विख्यात देशो मे, जैसे अमेरिका, कैनेडा, ब्रिटेन, फ्रान्स, जर्मनी, स्वीडन, सोवियत सघ, आफ्रिका, न्यूजीलैंड, ऑस्ट्रेलिया, मलाया, जापान, चीन और भारत मे प्रगति करता आया है । इन सभी देशो का सविस्तर लेखा प्राप्त नही है, परन्तु कुछ मुख्य देशो का, जिनके बारे मे सूचना प्राप्त है, इस सम्बन्ध का विवरण निम्नलिखित प्रकरणो मे दिया गया है ।

४. संयुक्त-राज्य अमेरिका में काष्ठ-परिरक्षण की प्रगति

अमेरिका मे ६३ करोड ७० लाख एकड भूमि पर वन है, और उनसे प्रतिवर्ष ११ अरब, २९ करोड ६० लाख घन फुट काष्ठ उपज की आय है । जहाज के तख्तों को गलने और समुद्री कीटो से बचाने के लिए वहाँ विलियम क्रुक ने सन् १७१६ में काष्ठ-परिरक्षण का प्रारम्भ किया था । जिस परिरक्षी का प्रयोग उसने किया था उसका एक भाग 'ऑइल और स्पिरिट औफ टार'[1] था । १७३७ में पहली बार काष्ठ-उपचार करने की औपनिवेशिक छूट दी गयी और उसके पश्चात् काष्ठ-परिरक्षण को प्रस्तुत कराने के लिए अनेक प्रयत्न किये गये, परन्तु उन्नीसवी शताब्दि के मध्य मे ही काष्ठ-उपचार के कार्य को व्यावहारिक दृष्टि से मान्यता दी गयी । १९०६ मे जे० वी० कार्ड ने जिंक क्लोराइड और क्रियोजोट के मिश्रण का काष्ठ मे अन्त-प्रवेश कराने के लिए एकस्व लिया था । उसके बाद से ही काष्ठ-परिरक्षण उद्योग की प्रगति होती गयी और अब यह वहाँ के बडे मुख्य उद्योगो मे से एक है । यह उद्योग वहाँ भली प्रकार से सघटित है और इस कला के कार्यकर्त्ताओ का वहाँ एक सघ ('ऐसोसिएशन') है जो काष्ठ-परिरक्षण विषयक विविध आविष्कारो, उसकी प्रगति और वार्षिक अधिवेशनो की कार्यवाही का विस्तारपूर्वक वर्णन प्रति वर्ष प्रकाशित करता है । इस सस्था का नाम अमेरिकन वुड प्रिजर्वर्स एसोसिएशन्[2] है । १९०९ से लेकर १९४९ तक के ४१ साल के आँकड़ो के अनुसार ११०.३ बिलियन बोर्ड[3] फुट (बिलियन=१ अरब) काष्ठ शोधित किया गया । परिरक्षण उपायो द्वारा काष्ठ की आयु-वृद्धि औसतन् पाँच-गुनी मान लेने पर, उतना काष्ठ ५५१.५ बिलियन बोर्ड फुट अशोधित काष्ठ के तुल्य हुआ । इसलिए ४१ वर्षो मे ४४१.२ बिलियन बोर्ड फुट काष्ठ की बचत हुई, अर्थात्

1 Oil or spirit of tar. 2 American Wood Preservers' Association.

प्रति वर्ष १० ८ बिलियन बोर्ड फुट काष्ठ की बचत रही । १००० बोर्ड फुट काष्ठ का औसत मूल्य ३० डालर मानने पर, काष्ठ के मूल्य मे १३ २ बिलियन डालर की बचत हुई, अर्थात् प्रति दिन ८ लाख ८४ हजार डालर की बचत का औसत पड़ा । सयुक्त राज्य अमेरिका मे २१५ वाणिज्य-उपचार सबधी सयन्त्र स्थापित है । ऊपर-लिखित मात्रा मे काष्ठ का उपचार इन्ही सयन्त्रो द्वारा किया गया ।

५. जर्मनी मे काष्ठ-परिरक्षण की प्रगति

जर्मनी की कुल भूमि के २६ प्रतिशत भाग मे वन है। उनसे प्रति वर्ष काष्ठीय उपज की आय २ करोड ८० लाख टन है । वहाँ १ अरब, ४१ करोड, २० लाख घन फुट काष्ठ का चिरान होता है ।

जर्मनी में काष्ठ-परिरक्षण का प्रारम्भ सन् १८३८ मे हुआ । काष्ठ उपचार विशेषत: रेलवे-स्लीपरो पर ही किया जाता था। उसके बाद शीघ्र ही तार के खम्भों के उपचार की आवश्यकता पडी और बूशरी उपचार-विधा की स्थापना हुई । १८६० से १९१० तक ७० लाख काष्ठ-खम्भो का उपचार किया गया। ९० प्रतिशत प्रयोग १९०७ मे किये गये । इन खम्भो में परिरक्षी-द्रव्य व्याप्त किये गये थे।

वहाँ लगभग ३५ बडे और ६० छोटे निपीड उपचार-सयन्त्र है जो काष्ठ-परिरक्षण कार्य मे सलग्न है। प्रति वर्ष जितना काष्ठ उपचारित किया जाता है, वह एक स्थूल गणना के अनुसार निम्नलिखित है—

रेलवे स्लीपर	२,१००००००	घनफुट
विविध काष्ठ	८७५००००	,, ,,
टैलिफोन के खम्भे	३५०००००	,, ,,
बिजली के खम्भे	८७५०००	,, ,,
खानो के लिए काष्ठ	१७५००००	,, ,,
कुल	३५८७५०००	घनफुट

१९३८ तक रासायनिक-परिरक्षी के रूप मे मुख्यत. क्रियोजोट का ही प्रयोग किया जाता था । अन्य रसायन थे कौपर सल्फेट, जिक क्लोराइड, सोडियम फ्लोराइड, बर्पीलिट (यानी ८९% सोडियम फ्लोराइड और ११% डाइनाइट्रो फीनौल-एनीलीन) । १९३८ के पश्चात् युद्ध के कारण नियत्रण लगने पर, 'फ्लैनैक्स्' नामक एक जलघुलनशील रासायनिक परिरक्षी द्रव्य का सरकार ने प्रयोग प्रारंभ किया ।

यहाँ इतना ही लिखना आवश्यक है कि काष्ठ-परिरक्षण की विधियो का विकास और ससार मे विविध निर्माण-कार्य के लिए परिरक्षित काष्ठ के प्रयोगो को प्रोत्साहन अधिकतर जर्मनी मे किये गये आधारभूत कार्यो के देय पर ही था। तत्पश्चात् अमेरिका ने इस कार्यक्षेत्र मे प्रवेश किया। इस समय अमेरिका को काष्ठ-सम्बन्धी अन्वेषण कार्य के विभिन्न स्वरूपो मे सबसे प्रमुख स्थान देना चाहिए।

६. स्वीडन में काष्ठ-परिरक्षण की विधि

तुलना के विचार से स्वीडन एक छोटा-सा देश है। उसकी भूमि का कुल क्षेत्र-फल १० करोड ७० लाख एकड है। उसके वनो का क्षेत्रफल ५ करोड ८० लाख एकड है अर्थात् कुल भूमि के ५० प्रतिशत भाग मे वन है। इन वनो से ४५ लाख ५३ हजार टन काष्ठ की वार्षिक उपज है।

स्वीडन मे कच्चा सखिया ('आर्सेनिक') खानो मे बहुतायत से मिलता है। सन् १९३६ मे वहाँ बौलीडौन नामक परिरक्षी का आविष्कार किया गया। यह परि-रक्षी एस्क्यू की ही तरह है जिसका भारत मे आविष्कार किया गया था। इसमे सखिया मिला हुआ था। १९३६ से १९४७ तक वहाँ १ करोड ७२ लाख ४८ हजार पौड परिरक्षी प्रयोग मे लाया गया और इससे ४८२३५४०० घनफुट काष्ठ का उपचार किया गया।

सन् १९४० से लेकर स्वीडन की सरकारी रेलवे ने ३० लाख से अधिक स्लीपरो का बौलीडौन लवण की निपीड़ क्रिया द्वारा उपचार किया। १९४७ मे १२ लाख स्लीपरो का शोधन किया गया। वहाँ के सरकारी तार विभाग ने १९४० से ८ लाख टैलीफोन के काष्ठ-खम्भो का भी उपचार किया, जिनमे पिछले दो वर्षो मे २ लाख प्रतिवर्ष का उपचार हुआ। रेलवे-स्लीपरों और काष्ठ-खम्भो के अतिरिक्त वहाँ आधार-स्तम्भों, पुलो, खनिज-अवलम्बो, बाड़-खभो और गृह-निर्माण कार्यो मे भी उपचारित काष्ठ का प्रयोग किया गया।

७. प्राचीन भारत में काष्ठ-परिरक्षण

भारत मे सभ्यता का प्रारंभ २००० वर्ष ईसा पूर्व से हुआ है। हमारे प्राचीन ग्रन्थो मे काष्ठ विषयक विभिन्न प्रयोगो का उल्लेख है। हिन्दी मे 'कच्ची' और 'पक्की लकडी' शब्द और तैलुगू मे 'चावा' शब्द काष्ठ के स्थायीपन के वाचक थे। 'कच्ची लकडी' बाह्य काष्ठ अथवा रस-काष्ठ की वाचक है जो कम टिकाऊ होता है, और 'पक्की लकड़ी' से अभिप्राय अन्तः अथवा सारकाष्ठ से है जो रस-काष्ठ की अपेक्षा

अधिक टिकाऊ होता है । इससे यही प्रतीत होता है कि मनुष्यों को काष्ठ के अल्प-स्थायी और चिरस्थायी होने के विषय का ज्ञान था ।

पटना के निकट, बुलन्दीबाग की खुदाई करने पर पता चला कि वहाँ बहुत-सी प्राचीन काष्ठ की दीवारें, कठघरे और परनाले अच्छी सुरक्षित अवस्था में हैं । दुर्भाग्यवश इनकी ऐसी पूर्ण जांच-पड़ताल नहीं हो सकी, जिससे पता चलता है कि ये किस जाति के काष्ठ के बने थे । पियर्सन और ब्राउन द्वारा लिखित भारत के वाणिज्य सम्बन्धी काष्ठों की पुस्तक में 'सीड्रस देोदारा" (देवदार) जाति के काष्ठ के बारे में निर्देश है कि इसके खम्भे श्रीनगर स्थान (कश्मीर) की एक मसजिद में (गैम्बल के लेख के अनुसार) सुरक्षित अवस्था में थे। यह भी ज्ञात था कि अधिक से अधिक टिकाऊ, साल और टीक-जैसे काष्ठ भी भूमि में गाडने पर अधिक काल तक नहीं चल सकते । इन बातों से यही प्रमाण मिलता है कि बीस शताब्दी पूर्व मौर्यों के समय में, जो पूर्वकथित काष्ठ पाटलीपुत्र (पटना) में गाड़े गये थे, उन पर किसी प्रकार की उपचारक्रिया अवश्यमेव की गयी होगी, ताकि वे काष्ठ-विनाश अभिकर्त्ताओं से बच सकें। दुर्भाग्यवश हमको उस समय की क्रिया और परिरक्षी की जानकारी नहीं है ।

८. भारत के निकटभूत काल में काष्ठ-परिरक्षण

पाश्चात्य देशों की तरह भारत में भी नवीन प्रकार से काष्ठ-परिरक्षण का कार्य उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में आरम्भ हुआ । ईस्ट इण्डियन रेलवे ने हावडा के निकट बाली स्थान पर १८५४ में काष्ठ-उपचार के लिए एक क्रियोजोटीकरण सयन्त्र स्थापित किया । यह इस दिशा में पहला कदम था । १८६५ में एम० एन्ड एस्० एम० रेलवे ने पालघाट के निकट हरे काष्ठों पर बूशरी विधि से कोपर सल्फेट (नीला थोथा) का प्रयोग कर उन्हें उपचारित किया था और तत्पश्चात् उन शोधित काष्ठों को स्लीपरों के आकार में परिवर्तित किया । उसी समय के लगभग सिन्ध नदी के तट पर कोटरी नामक स्थान पर जिंक क्लोराइड के प्रयोग से उपचार करने-वाला 'बर्नेटाइजिंग' सयन्त्र स्थापित किया गया। इस सयन्त्र द्वारा उपचारित देवदार और चीड़ के रेलवे-स्लीपर सिन्ध, पजाब और देहली के रेल-मार्ग पर बिछाये गये । बी० बी० सी० आई० रेलवे ने 'हैम्कैनाइजिंग' व 'वल्केनाइजिंग' विधि के परीक्षण काष्ठ-उपचार हेतु किये। इस क्रिया का यह सिद्धान्त था कि एक बन्द रम्भ में चीड-जैसे काष्ठ रखकर नम हवा को दबाव द्वारा गरम (९५° सेन्टीग्रेड तक) करके उन पर श्वेति (एल्ब्यूमैन[1]) पदार्थों को जमाया जाय । यह कहा गया था कि इस क्रिया से

1 Albumen.

कुछ ऐसे विषैले पदार्थ, तारपीन और लीसा ('रेजिन') अम्ल के सयोग से, बन जाते है जो कवक और कीटो के आक्रमण को रोकने मे सहायक होते है । इस विधि से ५००० स्लीपरो का उपचार करके उन्हे बम्बई और भडोच डिवीजन मे परीक्षणार्थ रेल-मार्गो मे लगाया गया। भडोच सभाग मे इन स्लीपरो के प्रयोग से सतोपजनक परिणाम नही निकले, क्योकि वहाँ दीमको के आक्रमण का अधिक भय था, पर बम्बई सभाग मे यथोचित फल निकला । सन् १८७८ मे भारत सरकार ने डाक्टर राय को हिमालय पहाडियो के उपचारित शकुधारी काष्ठो को रेलवे-स्लीपरो के रूप मे तैयार करके उनका प्रयोग करने के विषय पर विस्तारपूर्वक जाँच करने का भार दिया था । पर उनके अमूल्य प्रस्थापनो पर कार्यवाही नही की गयी ।

भारतीय रेलवे ने बीसवी शताब्दी के आरम्भ मे काष्ठ-स्लीपरो का अधिक सख्या मे आयात किया । इनमे से कुछ ब्रिटेन और बाल्टिक देशो मे प्राप्त चीड आदि जैसे उन काष्ठो के बने थे जिनकी सेवा-आयु ७ से लेकर १२ वर्ष तक होती है । दबाव द्वारा क्रियोजोट से उपचारित 'डगलस् फर' के लगभग १ लाख ६० हजार स्लीपर कैनाडा से आयात किये गये, परन्तु इनसे सतोपजनक सेवा-आयु प्राप्त नही हुई । इन स्लीपरो की अल्प आयु का कारण फटन, प्रकील ('स्पाइक्स्') का ढीलापन और उन पर हुआ रेल-कर्तन था ।

९. भारत का आधुनिक काष्ठ-परिरक्षण

भारत मे बीसवी शताब्दी के आरम्भ मे, टीक, साल, देवदार और पिनकाडो-जैसे स्वाभाविक टिकाऊ काष्ठो के स्लीपरो की कमी और उनके मूल्य मे वृद्धि होते रहने के कारण, काष्ठ-परिरक्षण के अन्वेषण-कार्य को प्रोत्साहन मिला । यद्यपि, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, उन्नीसवी शताब्दी के प्राय: मध्य मे रेलवे-कम्पनियो ने निपीड-क्रिया से काष्ठ-उपचार करने के लिए कई बड़े सयन्त्रो की रचना की जिनके द्वारा क्रियोजोट, कौपरसल्फेट और जिक क्लोराइड का उपयोग निम्न-जाति के काष्ठो के उपचार के लिए उनकी आय को बढ़ाने के उद्देश्य से किया गया और यूरोप से क्रियोजोटीकृत काष्ठ-स्लीपरो का आयात किया गया, तथापि काष्ठ-परिरक्षण की प्रगति मे रुकावट पड़ ही गयी । सभवत: इसका कारण उस समय का अत्यधिक उपचार मूल्य हो, क्योकि कोलटार क्रियोजोट, जिससे संसार भर मे सबसे अच्छे परि-णाम निकले थे, भारत मे निर्मित न होने के कारण अधिक मूल्य पर आयात किया जाता था । अन्य रासायनिक पदार्थ कौपर सल्फेट और जिक क्लोराइड जिनको परिरक्षी

के रूप मे प्रयोग करना सभव था, पानी मे घुलनशील होने के कारण, काष्ठ को अधिक वर्षो तक सुरक्षित रखने मे असमर्थ रहे । अतः जो उपचार-सयन्त्र पिछली शताब्दी मे स्थापित किये गये थे, वे वस्तुत. बन्द ही कर दिये गये । काष्ठ-परिरक्षण की प्रगति मे बाधा पडने का दूसरा कारण, भारत के जलवायु का यूरोपीय देशो से भिन्न होना था । भारत एक उष्ण देश है, और यूरोप-जैसे समशीतोष्ण तथा मृदु जलवायुवाले देशो की काष्ठ-परिरक्षण की प्रक्रियाएँ और परिरक्षी जो उन देशो के जलवायु और मृद्-दशा की आवश्यकतानुसार प्रस्तुत की गयी थी यहाँ लागू नही हो सकती थी । अत. यहाँ उनसे सतोषजनक परिणाम नही निकल सकते थे । इसके अतिरिक्त यूरोपीय देशो मे वहाँ के गिने-चुने काष्ठो के लिए उपचार-विधियाँ ढूँढ निकालना एक सरल कार्य था जब कि भारत के विभिन्न और अनेक जातियो के काष्ठो के लिए उपयुक्त उपचार-विधियो का साधन कठिन कार्य था । भारत के काष्ठो के उपचार-गुणो का अध्ययन, उन परिरक्षित काष्ठो को प्रयोग मे लाने के पूर्व ही कर लेना आवश्यक था जिससे कि उस ज्ञान के फलस्वरूप यथोचित परिणाम निकाले जा सके । इसलिए भारतवर्ष के जलवायु और मृद्-दशा को ध्यान मे रखकर ही काष्ठ-परिरक्षण का कार्य आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणाली के अनुसार करना उचित समझा गया ।

१०. वन-अनुसन्धान-शाला, देहरादून, में काष्ठ-परिरक्षण सबंधी अन्वेषण-कार्य का आरंभ

काष्ठ-परिरक्षण का सही और उचित वैज्ञानिक ढग पर अन्वेषणकार्य सन् १९०८ मे सर रैल्फ पियर्सन ने प्रारभ किया । वे इन्डियन फौरेस्ट सर्विस् के सदस्य थे और वन-अनुसन्धान-शाला मे उन्होने ही इस महत्त्वपूर्ण कार्य का उपक्रमण किया । पियर्सन वन-अनुसधान-शाला के प्रथम वन अर्थव्यवस्था शाखा अधिकारी ('फौरेस्ट इको-नौमिस्ट') थे । यह शाखा बाद मे वनोपयोग ('फोरेस्ट यूटीलाइजेशन ब्राच') के नाम से प्रसिद्ध हुई । पियर्सन ने जो परीक्षण आरम्भ किये वे मुख्यत. दो प्रकार के थे—

(१) सर्व-प्रथम तो उन्होने विभिन्न प्रकार के काष्ठो के उपचार का अध्ययन प्रारंभ किया । परीक्षण के लिए जो काष्ठ छाँटे गये वे हर प्रकार से स्थायीपन और कठोरता के प्रतीक थे । इन काष्ठो के २ फुट × २ इच × २ इच के टुकडो को शोधित और अशोधित दशा मे साथ-साथ परीक्षण क्षेत्र की भूमि मे गाड दिया गया । इस परीक्षण-क्षेत्र को शवागण (ग्रेवयार्ड) भी कहते थे । काष्ठ-विनाशी कवक और दीमक की इस शवागण मे प्रचुरता थी ताकि थोड़े ही काल मे इन छोटे-छोटे काष्ठ

प्रादर्शो पर रासायनिक पदार्थो की काष्ठोपचार विषयक प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके। इन परीक्षणो का लक्ष्य यह अध्ययन करना भी था कि अशोधित दशा मे जाति के अनुसार काष्ठ की पृथक्-पृथक् आयु कितनी होती है और उपचार से उसे किस सीमा तक सुरक्षित रखा जा सकता है, ताकि अच्छे परिणामवाले परिरक्षियो और उपचार-क्रियाओ का प्रयोग बड़े पैमाने पर किया जा सके।

(२) दूसरे प्रकार के परीक्षणो का उद्देश्य लघु-आयु की विभिन्न जातियो के काष्ठ-स्लीपरो को कुछ प्रसिद्ध परिरक्षियो द्वारा उपचारित करके रेल-लाइनो मे बिछाने का था जिससे इन निम्न जाति के काष्ठो की रेलवे-स्लीपरो के लिए उपयोगिता का अनुमान लगाया जा सके। इन सपरीक्षणो मे विविध प्रकार के काष्ठो के लगभग ९००० स्लीपर उपचार के पश्चात् हिन्दुस्तान और बर्मा की रेलो मे जाँच के निमित्त लगाये गये। उपचार-विधा मुख्यत तापन और शीत-प्रक्रिया ('हौट एण्ड कोल्ड प्रौसेस्') की थी जो खुले कुडों (टकियो) मे डुबोकर की गयी थी। यह विधा अति मितव्ययी और सरल होने के कारण उपचार निमित्त प्रयोग मे लायी गयी। कालान्तर मे इस विधा की परिसीमा स्पष्ट होती गयी। जो काष्ठ प्रयोग मे लाये गये उनके नाम इस प्रकार थे—**डिप्ट्रोकार्पस टयूबरक्यूलेटस्**[1] **(इंग), डिप्ट्रोकार्पस एलेटस्,**[2] **पाइनस् लोंगीफोलिया**[3] **(चीड), पाइनस् इक्सेल्सा**[4] **(कैल), और टर्मिनेलिया टोमैन्टोसा**[5] **(सैन)**। जिन परिरक्षियो का उपचार के लिए प्रयोग किया गया था, वे थे—पौवेल सल्यूशन[6], एवीनैरियस् कार्बोलीनियम,[7] जिक क्लोराइड[8] (तत्पश्चात् ग्रीन आइल,[9] सौलिग्नम्[10] और लिक्विड फ्यूयल[11] के लेप से रक्षित)। कुछ स्लीपरो को आसाम के दिगवौय नामक स्थान मे 'ग्रीन औयल और लिक्विड फ्यूयल से निपीड-क्रिया द्वारा उपचारित किया गया क्योकि वहां निपीड-उपचार-सयन्त्र मे इस प्रकार के उपचार की सुविधा थी। यहाँ **डिप्ट्रोकार्पस मैक्रोकार्पस**[12] **(होलौग), टर्मिनेलिया माइरियोकार्पा**[13] **(होलॉक), लैगरस्ट्रोइमिया**[14] **पार्वीफ्लोरा (लैन्डी), अटोंकार्पस**

1 Diptrocarpus Tuberculatus.
2 Diptrocarpus Elatus.
3 Pinus Longifolia.
4 Pinus Excelsa.
5 Terminalia Tomentosa.
6 Powel's solution.
7 Avinarius Carbolinium.
8 Zinc Chloride.
9 Green oil.
10 Soligum.
11 Liquid Fuel.
12 Diptrocarpus Macrocarpus.
13 Terminalia Myriocarpa.
14 Laggerstroimia Parviflora.

चपलाशा[1] **(चपलाश), अल्टिन्जिया इकसेल्सा**[2] **(जुटिली), मैग्नोलिया**[3] प्रजाति और **साइनोमीटा पोलिएन्ड्रा**[4] **(पिंग)** जाति के स्लीपरो का उपचार किया गया। अत मे कुछ स्लीपर इग्लैड और अमेरिका को क्रियोजोट से उपचार करने के लिए भेजे गये। ये **डिप्ट्रोकार्पस टर्बिनेटस्**[5] **(गुर्जन), पीसिया मोरिन्डा**[6] (स्प्रूस) और **एबिस पिन्ड्रो**[7] (फर) जाति के काष्ठो के बने थे। उपचारित होकर लौटने के पश्चात् इन स्लीपरो को परीक्षणार्थ भारतीय रेल्वों की पटरियो के नीच बिछाया गया। इन परीक्षणों का विस्तारपूर्वक वर्णन इन्डियन फौरेस्ट रिकौर्डस् न० ३ पार्ट २ मे दिया गया है।

पूर्वोक्त परीक्षणो के २४ वर्ष के सेवाकाल के उपरान्त प्राप्त परिणाम सक्षेप मे भारतीय वन विवरणिका (इन्डियन् फौरेस्ट बुलेटिन्) नम्बर ८४ (१९३४) मे दिये है। कुछ स्लीपरो की औसतन सेवा-आयु १५ से लेकर २० वर्ष की रही और कुछ की ७ से लेकर १२ वर्ष तक। यदि उस पूर्वकाल की कठिनाइयो और अल्प-साधनों को ध्यान मे रखा जाये, तो काष्ठ-उपचार से उनकी सेवा-आयु मे जो वृद्धि हुई है, वह सतोषजनक कही जा सकती है।

१९२३ मे काष्ठ-परिरक्षण का अन्वेषण-कार्य इतनी प्रगति कर चुका था कि वन-अनुसन्धानशाला की वन अर्थव्यवस्था शाखा मे एक पृथक् ही विभाग काष्ठ-परिरक्षण अनुभाग के नाम से खोला गया। जे० एच० वार इस अनुभाग के प्रथम कार्यभारी अफसर नियुक्त किये गये और उस समय वहाँ इस्पात के दो निपीड रम्भ (प्रसर सिलिन्डर[8]) अधिष्ठापित किये गये। इन रम्भो का प्रयोजन काष्ठो को इनके अन्दर बन्द कर परिरक्षी से निपीड-क्रिया द्वारा उपचार करने का था जिससे काष्ठ-कोशाओं मे प्रभूत मात्रा मे परिरक्षी व्याप्त किया जा सके। ऐसा करने से उपचारित काष्ठ की सेवा-आयु अधिक से अधिक काल तक बढा देना सभव हो सकता था। इनमे एक रम्भ १० फुट और दूसरा ३ फुट लम्बा था। इन सयन्त्रो मे जलगति और शून्यक पम्प ('हाइड्रोलिक और वैकुअम् पम्प), वायु निपीडक (एयर कम्प्रेसर), दबाव और तापमापक यन्त्र, सग्रह और वितरण कुड ('स्टोरेज् एण्ड सर्विस टैक) भी सम्मिलित थे। इन सयन्त्रों को स्थापित करने का उद्देश्य यही था कि भिन्न-भिन्न

1 Arto carpus Chhaplasha.
2 Ultengia Excelsa.
3 Magnolia.
4 Cinometa Polyandra.
5 Diptrocarpus Turbinatus.
6 Pissia Morinda.
7 Abis Pindro.
8 Pressure cylinder.

काष्ठो के निपीड-उपचार लक्षणों का अध्ययन किया जाय । इसके साथ ही एक रसायन-शाला भी स्थापित कर दी गयी जिसमे रासायनिक परिरक्षियो के विश्लेपण का कार्य, काष्ठ-आर्द्रता निश्चयन और अन्य काष्ठ-परिरक्षण सम्बन्धी समस्याओ का समाधान हो सके ।

काष्ठ-परिरक्षण के अन्वेपण विकास के दूसरे प्रक्रम का श्रेय डाक्टर एस० कामेसम् को दिया जा सकता है। आदि के परीक्षणो मे उन्होने कई जाति के काष्ठो के स्वाभाविक स्थायित्व[1] का निश्चयन किया। इस हेतु प्रत्येक काष्ठ के अन्त काष्ठ अथवा सारकाष्ठ मे से २ फुट ×२ इच×२ इच के ६ टुकडे परीक्षण-क्षेत्र अथवा शवागण ('ग्रेवयार्ड') मे, आधे ऊपर और आधे जमीन मे गाड दिये गये। इस क्षेत्र मे कवक और दीमको के आक्रमण की अनुकूल दशा का सवर्धन किया गया था। २५ वर्ष उपरान्त इन परीक्षणो से भारत और बर्मा के लगभग २०० जाति के काष्ठो के प्राकृतिक स्थायित्व अथवा टिकाऊपन की जानकारी हुई। इसके पश्चात् उन्होने अपना ध्यान एक ऐसे परिरक्षी के आविष्कार की ओर लगाया जो पानी मे घुलनशील होने पर भी काष्ठ पर उपचारित होने के पश्चात् वर्षा या पानी के कारण काष्ठ मे से घुल न सके। इस प्रकार के परिरक्षी का निर्माण अति आवश्यक था क्योकि क्रियोजोट-जैसे तीव्र गन्धवाले तैल रूपी परिरक्षी का प्रयोग कुछ विशेष निर्माण-कार्यो के लिए उपयुक्त न था। इसके अतिरिक्त क्रियोजोटीकृत काष्ठ के ऊपर बाहरी धूप की गर्मी से तैल फैलने-सा लगाता था जिससे बाह्य-स्तर पर किसी भी प्रकार का रग-लेप लगाना सभव न था। अत कामेसम् ने जर्मनी के प्रोफेसर फाल्क की रसायनशाला मे उनके सहयोग से एक जलविलेय बद्ध प्रतिरूप परिरक्षी[2] का आविष्कार किया। उन दोनो अन्वेपण-कर्त्ताओ ने मिलकर इस परिरक्षी का 'फाल्कामेसम्' नाम से एकस्वीकरण ('पेटैन्ट') कराया। इसमे आर्सेनिक् पैन्टोक्साइड्[3] (मखिया का भस्म) और पोटेशियम् या सोडियम् डाइक्रोमेट[4] (लालकशीश) का बराबर मात्रा मे मिश्रण था। पानी मे इसका २ से लेकर ४ प्रतिशत तक घोल काष्ठ-उपचार के लिए प्रयोग किया जाता था। प्राय. दो वर्ष पश्चात् उन्होने इस फाल्कामेसम् परिरक्षी को सुधारकर, सन् १९३३ मे एस्क्यू नामक परिरक्षी का आविष्कार किया, जिसमे पूर्वकथित रसायनो के अतिरिक्त 'आर्सेनिक' की अपेक्षा

1 Natural Durability
2 Water Soluble Fixed Type Preservative
3 Arsenic Pantoxide.
4 Potassium or Sodium Dichromate.

कवको के लिए, विशेष प्रकार से अधिक मारक पदार्थ, कौपरसल्फेट को सयुक्त किया। इस अन्वेषण-कार्य की ख्याति अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे फैल गयी और कुछ विदेशी राष्ट्रो ने इसके एकस्व को अपने देशो मे काष्ठ-परिरक्षण के लिए मोल ले लिया। कामेसम् एक अभियन्ता (इजीनियर') भी थे, और उन्होंने यह पता लगाने के उद्देश्य से शोधित काष्ठ की सरचनाएँ की कि उपचार करने के पश्चात् काष्ठों को किन-किन निर्माण-कार्यो मे सुगमता और मितव्ययिता मे काम मे लाया जा सकता है। उन्होंने भारतवर्ष मे काष्ठ अभियान्त्रिकी ('टिम्बर इन्जीनियर्याग') के अन्वेषण-कार्य को नूतन विधि से प्रोत्साहन दिया। वे बाद मे वन-अनुसन्धानशाला के प्रथम काष्ठ विकासाधिकारी (टिम्बर डेवलपमैंट अफसर) नियुक्त किये गये।

बाद मे काष्ठ-परिरक्षण का अनुस्थापन नारायणमूर्ति ने किया। उन्होंने रग-नाथन और अन्य कार्यकर्त्ताओ के साथ भिन्न प्रकार के देशीय उत्पादनवाले कोलटार क्रियोजोटो का काष्ठ-परिरक्षण के लिए विस्तारपूर्वक अध्ययन किया। इसके फल-स्वरूप भारतीय प्रमाप सस्था ('इन्डियन स्टेन्डर्डस् इन्स्टिटचूशन') ने भारत के प्रयोग के लिए कोल्टार क्रियोजोट की उपयुक्त विशिष्टियाँ ('स्पेसीफिकेशन्स') बनायी जिनका उपयोग वर्तमान वाणिज्य-परिरक्षण कार्य मे किया जा रहा है। नारायणमूर्ति और पुरुषोत्तम ने नाना प्रकार के काष्ठो के छिद्रो मे हवा की अतिभेद्यता या प्रवेश्यता ('परमिएबिलिटी') का अच्छा अध्ययन किया जिससे यह पता चल सका कि किन कोष्ठो मे सरलता से और किन में कठिनाई मे परिरक्षी पदार्थ प्रविष्ट किये जा सकते हैं। नारायणमूर्ति और गोपालाचारी ने ५६ भारतीय काष्ठो के स्वाभाविक अग्नि-रोधक-गुणो का अध्ययन किया। काष्ठो की अग्नि से रक्षा करना भी काष्ठ-परिरक्षण विद्या का एक अग है। नारायणमूर्ति, पुरुषोत्तम और पाडे ने हरे बाँसो की उपचार-विधियो का अन्वेषण-कार्य किया।

नारायणमूर्ति के बाद वर्तमान समय तक काष्ठ-परिरक्षण शाखा के कार्यभारी अफसर पुरुषोत्तम और सहायक कार्यभारी अफसर पाडे रहे। उनके समय मे तीन मुख्य-विकास-योजनाओ का उद्घाटन हुआ। ये इस प्रकार है —

(१) काष्ठो को समुद्री-कीटो के आक्रमण से सुरक्षित रखने की उपचार-विधियों का अन्वेषण कार्य, जो भारत के पाँच प्रसिद्ध बन्दरगाह-केन्द्रो बम्बई, कोचीन, ट्रिवेन्ड्रम्, मद्रास और विशाखापट्टनम् मे, प्राणिकी प्रयोगशाला ('जुओलोजिकल् लेबोरेटरी') के अन्तर्गत किया जा रहा है।

(२) हरे बाँसों का परिरक्षण, जिसमे भारत के सब जाति के बाँसो के लिए

उपयुक्त उपचार विधियो का अध्ययन किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त, उपचारित बाँसो की कुटीर-उद्योगो, ग्राम-गृह निर्माण, मिट्टी या सीमेट की दीवारे बनाने, लोह-छड़ियो के बदले सम्बलन आदि विभिन्न निर्माणकार्यो मे प्रयोग हेतु उपयुक्तता के सम्बन्ध मे अन्वेषण कार्य किया जा रहा है।

(३) समस्त प्रमुख शोधित और अशोधित व्यावसायिक काष्ठो की भूमि मे गाड़े जाने पर आयु अथवा स्थायीपन की जांच-पडताल करना। यह आयु मिट्टी तथा जलवायु पर निर्भर रहती है। अत इसका परीक्षण ६ मुख्य केन्द्रो मे, जो भारत की विभिन्न मृत्तिकाओ तथा जलवायु के द्योतक है, किया जा रहा है। इनमे एक परीक्षण-केन्द्र निचले हिमालय पर्वतीय प्रदेश चकराता मे है; दूसरा रेगिस्तान के इलाके जोधपुर (राजस्थान) मे, तीसरा दक्षिण के पूर्वी समुद्रतट पर नैलौर (आन्ध्र) मे, चौथा पश्चिमी घाट के समुद्रीतट पर चालाकुडी (केरल) मे, पाँचवा आसाम के उत्तर-पूर्वी भाग नहरकटिया के निकट और छठा देहरादून मे।

काष्ठ-परिरक्षण शाखा मे इस समय चार लोहे (इस्पात) के दबाव-रम्भ है जिनमे ३ फुट से लेकर ४० फुट तक के काष्ठ-भाग निपीड-क्रिया द्वारा परिरक्षी से व्याप्त किये जा सकते है। एक उच्च-दबाव रम्भ भी है जिसमे उन कठोर-काष्ठो के परीक्षण किय जाते है जिनमे साधारण दबाव से परिरक्षी व्यापन नही हो सकता। इसके अतिरिक्त २ लोहे के आयताकार (४० फुट और २० फुट लम्बे) खुले कुण्ड है जिनमे तापन और शीतन क्रिया से काष्ठ-उपचार किया जाता है। बूशरी-प्रक्रिया से हरे काष्ठ-खम्भो और बाँसो के उपचार के लिए भी छोटे और बड़े सयन्त्र है। एक आधुनिकतम रसायनशाला भी है जिसमे परिरक्षियो का रासायनिक विश्लेषण तथा काष्ठ-परिरक्षण की अन्य समस्याओ का अध्ययन किया जाता है। चार बडी परिरक्षण-भूमियो ('टेस्टयार्ड') मे प्राकृतिक और विधायित काष्ठो, तन्तु-पट्ट ('फाइबर बोर्ड') और अन्य कोपाधु पदार्थो की विनाशकालीय आयु का निश्चय किया जाता है।

वन-अनुसन्धान-शाला की काष्ठ-परिरक्षण शाखा के अतिरिक्त, जहाँ इस विषय के कुछ अशो पर प्रयोगशाला मे कार्य किया जाता है, प्रतिरक्षा विभाग के प्राविधिक विकास सस्थान ('टैक्निकल डैवलप्मैन्ट इस्टेब्लिशमैन्ट') कानपुर तथा वन-उपज प्रयोगशाला ('फौरेस्ट प्रोडक्टस् लैबोरेटरी') बगलौर मे भी यह कार्य किया जाता है। बगलौर की प्रयोगशाला अब देहरादून की वन-अनुसन्धानशाला की ही अग बन गयी है और यहाँ पर दक्षिणी भारत के काष्ठो और अन्य वन-उपज पदार्थो का अध्ययन किया जाता है।

११. काष्ठ-परिरक्षण सम्बन्धी अन्वेषण के परिणाम

काष्ठ-परिरक्षण के अन्वेषणकार्य मे निकट भूतकाल मे हुई सफलताओ मे से उसकी औद्योगिक क्षेत्रीय सर्वप्रथम प्रगति का श्रेय, ससार के अन्य देशो की तरह,भारत के रेलवे विभाग को ही दिया जा सकता है। सन् १९२६ मे हिन्दुस्तान की उत्तरी रेलवे ने पजाब के धिलवाँ नामक स्थान पर रेलवे-स्लीपरो के उपचार के लिए निपीडक्रिया द्वारा क्रियोजोटीकरण का एक सयन्त्र स्थापित किया। इस वाणिज्य-उपचार-सयन्त्र से प्रति वर्ष १० लाख बी० जी० स्लीपरो का उपचार, प्रति दिन ३ पारी काम करके किया जाता था। स्लीपरो के लिए जिन काष्ठो का प्रयोग किया गया वे हिमालय के अल्प स्थायी शकुधारी काष्ठ थे, जिनका उपयोग प्राकृतिक दशा मे नही हो सकता था, क्योकि बाह्य स्थानीय भूमि पर कवक और दीमको के आक्रमण रोकने मे असमर्थ होने के कारण उनकी आयु अत्यन्त कम थी। ये चीड, फर, स्प्रूस, कैल, देवदार (रसकाष्ठ सहित) जाति के काष्ठ थे। बाद मे क्रियोजोटीकृत चीड़ स्लीपरो के सम्बन्ध मे सफलता प्राप्त होने पर, चीड़ के ही स्लीपर अन्य जातियो की अपेक्षा अधिक मात्रा मे शोधित किये जाने लगे। रेलवे बोर्ड ने चीड और कैल के स्लीपरो की विशिष्टियो (स्पेसीफिकेसन्स्) मे रसकाष्ठ को सीमा से कुछ अधिक मात्रा मे सम्मिलित करने पर प्रतिबध लगाया था क्योकि रसकाष्ठ, सारकाष्ठ की अपेक्षा शीघ्र ही नष्ट हो जाता था। उपचार करने से रसकाष्ठ, जो पहले सेवायुक्ति के लिए अयोग्य ठहराया जाकर रद्द कर दिया जाता था, अब एक सपत्ति के रूप मे गिना जाने लगा और वन-अनुसन्धानशाला के काष्ठ-परिरक्षण के अन्वेषण परिणामो की इस विषय तथा अन्य प्रचूषण-गुणो के अध्ययन के आधार पर सूचनाएँ प्राप्त होने के कारण, रेलवे बोर्ड ने चीड़ आदि स्लीपरो विषयक बाह्य या रसकाष्ठ की सीमा का प्रतिबन्ध हटा दिया। इसका यह परिणाम रहा कि वन-विभाग उसी लट्ठे से, जिसे कि वह सूचना देने से पूर्व स्लीपरो मे परिवर्तित करता था अब ५० प्रतिशत अधिक स्लीपर तैयार कर सकता है। यह सब लाभ ही रहा और बहुत-सा काष्ठ बरबाद होने से बच गया। वर्तमान समय मे जब काष्ठ-स्लीपरो की अत्यन्त कमी है और विदेशो से इनका आयात करने मे विदेशी मुद्रा की आवश्यकता पड़ती है, रसकाष्ठ पर से इस प्रकार का प्रतिबन्ध हटाकर उन्हे उपचारित करके स्लीपरो की अधिकाश कमी की पूर्ति करने मे अतुल सहयोग मिल सकता है। क्रियोजोट से उपचारित चीड़ के स्लीपर, सेवा-आयु के आधार पर, वार्षिक-मूल्य मे धातु के स्लीपरो से स्पर्धा कर सकते है।

रेल-विभाग ने धिलवाँ मे निपीड क्रियोजोटीकरण सयन्त्र स्थापित करने के पश्चात्

शीघ्र ही एक दूसरा ऐसा ही सयन्त्र उत्तर-पूर्वी आसाम मे नहरकटिया स्थान पर स्थापित किया। इसमे प्रति दिन ३ पारी काम करने पर प्रति वर्ष ४ या ५ लाख एम० जी० स्लीपरो का उपचार किया जाता था। यहाँ उपचार के लिए क्रियोजोट और इन्धन तैल ('फ्यूएल औइल') का ५०:५० मिश्रण परिरक्षी के रूप मे प्रयोग किया गया। घिलवों मे ऐसा ही ४० : ६० का मिश्रण अर्थात् क्रियोजोट ४० भाग और इन्धन तैल ६० भाग प्रयोग किया जाता था। आसाम रेलवे और ट्रेडिंग कम्पनी ने मारघारीटा नामक स्थान पर एक सर्वप्रथम निजी वाणिज्य सयन्त्र काष्ठ-उपचार के लिए स्थापित किया। प्रति वर्ष ८ लाख स्लीपर शोधन करने की इस सयन्त्र की क्षमता थी। यहाँ शोधित स्लीपरो का निजी रेलवे-लाइनों मे प्रयोग किया गया। इस सयन्त्र से स्लीपरों के अतिरिक्त बाड और बिजली के खम्भो, गृह-निर्माण काष्ठो इत्यादि, तथा अन्य प्रकार के काष्ठो का भी उपचार किया जाता था। इन सयत्रो में अल्पस्थायी होलौग और होलौक-जैसे काष्ठो का भी उपचार होता था। आसाम-जैसे नम-शीतोष्ण प्रदेश मे ये काष्ठ बाहर खुले स्थानो मे कवकों के कारण सडकर शीघ्र ही गल जाते थे, और ४ या ५ वर्ष से अधिक इनकी आयु की आशा नही की जा सकती थी, पर उचित प्रकार से उपचारित स्लीपरो ने लगभग १५ से २० वर्ष तक की सेवा-आयु प्राप्त की।

सन् १९२८ मे मैसूर वन-विभाग ने मैसूर रेलवे के स्लीपरो के उपचार के निमित्त एक मध्यम-वर्गीय निपीड-साधन-सयत्र की स्थापना भद्रावती नामक स्थान मे की। उपचार के लिए जिस परिरक्षी का प्रयोग किया गया वह काष्ठ विराल ('वुड टार') से निकाला 'वुड टार क्रियोजोट' कहलाता था। काष्ठ-आसवन ('वुड डिस्टिलेशन') उद्योगशाला, मैसूर का यह एक उपजात ('बाई प्रोडक्ट्') था और वहाँ की सरकार इससे लाभ उटाना चाहती थी। पर वुड टार क्रियोजोट मे अम्ल का कुछ अश होने के कारण, सयन्त्र के भागो मे मोर्चा लगने लगा। अत. इसका प्रयोग रोक दिया गया, और उसके बदले अन्य स्थानो की तरह कोलटार क्रियोजोट ही, जिसे सामान्यत. केवल क्रियोजोट ही कहते है, काम मे लाया जाने लगा। क्रियोजोट सदैव इन्धन तैल (जिसे अग्रेजी में 'फ्यूयल' या 'क्रूड' या 'अर्थ आइल' भी कहते है) के साथ बराबर मात्रा मे मिलाया जाता था। जब एस्क्यू नामक जल-विलयन परिरक्षी का विकास हुआ, तो भद्रावती मे काष्ठ के खम्भ और स्लीपरो के उपचार के लिए इसी परिरक्षी का प्रयोग होने लगा, क्योकि इससे शोधित करने पर काष्ठ की सतह सूखी और साफ रहती थी और आवश्यकता पड़ने पर लकड़ी के ऊपर रगलेप दिया जाना भी सभव था। क्रियोजोट से

सभी जातियों के रसकाष्ठ को परिरक्षी से अन्तः-व्याप्त कराने में सरलता रहती है, परन्तु बहुत-से काष्ठ जब सारकाष्ठ में बदल जाते हैं तो वे परिरक्षी—**व्यापन-रोधी** बन जाते हैं, अर्थात् परिरक्षी द्रव-पदार्थों को उन काष्ठों की कोशा में अन्तः-प्रेषण करना कठिन हो जाता है।

सारकाष्ठ को रसकाष्ठ से अधिक बलिष्ठ समझना सार्वजनिक भ्रान्ति है। वन-अनुसंधानशाला के कई परीक्षणों से यह सिद्ध हो चुका है कि एक ही आर्द्रता पर इन दोनों प्रकार के काष्ठों की दृढ़ता में कोई भेद नहीं होता। काष्ठ-परिरक्षण की दृष्टि से रसकाष्ठ को अधिक मान्यता दी गयी है, क्योंकि इसमें रन्ध्र खुले होने के कारण नियंत्रित मात्रा में परिरक्षी प्रेषण किया जा सकता है। जितना ही अधिक रसायन इस काष्ठ में पिलाया जायगा, उतनी ही अधिक सेवा-आयु इस काष्ठ को प्राप्त हो सकती है। रसकाष्ठ को वनों में वृक्षों के गिराने के पश्चात् आरम्भ काल से ही निरर्थक बनने से रोकने के लिए परिरक्षण-विधियों का प्रयोग कर बहुमूल्य बनाया जा सकता है।

(१) कश्मीर सरकार के वन-विभाग द्वारा श्रीनगर में निर्माण-काष्ठो का 'बौली-डोन साल्ट' से उपचार कराने के लिए स्थापित निपीड-रम्भ।

(२) हिमाचल प्रदेश सरकार के विद्युत् विभाग द्वारा, पौटा नामक स्थान पर, बिजली के काष्ठ-खभो के उपचार के लिए स्थापित एक निपीड-रम्भ। वहाँ की सरकार काष्ठ-खभो के उपचार के हेतु और भी दो निपीड-रम्भ स्थापित करने के बारे मे विचार कर रही है।

(३) अन्डमान द्वीप समूह के वन-विभाग द्वारा स्थापित एक खुला-कुड काष्ठ-खभो के क्रियोजोटीकरण के लिए और एक निपीड-रम्भ एस्क्यू से उपचार के लिए।

(४) कोलार सोने की खानो (मैसूर) द्वारा काष्ठ आधार-स्तम्भो और निर्माण-काष्ठो के जिक सल्फेट[1], सोडियम् फ्लोराइड,[2] डाइनाट्रोफीनौल[3] और अग्निरोधक सयोगो के उपचार प्रयोजन हेतु स्थापित एक निपीड-रम्भ।

(५) बम्बई वन-विभाग द्वारा बलहारशाह और डडेली नामक स्थानो पर स्लीपरो के क्रियोजोटीकरण के लिए स्थापित खुले कुण्ड।

(६) पश्चिमी बगाल सरकार द्वारा कूच बिहार, शामनगर, दुर्गापुर, सीलिगुरी नामक स्थानो पर खम्भो, निर्माण-काष्ठो और फटे बाँसो के एस्क्यू उपचार के लिए स्थापित एक-एक निपीड-रम्भ।

(७) एस्क्यू वुड प्रोडक्टस्, कलकत्ता, एस्क्यू द्वारा उपचार करने के लिए कई स्थानो पर छोटे निपीड-रम्भ स्थापित कर रहा है।

पूर्वोक्त तथा अन्य उपचार-सयत्रो का विवरण सारणी ७ मे दिया गया है।

हर तरह के काष्ठ के उपचारार्थ ध्यान देने योग्य एक रीति आसारण प्रक्रिया[4] है। इसमे सर्वप्रथम नये कटान के खभो को छाल रहित कर देना पड़ता है, और तत्काल ही एक जल-विलयन परिरक्षी का मोटा लेप उनके तल और टक्कर पर लगाया जाता है। इन खभो को तब सघटित चट्टो मे एकत्रित किया जाता है जिससे कि वे शीघ्र सूखने न पाये। पानी से बचाव के लिए उनके ऊपर तिरपाल या जलरोधी गाढ-चादर डाली जाती है। ऐसा करने से वे हरे काष्ठ शीघ्र नही सूखने पाते। तीन या चार महीने के भीतर परिरक्षी काष्ठ के अन्दर चहुँ ओर सतोषप्रद गहराई तक प्रवेश कर जाता है जिससे उस काष्ठ की सेवा-आयु मे पर्याप्त वृद्धि हो जाती है।

1 Zinc Sulphate.
2 Sodium Fluoride.
3 Dinitrophenol.
4 Osmoc Process.

इस विधि से कोदाइकैनाल (दक्षिण) की नगरपालिका की ओर से दो हजार **पाइनस् इन्सिग्रिस** काष्ठ के खंभों का उपचार किया गया। उन खंभों की निकटतम आयु १२ वर्ष की रही।

इस देश में स्लीपर, बिजली एवंअ धार-खम्भ, निर्माण-काष्ठ, पेटी अथवा चाय के बक्स और शस्त्र-काष्ठ लगभग ४० से ५० लाख घनफुट तक शोधित किये जाते हैं। इनके उपचार के लिए लगभग साढ़े सत्रह लाख (१७, ५०,०००) गैलन तैल-रूप परि-रक्षी और पन्द्रह लाख (१५,००, ०००) पौंड शुष्क विषैले लवणों का प्रयोग किया जाता है।



चित्र १२—**कोदाइकैनाल में आसारण प्रक्रिया द्वारा उपचारित काष्ठ खंभ।**

काष्ठ-परिरक्षण में सफलता प्राप्त होने के साथ ही साथ काष्ठ-अग्निरोधन कार्य में भी बड़ी प्रगति हुई है। काष्ठ-अग्निरोधन भी काष्ठ-परिरक्षण से सम्बन्ध रखता है। इसमें केवल इतना ही भेद है कि काष्ठ-परिरक्षण में ऐसे रासायनिक पदार्थों को काष्ठों के अन्दर व्याप्त किया जाता है, जो कवक और कीटों के लिए विष हों और काष्ठ-अग्निरोधन में अग्निरोधी रसायनों का प्रवेश कराया जाता है। इस कार्य के लिए सबसे पहले काष्ठों के प्राकृतिक अग्निरोधी गुणों को ज्ञात करना जरूरी था। अतः ५६ काष्ठ-जातियों के स्वाभाविक अग्निरोधी गुणों का अध्ययन किया गया, और इन्डियन फौरेस्ट बुलेटिन, नम्बर ११८ (१९४३) में इनका विवरण दिया गया, इसके पश्चात् कुछ ऐसे रसायनों का विकास किया गया जिनका काष्ठ के बाह्य स्तर पर या तो लेप लगाकर या उनके घोल को काष्ठ के भीतर प्रवेश कराकर उसमें अग्निरोधी गुण उत्पन्न किया जा सकता था। काष्ठ-परिरक्षण की तरह इस क्रिया का उपचार वाणिज्यिक पैमाने पर यथोचित संयन्त्रों द्वारा किया जा सकता है। रेलवे, खानों और सिनेमा उद्योग ने इस विकास-कार्य को महत्त्व दिया है (पृष्ठ ५४ देखिए)। वन-अनुसन्धान-शाला की काष्ठ-परिरक्षण

सारणी–७

भारत में विद्यमान काष्ठ-उपचार संयन्त्रों की सूची

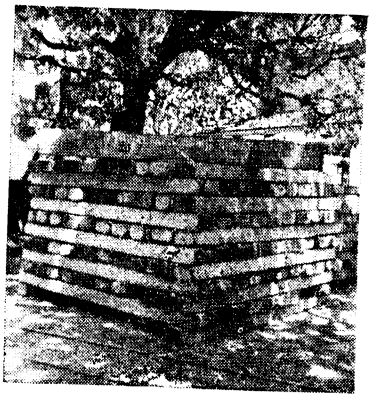
क्रमांक	संयन्त्र-स्थान और स्वामी	संयन्त्र-प्रकार और परिमाण	प्रयुक्त परिरक्षी	उपचार-प्रयोजन
१	२	३	४	५
	मैसूर			
१	(क) कोलर गोल्ड फील्डस्	निपीड-रम्भ (५ फुट व्यास २८ फुट लम्बा)	जिंक सल्फेट २·२५% सोडियम् फ्लोराइड ०·६५% डाइनाइट्रोफीनौल ०·१०% जल ९७·००%	काष्ठ-खम्भ और निर्माण-काष्ठ
	(ख) ,,	,,	'फैपौम' मे अग्निरोधन, एन्क्यू और सीमेंट शीकन	
२	भद्रावती–मैसूर वनविभाग	निपीड-रम्भ (५ फुट व्यास ४५ फुट लम्बा)	(१) एन्क्यू (२) क्रियोजोट और इंधन तैल (५०:५०)	काष्ठ-स्लीपर, खम्भ और निर्माण-काष्ठ
	पंजाब			
३	(क) धिलवाँ-उत्तरीय रेलवे	खुला कुण्ड	क्रियोजोट और इन्धन तैल (५० ५०)	काष्ठ-स्लीपर
	(ख) धिलवाँ-उत्तरीय रेलवे	निपीड-रम्भ (६ फुट, ६ इंच व्यास ७५ फुट लम्बा)	क्रियोजोट और इन्धन तैल (४०:६०)	काष्ठ-स्लीपर

	उत्तर प्रदेश			
४	क्लटरबकगंज (बरेली) उत्तर पूर्वीय रेलवे	दो निपीड-रम्भ (६ फुट व्यास, ५० फुट लम्बा	क्रियोजोट और इन्धन तैल (५० : ५०)	काष्ठ-स्लीपर
५	कानपुर—टैकनिकल डैवलपमेन्ट इस्टेब्लिशमैंट लैबोरेटरी	खुला कुड	(१) सैल्क्ययर—जल मे (२) कौपरनैफथीनेट-ह्वाइट स्पिरिट मे	काष्ठ—स्फोटास्त्र वक्स
६	देहरादून —केन्द्रीय पी० डब्ल० डी०	खुला कुड	क्रियोजोट-इन्धन तैल मिश्र	काष्ठ—छन-पट्ट, बल्लियाँ और फलक
	बिहार			
७	(क) नटरहाट (ख) विहटा (ग) हजारीबाग—विद्युत-विभाग	निपीड-रम्भ	एम्क्य	काष्ठ—खम्भ
	मद्रास			
८	धवलेश्वरम्—पी०डब्लू०डी०	निपीड-रम्भ	एम्क्य	निर्माण-काष्ठ
	आसाम			
९	नहरकटिया—उत्तर पूर्वीय सीमान्त रेलवे	निपीड-रम्भ (६ फुट व्यास. ४० फुट लम्बा)	क्रियोजोट और इन्धन तैल (५० · ५०)	काष्ठ-स्लीपर
१०	मारघरीटा—आसाम रेलवे एन्ड ट्रेडिंग कम्पनी	निपीड रम्भ	क्रियोजोट और स्लीपर-तैल	निर्माण-काष्ठ

क्रमांक	सयन्त्र-स्थान और स्वामी	सयन्त्र-प्रकार और परिमाण	प्रयुक्त परिरक्षी	उपचार-प्रयोजन
१	२	३	४	५
११	दिगबोय—आसाम ऑइल कम्पनी	खुला कुण्ड	काष्ठ-तैल और स्लीपर-तैल	काष्ठ-स्लीपर
	पश्चिम बंगाल			
१२	शामनगर—विद्युत विभाग	निपीड-रम्भ (२ फुट व्यास, ३६ फुट लम्बा	एम्क्य	काष्ठ-खम्भ और निर्माण-काष्ठ
१३	दुर्गापुर—उद्योग विभाग	,,	,,	वाड़ खम्भ और कुटीर औद्योगिक निर्माण-काष्ठ
१४	सिलिगुरी—उद्योग विभाग	,,	,,	,,
१५	एस्क्यू वुड प्रौडक्टस्, कलकत्ता	निपीड-रम्भ	,,	काष्ठ-खम्भ और निर्माण काष्ठ
१६	आर० सेन एन्ड कम्पनी, कलकत्ता	निपीड-रम्भ (२ फुट व्यास, ४० फुट लम्बा)	,,	,,
१७	कूचविहार विद्युत विभाग	,,	,,	,,
	केरल			
१८	कोचीन बन्दरगाह	निपीड-रम्भ	क्रियोजोट और इन्धन तैल (५०·५०)	काष्ठ-स्लीपर और निर्माण काष्ठ
१९	(क) पैलौम	(क) ३फुट व्यास × ४२ फुट	एम्क्यू	काष्ठ-खम्भ
	(ख) भन्डाकमपौली	(ख) २ फुट व्यास × ४८ फुट		

१	२	३	४	५
	(ग) गैनकोटा	(ग) १·५ फुट व्यास × ४० फुट		
	(घ) कुन्ड्रा	(घ) ५ फुट व्यास × ६० फुट		
	विद्युत विभाग	निपीड-रम्भ		
	बम्बई			
२०	बल्हारशाह—वन विभाग	खुला कुण्ड	क्रियोजोट और इन्धन तैल (५० : ५०)	काष्ठ-स्लीपर
२१	डन्डेली—वन विभाग	खुला-कुण्ड	,,	,,
२२	**अन्डमान द्वीप समूह**—वन विभागा	,,	,,	काष्ठ-खम्भ, छत-पट्ट और आधार-स्तम्भ
२३	**जम्मू और कश्मीर**—वन विभाग	निपीड-रम्भ (५ फुट व्यास × ४५ फुट)	बौलीडौन लवण	निर्माण-काष्ठ
२४	**हिमांचल प्रदेश**—पौटा विद्युत विभाग	निपीड-रम्भ (२ फुट व्यास × ४० फुट)	एस्क्यू	काष्ठ-खम्भ

शाखा में परिरक्षी और अग्निरोधक संयुक्त रसायनों का आविष्कार हुआ है, जिससे इस संयुक्त पदार्थ के जल-विलयन को लकड़ी, बाँस और छादन-घास में व्याप्त कर उन्हें सड़ने, गलने और नाशकारक कीटों से बचाने के अतिरिक्त, अग्नि-सह भी बनाया जा सकता है। रेलवे-मंत्रालय के केन्द्रीय मानक कार्यालय ('सेन्ट्रल स्टेन्डर्डस् औफिस') ने परीक्षणों के लिए ४०० चीड़ और १६६ सैन के स्लीपरों के इस विधि द्वारा उपचारित करने का व्यय उठा-कर उन्हें परीक्षणार्थ रेलवे लाइनों पर, जैसे कि इंजनों के खड़े रहने आदि के ऐसे स्थानों पर, जहाँ आग का भय है, लगाया है। इस प्रकार शोधित किये गये काष्ठों की सेवा-आयु का अनुमान कुछ ही वर्षों में लग जायगा।



चित्र १३—**अग्निरोधी-स-परिरक्षित काष्ठ-स्लीपर।**

उपरि-लिखित परिणामों के अतिरिक्त और भी सिद्धियाँ, जो अनुसन्धान कार्य से हुई हैं, इस प्रकार हैं—

(१) चीड़-वृक्ष से प्राप्त लीसा ('रेजिन') में ताँबा और जस्ता की मिलावट से, इन विषैली धातुओं के उन संयोगों का, जो कौपर और जिंक रेजीनेट के नाम से कहे जाते हैं, विकास हुआ। ये पदार्थ पैट्रोलियम (मृत्तैल)—जैसे किसी विलायक ('सौलवैन्ट') में घोलकर परिरक्षी के रूप में प्रयुक्त किये जा सकते हैं। इन परि-रक्षियों का वर्णन भाग ३, अध्याय १ में किया गया है।

(२) निम्न-जाति के काष्ठों, बाँसों और छप्पर छाने की घासों एवं ताड़ की पत्तियों की उपचार-विधियों का उद्विकास किया गया, जिससे वे अनेक संरचनाओं के लिए मितव्ययी निर्माण-पदार्थ सिद्ध हो सकें। यहाँ तक कि इन विधायित पदार्थों को कम लागत के गृह-निर्माण-कार्यों के लिए भी अति उपयोगी साधन बनाया जा सकता है। इन्हीं पदार्थों से इमारतें बनाकर उनके प्रदर्शन किये गये और अभी तक उनका निरी-क्षण चल रहा है।

काष्ठ-परिरक्षण शाखा की सलाह से ही भारत मे कई एक काष्ठ-उपचार-सयत्र बैठाये जा रहे है और इसका वाणिज्य सम्बन्धी कार्य बढता ही जा रहा है। इस कार्य की वृद्धि देश की प्रगति की द्योतक है। काष्ठ-परिरक्षण विज्ञान और उसके उपचार-सयन्त्रो के चालन के बारे मे अनुदेशन का कार्य-भार काष्ठ-परिरक्षण शाखा के ही ऊपर है और निकट भविष्य मे यह विचार है कि काष्ठ-परिरक्षण का 'डिप्लोमा कोर्स' आरम्भ किया जाय। इस ओर भारत सरकार ध्यान दे रही है।

डाक और तार विभाग ने भी तार और टेलीफोन के खभो के लिए शोधित काष्ठो का प्रयोग किया है। इस कार्य हेतु उस विभाग ने भी विभिन्न कार्य योग्य काष्ठ-खभो के उपचार के लिए साधन-सयत्र स्थापित किये है। भारतीय मानक सस्था ('इन्डियन स्टेन्डर्ड्स् इन्स्टीट्यूशन') ने इस सम्बन्ध मे बिजली, तार एव टेलीफोन लाइनो के काम के लिए काष्ठ-खभो की एक विशिष्टि बनायी है, जिसमे खभो के परिमाण, दृढता और परिरक्षियो द्वारा उपचार का विवरण दिया गया है।

सन् १९५२ मे वन-अनुसन्धानशाला की काष्ठ-परिरक्षण और काष्ठ-सशोपण शाखाओ ने मिलकर काष्ठ सुखाने और परिरक्षण करनेवाली एक सस्था ('टिम्बर डायर्स ऐड प्रिजर्वर्स एसोसिएशन') का आयोजन किया। इस सस्था मे काष्ठ-व्यापारियो, रासायनिक पदार्थ निर्माताओ और परिरक्षण के अन्वेषण-कार्यकर्त्ताओ के प्रतिनिधि सम्मिलित है, जो वार्षिक अधिवेशनो मे मिल-जुलकर इस विषय पर परामर्श करते रहते है। यह सस्था एक त्रैमासिक पत्रिका भी निकालती है, जिसमे इन विषयो पर बहुमूल्य लेख और चित्र निकलते रहते है।

निर्देश-सूची

१ (क) ए० पुरुषोत्तम, जे० एन० पाडे और वाई० जी० जादव : "भारत मे काष्ठ-परिरक्षण", इन्डियन फौरेस्ट बुलेटिन १६८; सन् १९५३, पृष्ठ.१।

१ (ख) तत्रैव ,, ,, ,, ,, पृष्ठ २ ।

२ (क) वनमहानिरीक्षक (इन्स्पेक्टर जनरल औफ फौरेस्ट्स्), भारत सरकार, (कृषि और खाद्यमत्रालय) द्वारा विवरण, ब्रिटिश कौमनवेल्थ फौरेस्ट्री कौनफरेन्स् के लिए तैयार किया (१९५७)।

२ (ख) ,, तत्रैव ,, पृष्ठ १ ।

२ (ग) ,, तत्रैव ,, पृष्ठ ५ ।

२ (घ) ,, तत्रैव ,, पृष्ठ ६ ।

२ (ङ) „ तत्रैव „ पृष्ठ ७ ।

४ (क) जी० एम० हन्ट व जी० ए० गैरेट : काष्ठ-परिरक्षण ('वुड प्रिज़र्वेशन) (यू० एस० ए०), १९५३; पृष्ठ २६१ ।

४ (ख) तत्रैव पृष्ठ २६२ ।

५ (क) एच० ब्रोजे वॉन ग्रोनौ, रिचन और वान डैन वर्ग : पिछले ५० वर्षों में काष्ठ परिरक्षण ('वुड प्रिज़र्वेशन डचूरिंग दि लास्ट फिफ्टी ईअर्स') (हालैंड), १९५२; पृष्ठ २ । „

५ (ख) „ तत्रैव „ पृष्ठ ३ ।

५ (ग) „ तत्रैव „ पृष्ठ ४ ।

५ (घ) „ तत्रैव „ पृष्ठ ५ ।

७ (क) ए० पुरुषोत्तम के व्याख्यान टिप्पण ('लेक्चर नोटस्'); रुड़की विश्व-विद्यालय के मिकैनिकल इन्जीनियरिंग अफसरों के प्रत्यास्मरण पाठक्रम के लिए, १९५६; पृष्ठ २।

भाग २

अध्याय १

काष्ठ की शरीर-रचना

१. सामान्य वर्णन

वाणिज्योपयोगी काष्ठों को प्रायः स्थूल रूप से दो वर्गों में विभाजित किया गया है। उनमें से एक तो शंकुधारी[1] काष्ठ हैं जो प्रायः कोमल काष्ठ[2] कहलाते हैं, और दूसरे चौड़ी पत्तीवाले अथवा उरुपाती[3] हैं, जिनको कठोर काष्ठ भी कहते हैं। काष्ठ-परिरक्षण कार्य में रासायनिक परिरक्षियों के विलयन को काष्ठ की कोशाओं में अन्तः-व्याप्त करने के लिए दोनों वर्गों के काष्ठों के शारीर का संक्षिप्त ज्ञान होना अत्यावश्यक है। इस पुस्तक के कुछ विशेष प्रकरणों को समझने के लिए भी काष्ठ की निम्नलिखित शारीर रचनाओं के बारे में जानकारी अवश्य होनी चाहिए।

काष्ठों की अन्तः-रचना विभिन्न प्रकार की होती है। प्रत्येक काष्ठ-जाति में भी रचना-वैभिन्न्य पाया गया है। स्थूल रचना के विचार से यद्यपि बाह्य-काष्ठ अथवा रसकाष्ठ ('सैपवुड') और अन्तःकाष्ठ अथवा सारकाष्ठ ('हार्टवुड') में कोई अन्तर नहीं है, फिर भी अन्तःकाष्ठ में कुछ ऐसे पदार्थ हैं जो बाह्य-काष्ठ में नहीं पाये जाते। उपरि-लिखित कोमल काष्ठ और कठोर काष्ठ केवल पारिभाषिक शब्द ही माने गये हैं। यद्यपि कोमल काष्ठों में भी कुछ ऐसे काष्ठ हैं जो कठोर काष्ठों की कुछ जातियों से भी अधिक कठोर हैं और कठोर काष्ठों की कुछ जातियाँ कोमल काष्ठों से भी अधिक कोमल हैं। अतः काष्ठों के शारीर-विज्ञान की विशेषताएँ संक्षेप में नीचे दी जाती हैं।

२. शंकुधारी काष्ठ ('कौनीफर्स') अथवा कोमल काष्ठ ('सौफ्टवुड्स्')

शंकुधारी या कोमल काष्ठ वर्ग में जो जातियाँ हैं, वे चीड़, कैल, देवदार, साइप्रस्, स्प्रूस और फर नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके वृक्षों का आकार शंकु-जैसा होता है, अतः ये शंकुधारी काष्ठ कहलाते हैं। इनकी पत्तियाँ सुई के आकार की पतली और नोकीली

1 Zimnopermus. 2 Softwood. 3 Angeospermus. 4 Conifurs.

होती है। ये वृक्ष अध. हिमालय के पहाडों तथा समुद्रतल से लगभग ३००० फुट ऊँचे अन्य पहाडो मे अधिकाशत· पाये जाते है।

कोमल अथवा शकुधारी काष्ठ, कठोर अथवा उरुपाती काष्ठो की अपेक्षा समरूप ('होमोजीनिअ्स'[1]) होते है। इनको निरन्ध्र ('नौन्ग्रोरस्') काष्ठ भी कहते है। इनमे मुख्यत दो प्रकार के कोशातत्त्व होते है। एक तो खडे वाहिकोशा ('ट्रेकीड') होती है जिनके द्वारा पेडो मे रस-('सैप') प्रवाह होता है और साथ-साथ पेडो को वल भी मिलता है। दूसरे किरण ('रेज') होती है जो क्षैतिज दिशा मे रहती है और खाद्य पदार्थो के सचय व प्रवाह का कार्य करती है। कुछ शकुधारी काष्ठो मे लीमे की नलिकाएँ भी होती है जो खडी और आडी दिशाओ मे स्थित रहती है। लीमे की नलिकाओ के चारो ओर और कही अन्य स्थानो मे जीवितक ("पैरेन्काइमा") कोशाएँ भी होती है, परन्तु ये घनी नही होती और दूर-दूर पर रहती है। इन सबका क्रमानुसार वर्णन नीचे दिया गया है।

(क) वाहिकोशा ('ट्रेकीड्स')[2]

यह कोशा खोखली, पतली और लम्बी—नली के आकार की होती है, जो दोनो सिरो पर नोकीली होकर बन्द रहती है। इसके किनारे की दीवारो अथवा भित्तियो पर छोटे गर्त या गड्ढे होते है, जिनको किनारीदार गर्त ('बोर्डर्ड् पिट्स') कहते है। ये गर्त वाहिकोशा के सिरो पर अधिक सख्या मे होते है। रस एक ट्रेकीड से दूसरे ट्रेकीड मे इन्ही किनारीदार गर्तो से होकर जाता है। इस वाहिकोशा की लम्बाई, उसकी मोटाई से लगभग १०० गुना होती है। अमेरिका के काष्ठो मे इस कोशा के टक्कर के व्यास का नाप (४ ग) ०.००५ से ०.०५ मिलीमीटर तक होता है और उसकी औसतन् लम्बाई ३.५ मिलीमीटर बतलायी गयी है। अधिकतर वाहिकोशाएँ निश्चित अरीय पक्तियो मे क्रमबद्ध रहती है और उनका टक्कर वर्गीय या आयताकार होता है। शकुधारी काष्ठो का अधिकाश भाग इन्ही से बना रहता है। कुछ काष्ठ-प्रजातियो मे इनकी भित्तियाँ पतली होती है, जिसके कारण इनके टक्कर का छिद्र बड़ा हो जाता है, अन्य काष्ठो मे भित्ति मोटी होने के कारण छिद्र छोटा रहता है। इन्ही मोटी भित्तिवाले काष्ठो मे वसन्त-काष्ठ ('स्प्रिग-वुड') और ग्रीष्म-काष्ठ ('समर-वुड') का अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। वर्ष के आरम्भ मे वसन्त-काष्ठ बनता है जो इतना

1 Homogenios. 2 दारु वाहिनिकी।

घना नही होता, जितना कि उसके पश्चात् का ग्रीष्म ऋतु का ग्रीष्म-काष्ठ। वसन्त और ग्रीष्म-काष्ठ के स्तरो के मिलने से एक वर्ष की वृद्धि होती है और इसी से एक चक्र बनता है जिसको वार्षिक-वृद्धि-चक्र ('ऐनुअल ग्रोथ रिंग') कहते है। शकुधारी काष्ठो के अङ्गो का और किनारीदार गर्तो का परिरक्षी विलयन के प्रवेशन पर प्रभाव, भाग ३ अध्याय ४ मे विस्तारपूर्वक दिया गया है।

(ख) किरण ('रेज़')

किरणें, जिन्हे अग्रेजी मे 'रेज' कहते है, छोटी-छोटी कोशाओ के समूह मे बनकर पट्टिका के समान काष्ठ मे अरीय रूप में[1] फैली रहती है। इनका कार्य हरे वृक्ष मे खाद्य पदार्थों का सचय और उनका अरीय प्रकार मे विभाजन करना है। साथ ही वे गौण रूप से जल का आन्तरिक प्रवाह भी करती है। किरणें काष्ठ-शरीर मे एक विशेष आकृति बनाती है, उनसे काष्ठ का सामान्य रूप और बनावट दिखाई पडती है। शकुधारी और उरुपाती काष्ठो मे किरणो का स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है। शकुधारी काष्ठों मे इनका समूह सूक्ष्म होता है, जिसको आवर्धक काँच ('मैग्निफाइग लैन्स्') के बिना देखना अत्यन्त कठिन है। स्पर्शीय तल[2] अर्थात् चपटे कटे तल पर, किरण एक कोशा चौडी होती है, केवल उन तर्कुरूप ('फ्यूजीफौर्म'[3]) किरणो मे, जिनमे लीसे की नलिकाएँ होती है, मध्य-अश बडे होते है। इनकी ऊँचाई १ से लेकर २० और कुछ दशाओ मे ५० कोशा तक भी होती है। ये बहुत-कुछ जीवितक कोशा से भी मिलकर बनी रहती है। चीड़ आदि काष्ठो की किरणो मे जल-प्रवाही कोशाएँ भी होती है, इन कोशाओ मे कुछ किनारीदार गर्त भी होते है। परिरक्षी विलयन प्रवाह मे इनके सम्बन्ध, का विवेचन भाग ३, अध्याय ४ मे किया गया है।

(ग) लीसा-प्रणाली ('रेजिन डक्टस्')

लीसा-प्रणाली सकीर्ण और अन्तराकोशीय[4] नलिकाओं मे बनी होती है। इनकी कोई निश्चित लम्बाई नही होती। ये कुछ शकुधारी काष्ठो मे उदग्र एव क्षैतिज अथवा खडी और आडी दिशाओं मे अन्तःसचार करनेवाली प्रणालियाँ होती है। चीड एव कैल-जैसे शकुधारी काष्ठो मे बहुतायत से और स्प्रूस मे विरल तथा सकीर्ण पायी जाती है। लीसा-प्रणालियो मे कोशा न होने के कारण, स्वत. सीमित दीवारे नही होती, किन्तु

1 Radially.
2 Tangential Surface.
3 Fusiform.
4 Intercellular.

वे जीवितक ('पैरेन्काइमा') कोशा मे चारों ओर एक या उससे अधिक स्तरों द्वारा घिरी रहती है, जो खडी दिशा मे उदग्र प्रणाली ('वर्टिकल डक्टस्') कही जाती है। क्षैतिज दिशा मे बडी तर्कुरूप किरणो[1] की सीमा मे स्थित होने के कारण इन्हे अरीय-प्रणाली ('रेडियल डक्टस्') कहते है। शकुधारी काष्ठो मे 'फर' प्रजाति की लकड़ी मे लीसा-प्रणालियाँ नही पायी जाती। लीसा-प्रणाली की उपस्थिति से शकुधारी काष्ठो मे परिरक्षी विलयन के अन्त प्रेपण मे किस प्रकार सहायता या रुकावट पहुँचती है, यह अगले प्रकरणो मे दिया गया है। (भाग ३, अध्याय ४ देखिए)

(घ) काष्ठ-जीवितक ('बुड पैरैन्काइमा')

जीवितक-कोशाएँ ('पैरैन्काइमा सैल्स्') क्षैतिज दिशा मे काष्ठ-किरण से और उदग्र दिशा मे दीर्घित कोशाओ से मिलकर पट्टी की तरह हो जाती है। जीवित वृक्ष मे इनका कार्य खाद्य पदार्थो के वितरण करने का रहता है। कुछ काष्ठों मे इनकी बहुतायत और किसी मे बहुत कमी पायी जाती है। कुछ काष्ठो मे इनका अभाव भी रहता है। शंकुधारी काष्ठो मे ये सामूहिक रूप मे नही होती, और लीसा-प्रणाली तथा घावो की परिसीमा के अतिरिक्त प्रसृत ('डिफ्यूज्ड') रूप मे ही उपस्थित रहती है। कठोर काष्ठो मे, जिनमे ये भली प्रकार विकसित रहती है, वाहिनी ('वेसल्स्') के चारो ओर एक विशेष प्रकार की आकृति बना देती है, जो टक्कर मे सुस्पष्टत. अलग दिखाई देती रहती है। काष्ठ-जीवितक की तुलना किरण-जीवितक से कई बातों मे की जा सकती है। बाहरी दृष्टि से ये परिरक्षी-विलयन के अन्त.प्रवेशन में सहायता नही देते, पर उदग्र लीसा-प्रणाली की परिसीमित कोशाओं का प्रभाव अवश्य ही परिरक्षी व्यापन पर पड़ता होगा। इसका वृत्तान्त भी आगे दिया जायगा।

३. उरुपाती या चौड़ी पत्तीवाले अथवा कठोर काष्ठ

उरुपाती (चौड़ी पत्तीवाले) या कठोर काष्ठ के वर्ग मे शकुधारी काष्ठों के अतिरिक्त प्राय: अन्य सब जातियो के काष्ठ आ जाते है। इनकी पत्तियाँ शकुधारी काष्ठो के विपरीत चौडी होती है। ये काष्ठ भारतवर्ष-जैसे उष्णदेश के वनों में अधिकतर पाये जाते है। ओक (बॉञ्ज), वालनट (अखरोट), चैस्टनट्, तून इत्यादि कुछ जातियाँ ऐसी है, जो अध. हिमालय पहाड़ों और समुद्रतल से ३००० फुट ऊँचे पहाडो मे पायी जाती है, परन्तु साल, शीशम, सागवान, सैन, बकली, धामन, अजन,

1 Fusiform Rays.

बीजासाल, इरूल, होपिया, सिरिस गजन, हल्दू, कान्जू, सीमल, पीना इत्यादि कठोर काष्ठ जातियाँ तथा अन्य अनेक प्रकार की काष्ठ उपजातियां भारत की छोटी पहाड़ियो, मैदानो, पठारो और पूर्वी तथा पश्चिमी घाटो के वनो मे पायी जाती है। इनमे कुछ तो सदा हरित ('एवरग्रीन') और शेष पर्णपाती ('डेसीड्यूअस') वृक्षो से प्राप्त होती है।

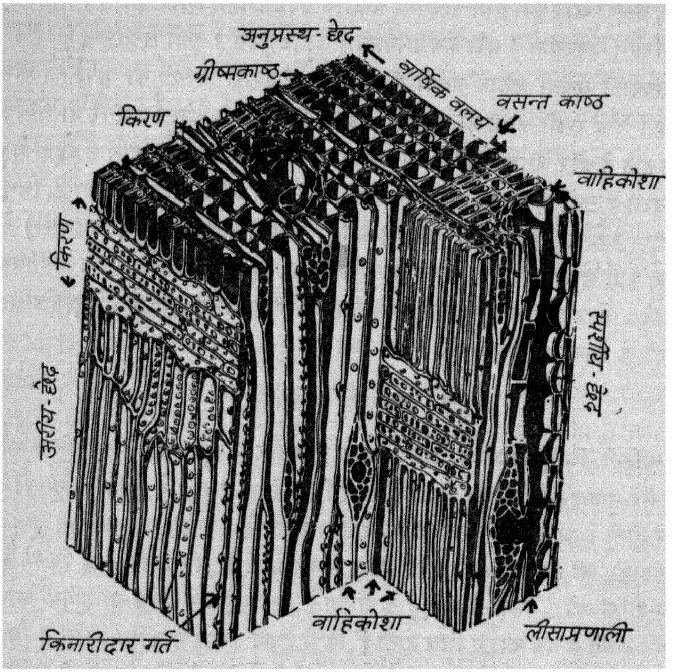
उरुपाती अथवा कठोर काष्ठो की बनावट शकुधारी काष्ठो की अपेक्षा विषम होती है। इन्हे रन्ध्री-काष्ठ भी कहते है। उरुपाती काष्ठो के कोशा-आकार भी अधिक जटिल होते है और जीवित वृक्ष मे इनके तत्त्वों का श्रम-विभाजन भी सुस्पष्ट रहता है। इनके वृक्षो के तनो मे रस का ऊपर की ओर चढाव सूक्ष्म नलिकाओ द्वारा होता है, जिन्हे वाहिनी ('वेसल्स') कहते है। तने को सहारा तन्तुओ अथवा रेशो ('फाइबर्स') से मिलता है। खाद्य पदार्थो के सचय और वाहन का कार्य किरण और काष्ठ जीवितक करते है। ये जीवितक कुछ काष्ठ-प्रजातियो मे सुविकसित होते है। अधोलिखित प्रकरणो मे इनका सक्षिप्त वर्णन किया गया है।

(क) वाहिनी (वेसल्स्)[1]

वाहिनी, जिन्हे अग्रेजी मे 'वेसल्स्' कहते है, कठोर अथवा चौडी पत्तीवाले काष्ठों की शरीर-रचना का विशिष्ट अंग है (देखिए चित्र सख्या १४)। ये सूक्ष्म नलिकाओ के समान होती है और इनकी लम्बाई अनिश्चित रहती है। इनका कार्य जीवित वृक्ष मे रस सवाहन का होता है। ये उदग्र दिशा मे कोशाओ के माला की तरह मिलने से, एकक-वाहिनियो ('वेसल-मैम्बर्स्') के सयोग से बनती है। ये एकक-वाहिनियां काष्ठ के दूसरे तत्त्वो से इस कारण भिन्न होती है कि ये सपूर्ण प्रकार से कोशा-भित्ति से घिरी नही रहतीं। इनके दोनो सिरो पर अपेक्षाकृत बडे छिद्र होते है, जिनसे एक ही वाहिनी की उदग्र दिशा मे साथ-साथ लगे हुए वाहिनी के अग एक-दूसरे के ऊपर खुले रहते है। अतएव इन वाहिनियो के कारण चौडी पत्तीवाले अथवा कठोर काष्ठो मे वायु अथवा द्रव पदार्थो के सचार मे सुगमता होती है, क्योकि इन पदार्थो को, जैसा कि शकुधारी काष्ठों के विषय मे हुआ करता है, बारबार गर्त-कला ('पिट मेम्ब्रेन्स्')[2] मे से होकर प्रवेश नही करना पड़ता। पार्श्व ('लैटरल्'[3]) भाग की ओर एक वाहिनी से दूसरी बगलवाली वाहिनी या कोशा मे, समीपवर्ती भित्तियों के गर्तो के जोडे ('पिट पेयर्स्') मे से होकर द्रवो का प्रवेश होता है। इन गर्तो की रचना और आकृति भी भिन्न होती है।

1 Vessels. 2 Pitmembranes. 3 Lateral.

यदि ये पूर्णतया किनारीदार भी हों, जैसी कि शंकुधारी काष्ठों में हुआ करती हैं, तब भी ये उनसे कई बातों में भिन्न ही रहती हैं।

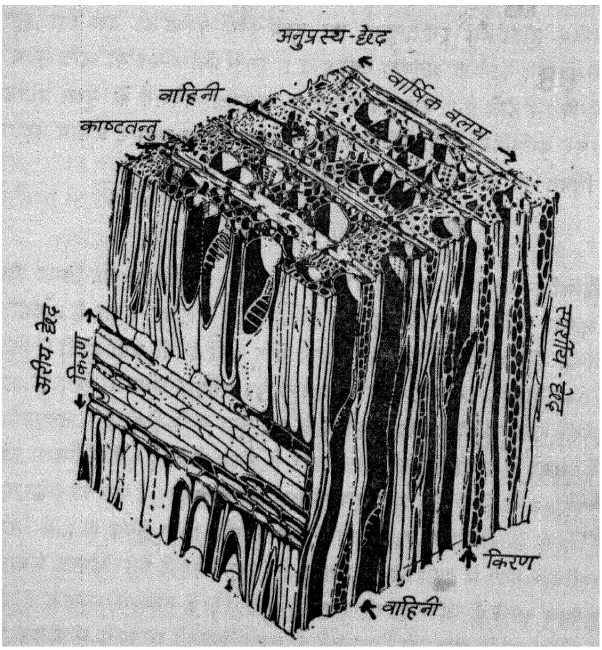


चित्र १४—शंकुधारी अथवा कोमल काष्ठ का भाणु चित्र।

उरुपाती अथवा कठोर काष्ठों की इन्हीं वाहिनियों के रचना-क्रम के अनुसार इन्हें दो भागों में विभाजित किया जाता है। इनमें से एक को तो वलय-रन्ध्र ('रिंग पोरस'[1]) और दूसरे को प्रसृत-रन्ध्र ('डिफ्यूज-पोरस'[2]) काष्ठ कहते हैं। वलय-रन्ध्र काष्ठों में, वसन्त-काष्ठ के रन्ध्र या छिद्र, ग्रीष्म-काष्ठ के रन्ध्रों से, अपेक्षाकृत बड़े और अधिक संख्यक होते हैं। तून, शीशम, टीक, धामन, शहतूत इत्यादि काष्ठ इस वर्ग में आते हैं। प्रसृत-रन्ध्र काष्ठों के रन्ध्र लगभग समान और नियमित रूप से सर्वत्र

1 Ring porous. 2 Diffuse-porous.

वृद्धि-वलय ('ग्रोथ रिंग') में फैले रहते हैं। जो काष्ठ इस वर्ग में हैं, वे हल्दू, कान्जू, आम, सैन, बबूल, सीमल, जामन इत्यादि हैं। इन दोनों प्रकार के काष्ठों से यही अनुमान निकल सकता है कि यदि वाहिनी में कुछ कठोर अथवा रोधी पदार्थ डटकर भरे न हों तो प्रसृत-रन्ध्र काष्ठ में वलय-रन्ध्र काष्ठ की अपेक्षा परिरक्षी समान रूप से व्याप्त होगा और वलय-रन्ध्र काष्ठों में भी वसन्त-काष्ठ और ग्रीष्म-काष्ठ में उसकी



चित्र १५—उरुपाती अथवा कठोर काष्ठ का भाणु चित्र।

व्याप्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से होगी। वसन्त-काष्ठ में छिद्र बड़े और अधिक होने के कारण परिरक्षी का अवशोषण, तुलनात्मक रूप में छोटे छिद्रवाले ग्रीष्म-काष्ठ से अधिक ही होगा। अगले भाग के अध्याय ४ में फिर से इस विषय का विवेचन किया जायगा।

(ख) तन्तु अथवा रेशा ('फ़ाइबर्स')

उरुपाती अथवा कठोर काष्ठों मे तन्तु ('फाइबर्स') काष्ठ-ऊति ('वुडी टिश्यू') के अधिकांश भाग होते हैं, यद्यपि ये तन्तु काष्ठ के अन्य तत्त्वो के अनुपात मे अधिक भिन्न रहते हैं। शकुधारी काष्ठों की वाहिकोशाओ ('ट्रेकीड') के समान ये भी लम्बी फैली कोशाओ की तरह हैं जिनके दोनो सिरे बन्द रहते हैं। तन्तुओ की भित्ति मोटी भी होती है, परन्तु ये ट्रेकीड से छोटे होते है और इनकी लम्बाई दो मिलीमीटर मे शायद ही कभी अधिक होती है। इन तन्तुओ का मुख्य कार्य काष्ठ को बल देना होता है, अतः ये द्रव-सवाहन कार्य के अनुकूल नही होते। इनके भित्ति-गर्त भी अति सूक्ष्म और विस्तार मे विषम होते हैं। सामान्यतया तन्तु, परिरक्षी-प्रवेशन के मुख्य प्रतिकारक नही होते, पर वाहिनियों द्वारा परिरक्षी-वितरण पर इनका सुस्पष्ट प्रभाव पड़ता है। आगे इस विषय की फिर चर्चा की जायगी।

(ग) किरण (रेज़)

उपरिलिखित शंकुधारी काष्ठो के प्रकरण २ (ख) में इनका वर्णन किया गया है। उरुपाती अथवा कठोर काष्ठ की किरणो का परिमाण अस्थिर रहता है। कही तो ये कोमल काष्ठो की किरणो से बडी नही होती और कही इतनी बड़ी होती हैं कि इनसे काष्ठ को एक विशेष प्रकार की आकृति मिलती है। बॉझ ('ओक') ऐसा ही काष्ठ है जिसमे इनकी लम्बाई और ऊँचाई, कोशा से कई गुना बडी होती है। उरुपाती काष्ठ की किरणे तुलना मे सामान्य रचना के विचार से सरल होती हैं। ये जीवितक कोशाओ से ही मिलकर बनी होती हैं। सलग्न जीवितक किरण कोशा मे परस्पर सचार उनके बीच की भित्ति के साधारण गर्त-जोड़ा ('पिट-पेयर्स') द्वारा होता है। ये साधारण गर्त किनारीदार गर्तो से बहुत ही भिन्न होते हैं। किनारीदार गर्त कपाट ('वाल्व्स्') की तरह काम करते हैं और इनकी कला ('मेम्ब्रेन्') के मध्य मे स्थूलक ('टोरुस्') होता है, जो काष्ठ के शुष्क होने पर गर्त के सूक्ष्म छिद्र को दृढता से बन्द कर देता है, जिससे कि द्रव पदार्थ का एक कोशा से दूसरी कोशा मे सचालन न हो सके। इसके विपरीत, साधारण गर्त की कला मे सचार-रोधी स्थूलक नही होता और इसका कार्य भी कपाट की तरह नही होता।

अभी तक इसका कुछ भी प्रमाण नही मिला कि कठोर काष्ठ की किरणे परिरक्षी-प्रवेशन मे सहायता देती हैं या नही। इनकी साधारण गर्त-रचना से तो ऐसा ही प्रतीत होता है। इसके विपरीत, सूचना से यही परिणाम निकलता है कि इन किरणो की

अत्यन्त छोटी कोशाओं और उनमे वर्तमान शुष्क प्राणरस ('प्रोटोप्लाज्म्') तथा अन्य पदार्थो के कारण परिरक्षी-प्रवेशन मे रुकावट पड़ती है। आगे चलकर इस पर भी कुछ प्रकाश डाला जायगा।

(घ) काष्ठ-जीवितक ('वुड-पैरेन्काइमा')

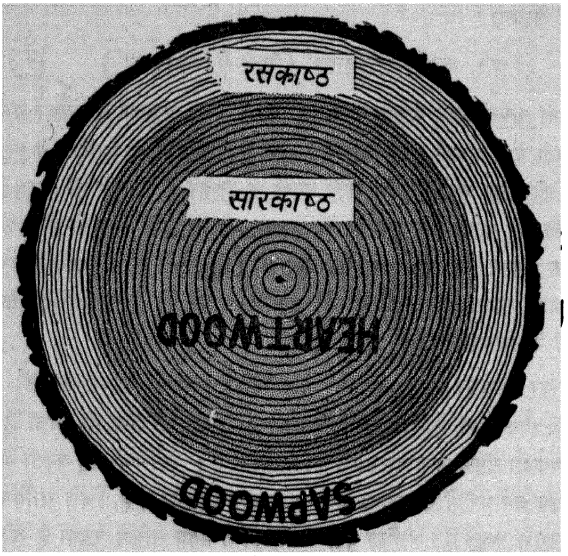
इनका भी वर्णन ऊपर शकुधारी काष्ठों के २ (घ) प्रकरण मे किया गया है। उरुपाती काष्ठों मे ये अच्छी तरह विकसित रहते हैं। कही तो ये वाहिनी के चहुँ ओर आवरण-पट्ट की तरह रहते है और कही काष्ठ के टक्कर मे लहरो की तरह दिखाई देते है। इनसे भी काष्ठ को एक विशेष प्रकार की आकृति मिलती है। उरुपाती काष्ठों मे इस प्रकार की जीवितक-कोशाओ की उपस्थिति से परिरक्षी-वितरण पर सम्भवतः प्रभाव पडता होगा, क्योकि जीवितक-कोशाओं की नलिकाओ का कार्य भी खाद्य पदार्थो के वितरण का ही होता है।

४ रस अथवा बाह्य-काष्ठ[1] और सार अथवा अन्तः-काष्ठ[2]

वृक्ष की यौवन-पूर्व अवस्था से ही रस-काष्ठ बनना आरम्भ हो जाता है। इस अवस्था मे लगभग सपूर्ण भाग रसकाष्ठ का ही होता है। ज्यो-ज्यो यह बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों प्रत्येक वर्ष घेरे मे रस-काष्ठ का एक स्तर बनता रहता है, जिसे वार्षिक वलय ('एनुअल रिंग') कहते हैं। जीवित वृक्ष मे रस-काष्ठ सदैव सक्रिय रहता है और आयु बढ़ने पर आतरतम भाग अक्रिय होकर सार-काष्ठ अथवा अन्तः-काष्ठ मे परिवर्तित हो जाता है। यह मृत काष्ठ इस दशा मे रस-सचालन का कार्य नही करता, परन्तु वृक्ष को बल देता है। रस-काष्ठ से सार-काष्ठ मे परिवर्तित होने पर कठोर काष्ठ के रन्ध्र अपूर्ण अथवा पूर्ण प्रकार से मज्जक पदार्थ, जैसे गुहारुध ('टाइलौस') वर्धन के कारण गोद से बन्द हो जाते हैं। कोमल काष्ठ की वाहिकोशा मे भी इस अवस्था मे बदलाव होकर द्रवों के संचार के रास्ते मे रुकावट पड जाती है। रसकाष्ठ मे एकत्रित अनेक पदार्थो की मात्रा या उनके स्वभाव के बारे मे अभी तक पूर्णतया जानकारी नही हुई है। इनके लक्षण और गुण भी काष्ठो की जाति के अनुसार भिन्न होते है। ये गोंद ('गम'), लीसा ('रेजिन') और विप्रवेशित ('इन्फिल्ट्रेटेड्') पदार्थों के नाम से कहे जाते हैं। इन्हीं पदार्थो के कारण सार-काष्ठ का रंग भी रस-काष्ठ से भिन्न हो जाता है। कुछ काष्ठ-जातियो मे इस रंग का परिवर्तन स्पष्ट नही रहता, जैसे कि सीमल, फर, स्प्रूस,

1 Sapwood, रसकाष्ठ। 2 Heart wood.

आम इत्यादि में, पर अधिकांश जातियों में रसकाष्ठ की सीमा-रेखा स्वच्छ और स्पष्ट रहती है (चित्र १६ देखिए)।



चित्र १६—लट्ठे का अनुप्रस्थ छेद, जिसमें रसकाष्ठ और सारकाष्ठ दर्शाया गया है।

वृक्ष की आयु बढ़ने पर सारकाष्ठ की सीमा के व्यास की वृद्धि होती रहती है, परन्तु रसकाष्ठ का व्यास लगभग उतना ही रहता है। बहुत पुराने वृक्षों में रसकाष्ठ का स्तर छोटा ही रहता है। इन दोनों काष्ठों का पारस्परिक परिमाण लकड़ी की जाति, भूमि और जलवायु पर निर्भर रहता है।

काष्ठ की अधिकांश जातियों में सारकाष्ठ का स्वाभाविक स्थायित्व या टिकाऊपन रसकाष्ठ से अधिक होता है। सभी जातियों के रसकाष्ठ कवक एवं कीटों से शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि उनमें शर्करा, मंड-कोशाधु इत्यादि पदार्थों के रहने के कारण काष्ठ-विनाशकारकों के आक्रमण को रोकने की शक्ति नहीं रहती, पर बहुत-सी जातियों के सारकाष्ठ चिरस्थायी होते हैं। उनमें कोई तो इतने अधिक टिकाऊ होते हैं कि उन पर परिरक्षण क्रिया की आवश्यकता नहीं पड़ती। सारकाष्ठ का यह स्थायीपन उनकी कोशाओं में एकत्रित पदार्थों के गुण और मात्रा पर निर्भर रहता है।

सभी जातियों के रसकाष्ठ को परिरक्षी से अन्तः-व्याप्त कराने में सरलता रहती है, परन्तु बहुत-से काष्ठ जब सारकाष्ठ में बदल जाते हैं तो वे परिरक्षी—**व्यापन-रोधी** बन जाते हैं, अर्थात् परिरक्षी द्रव-पदार्थों को उन काष्ठों की कोशा में अन्तः-प्रेषण करना कठिन हो जाता है।

सारकाष्ठ को रसकाष्ठ से अधिक बलिष्ठ समझना सार्वजनिक भ्रान्ति है। वन-अनुसंधानशाला के कई परीक्षणों से यह सिद्ध हो चुका है कि एक ही आर्द्रता पर इन दोनों प्रकार के काष्ठों की दृढ़ता में कोई भेद नहीं होता। काष्ठ-परिरक्षण की दृष्टि से रसकाष्ठ को अधिक मान्यता दी गयी है, क्योंकि इसमें रन्ध्र खुले होने के कारण नियंत्रित मात्रा में परिरक्षी प्रेषण किया जा सकता है। जितना ही अधिक रसायन इस काष्ठ में पिलाया जायगा, उतनी ही अधिक सेवा-आयु इस काष्ठ को प्राप्त हो सकती है। रसकाष्ठ को वनों में वृक्षों के गिराने के पश्चात् आरम्भ काल से ही निरर्थक बनने से रोकने के लिए परिरक्षण-विधियों का प्रयोग कर बहुमूल्य बनाया जा सकता है।

अध्याय २

काष्ठ-विनाश प्रतिकारक

वन में वृक्षों से गिराया हुआ काष्ठ जब प्राप्त होने लगता है, तभी से उस पर होनेवाली विनाशकारकों की जैविक क्रिया का सूक्ष्म वर्णन यहाँ किया जाता है। काष्ठ को नष्ट करनेवाले प्रतिकारक निम्नलिखित हैं—

१. काष्ठ में निवास करनेवाले कवक। इनसे काष्ठ में धब्बा पड़ जाता है या वह सड़कर गल जाता है।

२. दीमक। इसको सफेद चींटी भी कहते हैं। यह लकड़ी को चाटकर उसमें कभी-कभी मिट्टी भी भर देती है।

३. काष्ठ-छिद्रक कीट। ये लकड़ी में छिद्र करनेवाले घुन हैं जो काष्ठ के तत्त्वों को भक्षण कर लेते हैं। कुछ हालतों में इन छिद्रों से महीन बुरादा भी निकलता है।

४. समुद्री कीट। ये समुद्र के नमकीन पानी में पाये जाते हैं और समुद्र के अन्दर रहनेवाले काष्ठों को मधुकोश की शक्ल का बना देते तथा नष्ट कर देते हैं।

५. अग्नि। इससे लकड़ी जलकर कोयला या राख बन जाती है।

६. यान्त्रिक घिसाई अथवा टूट-फूट और ऋतुक्षय। ये जैविक क्रियाएँ नहीं हैं, पर इनसे भी लकड़ी को क्षति पहुँचती है।

काष्ठ-परिरक्षण कार्य में इन ऊपर लिखे नाशकारकों की उत्पत्ति, प्रक्रिया और विकास के बारे में जानकारी होना आवश्यक है। इस हेतु इनके बारे में ब्यौरेवार वर्णन संक्षेप में नीचे दिया जाता है।

१. कवक

कवक एक निम्न श्रेणी के साधारण उद्‌भिद् (पौधे) होते हैं। ये अपने खाद्य पदार्थों को प्राकृतिक तत्त्वों से प्राप्त नहीं कर सकते, क्योंकि इनमें हरे पौधों की तरह पर्णशाद[1] ('क्लोरोफिल') का, जिससे ये प्रकृतिक खाद्य पदार्थों को कृत्रिम क्रिया

1 Chlorophyll.

से तैयार कर सके, अभाव रहता है। ये संचित खाद्य पदार्थ पर सदा ही निर्भर रहते हैं और जहाँ इस प्रकार सहज मे ही प्राप्त खाद्य पदार्थ हो, वही इनकी वृद्धि होती है। इनका काय (शरीर) 'थैलस' (जिसमे जड़, तने और पत्तियाँ नही होती) का बना होता है।

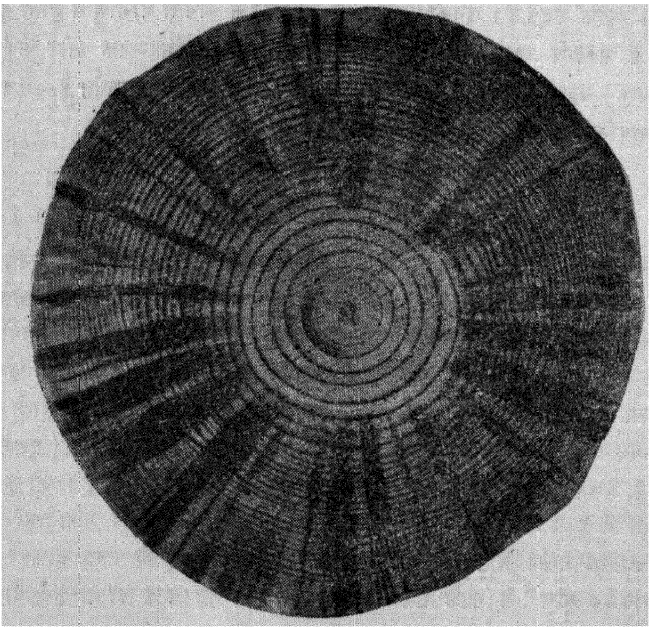
कवक कई प्रकार के होते है और इनका वर्गीकरण इनकी सरचना और विशेष लक्षणो द्वारा किया जाता है। मुख्य कवकों को (१) रोगकारक, (२) काष्ठ-अभिरञ्जक[1] (३) काष्ठ-नाशक[2] और (४) आश्लेष्मक[3] वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है। इनके उद्‌भिद्-काय[4] एक-कोशीय अथवा बहुकोशीय सूत्र होते है, जिनको 'हाइफे' कहते है। इनका पुनरुत्पादन विखण्डन से अथवा बीजाणु से होता है। काष्ठ से सम्बन्ध रखनेवाले केवल काष्ठ-नाशक, काष्ठ-अभिरञ्जक और फफूंदी ('मोल्डस्') बहुकोशीय कवको से ही है। ये मुख्यतः दो वर्गो के अन्तर्गत है—(क) **एस्कोमाइसिटिस्**[5] और (ख) **बैसिडियोमाइसिटिस्**।[6]

(क) धानीकवक वर्ग ('एस्कोमाइसिटिस्'): अनु-वर्ग ('पाइरिनोमाइसिटिस्')[7]

लकड़ी मे दाग उत्पन्न करनेवाले और बाहरी सतह पर फफूंदी रूप में जमनेवाले कवक इसी वर्ग मे है। जो काष्ठ मे अन्तः-व्याप्त होकर उसमे नीलवर्ण के दाग उत्पन्न कर देते है, वे काष्ठ-अभिरञ्जक अथवा नीलवर्णक कवक कहलाते है। कुछ जातियो के कोमल और कठोर काष्ठो के रसकाष्ठ मे इस प्रकार का रग फैलकर उसकी चमक और रूप मे परिवर्तन कर देता है, जिससे उसके मूल्य मे भी कमी हो जाती है। इस कवक के बीजाणु, हाइफा के सिरे पर एक सूक्ष्म थैली मे, जिसे धानि ('एस्की') कहते है, स्थित होते है। इसी लिए इसका नाम **'एस्कोमाइसिटिस्'** पड़ा है। जो कवक इस वर्ग मे है वे सैरेटोस्टोमिला[8], डिप्लोडिया[9], ग्रैफियम[10] इत्यादि प्रजातियाँ है। साधारणतया देखने से इनके बीजाणु का समूह काले बिन्दु की तरह दीखता है, पर आवर्द्धक-काँच[11] से काले केश की तरह, जिसकी जड़ कन्द की तरह होती है, दिखाई देता है।

1 Wood Staining. 2 Wood destroying. 3 Slime forming.
4 Plant body. 5 Escomicitis. 6 Bassidiomicitis.
7 Pyrinomicitis. 8 Saretostomilla. 9 Diplodia.
10 Graphium. 11 Magnifying glass.

ऊपर लिखे काष्ठ-अभिरञ्जक कवक, रसकाष्ठ के कोशा-छिद्रों में संचित खाद्य पदार्थों पर ही निर्वाह करते हैं, पर कोशाभित्तियों (cell-walls) को किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाते। कवक-सूत्र, एक कोशा से दूसरी में कोशागर्तों में से होकर जाते हैं, जिससे काष्ठ को क्षति नहीं पहुँचती। केवल काष्ठकिरण में, जहाँ खाद्य-पदार्थ संचित रहता है, कोशाभित्ति को हानि पहुँचने की सम्भावना रहती है, अन्यत्र नहीं। हल्के रंगवाले काष्ठों में नील या श्यामनील वर्ण का दाग इन्हीं रँगीले कवक-सूत्रों के पुंज से उत्पन्न होता है (चित्र १७ देखिए)।



चित्र १७—एक काष्ठ-लट्ठे में अभिरंजक कवकों द्वारा बनाया गया नील वर्ण का दाग।

काष्ठ-अभिरञ्जक कवकों की वृद्धि, काष्ठ के विशेष ताप, हवा और आर्द्रता पर निर्भर रहती है। जब से वृक्ष जंगल में गिराया जाता है तभी से इससे प्राप्त लट्ठे पर इन कवकों के आक्रमण की संभावना हो जाती है। प्रारम्भ में लट्ठे के सिरे या तख्ते

की सतह पर एक रंगीन बिन्दु के आकार का, धब्बे की तरह का, कवक दिखलाई देता है, जो खुरचकर साफ किया जा सकता है। पर यदि ऐसा न किया जाय तो समयानुसार यह इतना गहरा पहुँच जाता है कि संपूर्ण रसकाष्ठ को घेर लेता है। ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में यह हरे लट्ठों के कटान के पश्चात् शीघ्र ही २ या ३ दिन के अंदर लकड़ी में दोष उत्पन्न कर देता है। लकड़ी में २० प्रतिशत से ऊपर की आर्द्रता और २४° से ३५° सेन्टीग्रेड तक का तापक्रम इन कवकों की वृद्धि के लिए अनुकूल होता है। लगभग ७° सेन्टीग्रेड से नीचे और ४०° सेन्टीग्रेड से ऊपर के तापक्रम में इनकी वृद्धि बन्द हो जाती है, और ५५° सेन्टीग्रेड में लकड़ी का कुछ घंटों तक रहना इन कवकों के लिए घातक है। वायु-संचरण की कमी के कारण भी नम काष्ठ में शीघ्र ही ये कवक उत्पन्न हो जाते हैं और हरे काष्ठों के चिरान के शीघ्र पश्चात् ही यदि काष्ठ को इस दोष से बचाना हो तो उसे हवादार छायावाले स्थानों में फैलाना आवश्यक हो जाता है, विशेष कर सीमल, पपीता, चीड़, लम्बापती, गुटैल इत्यादि अस्थायी काष्ठों के लिए। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, नीलाभिरञ्जक कवक से कोशाभित्ति को हानि न पहुँचने के कारण काष्ठ की शक्ति में कुछ ज्यादा कमी नहीं आती, पर उसकी आघात ('शौक') रोक सकने की दृढ़ता में कुछ कमी अवश्य हो जाती है। अतएव विमान-निर्माण कार्य के लिए ऐसे नीलाभिरञ्जित काष्ठ का प्रयोग नहीं किया जा सकता, पर अन्य सामान्य निर्माण-कार्य में इनका प्रयोग करना हानिकारक नहीं है। कुछ पाश्चात्य काष्ठ-परिरक्षण अन्वेषण कार्यकर्त्ताओं का यह विश्वास था कि अभिरञ्जित काष्ठ में परिरक्षी प्रेषण करना कठिन होता है, पर परीक्षणों से यह बात प्रमाणित नहीं होती। इसके विपरीत यह भी सिद्ध हो चुका है कि आर्द्रता की एकसम दशा में लाये गये कवकाभिभूत काष्ठ में स्वच्छ काष्ठ के तुल्य ही नहीं, उससे भी अधिक परिरक्षी-प्रचूषण हो सकता है। संभव है, पूर्वकथित प्रकार से दूषित काष्ठ की परिरक्षी-प्रचूषण शक्ति की कमी उसकी अधिक आर्द्रता के कारण हो।

एक प्रकार के छिद्रक कीट, जो काष्ठ में प्रवेश करते हैं, छिद्र के घेरे में अभिरञ्जक कवकों को अपने साथ ले जाकर काले रंग का बना देते हैं। ये 'एम्ब्रोशिया बीटल्स्' कहलाते हैं। ये कवक छिद्रों की दीवारों में उगकर उन कीटों के खाद्य-स्रोतों की सहायता करते हैं।

फफूँदी ('मोल्डस्') लकड़ी के केवल बाह्य स्तर पर पैदा होती है। इसकी उत्पत्ति उसी प्रकार होती है जिस प्रकार वर्षा ऋतु में चमड़े अथवा नम रोटी पर रुई तुल्य पदार्थ जम जाता है। यह सफेद, भूरे, हरे, काले इत्यादि कई प्रकार के रंगों में

प्रकट होकर काष्ठतल को आवृत कर लेती है। इसकी वृद्धि भी वायु के संचरण की कमी और उष्ण-नम दशा के कारण होती है। यह अभिरञ्जक कवको की तरह काष्ठ के गहरे स्तरो मे रग-दोष पैदा नही करती, और काष्ठ के बाह्य तल को खुरचकर तथा सफाई करके इसे हटाया जा सकता है। इससे काष्ठ पर गहरा प्रभाव नही पड़ता और थोडा रन्दा करने पर पुनः स्वच्छ काष्ठ प्रकट हो जाता है। परन्तु इन कवको से सावधान रहना चाहिए, क्योकि जिन अवस्थाओ मे इनकी वृद्धि होती है उन्ही मे काष्ठ-नाशक कवको की भी होती है। यदि इसका पूर्वोपाय नही किया जाय तो काष्ठ नष्ट होने की सभावना रहती है। यह उपाय या तो कवक-वृद्धि की अनुकूल दशाएँ उत्पन्न न होने देने का है, या उचित परिरक्षियो द्वारा काष्ठ का रोगरोधक ('प्रोफिलैक्टिक') उपचार करना है, जिसमे अनुकूल परिस्थितियाँ होने पर भी विनाश-कारक अभिकर्ताओं का आक्रमण फिर नही होता।

(ख) प्रकणीकवक वर्ग ('बैसीडियोमाइसिटिस्')[1] अनुवर्ग ('हाईमैनोमाइसिटिस्')[2]

प्रकणीकवक (**'बैसीडियोमाइसिटिस्'**) उस वर्ग के कवक है जिनके मिथुन अथवा परिपूर्ण बीजाणु बाहर की ओर उनके सूत्र के गदा-आकार सिरो पर, जो **'बैसीडिया'** (प्रकणी) कहलाते है, स्थित रहते है। इसीलिए इनका नाम **'बैसीडियोमाइसिटिस्'** पडा। इनके बीजाणु को भी 'बैसीडियोस्पोर्स' कहते है। सब काष्ठ-नाशक कवक इन्ही के चार मुख्य कुलो मे से है, इनके नाम नीचे लिखे है।

(१) **'एगेरीकेसीई'**[3]—इसका साधारण नाम अरपट्ट ('गिल') कवक है। इसे छत्रक भी कहते है। इसकी बीजाणुधर-कला ('हाइमीनिअम्')[4] अरपट्ट पर फैली रहती है। इनमे मुख्यतः लैन्टाइनस्,[5] पैक्सीलस्,[6] माइजोफिलम्[7] प्रजातियाँ है।

(२) **'पौलीपोरसीई'**[8]—इसे रन्ध्र ('पोर') कवक भी कहते है। इसकी बीजाणु-धर-कला नलिकाओ के अस्तर की भाँति होती है जिसके खुले सिरे रन्ध्र कहलाते है। इसी प्रकार इसका बीजाणुधर ('स्पोरोफोर') बनता है। **डैडे-**

1 Bassidiomicitis. 2 Hymenomicitis. 3 Agaricassii.
4 Hymenium. 5 Lantinus. 6 Paxylus.
7 Myzophitum. 8 Polyporassii.

लिया,[1] फोमस,[2] लैञ्जाइटिस्,[3] मैरोलियस्,[4] पौलीपोरस्,[5] पौली-स्टिक्टस्[6] पोरिया,[7] ट्रेमेटस्,[8] इत्यादि प्रजातियाँ इनमे है।

(३) **'हाइड्नेसीई'**[9]—यह दन्तकवक भी कहलाता है। इसकी बीजाणुधर-कला दाँत या पीठ की रीढ पर फैली रहती है। इसकी **हाइड्नम्,**[10] **इरपेक्स**" इत्यादि प्रजातियाँ होती है।

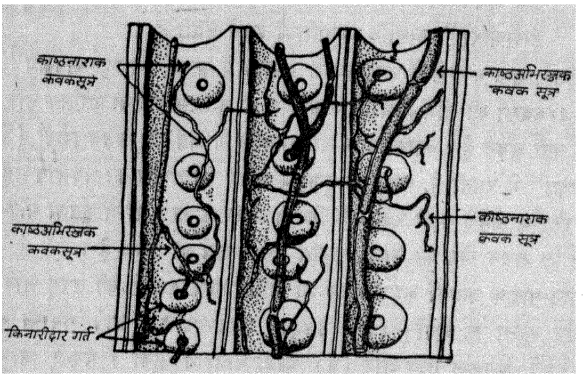
(४) **'थैलीफोरेसीई'**[12]—इसे चर्मकवक भी कहते है। इसकी बीजाणुधर-कला सम अथवा असम तल पर फैली रहती है। **कोनियोफोरा,**[13] **स्टीरियम्,**[14] **टैलीफोरा,**[15] इत्यादि प्रजातियाँ इनमे होती है।

काष्ठ-नाशक कवको के आक्रमण से लकडी मे सडन[16] अथवा अपक्षय[17] पैदा हो जाता है। कवको की जीव-क्रिया से लकडी मे जो रासायनिक या भौतिक परिवर्तन हो जाता है वही सडन है। आक्रमण के आरम्भकाल मे जब यह सडन छिपी ('इन्सीपि-यन्ट') दशा[18] मे रहती है, काष्ठ के गुणो मे किसी भी प्रकार का बदलाव नही प्रतीत होता, परन्तु आक्रमण बढ़ते रहने की स्थिति मे काष्ठ के गुणो मे इतना परिवर्तन हो जाता है कि सडन रोग का निर्णय करना सरल कार्य हो जाता है।

काष्ठ-नाशक कवको का विकास भी अभिरञ्जक कवको की तरह चार कारणो पर निर्भर रहता है, अर्थात् (अ) उपयुक्त खाद्य-पदार्थ, (आ) पर्याप्त मात्रा मे आर्द्रता, (इ) अनुकूल ताप और (ई) थोड़ी मात्रा मे हवा। परन्तु अभिरञ्जक कवको के विपरीत ये कोशाओ मे सचित शर्करा, माँड इत्यादि खाद्य पदार्थ पर ही नही रहते, इनका पोषण कोशाभित्ति पदार्थ से होता है। प्राकृतिक दशा मे काष्ठ-पदार्थ, जो कोषाधु[19] और लगुडि[20] से बनता है, काष्ठ-नाशक कवको के पोषण के लिए उपयुक्त नही है। कवक-सूत्र से निकला रासायनिक रस, जो एक प्रकार का विकर ('एनजाइम्स') है, कोषाधु और लगुडि को कवक के लिए साधारण पौष्टिक परि-पाकवस्तु मे परिवर्तित करता है। अतः इन कवकों के सूत्र एक कोशा से दूसरी कोशा मे

1 Dadellia. 2 Phomous. 3 Langitis.
4 Marrilious. 5 Pollyporos. 6 Polystictus.
7 Poria. 8 Tremetus. 9 Hydnessii.
10 Hydnum. 11 Irpex. 12 Thyliphorassi.
13 Coniofora. 14 Sterium. 15 Telliphora.
16 Decay. 17 Rot. 18 Incipient.
19 Cellulose. 20 Lignin.

जाने के लिए इनकी मध्यवर्ती भित्तियों को क्षति पहुँचाकर पार करते हैं, जिससे काष्ठ की शक्ति कम हो जाती है, यहाँ तक कि पूर्ण विकास के पश्चात् जब इन कवकों के फलन-काय (बीजाणुधर) दीखने लगते हैं तो काष्ठ को हाथों से भी चूर्ण किया जा सकता है । चित्र १८ में काष्ठ-नाशक और काष्ठ-अभिरञ्जक कवकों के सूत्रजाल ('माइसीलियम्') का पथ मान-चित्र में दर्शाया गया है। उससे यह स्पष्ट हो जायगा कि पूर्वोक्त दोनों प्रकार के कवकों के आक्रमण में क्या भेद है ।

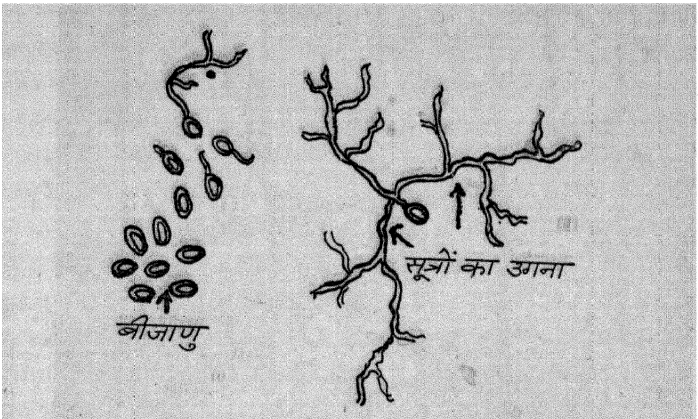


चित्र १८—काष्ठ-नाशक और काष्ठ-अभिरंजक कवकसूत्रों का शंकुधारी काष्ठों में प्रसरण।

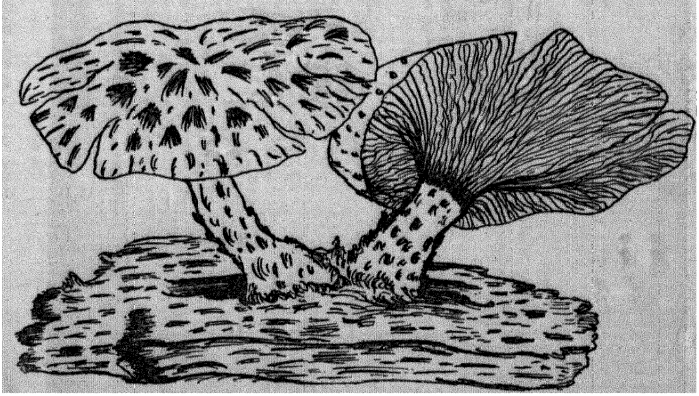
काष्ठ-नाशक कवकों के बीजाणु, जो अत्यन्त हलके होते हैं, अनगिनत संख्या में बीजाणुधरों से हवा में उड़कर या कीट व पक्षियों द्वारा काष्ठ की सतह या दरारों में वास करने लगते हैं। जब इनके विकास की अनुकूल अवस्था प्राप्त हो जाती है तो बीजाणु से सूत्र ('हाइफा') निकलकर फैलने लगता है और इन्हीं का पुंज जाल ('माइसीलियम्') बनकर विकसित होने लगता है, जो अन्त में फल-काय ('फ्रूटिंग बाडी') के रूप में बाह्य दिशा में प्रकट होकर बीजाणु का भंडार बन जाता है (देखिए चित्र १९, २०, २१) ।

काष्ठ-नाशक कवकों द्वारा काष्ठ के रंगपरिवर्तन के परिणामों के कारण इनको दो वर्गों में विभाजित किया गया है । इनमें एक श्वेत-अपक्षय ('ह्वाइट रौट') कहलाता है । इसमें कोषाधु, जो श्वेत रंग का होता है और लगुडि, जो भूरे रंग का होता है, दोनों का क्षयकर, कवक उन्हें हटा लेता है, और अंत में काष्ठ का नीरञ्जन कर उसे श्वेत रंग का बना देता है। इसलिए इस प्रकार की सड़न को श्वेत-अपक्षय कहते हैं।

कभी-कभी इस प्रकार की सड़न द्वारा उपहृत काष्ठ में सफेद धब्बे व पट्टियाँ-सी प्रतीत होती हैं, जिनके मध्य में दृढ़-काष्ठ के स्तर उपस्थित रहते हैं। दूसरे वर्ग की सड़न



चित्र १९— बीजाणु से कवकसूत्र का प्रसरण।



चित्र २०—काष्ठ-नाशक कवक का फलकाय।

बभ्रु अपक्षय ('ब्रौन रौट') कही जाती है। इसमें लगुडि की अपेक्षा कोषाधु का अधिक मात्रा में उपभोग होता है, जिसके परिणामस्वरूप काष्ठ भरे रंग का होकर चूर्ण में

चित्र २१—काष्ठ-नाशक कवक द्वारा काष्ठ की क्षति।

परिवर्तित हो जाता है । इसी को बभ्रु अपक्षय कहते हैं । कुछ सड़न इन दोनों की मध्यवर्ती भी होती है ।

काष्ठ-नाशक कवकों के अनुकूलतम विकास के लिए काष्ठ की आर्द्रता, उसके तन्तु-परिपूर्णक बिन्दु[1] से, जो २५ से लेकर ३० प्रतिशत आर्द्रता तक होती है, अधिक होनी चाहिए । इस तन्तु-परिपूर्णक बिन्दु की आर्द्रता पर कोश-कूप[2] का जल पृथक् अवस्था मे किञ्चित् मात्र भी नही रहता, पर कोशाभित्ति जल से परिपूर्ण रहती है । कोशाकूप के पृथक् जल पर ही कवकों का विकास निर्भर रहता है । इस परिपूर्णक बिन्दु की आर्द्रता पर, अर्थात् लगभग २५ प्रतिशत आर्द्रता के नीचे कवकों की इस वृद्धि की गति में रुकावट पड़ जाती है, और २० प्रतिशत आर्द्रता के नीचे वह पूर्णतया रुक जाती है । इसलिए सब प्रकार के स्वच्छ काष्ठ हवा या भट्ठी मे लगभग १५ प्रति शत आर्द्रता से नीचे अच्छी प्रकार सुखा लिये जाने पर सड़न से बच सकते हैं, और यह दशा तब तक निरन्तर रहेगी जब तक ये काष्ठ फिर से भीगकर उस अपक्षय वृद्धि की न्यूनतम आर्द्रता की दशा से अधिक ऊपर तक न पहुँच जायँ । यदि काष्ठ पहले से ही सड़न द्वारा दूषित हो तो २० प्रतिशत आर्द्रता से नीचे सड़न सुषुप्त दशा में रहेगी और कई वर्षों तक इसी दशा में रह सकती है, जब तक कि अनुकूल आर्द्रता फिर से प्राप्त न हो जाय । तत्पश्चात् इस अनुकूलतम दशा पर पहुँचने पर कवकों का कार्य पुनः अत्यन्त वेग से आरम्भ हो जायगा । यही कारण है कि दूषित काष्ठ को परिरक्षोपचार के बिना ही भारी निर्माण-कार्य में लगाना उचित नहीं है, क्योंकि इससे भयानक परिणाम निकल सकते हैं ।

पूर्वोक्त श्वेत और बभ्रु अपक्षय के अतिरिक्त एक शुष्क अपक्षय भी होता है, जिसे अंग्रेजी में 'ड्राइरौट'[3] कहते हैं । जैसा कि शुष्क नाम से प्रतीत होता है, सम्भवतः इसमें न्यूनतम आर्द्रता से कम नमी की आवश्यकता होती हो, पर वास्तव में ऐसा नहीं है । यह नाम इसलिए रखा गया है कि शुष्क अपक्षय सूखे स्थानों में प्रयुक्त किये गये काष्ठों पर होता पाया गया है, जैसे कि कारखानों में, गृहों में और काष्ठ-गोदामों में, और इन स्थानों में नमी न रहने के कारण यही विश्वास रहता है कि इस शुष्क सड़न में पर्याप्त नमी की आवश्यकता शायद न हो । वास्तव में देखा जाय तो शुष्क अपक्षय सूखे काष्ठ में नहीं पैदा हो सकता, अपितु इस अपक्षय में अन्य प्रकार के अपक्षयों के विपरीत एक दूरस्थ स्थान से भी, जहाँ नमी हो, आर्द्रता ले जाने की शक्ति रहती है।

1 Fibre Saturation Point. 2 Cellcavity. 3 Dryrot.

यदि किसी नम-काष्ठ या भूमि पर किसी समय अपक्षय स्थापित हो जाय, जहाँ आर्द्रता की सदैव पूर्ति होते रहने की सभावना रहे, तो इस सडन के सूत्रजाल शुष्क स्थान को पार कर बहुत दूरी तक चलकर अन्य किसी भी उपयुक्त सूखे काष्ठ पर आक्रमण कर सकते हैं और आर्द्रता का सचालन उस पूर्व नम स्रोत से, जिसके रन्ध्र सूक्ष्म होते हैं, कवकसूत्र द्वारा होता रह सकता है। ये कवकसूत्र २० फुट से भी ऊँची ईटों की दीवारो को पार कर काष्ठ पर आक्रमण करते पाये गये हैं। **पोरिया** और **मैरोलियस** प्रजाति के कवक इसी वर्ग मे है ।

सड़न के विकास मे अति आर्द्रता से भी रुकावट पड जाती है, यद्यपि इसका सम्बन्ध काष्ठ की अधिक आर्द्रता के कारण हवा की कमी से भी रहता है । ज्यो-ज्यों काष्ठ की आर्द्रता बढती है त्यो-त्यो उसमे हवा की कमी भी होती जाती है । काष्ठ मे आर्द्रता की कवक-वृद्धि अनुकूलतम ऊपरी सीमा तक होती है । यह काष्ठ के घनत्व पर निर्भर है । हलके काष्ठो मे २०० प्रतिशत और भारी मे ७५ प्रतिशत आर्द्रता तक यह सीमा है । यह बतलाया गया है कि काष्ठ पर सडन स्थापित होने से पूर्व उस मे अपने आयतन की २० प्रतिशत (४घ) हवा होनी चाहिए। सपूर्ण काष्ठ को स्वच्छ पानी मे डुबो रखकर बहुत काल तक सुरक्षित रखा जा सकता है, क्योकि इसकी आर्द्रता ऊपरी कवक वृद्धि सीमा से अधिक रहती है। इसी प्रकार काष्ठ को धरती से ५ या ६ फुट नीचे गाडने पर हवा की कमी के कारण सुरक्षित रखा जा सकता है । बड़ी इमारतो और पुलों के काष्ठ-आधार-स्तम्भ सैकडो वर्ष तक तनिक भी नही सड़ते और बहुत काल तक अच्छी दशा मे रहते है ।

काष्ठ अपक्षय उन स्थानो मे अधिक होता है जहाँ काष्ठ का गीली धरती से सीधा संपर्क हो, अथवा जब वह ऐसी जगह स्थित हो जहाँ पानी टपककर शीघ्र सूखने की सभावना न हो, अर्थात् जहाँ स्थान नम हो । काष्ठ-स्लीपरो के नीचे के भाग मे, काष्ठ-खम्भो की भूमिरेखा के समीपवर्ती स्थानो मे, गृहो के निचले खण्डो की धरती और दीवारों के अन्दर घुसे काष्ठों मे, अपक्षय यथाक्रम आरम्भ होता है । उन कारखानो और सग्रहालयो मे, जहाँ नमी लगातार रहने की सम्भावना होती है, जैसे कि कागज बनाने की मिलो मे, शीत-सग्रहागारो मे, दुग्धशाला मे, शराब की भट्ठियो इत्यादि मे, शुष्क काष्ठ प्रयोग करने पर भी उसमे आर्द्रता इतनी पर्याप्त मात्रा मे पहुंच जाती है कि उसमे सड़न स्थापित हो सके । सड़न, गृहो के उन स्थानो मे भी पायी गयी है जहाँ ठडे जल के सपर्क मे काष्ठ के चारो ओर की हवा के पसीजने के कारण आर्द्रता स्थापित हो गयी हो। सड़न से काष्ठ का विनाश उन स्थानो मे भी पाया गया है,

जहां कुछ गीली लकड़ी का प्रयोग हवा का आगमन न होनेवाली बन्द कोठरियों में किया गया हो।

काष्ठ-नाशक कवको का विकास तापक्रम की पर्याप्त सीमा तक होता है। इनकी वृद्धि उष्ण-नम ऋतु मे होती है। इस वृद्धि का अनुकूलतम ताप कवको की जाति पर निर्भर रहता है, पर अधिकाश अवस्थाओ मे यह तापसीमा २३° सेन्टीग्रेड से लेकर ३३° सेन्टीग्रेड तक होती है। कुछ विरले कवक ऐसे भी है जिनकी वृद्धि की निम्नतम और उच्चतम सीमा २०° सेन्टीग्रेड और ३६° सेन्टीग्रेड तक भी होती है। ज्यों-ज्यो ताप विकास की न्यूनतम सीमा से घटता जाता है, कवक की वृद्धि भी कम होती जाती है। अति न्यून ताप पर कवक सुषुप्त दशा मे रहता है, पर उसका मरण नही होता, चाहे कितनी भी ठड क्यो न हो जाय। उधर, वृद्धि अनुकूलतम ताप के बढने से उसके विकास पर सुस्पष्ट प्रभाव पडता है और पर्याप्त मात्रा मे उष्णता बढने से अतिरोधी कवक भी मर जाता है। काष्ठ सुखाने की भट्ठी ('किल्न') और वाष्प-तापन क्रिया से यदि काष्ठ मे ताप उतनी गहराई तक पहुँच जाय, जहां तक कवक-सूत्र विद्यमान है, तो कवक पूर्णतया मर जाता है। वैसे तो अधिकाश कवक लगभग ५०° सेन्टीग्रेड से ऊपर के ताप पर नही टिक सकते, पर काष्ठ मे उनका मरण उष्णता को पर्याप्त समय तक चालू रखने से ही हो सकता है, और जब तक ऐसी अवस्था, जो उनके आक्रमण के लिए अनुकूल हो, फिर से प्राप्त न हो, तो यह सदा के लिए हट सकता है।

कवक के आक्रमण से काष्ठ के निम्नलिखित गुण सामान्यतया क्षीण होने लगते है—

(१) काष्ठ के घनत्व मे भारी कमी हो जाती है, अर्थात् काष्ठ के भार मे कमी का सम्बन्ध उस पर कवक के आक्रमण की मात्रा से है। अधिकांश दशाओ मे काष्ठ के भार मे कमी कवक के कारण हुए उसके विनाश की द्योतक है। कुछ अन्वेषण कार्य-कर्त्ताओ ने इस विषय पर सम्बन्ध-वक्र स्थापित किये है।

(२) काष्ठ की सधारी शक्ति ('मिकेनिकल स्ट्रेङ्थ'), विशेष कर दृढता ('टफ्नेस') मे कवक के आक्रमण के परिणामस्वरूप पर्याप्त कमी हो जाती है।

(३) कवक के पर्याक्रमण से काष्ठ मे जल-प्रचूषण शक्ति अधिक हो जाती है।

(४) काष्ठ के रासायनिक सगठन मे कवक के कारण परिवर्तन हो जाता है।

(५) काष्ठ का रग और उसका रूप अथवा आकार बदल जाता है, अर्थात् उसमे विरूपता आ जाती है।

(६) काष्ठ की उषकरी अर्हा (उष्मीयमान, 'कैलोरिफिक वैल्यू') प्रति आयतन पर कम हो जाती है, क्योकि प्रति आयतन पर काष्ठसार कवक के कारण कम हो जाता है।

(७) काष्ठतन्तु की द्विभुजायिता ('बाइरीफ्रिन्जैन्स') कवक के आक्रमण के कारण लुप्त हो जाती है।

(८) काष्ठ के क्ष-रश्मि ('एक्स-रे') चित्र मे भिन्नता आ जाती है। यह सूचना कुछ कार्यकर्त्ताओ ने प्रयोगो के आधार पर दी है।

(९) काष्ठ के परिरक्षी-प्रचूषण गुण मे भी कवक के कारण भिन्नता हो जाती है।

(१०) कवक-सक्रान्त काष्ठों मे गोर्द ('पल्प्') की प्राप्ति और उसके गुण भी क्षीण हो जाते है। सड़ा हुआ काष्ठ यान्त्रिक गोर्द के लिए अनुपयुक्त है।

काष्ठो मे कवक-आक्रमण-रोधनशक्ति तथा प्राकृतिक स्थायित्व भिन्न-भिन्न मात्रा मे होते है। टिकाऊपन सार-काष्ठ का ही माना जाता है न कि रस-काष्ठ का, क्योकि सभी काष्ठो का रस-काष्ठ अल्पस्थायी होता है और शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। काष्ठ के इस स्थायीपन की अवधि कुछ महीनो से लेकर कई वर्षो तक होती है। अत कुछ निम्न श्रेणी के काष्ठ कुछ ही महीनो मे नष्ट हो जाते है, कुछ अत्यन्त टिकाऊ है जो कई वर्षो तक चलते है, और कुछ मध्यम श्रेणी के है जो न तो शीघ्र नष्ट होते है और न चिरस्थायी ही है। सार-काष्ठ मे यह चिरस्थायीपन उन सार पदार्थो के कारण होता है जो उसकी कोशाओ मे रस-काष्ठ के सार-काष्ठ मे परिवर्तित होने के पश्चात् एकत्रित हो जाते है। इन सार पदार्थो के कारण ही सार-काष्ठ का रग रस-काष्ठ से गहरा हो जाता है। यह पदार्थ निस्सार ('इक्स्ट्रैक्टिव्स्')[1] कहलाते है और इनमे कई प्रकार के 'टेनिन्', राल और 'ईथर' तैल इत्यादि सम्मिलित रहते है, जो एक प्रकार से परिरक्षण का कार्य करते है। इन निस्सारों का निस्सारीकरण, शीत या उष्ण जल से अथवा रासायनिक विलायको द्वारा हो सकता है। इनमे बहुधा विनाश-कारक कवक और कीटमारक गुण पाये गये हैं। रस-काष्ठ की अपेक्षा सार-काष्ठ के अधिक स्थायी होने का कारण उसकी बनावट भी है जो घनी होती है। कुछ काष्ठ-जातियो मे कोशाओ के अन्दर गुहारुध ('टाइलोसेस्')[2] की उपज के कारण हवा का सचार पूर्णतः बन्द हो जाता है जिससे वे कवक-रोधी बन जाती हैं।

1 Extractives. 2 Tyloses.

२. कीट

काष्ठ-नाशक कीटों से लकड़ी को बहुत अधिक हानि पहुँचती है। सयुक्त राज्य अमेरिका मे काष्ठ को प्रति वर्ष केवल एक प्रजाति के 'लिक्टस्'[1] ('छिद्रकीटो') से ही १ करोड ८० लाख (५ ङ)* डालर की हानि होना बतलाया गया है। यदि अनुमान लगाया जाय तो भारत मे भी सभी प्रकार के काष्ठ-नाशक कीटों से प्रति वर्ष करोड़ो रुपयो की हानि होती होगी। यह हानि खडे वृक्षो, हरे लट्ठो व प्रकाष्ठो तथा लकडी-गोदामो मे एकत्रित लकड़ी को एव प्रयोग मे लाये गये प्रकाष्ठो को पहुँचती है। इसमे से कुछ हानि रोकना मनुष्य-शक्ति के बाहर है, क्योकि वह वनो मे ही हो जाती है, पर हाँ, लट्ठे, बल्ली, तख्तो और अन्य आकार में रूपान्तरित प्रकाष्ठो को, प्रयोग करने के पूर्व ही, और कुछ दशाओं में बाद मे भी परिरक्षोपचार द्वारा बचाया जा सकता है।

कुछ परिस्थितियो मे कीटो द्वारा यह हानि डिम्भावस्था मे होती है। डिम्भ ('लारवा') अथवा जातक ('ग्रब') खाद्य और आश्रय के लिए काष्ठ को खोदते या कुरेद डालते हैं। ये उसके अन्दर विशिष्ट छिद्र और सुरंग बना देते हैं। कुछ दशाओ मे प्रौढ (युवा) कीट ही नाशकारक होते है, जैसे कि दीमक इत्यादि, और कही दोनो ही नाशकारक मिलकर हानि पहुँचाते है, जिसका यह परिणाम होता है कि काष्ठ अन्दर ही अन्दर नष्ट हो जाता है और किसी भी कार्य के योग्य नही रहता। इसी प्रकार समुद्री कीट भी आलवण जल मे काष्ठ को पर्याप्त मात्रा मे क्षति पहुँचाते है। काष्ठ-नाशक कीटो का वर्गीकरण (५ च)* (समुद्री कीटो के अतिरिक्त) निम्न प्रकार से किया गया है।

(१) **'कोलियोप्टरा'** (भृग)
- (अ) **'प्लेटीपोडाइडी'** (सूची-छिद्रक)
- (आ) **'स्कोलीटाइडी'** (सूची-छिद्रक)
- (इ) **'बोस्ट्रीचाइडी;** अनुवश **'लिक्टाइडी'** (क्षोद-छिद्रक) और **'एनोबाइडी'** (फर्नीचर-छिद्रक),
- (ई) **'सिरैम्बीसाइडी'** (दीर्घ-शृग-छिद्रक)
- (उ) **'बुप्रेस्टाइडी'** (चपटे-सिर छिद्रक)

(२) **'लेपीडोप्टरा'** (तितली)

1 Lictous. * पृष्ठ १०६ पर निर्देश-सूची देखे।

(३) **'हाइमैनोप्टरा'** (ततैया, मधुमक्खी और चीटी)
(४) **'डिप्टरा'** (मक्खी)
(५) **'आइसोप्टरा'** (दीमक)

(अ) **'मैरटोर्मीटाइडी'**
(आ) **'होडोटर्मीटाइडी'**
(इ) **'कैलोटर्मीटाइडी'**
(ई) **'रीनोटर्मीटाइडी'**
(उ) **'टर्मीटाइडी'**

उपरिलिखित नाशकारको मे काष्ठ को हानि पहुँचानेवाले अधिकाश कीट वर्ग सख्या (१) के **'कोलियोप्टरा'** (भृग-छिद्रक कीट) और (५) **'आइसोप्टरा'** (दीमक) वर्ग के है। यद्यपि तितली, ततैया, मक्खी और चीटियो से भी काष्ठ को क्षति पहुँचती है, पर इनका आक्रमण परिरक्षोपचार की दृष्टि से इतना महत्त्वपूर्ण नही है कि इनके लिए विशेष ध्यान देने की आवश्यकता हो। आगे काष्ठ-छिद्रक कीट, दीमक और समुद्री कीटो का ही विस्तार से वर्णन किया गया है।

(क) छिद्रक कीट

छिद्रक कीट काष्ठ, बॉस और बेत पर विशेषत: दो अवस्थाओ मे आक्रमण करते है। एक तो हरी अवस्था मे, अर्थात् काष्ठ के ४० प्रतिशत आर्द्रता मे पहुँचने से पूर्व, ये आर्द्रकाष्ठ-छिद्रक कहलाते है। दूसरे, शुष्क काष्ठ-छिद्रक, जो सूखी लकड़ी पर आक्रमण करते है।

आर्द्रकाष्ठ-छिद्रक, अर्थात् गीली लकड़ी पर आक्रमण करनेवाले, सूची-छिद्रक ('पिनहोल बोरर') है; जो कि पूर्वकथित **'प्लेटीपोडाइडी'** और **'स्कोलीटाइडी'** वश के है। सूचीछिद्रक के प्रौढ ('एडल्ट') लकडी मे सुरग बना देते है। उनके डिम्भ ('लारवा') लकडी को नही छेदते, किन्तु वे सुरग की दीवारो मे उत्पन्न **'एमब्रोसिया'** फुई से बने पदार्थो का सेवन करते है। एसी सुरगो के किनारो का रग काला या भूरा हो जाता है। साधारणतया लकड़ी पर इनके आक्रमण का समय ६ मास तक रहता है, इसके उपरान्त लकड़ी शुष्क हो जाने के कारण इनसे मुक्त हो जाती है। यदि लकड़ी के सौन्दर्य पर विशेष ध्यान न दिया जाय, तो उपयोगिता की दृष्टि से इस प्रकार की लकड़ी, जिस पर अधिक हानि न पहुंची हो, ग्रहण कर लेनी चाहिए।

'बौस्ट्रीचाइडी' वश का 'बौस्ट्रीचस्' प्रजाति का छिद्रक, आर्द्रकाष्ठ-छिद्रक होता

है, जब कि इसके अनुवंश '**लिक्टाइडी**' और '**एनोबाइडी**' के छिद्रक शुष्क-काष्ठछिद्रक है। ये काष्ठ को बड़ी हानि पहुँचाते है।

'**लिक्टस्**' जाति का छिद्रक क्षोदकारक होता है, अर्थात् इसकी बनायी सुरगो से क्षोद अथवा सूक्ष्म बुरादा निकलता है। अत. इस कीट को अंग्रेजी मे 'पौडर पोस्ट बीटल' कहते है। यह अनन्य प्रकार से उरुपाती काष्ठों पर ही आक्रमण करता है, क्योकि यह काष्ठ-वाहिनी मे, जो उरुपाती काष्ठो मे ही होती है, अडे देता है। इस प्रकार की वाहिनी शकुधारी काष्ठो मे नही होती। कुछ कार्य-कर्त्ताओ ने वाहिनी के व्यास और '**लिक्टस्**' के आक्रमण की मात्रा का अनुपात निकाला है। यह भी अनुमान लगाया गया है कि उन जातियो के काष्ठो पर, जिनका वाहिनी व्यास ०.०९ मिलीमीटर से कम होता है, '**लिक्टस्**' आक्रमण नही करता। इसके डिम्भ खाद्य पदार्थ की खोज मे और तदनन्तर आश्रय के लिए काष्ठ को छेद डालते है और जिस भाग को वे पचा नही सकते उसको चूर्ण मे परिवर्तित कर निकाल देते है। अत मे वे जब प्रौढ अवस्था प्राप्त कर लेते है तब क्षोद के साथ-साथ ही अन्य स्थानो पर आक्रमण करने के लिए बाहर निकल आते है। इनके डिम्भ('लारवा')लकड़ी को अन्दर ही अन्दर मधुजाल-सा बनाकर नष्ट कर देते है और गम्भीर अवस्था मे लकडी का बाह्य स्तर केवल छिलके की तरह ही रह जाता है। **लिक्टस्** के डिम्भ का मुख्य खाद्य पदार्थ मण्ड ('स्टार्च') है और उसी का काष्ठ मे अधिक मात्रा मे होना इसके आक्रमण का कारण है। इन कीटों द्वारा अरोधी काष्ठो की हानि रस-काष्ठ तक ही सीमित रहती है और साथ ही साथ ऋतु और लकड़ी के सूखने की गति पर भी निर्भर है। यदि लकडी के सूखने मे विलम्ब हो जाय या हरी लकड़ी को कटान के पश्चात् शीघ्र ही पानी मे डुबो दिया जाय तो बाह्य काष्ठ (रसकाष्ठ) की जीवितक कोशाएँ अपना कार्य करते रहने पर भी उसमे उपस्थित मण्ड को दूसरे पदार्थो मे परिवर्तित कर देती है, जिसके कारण काष्ठ छिद्रको से प्रतिरक्षित हो जाता है। इसके विपरीत यदि काष्ठ शीघ्रता से सुखा दिया जाय, तो जीवितक कोशा मर जाती है और तत्पश्चात् काष्ठ इन छिद्रकों का ग्रास बन जाता है। वसन्त ऋतु मे ये कीट सक्रिय रहते है और इसी ऋतु के अन्त और ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ मे पर-सहित इनके प्रौढ़ छोटे छिद्र(१।१६ इच से १।१२ इच तक व्यास के) बनाकर बाहर निकल आते है और लकड़ी के चट्टे के नीचे बुरादा एकत्रित होने लगता है। कुछ दशाओ मे इनका जीवनचक्र दो-दो वर्ष तक भी चलता है और उसी लकडी पर बारंबार आक्रमण होते रहते है। जो लकडी और बॉस मण्ड से रहित होते है और जिनकी आर्द्रता उक्त प्रतिशत से कम होती है, साधारणत:

लिक्टस् छिद्रकों से विमुक्त रहते हैं। यदि ये पदार्थ कटान के पश्चात् शीघ्र ही काष्ठ-ताल ('लौग पौड') में संचित किये जायँ तो इन छिद्रकों से विमुक्त हो जाते हैं।

'एनोबाइडी' वंश के छिद्रक आवासगृह या उपस्कर की लकड़ी पर आक्रमण करते हैं। अतः इनको उपस्कर या मृतक-घड़ी के छिद्रक ('फरनीचर और डैथ वॉच बीटल') कहते हैं। इनके डिम्भ उपस्कर और रेडियो के बक्सों की लकड़ी को छेदकर एक प्रकार की टकटकाती ध्वनि करते हैं, जिससे इनका नाम 'मृतक-घड़ीछिद्रक' रखा गया है। ये छिद्रक शंकुधारी और उरुपाती दोनों प्रकार के काष्ठो को हानि पहुँचाते हैं। ये रसकाष्ठ और सारकाष्ठ को भी समान प्रकार से नष्ट कर देते हैं।

'सिरैम्बीसाइडी' वंश के छिद्रक लम्बी मूँछोंवाले और बड़े होते हैं। इसलिए इनको दीर्घशृंग छिद्रक कहते हैं। ये भी तुच्छ कीट हैं जो कई प्रकार के कोमल अथवा कठोर काष्ठों पर शुष्क अवस्था में आक्रमण करते हैं।

और भी अन्य प्रकार के छिद्रक हैं जिनके द्वारा काष्ठ को क्षति पहुँचती है, परन्तु पूर्वोक्त छिद्रकों का आक्रमण बड़े महत्त्व का है। चित्र २२, २३ में कुछ छिद्रक कीट दिखलाये गये हैं।

(ख) दीमक

भारतवर्ष-जैसे उष्ण देश में दीमक से काष्ठ को बेहद क्षति पहुँचती है, इसी लिए इन कीटों को विशेष महत्त्व दिया गया है। ये उष्ण और शीतोष्ण प्रदेशों में पाये जाते हैं। हिमालय और अधः हिमालय की पहाड़ियों के सिवा अन्य सभी स्थानों में ये देख पड़ते हैं। बतलाया गया है कि १०° सेंटीग्रेड की औसत वार्षिक समताप रेखावाले उत्तरी और दक्षिणी गोलार्ध तक इन दीमकों की उपस्थिति की सीमा है। दीमक केवल कुछ ही चिरस्थायी काष्ठों को छोड़ शेष सभी काष्ठों को, जो भूमि तथा दीवारों के स्पर्श में हों, शीघ्र ही चाट जाती है और इन्ही स्रोतों से मिट्टी की बनी सूक्ष्म सुरंगों द्वारा प्रयोग किये गये निर्माण काष्ठों पर आक्रमण करती है। एक साधारण गणना के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका के कैलीफोर्निया-जैसे छोटे प्रदेश में दो वर्ष में दीमक द्वारा चार लाख डालर की हानि हुई है। भारत में इससे हुई काष्ठ-हानि की कोई विशेष गणना नहीं की गयी, पर अनुमान है कि यहाँ भी इससे करोड़ों रुपयों की हानि प्रति वर्ष होती है।

दीमक को भ्रम से श्वेत चीटी भी कहते हैं। पर वास्तव में न तो ये सच्ची चींटी ही है और न यथार्थ में श्वेत ही हैं। ये सामाजिक कीट हैं और मण्डलों में रहते हैं। एक पूर्ण मंडल मे एक राजा और एक रानी, योद्धा, कर्मी, डिम्भ और अंडे रहते हैं।

चित्र २२—काष्ठ-छिद्रक कीटों के दृश्य और उनके द्वारा हुई काष्ठ की क्षति।

चित्र २३—काष्ठ-छिद्रक कीटों के दृश्य और उनके द्वारा हुई काष्ठ की क्षति।

इनमें विशेष कर तीन जातियाँ होती हैं, अर्थात् प्रजनक, सैनिक और कार्यकर्त्ता। दीमक-मडल के आरम्भ काल में मुख्य राजा और रानी प्रजनन का कार्य करते हैं। ये ही सम्पूर्ण मण्डल के पूर्वज हैं। सर्वप्रथम रानी थोड़े ही अडे देती है, कुछ समय पश्चात् उसका अण्डाशय शनैः-शनैः लम्बाई मे बढ़ता जाता है और साथ ही उसकी प्रजनन शक्ति भी बढ़ जाती है, जिससे वह हजारों की संख्या में अंडे देने लगती है। यद्यपि दीमक मे द्वितीय अथवा गौण राजा-रानी बनाने की योग्यता होती है, पर यदि पहले स्थापित मडल को पर्याप्त मात्रा मे खाद्य और आर्द्रता मिलती रहे और वह अपने शत्रु (चीटी इत्यादि) से बच जाय तो वह मडल अनन्त काल तक चालू रहता है।

दीमक मुख्यतः दो प्रकार की होती है। एक तो काष्ठ-निवासी और दूसरी अन्तर्भूमिक। काष्ठ-निवासी दीमक पूर्ण मण्डलों में गृहों, रेल-डब्बों और नौ-काष्ठों में वास करती है। अन्तर्भूमिक दीमक धरती के नीचे रहती है और वहीं से मिट्टी की सुरगें बनाकर बाह्य-स्थित काष्ठ पर आक्रमण करती है। फर्श की दरारों से इसकी सुरगें निकलकर दीवारो में बहुत दूर तक चढ़ती दिखाई देती है। इस प्रकार की दीमक काष्ठ-खंभों, रेलवे-स्लीपरों और मकानों की दीवारों पर लगे काष्ठों पर आक्रमण करती पायी गयी है। काष्ठनिवासी दीमक भी दो प्रकार की होती है, अर्थात् आर्द्र-काष्ठ दीमक, जो गीली लकड़ी या सड़े काष्ठ को नष्ट करती है। दूसरी शुष्क-काष्ठ दीमक, जो सूखी लकड़ी को पसन्द कर वही अपना वास-स्थान बना लेती है। यही क्षोदकारक दीमक भी कहलाती है। यह १० प्रतिशत से कम आर्द्रता-वाली लकड़ी पर ही आक्रमण कर सकती है।

दीमकों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त (५ छ) किया गया है।

(अ) **काष्ठ-निवासी दीमक** (अधिकाश 'कैलोटर्मीटिडी' वंश की)।

(१) **आर्द्रकाष्ठ दीमक—**

(क) **जूटर्मोपसिस्** और **प्रोरेहिनोटर्मस्** प्रजाति;

(ख) **पैरोनियोटर्मस् सिम्प्लिसीकौर्निस्** (शुष्क काष्ठ दीमक परिवर्त)।

(२) **शुष्ककाष्ठ दीमक—(कैलोटर्मस् प्रजाति)।**

(क) क्षोदकारक दीमक (**क्रिप्टोटर्मस्, कैलकैरोटर्मस्**);

(ख) शुष्ककाष्ठ दीमक (उपप्रजाति **कैलोटर्मस्**);

(आ) **भूमिनिवासी दीमक** (**रिनोटर्मीटिडी** और **टर्मीटिडी** वंश)।

(१) अन्तर्भूमिक (सब्टरेनियन) दीमक (**कौप्टोटर्मस्, रैटीक्यूलीटर्मस्, हैटीरोटर्मस्**)।

(२) मरुस्थलीय दीमक।
(३) मृत्स्तूपनिर्माता दीमक।
(४) पट्टकोष्ठनिर्माता दीमक।

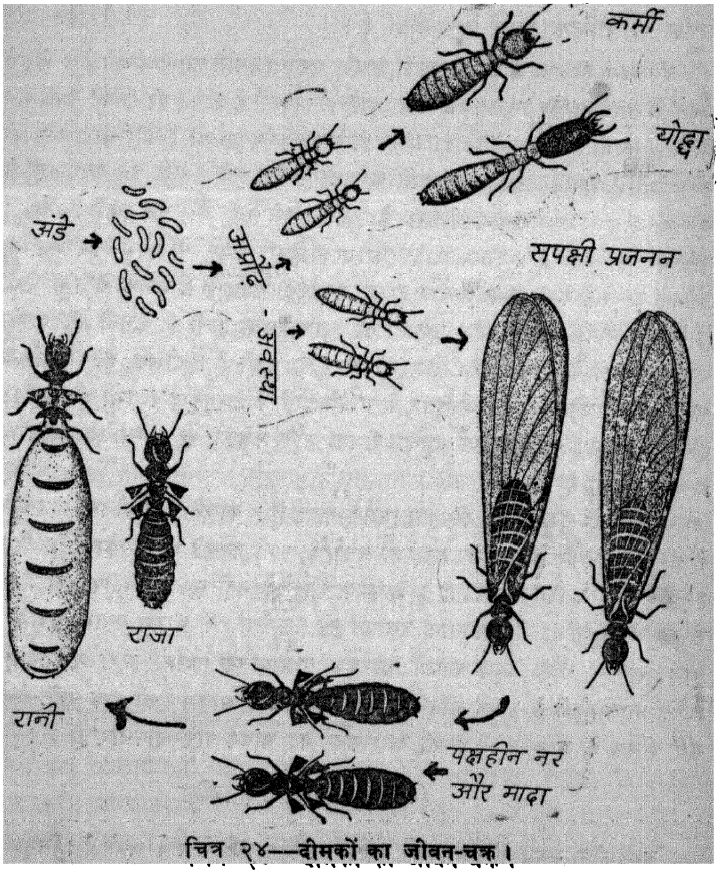
रानी दीमक के अण्डों से कुछ ऐसे शिशु ('निम्फ') भी उत्पन्न होते है, जो बाद में बढ़कर प्रौढ़, योद्धा, कर्मी और सपक्ष (परवाली) दीमक बन जाते है। सपक्ष दीमक ही बाद में प्रजननकर्ता बनती है। योद्धाओ का कार्य मण्डल की रक्षा करना है। ये बिना परवाले बन्ध्य कीट होते है और इनके अकार्यात्मक नेत्र होते है। इनकी लम्बाई $\frac{1}{2}$ इंच होती है। अन्तर्भूमिक दीमक $\frac{3}{8}$ से $\frac{1}{2}$ इच (शुष्ककाष्ठ दीमक) और (आर्द्र-काष्ठ दीमक) $\frac{3}{4}$ इंच होती है। इसका सिर बड़ा व रँगीला और जबड़े भारी होते है जिनसे यह केवल युद्ध ही कर सकती है, लकड़ी खोदने और खिलाने का कार्य इससे नहीं होता। यदि अकस्मात् कही इसकी मिट्टी की सुरग या स्तूप टूटकर खुल जाय तो इसके दल खुले स्थान को रोककर बन्द कर देते है और अपने जबड़ों से आक्रमणकर्त्ताओं का संहार करने का प्रयत्न करते है।

अन्तर्भूमिक दीमक-मण्डल में कर्मी अत्यधिक सख्या में होते है। योद्धाओ की तरह ये भी बन्ध्य, बिना परवाले और अन्धे होते है। इनका हलके रंग का शरीर $\frac{1}{2}$ इंच से कम लम्बा होता है। यद्यपि इनके जबड़े अदृश्य होते है, पर ये लकड़ी के टुकड़ों को बड़ी तेजी से कुतर डालते है। अन्तर्भूमिक दीमक की यही जाति है जो सर्वत्र काष्ठ-विनाश करती है। मण्डल के लिए सम्पूर्ण निर्माण-कार्य, गृह, और सुरगे बनने इत्यादि का भार कर्मियों पर ही रहता है। खाद्य पदार्थ का संग्रह करना, छोटी दीमको को खिलाना और परस्पर एक-दूसरे को रगड़ते रहना भी इनका कार्य रहता है। रगड द्वारा ये एक-दूसरे के शरीर से उत्पन्न रस का विनिमय करते हुए बिलो से उत्पन्न फुई के लेप से, जोइ नके शरीर पर चिपक जाती है, रहित होकर स्वच्छ हो जाते है। शुष्क और आर्द्र काष्ठ की दीमक मे इस प्रकार की कर्मी जाति नहीं होती, अप्रौढ शिशु ही मंडल का विभिन्न कार्य करते है और बाद मे ये ही मुक्त होकर योद्धा व प्रजनक बन जाते है। ये सपक्ष (परवाले) प्रजनक नम-उष्ण ऋतु मे मण्डल से निकलकर बाहर उड़ने लगते है। इनका शरीर एक इंच तक लम्बा, चपटा और गहरे रंग का होता है और इनके चक्षु सयुक्त होते है। ये उड़कर हवा के झोके से दूर तक निकल जाते है और भूमि पर उतरकर अपने पर झाड़ देने के पश्चात् जोड़ा बना लेते है। ये भूमि को खोदकर नीचे चले जाते और भावी राजा और रानी बन जाते हैं। यह अवस्था अन्तर्भूमिक दीमक की है। यदि इसी प्रकार का



चित्र २५—काष्ठ पर दीमक-समूह, पृ० ९१।

जोड़ा काष्ठ को कुरेदकर उसके अन्दर प्रवेश कर ले तो वह शुष्क एवं आर्द्र काष्ठ का मंडल बन जाता है। इस प्रकार दीमकों का विस्तार होता रहता है। चित्र २४ में दीमकों का जीवन-चक्र तथा चित्र २५ में उनका फैलाव दिखाया गया है।



चित्र २४—दीमकों का जीवन-चक्र।

दीमक दो कारणों से काष्ठ पर आक्रमण करती है। एक तो आश्रय के लिए और दूसरे खाद्य के लिए। अपने पोषण के लिए वह मुख्यतः कोषाधु पर ही निर्भर

1 Cellulose

रहती है। कोषाधु और लगुडि से मिलकर ही कोशाभित्ति अथवा काष्ठसार बनता है। वह प्रत्यक्ष रूप से कोपाधु का परिपाचन नही कर सकती और उसका खाया हुआ काष्ठचूर्ण, उसकी अँतड़ियो मे विद्यमान हजारो प्रजीवाएँ ('प्रोटोजा') पचाती है। ये प्रजीवाएं प्रायः सभी प्रकार की सामान्य दीमको मे पायी जाती हैं और इन्ही से दीमक को पौष्टिक पदार्थ प्राप्त होता है।

दीमक खुली हवा से दूर ही रहती है और एकान्त स्थान पसन्द करती है। केवल उडने के समय या प्रजनन अवस्था मे वह बाहर निकलती है और तभी इसकी उपस्थिति का पता लगता है। यह काष्ठ को अन्दर ही अन्दर कुरेद डालती है और बाह्य स्तर को छोड देती है जिससे इसकी उपस्थिति का पता न लग सके। यदि यह स्तर कही से खुल भी जाय तो यह तुरन्त अपने शरीर से उत्पन्न रस से मिट्टी और धूल का लेप बनाकर, उसे बन्द कर देती है। दीमक यदि एक बार किसी भवन मे प्रवेश कर जाय तो उसका उन्मूलन करना एक अत्यन्त दुष्कर कार्य हो जाता है। दीमक के रहन-सहन के लिए जितनी आर्द्रता और उष्णता की आवश्यकता होती है, उतनी ही काष्ठ-नाशक कवकों के विकास के लिए भी उपयुक्त होती है। दीमक की सुरगे भी कवको के सूत्रजाल और बीजाणुधर के उत्पन्न होने की अनुकूल दशाओ की सहायक होती है। अत. काष्ठविनाश बहुधा दीमक और कवको के सम्मिलित आक्रमण द्वारा भी होता है।

भारत मे कुछ काष्ठ दीमक-आक्रमण-रोधी हैं। काष्ठो से प्रयोजन सारकाष्ठ से ही है, क्योकि जैसा पहले कहा जा चुका है, सभी काष्ठो का रसकाष्ठ अस्थायी होता है और कवक तथा कीटो के आक्रमण को रोक नही सकता। टीक (सागौन) मे यह रोधन शक्ति 'टैक्टाक्यूनोन' रसायन की उपस्थिति के कारण बतायी गयी है। साल, शीशम आदि अन्य काष्ठों को कुछ रासायनिक पदार्थो द्वारा यह रोधन-शक्ति प्राप्त होती है। पर अधिकांश काष्ठ, दीमक के आक्रमण को रोक नही सकते, अतः दीमक के आक्रमण से इनकी रक्षा करने का साधन परिरक्षोपचार ही है।

(ग) समुद्री छिद्रक कीट

समुद्रकीट, समुद्र के लवणयुक्त अथवा नमकीन जल मे पाये जाते है। समुद्रतट के घाटों पर अथवा अन्य सामुद्रिक स्थानो पर निर्माण-कार्य मे प्रयुक्त किये गये काष्ठ-भागों और खम्भों को समुद्री छिद्रक कीट अत्यन्त हानि पहुँचाते है।

इस विषय पर प्रामाणिक वर्णन (५ ज) सन् १९३० मे, जब कि डच लोगों के

समुद्री बाँधों पर नौ-कीटो का आक्रमण व्यापक रूप से हुआ था, उपलब्ध है। १९३३ मे एक डच कार्यकर्त्ता सैलियस् ने इस विषय पर प्रथम निबन्ध लिखा था। समार के सभी प्रमुख बन्दरगाहों पर इनके इस प्रकार के आक्रमणो का उल्लेख है। इस बारे मे कई लेख प्रकाशित होने पर भी इन कीटो के विषय मे पूर्ण जानकारी अब भी प्राप्य नही है।

ये कीट लगभग सभी काष्ठो पर आक्रमण करते हैं। पर कुछ बिरले काष्ठ एसे भी हैं जिन पर इनका प्रभाव कम होता है। इनमे एक तो प्रख्यात **ग्रीनहार्ट** (**'नेकटेन्ड्रा रोडिआइ'**)[1] है, जो डच और ब्रिटिश गायना मे पाया जाता है, और दूसरा दक्षिण-पूर्व एशिया का **एर्टोकार्पस गोमीजियानो**[2] जाति का काष्ठ है। ग्रीन-हार्ट की सामुद्रिक कीटो के रोधन की शक्ति का कारण उसमे एक प्रकार के क्षाराभ ('एल्केलौइड'[3]) 'बैब्रीन' की उपस्थिति है। दूसरा कारण काष्ठ का उसके आन्तर 'सिलिका' होना है। ये समुद्री छिद्रक कीट समार के प्रायः सभी सागरो मे पाये जाते हैं, पर उष्ण प्रदेशों मे शीत स्थानों की अपेक्षा अधिक प्रबल और सक्रिय होते हैं। उष्ण समुद्रों मे इनकी सख्या भी अधिक होती है।

इनके द्वारा हुई हानि की कोई विशेष गणना प्राप्त नही है, पर अमेरिका के सैन फ्रासिस्को की खाडी मे सन् १९१७ से १९२१ तक, २५ करोड डालर की हानि का अनुमान लगाया गया था। ब्रिटिश कोलम्बिया के कैनरी बन्दरगाह मे सन् १९३२ मे १ करोड डालर की हानि समुद्रतट-घाट के काष्ठ-खम्भो को हुई थी। अनुमान है कि भारतवर्ष मे भी इनके द्वारा निर्माण-काष्ठ को लाखो रुपयो की वार्षिक क्षति पहुँचती होगी, क्योकि यहाँ का पूर्वी और पश्चिमी समुद्रतट लगभग २,००० मील से भी अधिक है।

सामुद्रिक छिद्रक कीटो का निम्नलिखित वर्गो मे विभाजन किया गया है—

(१) **'मौलुस्कन' छिद्रक**—

(अ) **'टैरोडिनैडी'** वंश, जिसमे 'टेरेडो' और 'बॉकिया' जाति के छिद्रक सम्मिलित है।

(आ) **'फोलाडिडी'** वश, जिसमे 'मार्टिजिया' छिद्रक है।

1 Nectandra Rodii. 2 Aertocarpus gomigiano.
3 Alkaloid Babrine.

(२) **'क्रस्टेशियन्' छिद्रक**—

(अ) **'आइसोपोडा'**, जिसमे 'लिम्नोरिया' और 'स्फेरोमा' छिद्रक हैं;

(आ) **'एम्फीपोडा'** जिसमे 'चैलूरा' छिद्रक है।

इनका वर्णन सूक्ष्म प्रकार से निम्नलिखित प्रकरणों में दिया गया है—

(१) मौलुस्कन छिद्रक

'मौलुस्कन' छिद्रक कीटो के 'टैरीडिनैडी' वंश की दो मुख्य प्रजातियों, 'टैरेडो' और 'बॉकिया' को नौ-कृमि ('शिपवर्म') कहते हैं। इनका प्रजनन अंडों से होता है जो डिम्भ मे परिवर्तित होकर स्वतन्त्रता से पानी मे तैरते है। यदि कोई काष्ठ पानी मे डूबा हो तो उसमे उपयुक्त स्थान ढूँढकर ये वहाँ बस जाते है। यही इनके आक्रमण का आरम्भ है। उस काष्ठ मे अनुकूल दशा प्राप्त होने पर इनका विकास होता रहता है और ये अपने सारे जीवन भर उसी मे वास करते रहते है। इन डिम्भों के द्वि-पुट प्रकवच ('बाइ-वाल्व सॅल्स्')[1] होते है, जिनसे ये अपना बचाव करते है। ये डिम्भ काष्ठ में चिपटकर उसे कुरेदना आरम्भ कर देते है और काष्ठ के स्तर में अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र बनाकर अन्दर ही अन्दर अपना विकास करते है। इनका कृमि-आकार अन्दर को बढ़ता जाता है, अतः इनको नौकृमि कहते है। पहले यह ज्ञात हुआ था कि ये कीट अपनी सुरक्षा के ही हेतु काष्ठ मे प्रवेश करते है, परन्तु बाद मे पता लगा कि ये काष्ठ के चूर्ण को पचा भी सकते है और साथ ही साथ समुद्र में तैरते हुए मन्दप्लवक ('प्लैक्टन') का भी भक्षण करते रहते है। अपने विकास के साथ ये नौकृमि काष्ठ के अन्तः सुरग को भी बढ़ाते रहते है और सुरंग की दीवारो को कठोर चूर्णीय पदार्थ से अन्तः स्तरित कर देते है। काष्ठ का चूर्ण इन कृमियों के द्विपुट-प्रकवचो द्वारा उत्पन्न होता है, जिनके किनारों पर सूक्ष्म दन्तों की पक्ति रेती की तरह होती है और काष्ठ के अन्दर की ओर आगे को बढ़ती रहती है। इनका पृष्ठभाग समुद्र की ओर रहता है और उसकी दो नलिकाएँ, जो निनाल ('साइफन') का कार्य करती हैं, छोटे प्रवेशछिद्र पर ही स्थित रहती है। इनमे से एक नलिका द्वारा खाद्य पदार्थ व श्वास-प्रक्रिया के लिए जल ये अपने शरीर में लेते है, और दूसरी नलिका अपचित काष्ठचूर्ण और निरर्थक पदार्थ बाहर फेंक देती है। शत्रुओं का आक्रमण होने पर ये नलिकाएँ अन्दर की ओर खींच ली जाती है और प्रवेशछिद्र शरीर के एक पृष्ठवर्ती

1 Bivalve cells.

कठोर अंग से बन्द कर दिया जाता है। इस प्रकार ये कीट काष्ठ में प्रविष्ट अंग की रक्षा करते रहते हैं। इनका विकास समुद्री जल की लवण-मात्रा पर भी निर्भर रहता है। यह कहा गया है कि जल में लवण की मात्रा ४° प्रति हजार से कम होना इनके लिए घातक होता है। यदि समुद्रजल मे लवण पदार्थ की कमी हो जाय तो ये अपने पृष्ठ भाग से स्वच्छ जल को अन्दर घुसने नही देते। यदि इनके विकास के लिए अनुकूल दशा प्राप्त हो, तो ये कृमि परिमाण में १ फुट से लेकर ४ फुट तक लम्बे और १ इच व्यास की गोलाई तक बढ़ जाते है। आरम्भ मे ये कीट काष्ठ के रेशे की लम्ब दिशा में और तदनन्तर रेशे के समानान्तर छिद्र बनाते हैं, जिससे काष्ठ मधुजाल की तरह अन्दर ही अन्दर नष्ट हो जाता है और अन्त मे थोडा ही दबाव पड़ने पर चूर-चूर हो जाता है। ये कीट अपना आक्रमण समुद्रतल पर ही अधिक करते हैं।

मौलुस्कन छिद्रक के **'फोलाडिडी'** वश की प्रजाति, 'मार्टीज़िया' के कीट पुटिका के आकार के होते हैं और प्रौढ़ अवस्था मे भी सम्पूर्ण द्वि-पुट कवच से ढँके रहते है। ये लम्बाई मे २.५ इंच और गोलाई मे १ इंच व्यास से अधिक नही होते, पर इनके द्वारा भी काष्ठ को अत्यन्त हानि पहुँचती है।

(२) क्रस्टेशियन् छिद्रक

क्रस्टेशियन् छिद्रक, मौलुस्कन् छिद्रक से आकार और शारीरिक बनावट में भिन्न होते हैं। काष्ठ पर आक्रमण की इनकी रीति भी भिन्न होती है। ये कीट नोकृमि की तरह काष्ठ के अन्दर अपने को पूर्णतः बन्द नही रखते, पर स्वतन्त्रता से बाहर-भीतर फिरते रहते हैं। इनके शिशु और प्रौढ काष्ठ को खोदकर बहुत अन्दर तक नही जाते। ये इतनी सख्या मे आक्रमण करते है कि काष्ठ का बाह्य स्तर मधु-जाल की तरह बन जाता है और पानी की लहरो से टूटकर गिर जाता है। उसी स्थान पर बार-बार आक्रमण होते रहने से काष्ठ वहाँ पतला होकर भार न संभाल सकने के कारण गिर जाता है। इन कीटों का आक्रमण समुद्रतल की अपेक्षा ज्वार-भाटे के मध्यवर्ती स्थान पर अधिक रहता है और वहाँ पर स्थित काष्ठ-खम्भ घटा-काँच ('अवर-ग्लास') के आकार का बन जाता है, अर्थात् आक्रमण के स्थान पर सकीर्ण और ऊपर-नीचे चौड़ा रहता है। नौकृमि की अपेक्षा इन कीटों के आक्रमण से काष्ठ शनैः-शनैः नष्ट हो जाता है। उदाहरणार्थ, यदि एक १४ इंच व्यासवाले खम्भे को क्रस्टेशियन् छिद्रक द्वारा नष्ट होने मे एक वर्ष लगेगा, तो उसी को मौलुस्कन छिद्रक द्वारा नष्ट होने में कुछ महीने ही लगेगे। इन कीटो को पानी मे अधिक लवण

की आवश्यकता होती है। पानी की मात्रा मे लवण का ६.५०अश प्रति हज़ार से कम होना कीटो के लिए घातक होता है। भारत के समुद्री तटों के क्रस्टेशियन् छिद्रको की तीन निम्नलिखित प्रजातियाँ है।

लिम्नोरिया प्रजाति के छिद्रक भिन्न प्रकार के जलवायु मे पाये जाने के कारण हर ऋतु मे क्रियाशील रहते है। अतएव ये लकड़ी को बहुत नष्ट करते है। इनका शरीर खण्डोंवाला होता है और इनकी टाँगो के सात जोड़े होते है। इनके तीव्र अकुश नखर होते है, जिनसे ये काष्ठ मे दृढ़ता से चिपट सकते है। इनके पतले गलफड़ ('गिल्स्') होते है जो श्वासक्रिया और तैरने मे सहायता देते है। इनके मुँह मे दन्त-जम्भ ('मैनडिबल्स्') का एक जोड़ा होता है, जिससे ये काष्ठ को चबाकर खा सके। इनके शरीर के पृष्ठ भाग मे एक चौड़ी पुच्छ-पात्रिका रहती है जो छिद्र को ढँककर बाहरी आक्रामक को रोकती है। इनके अण्डे मादा की अण्डधानी मे पैदा होकर शिशु अवस्था मे ही काष्ठ खोदने का कार्य करने लगते है। लिम्नोरिया छिद्रक प्रौढ अवस्था मे $\frac{1}{16}$ से $\frac{1}{8}$ इच तक लम्बे होते है और इनकी बिरली ही सुरगे $\frac{1}{4}$ इच से गहरी होती है। इसका कारण यह है कि इनमे श्वास के लिए पानी दूर तक खीचने की शक्ति नही होती।

स्फैरोमा प्रजाति के छिद्रको की बनावट साधारणत. लिम्नोरिया की तरह होती है, पर ये अधिक बड़े और बलिष्ठ होते है। इनकी लम्बाई $\frac{1}{2}$ इच और चौड़ाई $\frac{1}{8}$ इच तक होती है। इनकी सुरगे भी $\frac{1}{2}$ इच व्यास तक चौड़ी होती है और ३ अथवा ४ इच की गहराई की होती है। यह माना गया है कि ये छिद्रक मुख्यतः सुरक्षा के ही हेतु काष्ठ को खोदते है। ये कभी-कभी स्वच्छ जल मे भी कार्य करते पाये गये है।

चैलूरा प्रजाति के छिद्रक उष्ण व गुनगुने जल मे पाये जाते है। ये लिम्नोरिया से कुछ ही बड़े होते है और उन्ही के साथ-साथ रहते है। इनके द्वारा भी काष्ठ को पर्याप्त मात्रा मे क्षति पहुँचती है।

चित्र २६ मे मौलुस्कन और क्रस्टेशियन् छिद्रक दर्शाये गये है और चित्र २७, २८ मे कुछ ऐसे काष्ठ दिखाये गये है, जिन पर इन छिद्रकों ने आक्रमण किया है।

भारत मे लगभग एक दर्जन छोटे-बड़े बन्दरगाह है। उसके समुद्री व्यापार की वृद्धि होती जा रही है और आशा है कि यह कई गुना और भी बढ जायगा। पंचवर्षीय योजनाओं मे इसे विशेष महत्त्व दिया गया है। काष्ठ, बन्दरगाहो के निर्माण के लिए, हर प्रकार की छोटी-बड़ी नौकाओं के लिए एव मछलीमार कैटेमैरोन बेड़े के लिए अति ही उपयोगी वस्तु है। अतएव इन कीटो के आक्रमण से काष्ठ की रक्षा करना अत्यन्त

ही महत्त्वपूर्ण कार्य है। इस विषय पर जितनी जानकारी अब तक प्राप्त हुई है, वह यह है कि कोई भी भारतीय काष्ठ इन सामुद्रिक छिद्रक कीटों से सुरक्षित नहीं रह सकता। सभी बन्दरगाहों में ये कीट विद्यमान हैं और काष्ठ का बेहद नाश करते हैं (चित्र २९), विशेष कर कोचीन बन्दरगाह में।

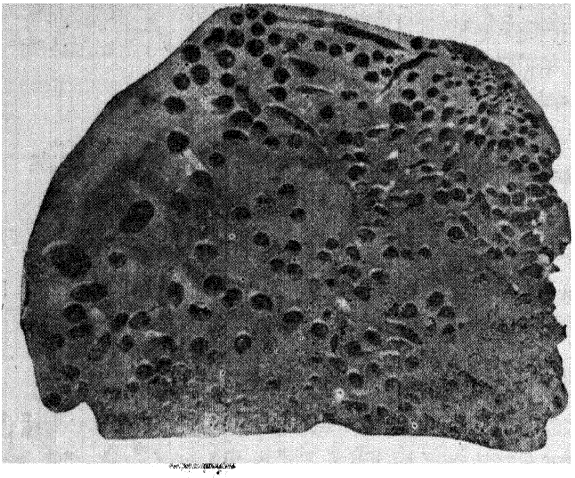
साधारणतः कोचीन बन्दरगाह के अतिरिक्त अन्य सभी बन्दरगाहों में क्रियोज़ोट तथा एस्क्यू द्वारा उपचारित काष्ठों के प्रयोग से इन कीटों के आक्रमण का प्रतिरोध करने में सफलता मिली है।



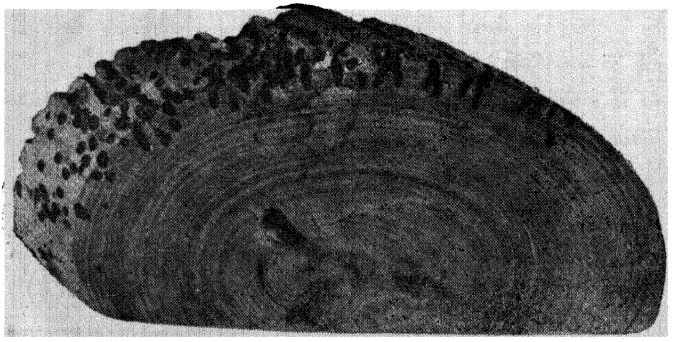
चित्र २९—मौलस्कन तथा क्रस्टेशियन छिद्रक (दो तरह के कीड़े)

पूर्वोक्त समस्या के महत्त्व के कारण वन-अनुसन्धानशाला की काष्ठ-परिरक्षण शाखा के अन्तर्गत एक विकास योजना तैयार की गयी है, जिसका नाम **"सामुद्रिक कीटों से काष्ठ परिरक्षण शाखा"** है। इसमें समुद्रतटीय विश्वविद्यालयों की प्रयोगशालाओं और केन्द्रीय सरकार के सहयोग से कार्य किया जा रहा है। प्रारम्भिक अनुसन्धान के परिणामों से यह पता चला है कि बम्बई बन्दरगाह में **टोरैडो, मार्टीजिया** और **स्फैरोमा;** मद्रास में **टोरैडो, बाँकिया, मार्टीजिया, स्फैरोमा** और चैलूरा जाति के तथा विशाखापत्तनम् में **मार्टीजिया, स्फैरोमा** और **लिम्नोरिया** जाति के समुद्री छिद्रक कीट विद्यमान हैं। इनके अतिरिक्त **'बारनेकल्स्'** भी एक प्रकार के सामुद्रिक जीवाणु हैं जो काष्ठ के बाह्य स्तर पर चिपक जाते हैं। ये नावों और जहाजों के किनारों व तल में चिपटकर उनके वेग को प्रति ६०० से १००० मील की यात्रा करने में ३ 'नॉट्स्' के लगभग कम कर देते हैं। (एक नॉट ६०८० फुट के तुल्य होता है)

अतः इन समुद्री कीटों और जीवाणुओं के आक्रमणों से काष्ठ की रक्षा करना राष्ट्र के लिए एक विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य है। भारतवर्ष के नाविक व्यापार की उन्नति,

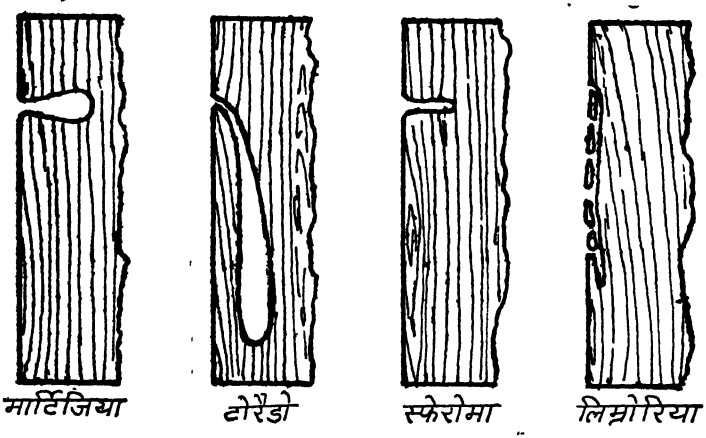


चित्र २७—उक्त कीड़ों द्वारा काष्ठ की क्षति।



चित्र २८—उक्त कीड़ों द्वारा काष्ठ की क्षति।

इन समुद्री कीटों और जीवाणुओं-विषयक ज्ञान और इनके आक्रमण से काष्ठ का बचाव करने की उपयुक्त विधियों के विकास पर निर्भर है।



चित्र २९—सामुद्रिक छिद्रकों द्वारा काष्ठ पर हुए आक्रमण के लक्षण।

(३) अग्नि

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, कवक और कीटों द्वारा नष्ट होने के अतिरिक्त लकड़ी को अग्नि द्वारा भी गंभीर हानि पहुँच सकती है। इसका यह कारण है कि इसमें अधिकांश कोषाधु होता है जो कि प्रज्वलनशील वस्तु है। लकड़ी के अग्नि-सम्बन्धी प्राकृतिक अवरोध के परीक्षणों से पता चला है कि यद्यपि प्रारम्भ में सब लकड़ियाँ अग्नि पकड़ती हैं, जब कि वे उच्च ताप में प्रविष्ट हों, पर अग्नि से नष्ट होने की मात्रा लकड़ी की जाति, बनावट, घनत्व, छिद्रमयता, आर्द्रता और अन्तर्-रासायनिक वस्तु पर निर्भर रहती है। भिन्न-भिन्न काष्ठों की प्राकृतिक अग्नि-रोधन शक्ति का विवरण अगले भाग ३, अध्याय ५ मे दिया गया है (सारणी १५ देखिए)।

यह निःसन्देह सत्य है कि जलने से पहले लकड़ी शुष्क होनी चाहिए। स्वस्थ लकड़ी की अपेक्षा सड़ी लकड़ी अधिक सरलता से जलती है। लगभग २००° सेंटीग्रेड तापक्रम पर शुष्क लकड़ी को जलने के लिए पर्याप्त समय की आवश्यकता होती है।

२७५° सेंटीग्रेड पर लकडी शनै.-शनै. बाह्य स्तर पर प्रागारित हो जाती है और तदनन्तर प्रज्वलित होने लगती है। ४००° सेंटीग्रेड पर वह शीघ्रता से जलने लगती है। यदि जलती रहे तो उसका तापक्रम १०००° सेंटीग्रेड से अधिक बढ जाता है। इस तापक्रम पर काष्ठ के प्राकृतिक अग्निरोधक गुण का कुछ भी प्रभाव नही पड़ता और सभी जाति के काष्ठो का ज्वलन समान ही होता है। इस अवस्था मे काष्ठ की जाति की अपेक्षा उसकी मोटाई अधिक महत्त्व रखती है। भारी काष्ठ-रचना ('मिल टाइप् कन्स्ट्रक्शन्') भवन-निर्माण के लिए अग्नि-रक्षा के उद्देश्य से अति उपयोगी सिद्ध हुई है। कोई भी काष्ठ, जिसकी मोटाई ६ इंच × ६ इच से अधिक हो, अग्नि के विरुद्ध लोहे से भी अधिक सुरक्षित माना जाता है। लोहा या इस्पात अधिक तापक्रम पर मुड जाता है, पर मोटी लकडी या बल्लियाँ बाह्य स्तर पर प्रागारित होने के कारण अल्प ज्वलनशील हो जाती हैं, क्योकि प्रागार गर्मी का कुसवाहक है। इसी कारण स्थूल काष्ठ अधिक समय तक शक्तिशाली बना रहता है।

निर्माणक्षेत्र में बारबार यही अनुभव प्राप्त हुआ है कि केवल अदाह्य पदार्थ का प्रयोग करने मात्र से ही अग्नि से सुरक्षा नही हो सकती। गृहो मे अग्नि लगने का आरम्भ तेल, कपडा, कागज, घास, फूस इत्यादि शीघ्रदाह्य ईधन-पदार्थो से होता है। तत्पश्चात् यदि बचाव के साधन प्राप्य न हो तो अग्नि सम्पूर्ण गृह को लपेट मे ले लेती है, चाहे घर काष्ठ अथवा अन्य निर्माण-वस्तु—लोहा, सीमेंट इत्यादि किसी भी पदार्थ का बना हो। इसलिए जल्द आग पकडनेवाली वस्तुएँ ही अग्नि का कारण बनती हैं और पूर्वोपाय ही अग्नि से बचने का एक मात्र साधन है।

काष्ठ का अग्नि से नष्ट होना उतने महत्त्व का नही, जितना कवकों और कीटों से। कवक और कीट सर्वत्र विद्यमान हैं और उनके द्वारा शनैः-शनैं क्षति पहुँचती है। अग्नि प्राय· असावधानी से लगती है, यद्यपि इसके द्वारा भी पर्याप्त हानि पहुँचती है। यह हानि गृहों, खानों, पुलों, जहाजों, विमानों और अन्य निर्माण-कार्य मे प्रयोग किये गये काष्ठो की होती है। वर्तमान युग मे रासायनिक उपचार द्वारा काष्ठ को अग्निरोधन शक्ति प्रदान करने में पर्याप्त प्रगति हो गयी है। आगे (भाग ३, अध्याय ५ मे) इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

(४) यान्त्रिक टूट-फूट और ऋतुक्षरण

जिस काष्ठ पर किसी भी प्रकार के यातायात का भार रहता है उसका, यान्त्रिक क्रिया अथवा घिसाई के कारण, ह्रास होता रहता है, जैसे काष्ठ के रेलवे-स्लीपरों,

फर्शपट्टो, गुटकों, मञ्च इत्यादि मे। काष्ठ-स्लीपरो के ऊपर रेल-पटरी को जडने के लिए ठोके गये प्रकीलो के हिलते रहने के कारण, काष्ठ उस स्थान पर फटने लगता है और इसी फटाव के कारण सेवायुक्ति के लिए अयोग्य ठहराकर फेंक दिया जाता है, भले ही उस पर किन्ही काष्ठनाशक जैविक अभिकर्त्ताओ का प्रभाव न हुआ हो। रेल-पटरी भी काष्ठ को काटकर उसके अन्दर धँसने लगती है। इसलिए पटरी के नीचे काष्ठ के ऊपर लोह-भारसह पट्टो ('बेयरिङ्ग प्लेट्स्') का प्रयोग किया जाता है, ताकि इन प्लेटो द्वारा भार का वितरण होने के कारण पटरी एक ही स्थान पर काष्ठ को न काट सके। इसी प्रकार बहुधा धातु की चादर काष्ठ के ऊपर बिछायी जाती है, ताकि काष्ठ घिसने से बच जाय। सम्भव है, सडन के कारण भी काष्ठ दुर्बल हो जाय और शीघ्र घिसने लगे। अत परिरक्षोपचार द्वारा ही काष्ठ उस अवस्था मे सुरक्षित रह सकता है।

यदि काष्ठ परिरक्षित न हो और उसके ऊपर कोई बाह्य लेप न लगा हो तो बाहरी ऋतु के प्रभाव से भी उसका अवह्रास[1] होने लगता है। काष्ठतल के कण या अणु ('ग्रेन्स्') बाहर खुले मे पडे रहने के कारण बीच-बीच मे उठे-से हो जाते हैं, जिससे तल नालीदार दिखलाई देने लगता है और काष्ठ-तल पर खुरदरापन आ जाता है, उसमे छोटी-बड़ी दरारे भी पड जाती है। धीरे-धीरे काष्ठ टेढ़पन और फटाव के कारण नष्ट हो जाता है। इसी को काष्ठ का ऋतुक्षरण कहते है। काष्ठ मे, बाहर आर्द्रता मे, खुले मे, रहने के कारण परिवर्तन होता रहता है और गर्मी, सर्दी, वर्षा, ओला, हिमपात, सूर्य-प्रकाश, धूल, वायु इत्यादि के प्रभाव से ऋतुक्षरण की अनुकूल दशा प्राप्त हो जाती है। इस ऋतुक्षरण से बचाव उचित परिरक्षोपचार और आर्द्रतारोधी बाह्य लेपो द्वारा ही हो सकता है।

1 Deterioration.

अध्याय ३

काष्ठ का प्राकृतिक स्थायित्व

१. स्थायित्व के कारण

काष्ठ के स्थायित्व अथवा टिकाऊपन से अभिप्राय यह है कि उसमें काष्ठ विनाशकारकों के आक्रमण के रोधन की कितनी शक्ति है। काष्ठों में यह आक्रमण-रोधी गुण जाति के अनुसार विभिन्न होता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, काष्ठ से अभिप्राय सारकाष्ठ अथवा अन्तःकाष्ठ ('हार्टवुड') से ही है, न कि रसकाष्ठ अथवा बाह्यकाष्ठ से, क्योंकि सभी काष्ठों का रसकाष्ठ चिरस्थायी होता है। कुछ काष्ठ अति चिरस्थायी होते हैं, कुछ मध्यम श्रेणी के और कुछ अल्पस्थायी। एक ही जाति के काष्ठ में भी, यहाँ तक कि एक ही पेड़ के पृथक् हिस्सों में से निकाले हुए काष्ठ में भी भिन्न-भिन्न स्थायिता पायी गयी है। इस भेद के अनेक कारण हैं जो काष्ठ की आन्तरिक अवस्था और प्रयोग के स्थानों की परिस्थितियों पर निर्भर होते हैं। काष्ठ पर आक्रमण करनेवाले विनाशकर्त्ताओं पर भी काष्ठ का स्थायित्व निर्भर रहता है।

रसकाष्ठ का जब सारकाष्ठ में रूपान्तर होता है तब उसमें रासायनिक परिवर्तन भी हो जाता है। यद्यपि अभी तक पूर्ण प्रकार से इस परिवर्तन का पता नहीं लगा है, फिर भी यह स्पष्ट है कि सारकाष्ठ की कोशाओं में कुछ पदार्थ एकत्रित हो जाते हैं जिनके द्वारा उनमें टिकाऊपन के गुण उत्पन्न हो जाते हैं। इन पदार्थों को निस्सार ('इक्सट्रैकटिव्स्') कहा जाता है जो जीवितक कोशाओं के मरण और रसहीन होने से बनते हैं। अतः देवदार-जैसे काष्ठ में एक प्रकार का गंध तेल ('ऐसेंशल आइल्')[1] बन जाता है जिसके कारण उसमें स्थायिता के गुण आ जाते हैं। और भी बहुत-से टिकाऊ काष्ठों में ऐसे एकत्रित रासायनिक पदार्थ होते हैं जो काष्ठ विनाशकारकों के लिए विष हैं। इन्हीं पदार्थों के कारण काष्ठ स्थायी बन जाते हैं। एक ही काष्ठ के स्थायीपन में जो विभिन्नता रहती है वह इन्हीं विषैले पदार्थों के न्यूनाधिक होने के कारण होती है। इसके अतिरिक्त शल्कि ('टैनिन्स्'),[2] लीसा ('रेजिन्स्')[3] इत्यादि

1 Essential oil. 2 Tannins. 3 Resins.

पदार्थो से भी काष्ठ मे स्थायीपन के गुण आ जाते है। कहा जाता है कि टीक (सागवान) काष्ठ मे 'टैक्टाक्यूनोन्' रसायन के कारण टिकाऊ पन आ जाता है। 'मिलिका' के कण सामुद्रिक-कीटों से काष्ठ को सुरक्षित रखते है। प्रख्यात **'अर्टोकार्पस् गौमी-जियाना'** काष्ठ मे, जिसने अडमान द्वीपसमूह के निकटवर्ती समुद्र मे प्रयोग किये जाने पर सामुद्रिक कीटों के आक्रमण के प्रति अच्छी सेवा-आयु प्राप्त की, 'मिलिका' के कण पाये गये है।

यह अनुमान किया जा मकता है कि काष्ठ का घनत्व उमके स्थायित्व का द्योतक है, पर यह सर्वथा सत्य नही है। घनत्व से यह ज्ञान होता है कि प्रति इकाई आयतन पर कितना काष्ठकोशाभित्ति-सार है। पर केवल काष्ठसार का अधिक होना ही उसके टिकाऊपन का द्योतक नही होता। काष्ठ मे आक्रमण-रोधी गुण तद्गत निस्सार रसायन से ही प्राप्त होते है। देवदार और साइप्रेस-जैसे चिरस्थायी काष्ठ हलके होते है अर्थात् उनका घनत्व (एकाई आयतन भार) कम होता है, पर उनके टिकाऊपन के गुण उनमे वर्तमान उत्पत-तैल (गध तेल) के कारण ही होते है। यह भी पता चला है कि साल की लकडी का स्थायित्व सम्भवतः कुछ ऐसे निस्सार पदार्थो के कारण है जो गरम पानी और एल्कौहल मे घुल जाते है।

यह भी विश्वास किया जाता है कि काष्ठ किसी विशेष ऋतु मे ही काटे जाने पर टिकाऊ होता है। यह माना गया है कि जाडो मे कटे काष्ठ मे रोधन-शक्ति प्राप्त हो जाती है, क्योकि उस ऋतु मे कवको का आक्रमण कम होने के कारण उसको अधिक समय तक बिना सडन अवस्था प्राप्त हुए ही सूखने का अवकाश मिल जाता है। शुष्क अवस्था प्राप्त होने के पश्चात् फिर आक्रमण का उतना भय नही रहता जब तक कि सड़न के अनुकूल अवस्था प्राप्त न हो जाय। लट्ठो की यदि छाल न उतारी जाय, तो भी काष्ठ-विनाश की अनुकूल दशा प्राप्त हो जाती है। वे सड़न और छिद्रक कीटों का शिकार बन जाते है, और कटा हुआ काष्ठ भी कवक-कीट ग्रस्त होने के कारण अल्पस्थायी हो जाता है।

२. काष्ठों के प्राकृतिक स्थायित्व का निश्चय करने के लिए परीक्षण

काष्ठो के प्राकृतिक स्थायित्व का निश्चयन, परीक्षण क्षेत्रो मे किया जाता है। इन क्षेत्रो मे काष्ठ-नाशक अभिकर्त्ताओ का अभिजनन और पालन किया जाता है, जिससे कि उनमे काष्ठ पर यथेष्ठ मात्रा मे आक्रमण करने की शक्ति निरन्तर बनी रहे। सभी मुख्य देशों की अन्वेषण शालाओं मे ऐसे क्षेत्र स्थापित किये गये है।

मध्य और संयुक्त-राज्य अमेरिका मे ऐसे कई परीक्षण क्षेत्र बनाये (६ क) गये है जहाँ काष्ठ की स्वाभाविक आयु का निर्धारण होता है। मध्य अमेरिका और ईक्वेडोर के ४१ जाति के काष्ठो के विषय मे जो परीक्षण इस प्रकार से किये गये थे, उनमे जो प्रादर्श ('स्पेसीमन्स्') प्रयोग मे लाये गये वे ६ इच लम्बे, १ इंच चौड़े और $\frac{२}{८}$ से लेकर $\frac{६}{८}$ इंच तक मोटे थे और उनको इन क्षेत्रो की भूमि मे, जिनको काष्ठ शवागण ('टिम्बर ग्रेवयार्ड') भी कहते है, लम्बाई मे आधे तक गाडे गये थे। कुछ क्षेत्रो मे दीमको को हटाकर केवल कवकों का ही आक्रमण होने दिया जाता था और कुछ मे इन दोनो आक्रमण-कर्त्ताओ का सयोग रहता था। काष्ठ-प्रादर्श एक निर्धारित समय पर निरीक्षण के लिए बाहर निकाले जाते थे और उनकी दशा अभिलिखित की जाती थी। इस प्रकार परीक्षण चलता रहता था जब तक कि काष्ठ पूर्ण प्रकार से नष्ट न हो जाता था। कुछ अवस्थाओ मे काष्ठ की आयु के साथ-साथ उसके कालान्तर आपेक्षिक भार की कमी का भी आलोकन किया जाता था।

ब्रिटिश सयुक्त राज्य ('यूनाइटेड किगडम्') मे काष्ठ का प्राकृतिक अवधि-परीक्षण वन-पदार्थ-अनुसंधान प्रयोगशाला के अन्तर्गत तीन पृथक् स्थानो मे किया गया। इनमे एक तो प्रिनसेजरिसबरो मे, दूसरा नौर्फोक मे थ्यतफोर्ड के निकट और तीसरा उत्तर वेल्स मे डौलगैली के निकट था। इन परीक्षणो मे प्रत्येक जाति के काष्ठ के दस-दस, २४ इच लम्बे और २ इच × २ इच परिमाण के, खण्ड प्रयोग किये गये। प्रत्येक काष्ठ की प्राप्ति के बारे मे कि वह किस स्थान से और वृक्ष के किस भाग से लिया गया, पूर्ण सूचना अभिलिखित की गयी थी। इन परीक्षणो के परिणामो से यह पता लगा कि काष्ठ की स्वाभाविक आयु प्राप्ति-स्थानो की जलवायु और मिट्टी पर निर्भर थी। थ्यतफोर्ड मे प्रिन्सेस्रिसबरो की अपेक्षा अधिक सडन की परिस्थिति थी। इसी प्रकार आस्ट्रेलिया और दक्षिणी आफ्रिका मे भी परीक्षण किये गये।

स्वीडन (६ ख) मे इसी प्रकार के परीक्षणो मे प्रथम बार काष्ठ प्रादर्शो की मात्रात्मक क्षति का अध्ययन किया गया। इनमे काष्ठ के १ मीटर लम्बे और २ ५ × २.५ सेन्टीमीटर के टुकड़ो के परीक्षण के पश्चात् एक बाह्य बल-तुलन यन्त्र मे उनकी दृढ़ता का निश्चयन किया गया। इससे काष्ठो की स्वाभाविक आयु की यथार्थ रूप से परस्पर तुलना की गयी। वहाँ पर एक प्रकार के 'ग्रीन हाउस' भी बनाये गये, जिनमे ऐसे परीक्षणो के परिणाम, क्षेत्रो की अपेक्षा, थोड़े ही समय मे प्राप्त हो जाते थे।

भारतवर्ष की वन-अनुसन्धानशाला, देहरादून मे भी काष्ठो के प्राकृतिक स्थायित्व के बारे मे ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से सन् १९२६ मे परीक्षण आरम्भ हुए। इनमें

प्रत्येक जाति के सारकाष्ठ में से २ फुट लम्बे और २ इंच × २ इंच के ६ टुकड़े (चौकोर खूँटी के आकार में) काटकर परीक्षण क्षेत्र में, जिसे काष्ठ शवांगण ('टिम्बर ग्रेभयार्ड') भी कहते है, गाडे गये हैं। प्रत्येक काष्ठ-खंड (खूँटी) आधा भूमि के अन्दर और आधा भूमि के बाहर खुले मे रहता है। इस प्रकार लगाने से काष्ठ-प्रादर्शो पर सूर्य, वायु, वर्षा का पूर्णतः प्रभाव पड़ता है, जैसा कि प्राकृतिक दशा में प्राप्त होता है। भूमि के अन्दर रहने से काष्ठ में आर्द्रता पर्याप्त मात्रा मे रहने के कारण कवक और दीमकों के आक्रमण की अनुकूल स्थिति बनी रहती है। देहरादून मे लगभग ८० से १०० इच तक वर्षा होती है और जलवायु भी साधारणतः समशीतोष्ण है। भूमितल पर कवकों का प्रभाव भी अधिक रहता है। काष्ठ की खूँटियाँ क्षैतिज और उदग्र रेखाओं मे लगभग दो-दो फुट की दूरी पर गाडी गयी है। हरण्क काष्ठ का प्राप्ति-स्थान भी ज्ञात रहता है। वर्षा ऋतु के बाद नवम्बर या दिसम्बर के महीनों में प्रत्येक खूँटी का भली प्रकार निरीक्षण किया जाता है और उस समय तक की दशा का आलोकन रजिस्टरों में किया जाता है कि वह स्वस्थ है अथवा उस पर कितनी मात्रा मे दीमक व कवक ने आक्रमण किया है। जो खूँटी मद हनन करने पर टूट जाय तो उसे नष्ट हुआ मान लेते है, क्योंकि कवकों या दीमकों द्वारा पूर्ण हानि पहुँचने पर इस प्रकार की चोट काष्ठ सहन नही कर सकता। हानि की मात्रा के अभिलेखन पश्चात् यदि काष्ठ पूर्ण नष्ट न हो तो उसे फिर परीक्षण के लिए लगाया जाता है।

३. प्राकृतिक स्थायिता के अनुसार भारत के काष्ठों का वर्गीकरण

पूर्वोक्त प्रकार से लगभग २०० काष्ठ जातियों का भारत की वन-अनुसन्धान-शाला मे परीक्षण हुआ है। उससे जो परिणाम निकले तदनुसार उन्हे ६ आयु वर्गो मे विभक्त किया गया है। वर्ग १ मे वे काष्ठ है जिनकी औसत आयु १५ वर्ष या उससे अधिक होती है। वर्ग २ मे १० वर्ष से १५ वर्ष तक आयु के, वर्ग ३ मे ७ से १० वर्ष तक आयु के, वर्ग ४ मे ५ से ७ वर्ष तक की आयु के, वर्ग ५ मे २ से ५ वर्ष तक और वर्ग ६ मे ० से २ वर्ष तक की आयुवाले काष्ठ रखे गये है। सारिणी ८ (क) से लेकर ८ (च) तक मे इन ६ वर्गो के काष्ठो के वैज्ञानिक अथवा पारिभाषिक नामो (६ ग) का विवरण है। इन काष्ठो के व्यापारीय नाम दिये गये है। प्रत्येक काष्ठ के आगे उसका प्राप्ति स्थान और उसकी माध्य ('एवरेज'), अधिकतम ('मैक्सिमम्') और न्यूनतम ('मिनीमम्') आय भी दी गयी है।

निर्देश-सूची

४ (ग) जी० एम० हण्ट व जी० ए० गैरेट : काष्ठ परिरक्षण ('वुड-प्रिज़र्वेशन') (यू० एस० ए०) १९५३; पृष्ठ २१९।

५ (ङ) एच० ब्रोजे वॉन ग्रोनौ, रिचन् और वॉन डैन वर्ग : पिछले ५० वर्षों में काष्ठ परिरक्षण ('वुड प्रिज़र्वेशन डयूरिंग दि लास्ट फिफ्टी इयर्स), (हौलैंड), १९५२; पृष्ठ १४

५ (च) ,, ,, ,, तत्रैव ,, पृष्ठ १५

५ (छ) ,, ,, ,, तत्रैव ,, पृष्ठ १९

६ (क) ए० पुरुषोत्तम और एम० जे० मैस्कैरनहस् : काष्ठों का वेग गति स्थायित्व परीक्षणों का प्रमापीकरण ('स्टेन्डर्डाइज़ेशन औफ एक्सीलरेटैड डयूरेबिलिटी टैस्ट्स औन टिम्बर स्पीसीज़'); ('कौमैनवैल्थ फौरेस्ट्री कानफरेन्स्, कैनेडा, के लिए प्रकाशित), १९५२, पृष्ठ २।

६ (ख) ,, ,, ,, तत्रैव ,, पृष्ठ ३।

६ (ग) ,, ,, ,, तत्रैव ,, पृष्ठ ९ से २९।

[सारणी संख्या ८ के लिए पृ० १०७ से १२१ तक देखिए]

सारणी ८ (क) से ८ (च) (काष्ठों का प्राकृतिक स्थायित्व)

सारणी–८ (क), वर्ग-१

माध्य आयु १८० मास (१५ वर्ष) या उससे अधिक

क्रमांक	काष्ठ-जाति	व्यापारीय नाम	प्राप्ति-स्थान	आयु महीनो मे			विशेष-कथन
				माध्य	अधिकतम	न्यूनतम	
१	२	३	४	५	६	७	८
१	एकेशिया कैटेच्यू*	कच	उत्तर प्रदेश	२३९	२३९	२३९	
२	अरटोकार्पस लैकूचा*	लकूच	बिहार और उड़ीसा	२१५	२३९	२०३	३ प्रादर्शो का माध्य
३	बसिया ब्यूटिरेशिया*	—	अन्डमान्स्	१७६	२०४	३९	
४	बर्या एमोनिला*	ट्रिकोमाली काष्ठ	बर्मा	२६०	२६०	२६०	
५	करापा मौल्यूसेन्सिस्*	पुसुर	बर्मा	२४१	२४१	२४१	४ प्रादर्शो का माध्य
६	सिनैमोमम् इनंकटम्*	—	बर्मा	२३३	२३३	२३३	
७	कुप्रूसस् टौरूलोसा*	साइप्रस	उत्तर प्रदेश	२२९	२२९	२२९	
८	डलबर्जिया लैटीफोलिया*	रोज वुड	मध्य प्रदेश	२८६	२८८	२७६	
९	डलबर्जिया ओलीभरी*	टमालन	बर्मा	२७४	२७४	२७४	
१०	डलबर्जिया सिसू*	सिसू अथवा शीशम	उत्तर प्रदेश	२८८	२८८	२८८	
११	डाइसोक्सिलम मैलेबैरिकम्*	ह्वाइट सिडार	—	२६७	२६७	२६७	
१२	ग्लूटा टैभोयाना*	ग्लूटा	बर्मा	२६८	२७४	२३८	
१३	मिलीना अर्बोरिया*	गमारी	उत्तर प्रदेश	१९४	२४२	१३४	
१४	हार्डविकिया बिनाटा*	अन्जन	मद्रास	२१३	२८३	७१	

क्रमांक	काष्ठ-जाति	व्यापारीय नाम	प्राप्ति-स्थान	आयु महीनों में			विशेष कथन
				माध्य	अधिकतम	न्यूनतम	
१	२	३	४	५	६	७	८
१५	हैटीरोफ़ैग्मा एडीनोफिलम्*	—	बर्मा	१९३	२७५	८८	
१६	होपिया कोर्डीफोलिया*	होपिया	मद्रास	२३८	२३८	२३८	
१७	होपिया पार्वीफ्लोरा*	होपिया	मद्रास	२७०	२७४	२५०	
१८	लैगस्ट्रोइमिया लैन्सियोलाटा*	बैनटीक	मद्रास	१८५	२४०	५३	
१९	मैलैन्होरिया यूसीटाटा*	थिट्सी	—	२७४	२७४	२७४	
२०	मैसुवा फैरिया*	मैसुवा	आसाम	२७७	२८७	२४५	
२१	पैन्टैस्मी स्वैभिस्*	इंगयिन	बर्मा	२७१	२७१	२७१	
२२	टैरोकार्पस डलबर्जियौइड्स*	अन्डमान पैडौक	—	२८७	२८७	२८७	
२३	टैरोकार्पस मार्स्यूपियम्*	बीजासाल	बम्बई	२६५	२७६	२३४	
२४	शोरिया रोबस्टा*	साल	बर्मा	२७१	२७१	२७१	
२५	शोरिया रोबस्टा*	साल	बगाल	१४३	१४३	१४३	
२६	शोरिया रोबस्टा*	साल	रामनगर (यू०पी०)	१३८	१३८	१३८	५ प्रादर्शों का माध्य
२७	शोरिया रोबस्टा*	साल	गोरखपुर (यू०पी०)	१२९	१२९	१२९	
२८	शोरिया रोबस्टा*	साल	हल्द्वानी (यू०पी०)	१४५	१४५	१४५	
२९	शोरिया रोबस्टा*	साल	यू० पी०	२७९	२७९	२७९	
३०	सौयमीडा फैब्रीफ्यूगा*	—	मध्य प्रदेश	२७४	२७४	२७४	
३१	भाइटैक्स एल्टीसिमा*	मिल्ला	कनारा	२३३	२३३	२३३	
३२	ज़ाइलिया ज़ाइलोकार्पा*	इरूल	—	२०४	२४६	१६०	

* इनके प्रादर्श पूर्ण प्रकार से नष्ट नही हुए और परीक्षण जारी है। अतः यह माध्य आयु अद्य पर्यन्त गणना की है।

सारणी–८ (ख), वर्ग-२

माध्य आयु १२० मास (१० वर्ष) से लेकर १७९ मास तक

क्रमांक	काष्ठ-जाति	व्यापारीय नाम	प्राप्ति-स्थान	आयु महीनो मे			विशेष कथन
				माध्य	अधिकतम	न्यूनतम	
१	२	३	४	५	६	७	८
१	एलबीजिया लैबैक्	कोक्को	—	१३९	२५७	५०	
२	एलबीजिया ओडोराटिसिमा*	काला सिरिस्	—	१६३	२४६	८१	
३	एमूरा रोहीटचका	एमूरा	आसाम	१३५	१४४	८३	
४	एर्टोकार्पस इन्टीग्रीफोलिया	जैक	मालाबार	१२८	१६३	५४	४ प्रादर्शों का माध्य
५	बैसिया लैटिफोलिया*	महुवा	बिहार और उड़ीसा	१६७	२८१	३२	
६	कैरिया अर्बोरिया*	—	उत्तर प्रदेश	१५६	२४२	५५	५ प्रादर्शो का माध्य
७	सीड्रस् देवदारा*	देवदार	पंजाब	१७३	२८७	११५	
८	इरियोलीना कैन्डौली	सोलोमन वुड	उत्तर प्रदेश	१२६	२३८	८७	
९	यूकेलिप्टस् प्रजाति*	यूकेलिप्टम्	मद्रास	१५४	१९२	२६	
१०	ग्लूटा ट्रेभन्कोरिका*	—	मद्रास	१२५	२७४	२४	
११	होपिया ग्लेब्रा*	—	मद्रास	१४३	२४४	३९	
१२	लैगरस्ट्रोमिया लैन्सियोलाटा	बैनटीक	—	१६२	२३४	४१	
१३	लैगरस्ट्रोमिया हाइपोल्यूका	जारूल	अन्डमान्स्	१४४	२३८	९४	
१४	मैशीलस् मैक्रान्था*	मैशिलस्	मद्रास	१५८	२४२	८६	

क्रमांक	काष्ठ-जाति	व्यापारीय नाम	प्राप्ति-स्थान	आयु महीनों में			विशेष-स्थान
				माध्य	अधिकतम	न्यूनतम	
१	२	३	४	५	६	७	८
१५	**मैशुवा फैरिया**	मैशुवा	मद्रास	१४६	२२७	४५	
१६	**माइकीलिया मौन्टाना**	चम्प	आसाम	१२१	१६७	५७	
१७	**मीम्यूसौप्स् इलेंगी***	बुलैट वुड	मद्रास	११९	२२०	१५	
१८	**ओजीनिया डल्वाजियोइडिज्**	साँदन	मध्य प्रदेश	१२२	१२२	१२२	
१९	**पैन्टैश बुर्मैनिका**	थिट्का	बर्मा	१७१	२६२	१०८	
२०	**पैन्टैश ग्रिफिथी***	—	बर्मा	१५६	१५६	१५६	
२१	**टैक्टोना ग्रेन्डिस्***	टीक	मध्य प्रदेश	१७४	२७९	४९	

सारणी–८ (ग), वर्ग–३

माध्य आयु ८४ मास (७ वर्ष) से लेकर ११९ मास तक

क्रमाक	काष्ठ-जाति	व्यापारीय नाम	प्राप्ति-स्थान	आयु महीनो मे			विशेष कथन
				माध्य	अधिकतम	न्यनतम	
१	२	३	४	५	६	७	८
१	एलबीजिया प्रोसीरा	सफेद सिरिस्	बिहार और उड़ीमा	९७	१०३	७१	
२	बुर्सेरा सिराटा	इन्डियन रैडपियर	बिहार और उडीमा	९७	१८५	२२	
३	कैसिया फिस्चुला*	राजवृख	आसाम	११९	१७३	७६	
४	कैस्टैनौप्सिस् ट्रीब्यूलौइडस्	—	बर्मा	८७	८७	८७	
५	डाइकौप्सिस् इलिप्टिका	पाली	मद्रास	८४	२५७	५०	
६	यूजीनिया जम्बोलाना	जामन	बिहार और उडीमा	९०	२११	२३	
७	लैगरस्ट्रोमिया फ्लौस्-रैजीनी	जारूल	—	८८	१८३	५९	५ प्रादर्शो का माध्य
८	लैगरस्ट्रोमिया माइक्रोकार्पा	—	—	१११	१२७	६२	
९	स्टीरियोस्परमम् जाइलो-कार्पम्	—	मद्राम	१००	१११	८८	
१०	टर्मिनेलिया अर्जुना	अर्जुन	मध्य प्रदेश	११९	१२२	१०८	
११	टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा*	लौरल	बर्मा	१०२	१४०	५५	
१२	जाइलिया डोलाब्रीफौर्मिस्	पिनकाडो	बर्मा	९७	१९०	३८	

* इनके प्रादर्श पूर्ण प्रकार से नप्ट नही हुए और परीक्षण जारी है। अतः माध्य आयु अद्य पर्यन्त गणना है।

सारणी–८ (घ), वर्ग–४

माध्य-आयु ६० मास (५ वर्ष) से ८३ मास तक

क्रमांक	काष्ठ-जाति	व्यापारीय नाम	प्राप्ति स्थान	आयु महीने मे			विशेष कथन
				माध्य	अधिकतम	न्यूनतम	
१	२	३	४	५	६	७	८
१	एलबीजिया प्रोसीरा	सफेद सिरिस	आसाम	७५	१२७	३२	
२	एलटिंजिया इक्सैलसा	जूटिली	आसाम	७६	११८	१३	
३	एमूरा वालीची	एमूरा	बंगाल	८१	९६	६५	
४	एनोजाइसस् एक्यूमिनाटा	यौन	बर्मा	७४	१३२	३८	
५	अर्टोकार्पस चपलाशा	चपलाश	आसाम	६४	८३	५३	
६	बुर्सरा सिरेटा	इंडियन रैड पियर	बर्मा	६४	६७	५५	
७	कैलोफिलम इलेटम्	पून	मद्रास	६३	८१	४४	
८	कैलोफिलम टोमैनटोसम्	पून	बम्बई	६६	७७	४१	
९	सिड्रैला सिरेटा	पहाड़ी तून	बर्मा	७८	१०१	५१	
१०	क्लीस्टैन्थस् कौलीनस्	—	अन्डमान्स्	७२	८७	३७	
११	डल्बर्जिया सिसू	सिसू अथवा शीशम्	—	७३	१०४	५५	
१२	डिप्ट्रोकार्पस इंडीकस्	गुर्जन	कुर्ग	८१	१०३	५३	
१३	डिप्ट्रोकार्पस जिलैनिकस्	होरा	सीलोन	६४	८०	४०	
१४	डाइसौक्सिलम् बाइनैक्टेरी-फरम्	—	बर्मा	८३	८७	७४	
१५	यूजीनिया कैनैरेन्सिस्	जामन	बर्मा	६०	१३३	२९	

१	२	३	४	५	६	७	८
१६	ग्रीविया टिलिफोलिया	धामन	मद्रास	७१	११८	५९	
१७	होपिया ओडोराटा	अन्डमानथिगन	बर्मा	७९	११८	३१	
१८	कैइया एवसैमिका	मियानैहौर	आसाम	६७	९१	१८	
१९	लैगस्टोरमिया माइक्रोकार्पा	वैनटीक	—	८०	११२	४२	
२०	पारागोरिया स्टीलाटा	थिगाडू	बर्मा	८३	१०८	६०	
२१	फ़ोबी हैनीशियाना	बौन्मम्	आसाम	८२	८७	६९	
२२	पोडोकार्पस नैरीफोलिया	थिटमिन्	अन्ड़मान्स्	६१	७७	३३	
२३	पोइसिलौन्यूरौन इन्डीकम	बलागी	मद्रास	६५	९५	५१	
२४	कर्कश लिनिआटा	फलट	दार्जिलिग (प० बगाल)	७८	१८६	४१	
२५	शोरिया टैलूरा	टैलूरा	—	६०	६२	५५	
२६	टर्मिनेलिया मन्नी	काला चुगलम्	मध्य प्रदेश	६२	९५	३३	
२७	टर्मिनेलिया पैनीक्यूलाटा	किन्डल	—	६०	६२	५५	
२८	टर्मिनेलिया टोमैनटोसा	लौरेल	मध्य प्रदेश	९१	११८	६७	५ प्रादर्शों का माध्य

सारणी–८ (ङ), वर्ग–५

माध्य-आयु २४ मास (२ वर्ष) से ५९ मास तक

क्रमाक	काष्ठ-जाति	व्यापारीय नाम	प्राप्ति-स्थान	आयु महीनो मे			विशेष कथन
				माध्य	अधिकतम	न्यूनतम	
१	२	३	४	५	६	७	८
१	एबिस पिन्ड्रो	फर	उत्तर प्रदेश	२९	३३	२०	
२	एबिस पिन्ड्रो	फर	उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश	२५	३५	१०	
३	एकेशिया एरैबिका	बबूल	सिन्ध	३९	५१	३४	५ प्रादर्शो का माध्य
४	एकेशिया एरैबिका	बबूल	सिन्ध	५२	५५	४२	
५	एक्रोकार्पस् फ्रेक्सीनीफोलिअस्	मुन्दानी	पौलाची (मलाबार)	४१	४४	३१	
६	एडीना कोर्डीफोलिया	हल्दू	—	३५	५०	२३	
७	एडीना कोर्डीफोलिया	हल्दू	बिहार और उडीसा	३०	३९	२२	
८	एडीना कोर्डीफोलिया	हल्दू	उत्तर प्रदेश	३१	४०	२८	
९	एगल मार्मीलौस	बेल	उत्तर प्रदेश	२७	२९	२२	
१०	एलबीजिया लूसीडा	टिप्रिआ सिरिस्	आसाम	३०	४६	२३	
११	एलबीजिया स्टीप्यूलाटा	काला सिरिस्	बिहार और उडीसा	४२	४५	३२	
१२	एल्स्टोनिया स्कोलैरिस	शैतान काष्ठ	—	२५	२८	१८	
१३	एनीसोप्टरा ग्लेब्रा	कौन्धम	बर्मा	३२	५३	२२	
१४	एनौजाइसस् लैटीफोलिया	एक्सल वुड	पञ्जाब	२९	३१	२४	

१	२	३	४	५	६	७	८
१५	एनौजाइसस् पैन्डूला	करधाई	उत्तर प्रदेश	३६	४२	३१	
१६	अर्टोकार्पस हिर्सूटा	एनी	बम्बई	४६	४६	४६	
१७	अर्टोकार्पस इन्टीग्रीफोलिया	जैक वुड	—	५९	५९	५९	एक ही प्रादर्श
१८	बिस्चोफिया जैभेनिका	बिशप वुड	आसाम	३५	५५	२४	
१९	बोरैसस् फ्लैबीलीफर	पल्माइरा पांम	बिहार	५५	१२४	६	
२०	बूगीरा प्रजाति	—	—	३६	५४	२९	
२१	बूगीरा प्रजाति	—	—	२४	२९	१८	
२२	बूगीरा प्रजाति	—	—	२४	२९	१८	
२३	कैलोफिलम् वेटियानम्	पून	बम्बई	५९	८१	३८	
२४	कैस्टैनौप्सिस् हिस्ट्रिक्स्	इन्डियन चैस्टनट्	आसाम	३८	३८	३८	
२५	कैसुवैरीना इक्वीजैटीफोलिया	कैसुवैरीना	—	२६	३७	१८	
२६	सैड्रीला तूना	तून	बर्मा	३१	३८	२१	
२७	चुक्रेशिया टेब्यूलैरिस्	चिक्रैसी	आसाम	५७	६५	५२	
२८	क्लोरौक्सीलौन स्वीटेनिया	ईस्टइडियन सैटिन-वुड	मध्य प्रदेश	३९	४६	३४	
२९	सिनैमोमम् सैसीसोडैफ्नी	सिनैमौन	उत्तर प्रदेश	३३	३८	२१	
३०	सिनैमोमम् इनर्स	सिनैमौन	बर्मा	४३	४६	३३	५ प्रादर्शों का माध्य
३१	क्रिप्टरोनिया पैनीक्यूलाटा	—	आसाम	३३	४६	२३	
३२	साइनोमीट्रा पौलीआन्ड्रा	पिङ्ग	आसाम	३६	५५	२४	
३३	डलबर्जिया पैनीक्यूलाटा	—	उत्तर प्रदेश	४५	६२	३७	
३४	डिलीनिया इन्डीका	डिलीनिया	आसाम	२५	२९	२०	५ प्रादर्शों का माध्य
३५	डिप्ट्रोकार्पस एलेटस्	—	बर्मा	५६	७१	४५	

क्रमांक	काष्ठ-जाति	व्यापारीय नाम	प्राप्ति-स्थान	आयु महीनो मे			विशेष कथन
				माध्य	अधिकतम	न्यूनतम	
१	२	३	४	५	६	७	८
३६	डिप्ट्रोकार्पस ग्रिफीथी	गुर्जन	अन्डमान	४१	५१	२१	
३७	डिप्ट्रोकार्पस करी	गुर्जन	—	३३	३७	२५	
३८	डिपट्रोकार्पस मैक्रोकार्पस	होलौग	आसाम	३७	४६	२९	
३९	डायोस्पीरौप्स मलैनोक्सीलौन	एबौनी	मध्य प्रदेश	२८	५८	७	
४०	डिप्ट्रोकार्पस औबटचूसीफोलिअस्	गुर्जन	बर्मा	४४	४५	३८	
४१	डिप्ट्रोकार्पस टचूबरक्यूलेटस	इग	बर्मा	४६	६७	३८	
४२	डिप्ट्रोकार्पस टर्बिनेट्स	गुर्जन	बर्मा	३३	३८	२९	
४३	द्वाबंगा सोनरैटियोइडीज़	लम्पती	बगाल	३३	५०	२०	
४४	यूजीनिया गार्डनैरी	जामन	बगलोर (दक्षिण कनड)	४९	५०	४२	
४५	यूजीनिया प्रेईकोक्स	जामन	आसाम	३२	४०	२६	
४६	हैरीटीरा माइनर	सुन्द्री	पौत्त्नाची (मलाबार)	४१	५०	३७	
४७	हैटीरोफ्रेग्मा रौक्सबर्गी	—	मध्य प्रदेश	३४	७०	१७	
४८	होलोप्टिलिया इन्टीग्रीफोलिया	कान्जू	उत्तर प्रदेश	२५	३४	१४	
४९	होमैलियम् टोम्यनटोसम्	माउकचाऊ	बर्मा	५५	६४	४६	
५०	आइसोनैन्ड्रा प्रजाति	—	आसाम	५४	१९५	१८	
५१	कैइया फ्लोरीबन्दा	कैइया	आमाम	२५	२५	२५	
५२	लैगरस्ट्रोमिया पार्भीफ्लोरा	लैन्डी	मध्य प्रदेश	५१	५८	३८	
५३	लैगरस्ट्रोमिया टोम्यनटोसा	लीजा	बर्मा	२५	२९	१५	

१	२	३	४	५	६	७	८
५४	लोफोपिटेलम वेटियानम्	बनाती	मद्रास	३१	३२	२५	
५५	मैशीलस् प्रजाति	मैशीलस्	बगाल	३६	४१	२९	
५६	मैंगीफरा इन्डीका	आम	बिहार और उड़ीसा	२५	३३	२३	
५७	माइकीलिया कथकार्टी	—	बगाल	२६	३१	२४	
५८	माइकीलिया चम्पका	चम्पा	—	—	—	—	आगणित
५९	मिट्रेजाइना डाइभर्सीफोलिया	बिङ्गा	बर्मा	२७	३८	८	
६०	मिट्रेजाइना पार्वीफोलिया	कैम	बिहार और उड़ीसा	३६	६७	२२	
६१	मोरस एल्बा	मलबरी	पजाब	३१	३१	३१	३ प्रादर्शों का
६२	मोरस सिराटा	मलबरी	पंजाब	३७	४१	२२	माध्य
६३	पीसिया मोरिन्डा	स्प्रूस	उत्तर प्रदेश	२४	४०	२०	
६४	पाइनस् इक्सैल्सा	कैल	पजाब	४६	७९	११	
६५	पाइनस् इन्सिग्निस्	—	मद्रास	३१	४२	२३	
६६	पाइनस् लौंगीफोलिया	चीड़	उत्तर प्रदेश	३४	४४	१४	
६७	पोडोकार्पस् वालीचियाना	थिटमिन्	बर्मा	२६	४६	६	
६८	कर्कश लैमीलोसा	बक	दार्जिलिग(प० बंगाल)	२७	२९	१७	
६९	सैकोपीटेलम् टोम्यन्टोसम्	—	बम्बई	५०	६५	२३	
७०	स्कीमा वालीची	चिलौनी	बगाल	४५	६४	३४	५ प्रादर्शों का माध्य
७१	शीलीचरा ट्रिजूगा	कुसुम	बिहार और उड़ीसा	५५	९५	३९	
७२	शोरिया एसेमिका	मकई	आसाम	४४	७१	३४	
७३	टर्मिनेलिया अर्जुना (रस-काष्ठ)	अर्जुन	मद्रास	४४	५२	२७	४ प्रादर्शों का माध्य
७४	टर्मिनेलिया अर्जुना (रस और सारकाष्ठ मिश्रित)	अर्जुन	मद्रास	४३	६७	२७	,,

क्रमांक	काष्ठ-जाति	व्यापारीय नाम	प्राप्ति-स्थान	आयु महीनों में			विशेष कथन
				माध्य	अधिकतम	न्यूनतम	
१	२	३	४	५	६	७	८
७५	**टर्मिनेलिया अर्जुना**	अर्जुन	मद्रास	५६	६७	४५	,,
७६	**टर्मिनेलिया अर्जुना**	अर्जुन	मद्रास	३५	४५	२०	
७७	**टर्मिनेलिया बैलैरिका**	बहेड़ा	बिहार और उड़ीसा	३५	५१	२२	
७८	**टर्मिनेलिया बियालाटा**	सफेद चुगलम	अन्डमान्स्	४३	५५	२५	
७९	**टर्मिनेलिया चैबुला**	माइरोबोलन काष्ठ	बर्मा	४८	६७	२४	
८०	**टर्मिनेलिया मन्नी**	काला चुगलम	—	५६	६२	४२	
८१	**टर्मिनेलिया माइरियोकार्पा**	काला होलौक	आसाम	५४	६२	३७	
८२	**टर्मिनेलिया माइरियोकार्पा**	सफेद होलौक	आसाम	३४	३७	२४	४ प्रादर्शों का माध्य
८३	**टर्मिनेलिया ओलीभरी**	थान	बर्मा	५९	१२७	३२	
८४	**टर्मिनेलिया प्रोसीरा**	ह्वाइट बौम्बवे या बदाम	अन्डमान्स्	३७	३९	२८	
८५	**टर्मिनेलिया पाइरीफोलिया**	लैन	बर्मा	२४	३२	१८	
८६	**भैटीरिया इन्डिका**	भिल्लापिने	मद्रास	२७	२८	२३	
८७	**जैन्थौक साइलम् रहेट्सा**	मूलीलाम	मद्रास	५७	५७	५७	

सारणी–८ (च), वर्ग–६

माध्य आयु ० (शून्य) मास से लेकर २३ मास तक

क्रमाक	काष्ठ जाति	व्यापारीय नाम	प्राप्ति-स्थान	आयु महीना में			विशेष कथन
				माध्य	अधिकतम	न्यूनतम	
१	२	३	४	५	६	७	८
१	एबिस वीबिआना	फर	पजाब	९	१५	६	
२	एसर कैम्पबलाइ	मेपल	दार्जिलिग (प० बगाल)	९	१४	६	
३	एलन्थस ग्रैन्डिस	गोकुल	बगाल	१७	२३	१०	
४	एन्थोसिफेलस् कदम्बा	कदम	आसाम	१६	२३	९	
५	बैम्बूसा अरुन्डनेसिया	बॉस	—	—	—	—	आगणित
६	बैम्बूसा न्यूटन्स्	बॉस	—	—	—	—	,,
७	बैम्बूसा पौलीमोर्फा	बॉस	—	—	—	—	,,
८	बौम्बैक्स इन्सिगनी	सीमल	अन्डमान्स	२२	३०	६	
९	बौम्बैक्स इन्सिगनी	सीमल	अन्डमान्स	१७	३१	१४	
१०	बौम्बैक्स मैलेबैरिकम	सीमल	उत्तर प्रदेश	१२	१२	१२	
११	बौस्वेलिया सिर्राटा	सलाय	बिहार और उड़ीसा	२१	४४	१३	
१२	ब्यूटिया फ्रोन्डोसा	ढाक	—	५	९	३	
१३	कैनैरियम इयूफिलम्	धूप	अन्डमान्स	९	१४	७	
१४	कैनैरियम स्ट्रिक्टम्	धूप	मद्राम	२०	३६	११	
१५	क्रैटेभा रिलीजिओसा	—	उत्तर प्रदेश	९	९	९	

क्रमाक	काष्ठ-जाति	व्यापारीय नाम	प्राप्ति स्थान	आयु महीनो मे			विशेष कथन
				माध्य	अधिकतम	न्यूनतम	
१	२	३	४	५	६	७	८
१६	क्रिप्टोकार्या एमिग्डेलीना	—	आसाम	१२	२३	३	
१७	क्रिप्टोमैरिया जैपोनिका	सूजी	बंगाल	११	११	११	
१८	क्यूलीनिया इक्सेल्सा	करानी	मद्रास	१७	२३	९	
१९	डेन्ड्रोकलेमस् हैमिल्टोनाइ	—	—	—	—	—	आगणित
२०	डेन्ड्रोकलेमस् स्ट्रिक्टस्	—	—	—	—	—	,,
२१	डिलीनियाँ पेन्टैजाइना	डिलीनिया	बंगाल	१८	२०	१२	
२२	डायोस्पिरौस पाहिरोकार्पा	—	अन्डमान्स	१९	३७	११	
२३	डिप्ट्रोकार्पस ग्रिफिथी	गुर्जन	बर्मा	२३	२७	२०	
२४	इन्डोस्पर्मम् मैलैसैन्स्	बकोटा	—	—	—	—	आगणित
२५	एगल्हार्डटिया स्पीकाटा	—	आसाम	१७	२३	१२	
२६	फ्रैक्सीनस् इक्सैलसियर	एश	चम्बा राज्य	१३	२१	८	
२७	फ्रैक्सीनस् फ्लोरीबन्दा	एश	कश्मीर	१२	२९	६	
२८	गैरूगा पिनाटा	गैरूगा	बिहार और उड़ीसा	१३	१३	१३	
२९	हाइमैनोडिक्टयोन इक्सैल्सम्	कुथान	उत्तर प्रदेश	२२	३४	१५	
३०	जुगलान्स फैलैक्स	वालनट	कश्मीर	१४	१९	६	५ प्रादर्शों का माध्य
३१	जुगलान्स रेजिया	वालनट	पंजाब	२२	३१	७	
३२	लैनिया ग्रैन्डिस्	झिगन	उत्तर प्रदेश	१३	१३	१३	
३३	भैशीलश गैम्बलाइ	मैशिलस्	बक्सा रेज हैमिल्टनगंज	१९	२३	९	
३४	मैलोसस् फीलीपाइनैनसिस्	चम्प	उत्तर प्रदेश	२१	२३	१८	
३५	माइकीलिया इक्सैल्सा	चम्प	—	१५	२८	९	

१	२	३	४	५	६	७	८
३६	मिल्यूसा भैलूटियाना	—	उत्तर प्रदेश	१३	२२	९	
३७	मिरिष्टिका एटेन्यूआटा	मिरिष्टिका	मद्रास	६	६	६	
३८	पैरीशिया इन्सिग्निस्	लाल धूप	अन्डमान्स्	१८	२१	१४	
३९	पैरोशिया जैक्वीमौन्टियाना	पैरोशिया	पंजाब	११	१४	७	
४०	फोबी प्रजाति	बौनसम्	—	२१	२९	८	
४१	पीसिया मौरिन्डा	स्प्रूस	कश्मीर	१४	२३	९	
४२	प्लैन्चोनिया एन्डैमैनिका	रैड बौम्बवे	आसाम	२२	२३	१८	
४३	पौलीएल्थिया फ्रैग्रैन्स	—	मद्रास	२०	२१	१५	
४४	पौन्गैमिया ग्लेब्रा	—	बम्बई	१८	२३	१७	
४५	टैरौस्पर्मम एसैरीफोलियम्	मयन्द	—	१८	२८	१६	
४६	साइड्रौक्सीलौन लौंगीपीशियो-लेटम्	—	—	—	—	—	आगणित
४७	सोनरेसिया एपीटाला	केवडा	बंगाल	२०	२१	१४	
४८	स्टर्क्यूलिया कैम्पैन्यूलाटां	पपीता	—	६	१०	४	
४९	स्टीरियौस्पर्मम् शेलनौइडीज़	—	आसाम	२२	२३	१८	
५०	स्टीरियौस्पर्मम् स्वाभियोलैन्स्	पादरी काष्ठ	उत्तर प्रदेश	१७	२५	१३	५ प्रादर्शों का माध्य
५१	स्विन्टोनिया फ्लोरीबन्दा	टौगथयेट	बर्मा	१८	१८	१८	
५२	टर्मिनेलिया चैबुला	माइरोबोलौनवुड	आसाम	१२	१३	९	
५३	टैट्रैमलस् न्यूडीफ्लोरा	थिटपौक	अन्डमान्स	—	—	—	आगणित
५४	उल्मस् वालीचियाना	एल्म	पजाब	६	११	५	
५५	एरिका कैटैच्यू	बीटलनट (सुपारी)	—	—	—	—	आगणित

भाग ३

अध्याय १

काष्ठ-परिरक्षी

१. काष्ठ-परिरक्षण के सिद्धान्त

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, काष्ठ-विनाशकारक कवक और कीटों को अपने विकास के लिए अनुकूल आर्द्रता, ताप, वायु और उपयुक्त खाद्य पदार्थ की आवश्यकता होती है। इन अनुकूल दशाओं में से यदि एक अथवा अन्य अवस्थाओं के नियन्त्रण का प्रबन्ध किया जाय, तो काष्ठ की रक्षा की जा सकती है अर्थात् काष्ठ को आक्रमण-कर्त्ताओं से प्रतिरक्षित किया जा सकता है। यदि काष्ठ सदैव शुष्क रहे तो कभी नहीं सड़ता। न्यून तापक्रम में भी काष्ठ सदैव नवीन अवस्था में अर्थात् स्वस्थ रहता है, जैसा कि शीत कटिबन्ध के देशों में पाया जाता है। यदि काष्ठ आर्द्रतापूर्ण हो, जैसा कि गहरे भूमितल में प्रयोग किये गये काष्ठ-आधार-खम्भों की दशा होती है, तब भी काष्ठ सुरक्षित रह सकता है। काष्ठ-ताल ('लौग पौन्ड') में डुबोये हुए काष्ठ भी स्वस्थ रहते हैं, क्योंकि उनमें वायु नहीं रहती। साधारण प्रयोग किये गये काष्ठों में इन उपरि-लिखित तीन आक्रमणानुकूल दशाओं, अर्थात् आर्द्रता, ताप और वायु, का नियन्त्रण असम्भव-सा हो जाता है, परन्तु चौथी दशा का अर्थात् उपयुक्त खाद्य पदार्थ का नियन्त्रण व्यवहार्य हो सकता है। इस प्रकार का नियन्त्रण उन रासायनिक पदार्थों द्वारा जो कवक और कीटों के लिए विष का कार्य करते हैं, काष्ठ का शोधन और व्यापन करना ही है। यही रासायनिक पदार्थ "काष्ठ-परिरक्ष" अथवा परिरक्षी कहलाते हैं। अतः काष्ठ-परिरक्ष वे रासायनिक पदार्थ हैं जिनका यदि काष्ठ पर उचित प्रकार से प्रयोग किया जाय, तो वे उसे काष्ठ-नाशक अभिकर्ताओं के प्रति आक्रमण-रोधी गुण प्रदान कर सकें। परिरक्षी, आक्रमणकारी जन्तुओं के काष्ठीय खाद्य पदार्थ को विषैला बना देते हैं, जिससे ये नाश-कारक जीव काष्ठ से दूर रहते हैं। काष्ठ-परिरक्षी या तो एक विशुद्ध रसायन-संयोग ("कम्पाउन्ड") होता है, या रसायन-संयोगों का मिश्रण। परिरक्षी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। इनके

मूल्य और बनावट भी भिन्न-भिन्न हैं। अनेक प्रकार के काष्ठों पर निर्माण-कार्य में अभीष्ट आयु प्राप्त करने के उद्देश्य से इनका व्यवहार किया जाता है।

काष्ठ को सुरक्षित रखने के लिए यह आवश्यक है कि परिरक्षी काष्ठ के अन्दर तक व्याप्त हो सके। यह शोधित स्तर इतनी मोटाई तक होना चाहिए कि यदि काष्ठ की सतह पर विपटन[1] अथवा यान्त्रिक क्षति भी हो, तो अशोधित काष्ठ ऊपर दिखाई न पड़ने लगे। अशोधित काष्ठ प्रकट होने से काष्ठ-नाशक जन्तु पुनः आक्रमण कर सकते हैं। प्रत्येक स्थिति मे यह अनिवार्य नही है कि काष्ठ में पूर्णतया परिरक्षी का अन्तःप्रवेशन हो, परन्तु परिरक्षी इतनी गहराई तक पहुँच जाना चाहिए कि आक्रमणकर्त्ता शोधित काष्ठ को पार न कर सके। रसकाष्ठ का सम्पूर्ण भाग परिरक्षी द्वारा उपचारित होना अत्यन्त आवश्यक है।

परिरक्षी-व्यापन के साथ-साथ, परिरक्षी का काष्ठ के अन्दर पर्याप्त मात्रा में मौजूद होना भी आवश्यक है। यदि परिरक्षी का काष्ठ मे पूर्ण मात्रा मे सकेन्द्रण न हो तो आक्रमण-कर्त्ताओ का (मरण) नाश नही हो सकता। अतः परिरक्षी की इतनी प्रबलता होनी चाहिए कि वह काष्ठनाशक जन्तुओं के लिए पूर्ण प्रकार से विषैला हो। शोधित काष्ठ को रोधन-शक्ति तभी प्राप्त हो सकती है जब कवक और कीटादि के लिए परिरक्षी की मात्रा सहन करने योग्य न हो।

यदि छेदने या काटने से शोधित-काष्ठ का कोई भी अशोधित भाग प्रकट हो जाय तो उसका परिरक्षोपचार करना पुनः आवश्यक होता है।

२. आदर्श परिरक्षी के आवश्यक गुण

परिरक्षियों के प्रयोग में दो मुख्य बाते विचारणीय हैं। उनमे से एक तो परिरक्षी के गुणों पर आधारित है और दूसरी उसके प्रयोग की रीति पर। कोई भी परिरक्षी उचित प्रकार से व्यवहार किये बिना उपयुक्त सिद्ध नही हो सकता। यदि उसके प्रयोग की रीति ठीक नही है तो अच्छे से अच्छे परिरक्षी से भी सफलता प्राप्त नही हो सकती। यह बात सदैव ध्यान मे रखनी चाहिए।

एक आदर्श परिरक्षी में निम्नलिखित गुणों का होना अत्यावश्यक है—

(१) परिरक्षी ऐसा होना चाहिए कि वह लघु मात्रा में भी काष्ठ-नाशक जन्तुओ के लिए विष हो। यह सम्भव हो सकता है कि कोई परिरक्षी विशेष प्रकार से किसी एक ही नाशकर्ता के प्रति प्रभावशाली हो। उस दशा में उस परिरक्षी का

1 Splitting.

प्रयोग काष्ठ मे केवल उसी नाशकर्ता से रक्षा करने के लिए उपयुक्त होगा। यदि कवक, दीमक और छिद्रक-कीट आदि एक से अधिक अभिकर्ताओ से काष्ठ को सुरक्षित रखना है, तो परिरक्षी का चुनाव तदनुसार ही करना पडता है, यहाँ तक कि किसी-किसी अवस्था मे रासायनिक पदार्थो का मिश्रण अनिवार्य हो जाता है। लेकिन यह तभी किया जाता है जब इन पदार्थो के मिश्रण से कोई रासायनिक परिवर्तन न हो। सामुद्रिक छिद्रक-कीटो के लिए कभी-कभी तीव्र विषैले पदार्थो की आवश्यकता पड जाती है। परिरक्षी रसायनो मे प्रत्यपसारी गुणों ('रिपैलैन्ट प्रौपर्टीज') का होना भी आवश्यक है।

(२) परिरक्षी इतना तरल होना चाहिए कि सरलता से काष्ठ के अन्दर तक उसका व्यापन[1] किया जा सके। अनुभव यह है कि यदि परिरक्षी काष्ठ के बाह्य स्तर पर ही लगा रहे तो उससे काष्ठ की आयु बढाने मे अधिक सफलता नही मिलती। इस प्रकार का बाह्य लेप अल्पकालीन परिरक्षण के लिए ही होता है।

(३) परिरक्षी ऐसा होना चाहिए कि काष्ठ मे लगाने के पश्चात् वह जल से न धुल सके। ऐसा होने पर शोधित काष्ठ यदि बाहर वर्षा मे भी पडा रहे तो परिरक्षी का प्रभाव काष्ठ पर निरन्तर बना रहेगा। परिरक्षी को उडनशील भी नही होना चाहिए और न ऐसा ही होना चाहिए कि उसमे कालान्तर मे कोई ऐसा रासायनिक परिवर्तन हो, जिसके कारण वह निष्क्रिय बन जाय। अतः परिरक्षी का स्थायी रहना ही परमावश्यक है।

(४) परिरक्षी की धातुओ पर कोई संक्षारण-क्रिया[2] नही होनी चाहिए, जिससे लोहे के संयन्त्रो पर, जिनमे दबाव क्रिया से परिरक्षी द्वारा काष्ठ शोधित किया जाता है, किसी प्रकार की क्षति न पहुँच सके। सक्षारण से न केवल सयन्त्र को ही हानि पहुँचेगी, किन्तु परिरक्षी-विलयन मे भी रासायनिक क्रिया द्वारा परिवर्तन हो सकता है, और ऐसा होने पर उसके प्रभाव मे भी कमी पड़ सकती है। इसके अतिरिक्त शोधित काष्ठ के सस्पर्श मे यदि धातु की कील, पैंच, अन्वायुक्तियाँ[3] इत्यादि भी आ जायँ, तो क्षरण के कारण वे भी निकृष्ट हो जाती है।

(५) परिरक्षी का काष्ठ की प्रबलता पर कोई ऐसा प्रभाव न पडना चाहिए, जिसके कारण काष्ठ की दृढता कम हो जाय। दृढता में कमी होने के कारण भयप्रद परिणाम निकल सकते है। ऐसा होने पर काष्ठ के जैविक स्थायीपन ('बायोलो-

1 Impregnation. 2 Corrosive Action. 3 Fittings.

जिकल लाइफ') मे शोधन के कारण जो लाभ होगा भी, वह सब दृढता की कमी के कारण व्यर्थ हो जायगा।

(६) परिरक्षी विलयन ऐसा होना चाहिए जिसमें १००° सेंटीग्रेड तक गरम रहने पर भी रासायनिक परिवर्तन न हो सके। परिरक्षी को काष्ठ के अन्दर सरलता से प्रवेश कराने के लिए बहुधा उष्ण विलयन की आवश्यकता पड़ती है और उष्णता से काष्ठ मे परिरक्षी प्रचूषण भी अच्छा होता है।

(७) परिरक्षी से मनुष्यों और पशुओ को कोई हानि न पहुँचनी चाहिए और न काष्ठ-परिरक्षण व्यवसाय मे लगे कार्यकर्ताओ पर ही किसी प्रकार का हानिकर प्रभाव पड़ना चाहिए। शोधित काष्ठ के सस्पर्श मे यदि कोई उपयोगकर्ता अथवा घरेलू पशु आ जाय तो परिरक्षी से उस पर भी किसी प्रकार का दुष्प्रभाव न पड़े। यदि अकस्मात् शोधित काष्ठ से कोई व्यक्ति ईधन का कार्य भी ले तो उससे किसी प्रकार की ऐसी विषैली वाष्प भी न निकले, जिसके कारण मनुष्यो को क्षति पहुँचे।

(८) परिरक्षी यथार्थ मात्रा मे प्राप्य होना चाहिए, जिससे काष्ठ-परिरक्षण व्यवसाय मे उसकी कमी न पड़ जाय। आर्थिक दृष्टि से इसका उत्पादन इतना हो कि इससे शोधित काष्ठ उचित मूल्य पर प्राप्त हो सके।

(९) परिरक्षी ऐसा न हो कि इससे काष्ठ की अभिज्वाल्यता बढ जाय। जहाँ तक सम्भव हो इससे उपचार करने के पश्चात् काष्ठ लघु-दाह्य ही बना रहे।

(१०) परिरक्षी की रचना ऐसी हो कि काष्ठ मे इसका अन्तः-प्रवेशन कराते समय नियन्त्रण किया जा सके। भिन्न-भिन्न प्रयोगो के लिए काष्ठ मे यथार्थ परिरक्षी का कई मात्राओं मे प्रचूपण कराना पड़ता है। अतः उपयुक्त नियन्त्रण द्वारा इस प्रकार का परिरक्षी-प्रचूषण सम्भव हो सकेगा।

(११) परिरक्षी ऐसा न हो कि काष्ठ के रग मे परिवर्तन कर दे और उपचार करने के पश्चात् उससे अरुचिकर गन्ध भी निकले।

(१२) परिरक्षी इस प्रकार का हो कि उससे काष्ठ को शोधित करने पर उसे बाह्य लेप द्वारा अभिरजित किया जा सके।

अब तक ऐसे किसी परिरक्षी का आविष्कार नही हो सका जो इन पूर्वोक्त संपूर्ण गुणो से युक्त हो। इसमे सन्देह भी है कि भविष्य मे ऐसे किसी परिरक्षी का विकास हो सकेगा। पर परिरक्षी के चुनाव मे समझ-बूझ की आवश्यकता है और विशेष ध्यान उन्ही आवश्यकताओ पर देना होगा जो प्रयोग-कार्य के लिए अनिवार्य हों। पाँचवें प्रकरण मे स्पष्ट किया गया है कि किन-किन प्रयोग-कार्यों के काष्ठ-उपचारण के लिए

कौन-कौन-से परिरक्षी प्रयुक्त किये जा सकते है। परिरक्षी की उपयुक्तता उसके गुणो पर निर्धारित की गयी है। जहाँ तक सम्भव हो, परिरक्षी स्वदेश का ही होना चाहिए, जिससे विदेशी मुद्रा की आवश्यकता न पड़े। काष्ठ-परिरक्षण व्यवसाय की सफलता के लिए परिरक्षियो का उत्पादन स्वदेश मे ही होना इसलिए भी आवश्यक है कि युद्ध छिड़ जाने पर उसकी प्राप्यता मे रुकावट न पडे। पिछले विश्व-महायुद्ध मे इस प्रकार की कमी पड़ गयी थी और इसी कारण काष्ठ-परिरक्षण को व्यवहार मे न लाने के कारण भारत के काष्ठो का व्यर्थ व्यय और वनो का अत्यन्त ही अधिपतन हुआ, यहाँ तक कि इस प्रकार के काष्ठ की प्राप्ति मे अब तक सुधार नही हो सका।

३. परिरक्षी को परखने के साधन

परिरक्षियों संबधी प्रारम्भिक ज्ञान, प्रयोगशालीय परीक्षणो से प्राप्त हो सकता है। प्रयोगशाला के परिणामो से यह सूचना मिल सकती है कि परिरक्षी आशाजनक है या नही। यदि आशाजनक परिणाम हो तो उस पर बड़े पैमाने के परीक्षण किये जाते है। प्रयोगशाला मे परिरक्षी की विषालुता, रासायनिक स्थायित्व, प्रवेशन-शक्ति, संक्षारण, अग्निरोधन और बाह्य-लेपधारण आदि विषयक परिणाम प्राप्त हो सकते है।

परिरक्षी के अन्य आवश्यक गुणों का, जो काष्ठ-नाशक कवक, दीमक, छिद्रक-कीटों और सामुद्रिक-कीटो से सम्बन्ध रखते है, परीक्षण भी प्रयोगशाला मे किया जा सकता है। केवल सामुद्रिक जन्तुओ के प्रति अभी तक उतनी सतोषजनक रीतियों का विकास नही हुआ है। जिन परीक्षणो से काष्ठ-नाशक जन्तुओ के प्रति शीघ्र परिणाम निकल सकते है, उनको वेगकालीन ('एक्सीलरेटेड') परीक्षण कहते है। वेगकालीन परीक्षणों से आशाजनक परिणामों के निकलने पर तदनन्तर सेवाकालीन ('सर्विस') परीक्षण किये जाते है। वेगकालीन परीक्षणो से थोड़े ही अवसर में फल प्राप्त हो सकते है, पर सेवाकालीन परीक्षणों मे पर्याप्त समय की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि आधुनिक समय मे आविष्कृत परिरक्षियों का बड़े व्यावसायिक पैमाने पर प्रयोग करने से पूर्व उनके परीक्षण मे पर्याप्त समय लगता है, अर्थात् सेवा-कालीन परीक्षणो के संतोषजनक परिणाम निकलने पर ही किसी परिरक्षी का व्यावसायिक कार्य मे प्रयोग किया जा सकता है।

वेगकालीन परीक्षणों के अन्तर्गत निम्नलिखित निश्चयन-प्रयोग आते है।

(१) विषालुता-निश्चयन

विषालुता निश्चयन दो प्रकार के काष्ठ-नाशक अभिकर्ताओं के प्रति किया जाता है—(क) कवको के प्रति और (ख) कीटो के प्रति। कीटों के अन्तर्गत दीमक, छिद्रक-कीट और सामुद्रिक कीट हैं। प्रयोगशाला में इस प्रकार के निश्चयन यथोचित नियन्त्रण के साथ किये जाते हैं। ये इस प्रकार है—

(क) कवकों के विरुद्ध

परिरक्षी के विषालुता-गुणों के कवकों के प्रति परीक्षणों मे विशेष जाति के काष्ठ-नाशक कवक काच-फ्लास्क मे सवर्ध-माध्यम ('कल्चर मीडियम') मे उगाये जाते है। जिस परिरक्षी का अध्ययन करना हो उसकी भिन्न-भिन्न क्रमबद्ध मात्राएँ इस माध्यम मे मिश्रित की जाती है। इन फ्लास्कों का, नियन्त्रित ताप और आर्द्रता पर, कोष्ठ-संयन्त्रो मे अन्तर्विकास किया जाता है। इस प्रकार कवक को मारने के लिए परिरक्षी के न्यूनतम सकेन्द्रण का निश्चय किया जाता है। इस परिरक्षी के सकेन्द्रण की प्रतिशत मात्रा कुल माध्यम के आधार पर परिरक्षी का मारण-बिन्दु ('किलिंग पौइन्ट') कही जाती है।

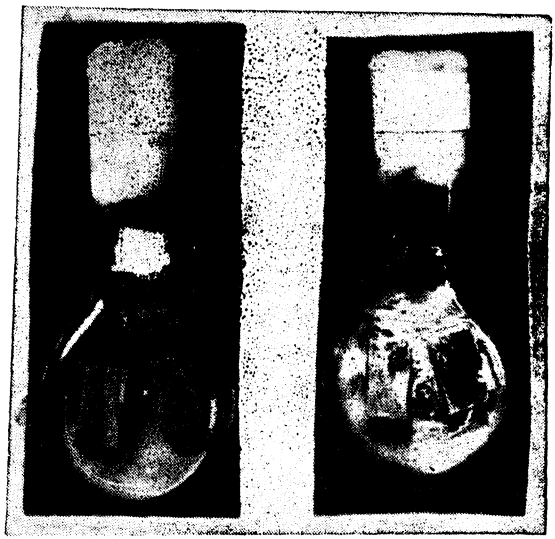
पृथक्-पृथक् कवको के प्रति परिरक्षी के भिन्न-भिन्न मारण-बिन्दु होते है। यदि एक ही कवक-जाति के विरुद्ध इस प्रकार के परीक्षण किये जायँ और यदि परिरक्षी की दशा एक-सी ही हो, तो परिरक्षी का विषालुता-मान एक आपेक्षिक अर्हा ('रिलेटिभ वैल्यू') ही होगी। इन परीक्षणो के आधार पर आशाजनक परिरक्षियो का चुनाव किया जा सकता है। प्रत्येक मुख्य देश की अन्वेषणशालाओ मे इस प्रकार के परीक्षण भिन्न-भिन्न रीतियों से किये जाते है।

सयुक्त राज्य अमेरिका मे 'पैट्री डिश' विधि का प्रयोग किया जाता है। इसमें 'मेडीसन नं० ५१७—'फोमस एनौसस्' कवक को पैट्री डिश (गोल पात्र) में स्थित 'माल्ट-अगर' माध्यम मे उपजाया जाता है और उसी मे विषालुता-मात्रा का निश्चयन किया जाता है।

यूरोप मे काष्ठ-गुटिका ('वुड ब्लांक') रीति प्रयोग मे लायी जाती है। सरल ('पाइन') काष्ठ की गुटिकाओ को परिरक्षी के भिन्न-भिन्न सकेन्द्रणो से शोधित करने के पश्चात् चपटे फ्लास्कों मे, जिनमे कवक तीव्रता से उगा हो, स्थापित किया जाता है। ऐसी दो शोधित कवक गुटिकाओं के मध्य मे एक अशोधित गुटिका, तुलना के उद्देश्य से कवक-सूत्रजाल के ऊपर रख दी जाती है। काष्ठ-गुटिका को परीक्षण के आरम्भ

में और परीक्षण-अवधि के पश्चात् कन्दु ('ओवन') में सुखाकर शुष्क अवस्था में तोल लिया जाता है। भार में शुष्क अवस्था के आधार पर जो प्रतिशत कमी होती है, वही कवक द्वारा विनाश का सूचक है। परिरक्षी का विषालु प्रभाव वह न्यूनतम प्रचूषण है (किलोग्राम प्रति घनमीटर पर) जो कवक के आक्रमण से बचाव करता है।

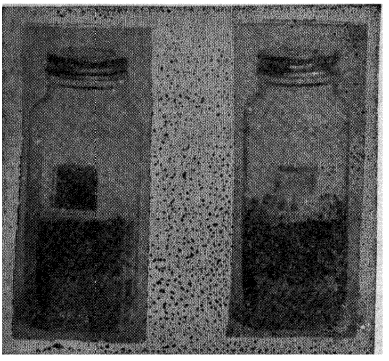
एक और विधि, जो वर्तमान समय में संयुक्त-राज्य अमेरिका में अधिकतर प्रयोग में लायी गयी, मृदा-गुटिका ('सॉइल ब्लॉक') रीति कहलाती है। इस रीति में सरल-रसकाष्ठ ('पाइन सैपवुड') के $\frac{3}{4}$ इंच के घन ('क्यूब्स्') परिरक्षी के भिन्न-भिन्न संकेन्द्रणों से शोधित कर और तदनन्तर शुष्क किये जाने के पश्चात् चौड़े मुँहवाली बोतलों में आधे तक मिट्टी से भरी और ऊपर समान घनाकार अशोधित काष्ठ-गुटिकाओं पर उगे कवक-सूत्र-जाल की सतह पर रखे जाते हैं। यह



चित्र ३०—कवकों के प्रति विषालुतामान परीक्षणों की प्रयोगशाला में परीक्षित भिन्न विधियों का प्रदर्शन (काष्ठगुटिका विधि)।

परीक्षण लगभग तीन महीनों तक उपयुक्त ताप और आर्द्रता पर चलने के पश्चात् समाप्त किया जाता है। शोधित व अशोधित काष्ठ के गुटके परीक्षण के आरम्भ

और समाप्ति पर तोले जाते हैं। उनके भार में शुष्क-तोल के आधार पर प्रतिशत कमी कवक द्वारा विनाश की निर्देशक है। परिरक्षी के जिस संकेन्द्रण पर कवक के आक्रमण का प्रभाव नहीं होता, उसी से उसके विषालुता-मान का निश्चय किया जाता है। इस प्रकार के परीक्षण से अन्य पूर्व-कथित परीक्षणों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय सूचनाएँ मिल सकती हैं, क्योंकि इसमें परि-रक्षियों को कुछ सीमा तक ऐसी दशाओं का सामना करना पड़ता है जो प्राकृतिक दशा में काष्ठ के कवकविनाश का कारण हैं। मृदा-गुटिका परीक्षणों में अन्य पूर्वोक्त परीक्षणों से अधिक समय लगता है, पर इनके परिणामों से अधिक व्यापक और स्पष्ट सामग्री मिल सकती है। चित्र ३०, ३१, ३२ में उपरिलिखित कवकों के प्रति विषालुता-मान परीक्षणों की विधियाँ प्रदर्शित की गयी हैं। सारणी ९ में विभिन्न रसायनों का कवक ('मेडीसन् नं० ५१७') के प्रति मरण संकेन्द्रण दिया गया है।



चित्र ३१—कवकों के प्रति विषालुता-मान परीक्षणों की प्रयोगशाला में परीक्षित भिन्न विधियों का प्रदर्शन (मृदा गुटिका विधि)



चित्र ३२—दीमकों के प्रति विषालुतामान-परीक्षण-उपचारित और अनुपचारित काष्ठ न्यादर्शों को स्तूपों के अंदर डालकर मिट्टी से बंद कर दिया जाता है, पृ० १३२।

सारणी-९

विभिन्न रसायनों का कवक (मेडीसिन नं० ५१७) के प्रति मरण संकेन्द्रण ('४ ङ) ('किलिंग कंसेन्ट्रेशन')

रसायन	सूत्र '(फारमूला')	मरण-सकेन्द्रण (अजल-सयोग का तौल पर प्रनिशत)
अप्रागारिक सयोग ('इनॉर्गेनिक कम्पाउण्ड्स)		
एल्यूमिनियम् सल्फेट	$Al_2(SO_4)_3\ 18H_3O$	०.५ से उपर
आर्सनिक ट्राइऑक्साइड	As_2O_3	०.०२५ (पू० नि० बि०*)
बोरैक्स (सोडियम् टैट्राबोरेट)	$Na_2B_4O_7 10H_2O$	०.१३
बोरिक एसिड	H_3BO_3	०.२५
कैडमियम् सल्फेट (अजल)	$CdSO_4$	लगभग ०.१४
कॉपर आर्सिनेट	$Cu_3(AsO_4)_2\ 4H_2O$	० ०४ से ०.०५
कौपर सल्फेट	$CuSO_4.5H_2O$	०.०६४ (पू० नि० बि०*)
फैरिक सल्फेट	$Fe_2(SO_4)_3$	लगभग ०.२
लेड नाइट्रेट	$Pb(NO_3)_2$	० ३
मैग्नीशियम् एमोनियम आर्सिनेट	$MgNH_4AsO_4.6H_2O$	०.०६७ (पू० नि० बि०*)
मर्क्यूरिक क्लोराइड	$Hg\ Cl_2$	०.००५ से ०.००६
निकल आर्सिनेट (एमोनेटैड)	—	०.०३ (पू० नि० बि०)*
निकल अर्सिनाइट	$Ni_3\ H_6\ (AsO_3)_4$	लगभग ०.०३
निकल क्रोमेट (बेसिक)	—	०.०१२ (पू० नि० बि०)*
निकल सल्फेट	$NiSO_4.\ 6H_2\ O$	०.०२४ से ०.०३
सिल्वर नाइट्रेट	$Ag\ NO_3$	०.०३
सोडियम आर्सिनाइटू (एसिड)	$Na_2\ HASO_3$	०.०४४ (पू० नि० बि०)*
सोडियम क्रोमेट (अजल)	$Na_2\ Cr\ O_4$	०.०३४
सोडियम डाइक्रोमेट (अजल)	$Na_2\ Cr_2\ O_7$	०.०३
सोडियम् फ्लोराइड	$Na\ F$	० २५
सोडियम् हाइड्रौक्साइड	$Na\ OH$	लगभग ०.३
सल्फूरिक एसिड	$H_2\ SO_4$	०.१० से ०.१५

थैलियम् सल्फेट (अस्)	Tl_2SO_4	०.०२३ (पू० नि० बि०)*
यूरैनिल एसिटेट (अजल)	$UO_2(C_2H_3O_2)_2$	०.१८
जिक एसिटेट	$Zn(C_2H_3O_2)_2$	०.४७ (पू० नि० बि०)*
जिक क्लोराइड	$ZnCl_2$	०.३५
जिक मैटाआर्सिनाइट	$Zn(AsO_2)_2$	०.१
जिक सल्फेट (वाणिज्यिक)	$ZnSO_4\ 7H_2O$	०.६५

प्रागारिक सयोग ('औरगैनिक कम्पाउन्ड्स्)

एल्फाक्लोरोनैफ्थैलीन	$C_{10}H_7Cl$	०.००६
बीटानैफ्थौल	$C_{10}H_7OH$	०.०१५
कैप्रिक एसिड	$C_9H_{19}CO_2H$	०.००९
१–क्लोरोबीटानैफ्थौल	$C_{10}H_6ClOH$	०.००५
कोलटार-क्रियोजोट	—	०.०७
कोलटार क्रियोजोट:		
नमूना ८३८७ (आपेक्षिक घ० १.०४०)	—	०.०५ से ०.१
नमूना ८४०३ (आ० घ० १.०६२)	—	०.१ से ०.२
नमूना ८४०१ (आ० घ० १.०९६)	—	०.४ से ०.५
नमूना १०७४ (आ० घ० १.०४८)	—	०.३५
कोलटार: नमूना ८४०० (आ० घ० १.१६६)	—	०.९ से १.०
कॉपर नैफ्थिनेट संकेन्द्रित (८ प्रतिशत ताँबा)	—	०.१५
कॉपर पैन्टाक्लोरोफीनेट	$Cu(C_6Cl_5O)_2$	०.००२
कोलटार और क्रियोजोट (५०:५०) विलयन	—	०.२ से ०.७ (प्रयुक्त क्रियोजोट के अनुसार)
क्रियोजोट-पैट्रोलियम (५०:५०) विलयन	—	०.५ से ३.० (प्रयुक्त तैल के अनुसार)
डिसाइल एलकोहौल (नार्मल)	$C_{10}H_{21}OH$	०.००४३
२,४-डाइक्लोरोएल्फानैफ्थौल	$C_{10}H_5Cl_2OH$	०.००२ (पू० नि० बि०)*
२,६-डाइक्लोरो-४-नाइट्रोफीनोल	$C_6H_2Cl_2NO_2OH$	०.०१ (पू० नि० बि०)*
२,४-डाइनाइट्रोक्लोरोबैन्जीन	$C_6H_3Cl(NO_2)_2$	०.०१

*पू० नि० वि० का अर्थ पूर्ण निरोध बिन्दु (टोटल इन्हिबिशन पौइन्ट) है।

२,६-डाइनाइट्रोफीनोल	$C_6H_3(NO_2)_2OH$	०.०२३
फ्यूल औइल (इन्धन तैल) (न० ११०३)	—	४०.० से ऊपर
मृत्तैल (नं० १८४७)	—	४०.० से ऊपर
नोलेज टार	—	०.०८
लिग्नाइट टार क्रियोजोट	—	०.०८
नाइट्रोबीटानैफथौल	$C_{10}H_6NO_2OH$	०.०१६ (पू०नि०बि०)
नाइट्रोटौलवीन (मिश्रित)	$C_6H_4CH_3NO_2$	०.०४ (पू० नि० बि०)
ऑइलटार क्रियोजोट: प्रकार 'अ'	—	०.२
प्रकार 'ब'	—	१.० से ऊपर
और्थोक्लोरोफीनोल	C_6H_4ClOH	०.०३ से ०.०४
और्थोफीनाइलफीनौल	$C_6H_4OHC_6H_5$	०.०१ से ०.०२
फीनोल	C_6H_5OH	०.१ से ०.२
पैन्टाक्लोरोफीनौल	C_6Cl_5OH	०.००२
पैट्रोलियम (मृत्तैल)	—	१०.० से ऊपर
फीनाइल मर्करी ओलिएट	—	०.००२
सोडियम् कैप्रेट	$C_6H_{19}CO_2Na$	०.०१९
सोडियम् २,४-डाइनाइट्रोफीनोलेट	$C_6H_3(NO_2)ONaH_2O$	०.००५ से ०.००९
सोडियम् पैन्टाक्लोरोफीनोलेट	C_6HCl_5ONa	०.००२
सोडियम् २,३,४,६-टैट्राक्लोरोफीनोलेट	C_6HCl_4ONa	०.००२
२,३,४,६-टैट्राक्लोरोफीनोल	C_6HCl_4OH	०.००२
१,२,४-ट्राइक्लोरोबैन्जीन	$C_6H_3Cl_3$	०.००७
२,४,५-ट्राइक्लोरोफोनौल	$C_6H_2Cl_3OH$	०.००१ से ०.००२
वाटर गैस टार क्रियोजोट: (नं० २२३३)	—	६.५
:(न० २२३५)	—	०.६५
:(न० १६)	—	०.७
वुड टार क्रियोजोट	—	०.०२५ से ०.०५
कोमल काष्ठ का	—	०.५
कठोर काष्ठ का	—	०.१

(ख) कीटों के विरुद्ध—

काष्ठ-नाशक कीटो के विरुद्ध परिरक्षियो के विषालुता-मान-परीक्षणो का आरम्भ सन् १९३० के पश्चात् यूरोप मे हुआ। जर्मनी के अन्वेषण कर्ताओं ने इन परीक्षणों की विधियाँ निकाली। जिन सिद्धातो पर इस प्रकार के परीक्षण आधारित है वे निम्न-लिखित है।

(१) परीक्षण के लिए कीट एक ही उम्र के, बाल और स्वस्थ होने चाहिए।

(२) परीक्षण-जीव अधिक सख्या मे प्राप्त हो सके।

(३) परीक्षण-दशा, जैसे कि अनुकूल ताप, आर्द्रता इत्यादि ऐसी हो जिन्हे सर्वदा एक-सा रखना सम्भव हो सके।

(४) परीक्षण दुहराना सम्भव होना चाहिए।

(५) तुलना के लिए प्रमाप (मानक, 'स्टैन्डर्ड') परिरक्षी को प्रत्येक परीक्षण-माला मे शामिल रखना चाहिए।

परिरक्षियो मे तीन प्रकार के भेद किये गये है। एक तो पाचन-क्रिया मे विष का काम करते है, दूसरे श्वास-क्रिया मे और तीसरे सस्पर्श-क्रिया मे। पृथक्-पृथक् परिरक्षियो को परखने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की विधियाँ प्रयोग मे लायी गयी है।

सन् १९३२ के लगभग कामेसम् ने, जो वन-अनुसन्धानशाला, देहरादून के भूत-पूर्व काष्ठ-परिरक्षण अधिकारी थे, गेहूँ के आटे मे परिरक्षियो के विविध सकेन्द्रण मिलाकर सेवई बनायी। इन सेवइयो की ज्ञात मात्रा चौड़े मुँहवाली छोटी बोतलो मे ली गयी और गिने हुए प्रौढ छिद्रक कीट उनमे डाल दिये गये, इसके पश्चात् रुई की डाट से बोतले बन्द कर दी गयी। निश्चित काल पर इन बोतलों की सेवइयो का निरीक्षण किया गया और मरे हुए छिद्रक कीटो की सख्या गिनी गयी। न्यूनतम परिरक्षी का सकेन्द्रण, जिसमे सपूर्ण कीटो का मरण हुआ, वही उस रसायन का विषालुता-मान माना गया। इस प्रकार कई परिरक्षी रसायनों की जाँच की गयी।

जर्मनी मे इस प्रकार के परीक्षण काष्ठ-गुटिकाओ पर किये गये। काष्ठ-गुटिकाओं को भिन्न-भिन्न रासायनिक परिरक्षियो के सकेन्द्रण से उपचारित करने के पश्चात् उनमे छोटे-छोटे छिद्र बनाये गये और उनके अन्दर गिने हुए कीटों के डिम्भ डाले गये। ये गुटिकाएँ अनुकूल ताप तथा आर्द्रता पर निश्चित समय तक रखी गयी और तद-नन्तर कीटो के मरण से विषालुता-मान का निश्चय किया गया। इसी प्रकार दीमको के प्रति भी उनके आचरण के अनुकूल दशाओ का सयोग करने पर विषालुता-सीमा

ज्ञात की गयी । हर एक दशा मे अशोधित काष्ठ-गुटिकाएँ नियन्त्रण के लिए प्रयोग मे लायी गयी । सामुद्रिक कीटो पर भी इस प्रकार के परीक्षण किये गये, परन्तु उनकी जैविक परिस्थितियो के नियन्त्रण मे कठिनाइयाँ उत्पन्न होने के कारण उनके परिरक्षी का उतना अधिक विकास न हो सका, जितना छिद्रक कीट और दीमको के निरोधी परिरक्षियों का हुआ । तथापि इन परीक्षणो से विविध रासायनिक पदार्थो के बारे मे बहुमूल्य सूचनाएँ मिली है । इनसे यह पता लगा है कि बड़े पैमाने पर काष्ठ को वास्तविक सेवा-आयु प्रदान करने के लिए किन-किन परिरक्षियो का अनुभव प्राप्त करना आवश्यक है ।

(२) रासायनिक स्थायित्व

परिरक्षी का रासायनिक स्थायित्व ज्ञात करने के बारे मे कोई निश्चित प्रमाप विधियाँ नही है । कुछ कार्यकर्ताओ ने परिरक्षी से शोधित काष्ठ-गुटिकाओ को चलते हुए या कूपी (बोतल) मे रखे हुए पानी मे डालकर धावन किया, और धुले पानी मे रसायन-मात्रा का विश्लेषण इस लिए किया जिससे ज्ञात हो सके कि शोधित काष्ठ से परिरक्षी कितनी मात्रा मे धुलकर निकल जाता है, अर्थात् पानी का उद्विलयन[1] क्रिया पर कितना प्रभाव पड़ता है । इस प्रकार के परीक्षणो से यह सूचना मिलती है कि जल-प्रवाह द्वारा शोधित काष्ठ मे से परिरक्षी का लोप हो सकता है या नही । कभी-कभी ऐसे परीक्षण-चक्र प्रयोग मे लाये जाते है, जिनमें गर्मी, शुष्कता और उद्विलयन का प्रभाव शोधित काष्ठ पर क्रमश. पड़ता रहे, अर्थात् ऋतुक्रिया-जैसी दशा प्राप्त हो जाय । इससे भाप द्वारा परिरक्षी की उड़ान या घुलनशीलता का पता भी लग जाता है । कई कार्यकर्ताओ ने शोधित काष्ठ-गुटिकाओं की आरम्भ-कालीन और ऋतुक्रिया-परीक्षण-पश्चात्-कालीन विषालुता का निश्चयन किया, जिससे परिरक्षी के स्थायिता-गुणों के बारे मे उपयोगी सूचना मिल सके । परन्तु इस प्रकार के जितने भी परीक्षण प्रयोगशाला मे किये जाते है, उनसे परिरक्षियों के बारे मे वास्तविक और विश्वसनीय प्रभाविता का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नही हो सकता, कि किस तरह व्यवासायिक काष्ठ-परिरक्षण के पश्चात् शोधित काष्ठ को प्राकृतिक अवस्था मे नाशकारक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है । यह तभी हो सकता है जब शोधित काष्ठ को उपयुक्त आकार और स्थानों मे लगाया जाय ।

1 Leaching.

(३) खुले में वृद्धिगत ('एक्सीलरेटेड') परीक्षण, शवांगण परीक्षण ('ग्रेव-यार्ड टैस्ट्स्')

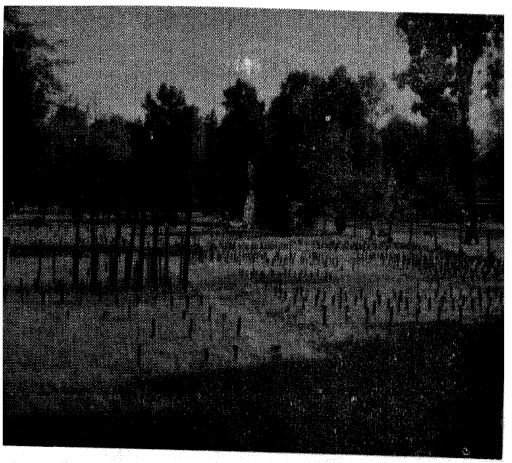
वृद्धिगत ('एक्सीलरेटेड') परीक्षण एक और प्रकार से भी किये जाते हैं। ये परीक्षण कुछ सीमा तक सेवा-कार्य में उपयोजित परीक्षणों के तुल्य हैं। इनमें लघु-स्थायी काष्ठों के टुकड़ों को परिरक्षोपचार के पश्चात् ऐसी भूमि में गाड़ा जाता है जहाँ कवक और कीटों द्वारा विनाश की अनुकूल दशा हो। सामुद्रिक कीटों के विरुद्ध परीक्षा के लिए काष्ठ-प्रादर्श समुद्र में डुबोये जाते हैं। तुलना के लिए इनके साथ-साथ अशोधित काष्ठ के टुकड़े भी लगाये जाते हैं। इनमें जो काष्ठ-प्रादर्श ('टिम्बर स्पेसीमैन्स्') प्रयुक्त किये जाते हैं वे छोटी टक्कर के होते हैं, जिससे प्रादर्श के संपूर्ण तल-क्षेत्रफल के आयतन के साथ उच्च अनुपात हो। ऐसा होने से काष्ठ-नाशक जन्तुओं का अधिक मात्रा में आक्रमण होता है और साथ ही साथ परिरक्षी को प्राकृतिक धावन और उड़न की अधिकतम दशा प्राप्त हो जाती है। छोटे प्रादर्श होने के कारण परिणाम भी शीघ्रता से मिल सकते हैं। कहीं-कहीं काष्ठ के प्रादर्श शल्कल ('विनियर्स') का टुकड़ों के आकार में प्रयोग करते हैं, जिससे कि परीक्षण के परिणाम और शीघ्र निकल सकें। छोटे गोल रसकाष्ठ के प्रादर्शों का भी बहुधा उपयोग किया गया। काष्ठ-नाशक जन्तु इस प्रकार के रसकाष्ठ के टुकड़ोंको अशोधित दशा में शीघ्र ही नष्ट कर देते हैं। जिन क्षेत्रों में ये परीक्षण किये जाते हैं उनको शवांगण ('ग्रेवयार्ड') कहते हैं, और इस प्रकार के परीक्षण शवांगण-परीक्षण कहलाते हैं। चित्र ३३ में वन-अनुसन्धान-शाला, देहरादून का काष्ठ-शवांगण दर्शाया गया है। सारणी १० में (वन-अनुसन्धान-शाला, देहरादून की काष्ठ-परिरक्षण शाखा के शवांगण में किये गये परीक्षणों पर आधारित कुछ परिरक्षी-निरीक्षण विवरण दिये गये हैं।

(४) सेवा-परीक्षण ('सर्विस टैस्ट्स्')

सेवा-परीक्षण में व्यवसाय योग्य काष्ठों को परिरक्षियों द्वारा शोधित करके वास्तविक उपयोग में लाते हैं। इन परीक्षणों में उपचारित काष्ठों को भिन्न-भिन्न प्रकार के उपयोगों में, जैसे कि रेलवे-स्लीपर, बिजली व तार के खम्भे, खानों के आधार-स्तम्भ, समुद्र-तीर के भरण-तट, पुल, गृह, बाड़-वल्ली इत्यादि सेवा-आयु-अपेक्षी कार्यों में विनियोजित किया जाता है। जितनी ही विविध प्रयोग-दशाएँ, खुले में रहने की अवधि और काष्ठ-अंश होंगे, उतने ही विश्वसनीय परीक्षण-परिणाम प्राप्त होंगे। इन परीक्षणों में काष्ठ-जाति, परिरक्षी-प्रकार, उपचार-विधियों,

(पृ० १४२ देखिए)

काष्ठ-परिरक्षण



चित्र ३३—वन-अनुसंधानशाला, देहरादून का काष्ठ-शवांगण, पृ० १३८।

सारणी–१०

वन-अनुसन्धानशाला की काष्ठ-परिरक्षण शाखा के अन्तर्गत शवागण ('ग्रेवयार्ड') मे परिरक्षियों पर किये गये कुछ परीक्षणों के प्रतिवेदन (रिपोर्ट)।

प्रादर्श–२ फुट × २ इंच × २ इंच, आयताकार { लगाने का दिनांक १७–३–१९३१ / निरीक्षण का दिनांक १७–२–१९५९

प्रत्येक जाति का १ प्रादर्श लिया गया

क्रमांक	काष्ठजाति	उपचार-विधा	परिरक्षी प्रचूषण (शुष्क लवण)		निरीक्षण समय पर प्रादर्शों की दशा।		
					उपचारित	अनुपचारित	
			पौंड प्रति घनफुट	किलोग्राम प्रति घनमीटर	अवधि वर्ष-मास	अवधि वर्ष-मास	
१	**पाइनस् लोंगीफोलिया**	निपीड	१.८२	२९.१२	अ० कि० (द)	न० (द)	०–७
२	**एडाइना कौर्डीफोलिया**	,,	१.१२	१७.९२	म० (द)	न० (द क)	०–७
३	**पीसिया मौरिन्डा**	,,	०.९२	१४.७२	न० (द) २२–१०	न० (द)	१–७
४	**एबिस पिन्ड्रो**	,,	१.७५	२८.००	म० (द)	न० (द)	०–४
५	**बौम्बैक्स मैलैबैरिकम्**	,,	१.७७	२८.३२	ब० (द)	न० (द)	०–७
६	**शाइलीचरा त्रीजुगा**	,,	२.१६	३४.५६	न० (द क) ११–८	न० (द क)	२–८
७	**टर्मिनेलिया टोमैनटोसा**	,,	०.६१	९.७६	न० (द क) ५–१०	न० (द)	२–८
८	**एल्बीजिया प्रोसीरा**	,,	१.७१	२७.३६	न० (क) १०–९	न० (द)	५–१०

परिरक्षी एस्क्यू (८ प्रतिशत)

प्रत्येक जाति के ६ प्रादर्श लिये गये { लगाने का दिनांक २४–७–१९३५
निरीक्षण का दिनांक १३–१–१९५९

१	पाइनस् लौंगीफोलिया	निपीड	०.८४	१३.४४	४ अ० कि० (द) २ कि० (द)	न० (द)	०–११
२	एबिस पिन्ड्रो	,,	०.९०	१४.४०	३ अ० कि० (द) ३ कि० (द)	न० (द)	४–५
३	पाइनस् इकसैल्सा	,,	०.८५	१३.६०	५ कि० (द) १ म० (द)	न० (द)	८–४
४	सीड्रस देवदारा	,,	१.१३	१८.०८	३ सा० ३ अ० कि० (द)	न० (द)	१३–११
५	टर्मिनेलिया माइरियोकार्पा	,,	१.२४	१९.८४	१ कि० (द) २ म० (द) १ ब० (द) १ न० (क) १४–५	न० (द)	१–२
६	डिप्ट्रोकार्पस् मैक्रोकार्पस्	(एस्क्यू ४ प्रतिशत से)	०.६२	९.९२	१ म० (द) १ ब० (द) कि० (क) ४ न० (द) १८–९	न० (द०)	१–८

परिरक्षी क्रियोजोट और इन्धन तैल (४०:६०)

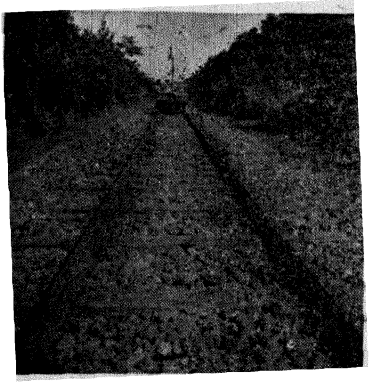
प्रत्येक जाति के २ प्रादर्श लिये गये { लगाने का दिनाक १६–२–१९३५.
निरीक्षण का दिनाक १३–१–१९५९.

१	पाइनस् लौंगीफोलिया	निपीड	६.८५	१०९.६०	१ म० (द) कि. (क)	न० (द)	०–११
२	एबिस पिन्ड्रो	,,	१३.१०	२०९.६०	{१ सा० {१ म० (द) कि (क)	न० (द)	४–५
३	पाइनस् इकसैल्सा	,,	१४.२५	२२८.००	{१ कि० (द) {१ अ० कि० (द)	न० (द)	८–४
४	सीड्रस् देवदारा	,,	९.४५	१५१.२०	{१ अ० कि० (द क) {१ कि० (द)	न० (द)	१३–११
५	टर्मिनेलिया माइरियोकार्पा	,,	५९०	९४.४०	२ न० (क) १४–४	न० (द)	१–२
६	डिप्ट्रोकार्पस् मैक्रोकार्पस्	,,	५.३५	८५ ६०	१ न० (क) १७–५ १ न० (क) १६–७	न० (द)	१–८

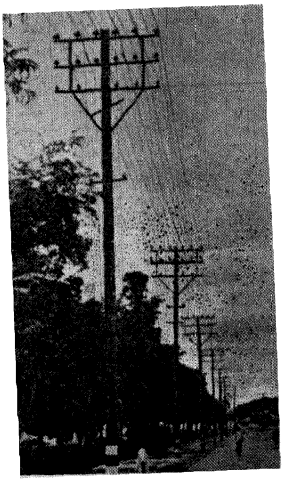
टिप्पण —

अ० — अति। म० — मध्यम। (द) — दीमक।
सा० — सामान्य। ब० — बहु। (क) — कवक।
कि० — किंचित्। न० — नष्ट।

परिरक्षी-प्रचूषण और प्रयोग तिथि के बारे में पूर्ण अभिलेख रखे जाते हैं। अमेरिका की काष्ठ-परिरक्षक संस्था ('अमेरिकन वुड प्रीजरवर्स एसोशिएसन्') इस बारे में पूर्ण सूचना रखती है और वहाँ इस प्रकार के कई परीक्षण चालू हैं। समय-समय पर उनके परिणामों के विवरण निकलते रहते हैं। भारतवर्ष में भी वन-अनुसन्धान शाला में इन परीक्षणों का अभिलेखन है। चित्र ३४, ३५ में शोधित काष्ठ के रेलवे स्लीपरों व बिजली के खम्भों पर हुए सेवा-परीक्षण दर्शाये गये हैं।



चित्र ३४–उपचारित काष्ठ स्लीपरों का सेवा-परीक्षण।

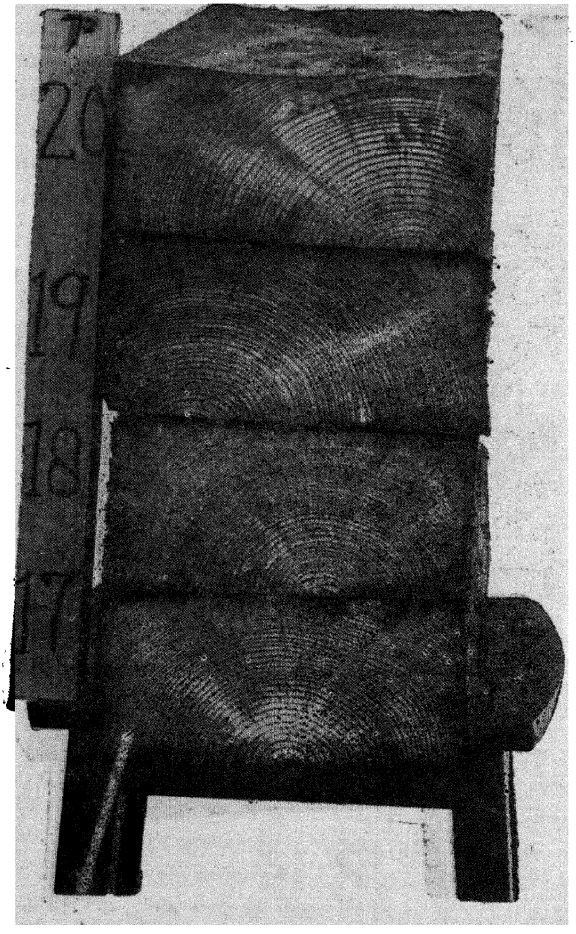


चित्र ३५–सेवा-कार्य में लगे हुए उपचारित काष्ठ खंभों का दृश्य।

(५) परिरक्षी प्रवेश्यता

व्यावहारिक दृष्टि से परिरक्षी की काष्ठ में अन्तः प्रवेशन योग्यता का निश्चयन ठीक प्रकार से किया जा सकता है। भिन्न-भिन्न परिरक्षियों के इस गुण की अर्हात्मक तुलना करने के लिए यथोचित काष्ठ-प्रादर्श और माप संयन्त्रों की आवश्यकता पड़ती है। काष्ठ-उपचार विधियों का भी प्रमापीकरण[1] करना पड़ता है। परिरक्षी ने कितनी गहराई तक प्रवेश किया है, यह काष्ठ को काटने या छिद्रण से विदित हो जाता है।

1 Standardisation प्रामाणिकीकरण, मानकीकरण।



चित्र ३७—परिरक्षी-प्रवेशन के कुछ दृश्य।

क्रियोजोट-जैसे तैल-परिरक्षी की, जिसका रंग गहरा होता है, प्रवेश-सीमा ज्ञात करना सरल है। अप्रांगारिक लवण परिरक्षियों का, जो रंगहीन होते हैं, प्रवेश-निश्चयन किसी ऐसे प्रतिकर्त्ता ('रिएजैन्ट') रसायन की सहायता से हो सकता है, जो इसके साथ मिलकर रंगीन प्रतिक्रिया कर सकें। ऐसे प्रतिकर्त्ताओं का विवरण सारणी ११ (परिशिष्ट १) में दिया गया है। काष्ठ में परिरक्षी-प्रवेशन के कुछ दृश्य चित्र ३६,३७ में दर्शाये गये हैं।

(६) अन्य गुणों (धातु-स्पर्श संरक्षण, अग्निरोधन, काष्ठशक्ति पर प्रभाव, इत्यादि) के परीक्षण

परिरक्षियों के विशेष लक्षणों अर्थात् धातु की संगति पर उसका संक्षारण, काष्ठ के अग्निरोधन गुण और शक्ति पर प्रभाव, रासायनिक स्थायित्व, काष्ठ-रूप में परिवर्तन, शोधित काष्ठ की बाह्यलेप-धारण-क्षमता और परिरक्षणकार्य में श्रमिकों के स्वास्थ्य पर प्रभाव इत्यादि के परीक्षण करने की विधियों का मापीकरण (केवल अग्निरोधन और शक्ति पर प्रभाव के तुलन के अतिरिक्त) करने के कुछ प्रयत्न किये गये हैं। प्रत्येक कार्यकर्त्ता ने अपनी पृथक्-पृथक् विधियों का प्रयोग किया है।

परिरक्षी के संक्षारण के कारण धातुओं पर कितना प्रभाव पड़ता है यह ज्ञात करने के लिए कुछ कार्यकर्त्ताओं ने धातु के स्वच्छ टुकड़ों को तोलकर परिरक्षी विलयन में डुबोये रखा। ये टुकड़े उसी धातु के थे जो उपचार-संयन्त्र में प्रयोग की जाती थी, जैसे कि लोहा या पीतल। कुछ समय पश्चात् उनको निकाल कर और स्वच्छ कर फिर तोला। भार में जो कमी हुई वह संक्षारण के कारण थी। शोधित काष्ठ का धातु के संस्पर्श में संक्षारण जानने के लिए लोहे या पीतल के पेचों को तोलकर काष्ठ के टुकड़ों में कस दिया। कुछ समय पश्चात् इनको भी निकाल कर और स्वच्छ कर पुन: तौल लिया। अत: इस प्रकार भार में संक्षारण के कारण हुई कमी का निश्चयन किया गया।

परिरक्षी का काष्ठ-शक्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका निर्धारण भी यथोचित परीक्षणों द्वारा किया जा सकता है। शोधित और अशोधित काष्ठ-प्रादर्शों को एक-सी ही आर्द्र-अवस्था में लाकर शक्ति-मापकयन्त्रों द्वारा उनका मान निकाला जाता है। काष्ठ की शक्ति आर्द्रता पर निर्भर रहती है। ज्यों-ज्यों आर्द्रता कम होती है, काष्ठ-शक्ति बढ़ती जाती है; अत: काष्ठ-प्रादर्शों को परीक्षा के पूर्व तुलना के लिए एक ही आर्द्रता पर लाना आवश्यक है। यह दशा प्राप्त होने के लिए काष्ठ-प्रादर्शों

को यथोचित समय तक प्रतिबन्धित कोष्ठो ('कन्डीशनिग चैम्बर्स') में रहने दिया जाता है जिससे कि उनकी आर्द्र-मात्रा प्रायः समान हो जाय क्योंकि शक्ति की तुलना तभी विश्वसनीय मानी जा सकती है। इस क्षेत्र मे कार्य-कर्त्ताओं ने भिन्न-भिन्न आकार के काष्ठ-प्रादर्शों का प्रयोग किया और परीक्षण-विधियो के लिए भी कई प्रकार के यन्त्रो का आयोजन किया है।

परिरक्षी-विनियोजन से मानव के स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका निर्णय करने के लिए कोई विशेष मापक विधियाँ प्रचलित नही है क्योकि जनता के लिए वे परीक्षण धारण अव्यवहार्य है। तथापि, परिरक्षी के काष्ठ-परिरक्षण कार्य मे प्रयोग के फलस्वरूप जो अनुभव प्राप्त हुआ है उसीसे इस विषय पर आवश्यक सूचना मिल सकती है। इसके अतिरिक्त प्रयोगशाला मे प्रयोग किये गये परिरक्षी का पशुओ के प्रति किलोग्राम भार पर घातक मात्रा के निश्चयन से और उनकी जीवन-क्रिया पर पड़े प्रभाव से यह ज्ञान प्राप्त हो सकता है कि मनुष्य के स्वास्थ्य पर उसका क्या प्रभाव पड़ेगा। यद्यपि इन विविध गुणो की परीक्षा करने के लिए किन्ही विशेष मापक विधियो का निर्धारण नही किया गया, फिर भी बुद्धिपूर्वक योजना-बद्ध कार्य से जो भी परीक्षण किये जायें उनसे अवश्यमेव अत्यन्त उपयोगी सूचना मिल सकती है।

४. परिरक्षियो प्रकार

लगभग डेढ़ शताब्दी पूर्व, जब से काष्ठ-परिरक्षियों के बारे मे ज्ञान प्राप्त हुआ, परिरक्षियो का उनके रासायनिक और भौतिक लक्षणो के अनुसार साहित्य मे उल्लेख है, परन्तु मुख्यतः उनका तीन प्रकारो मे वर्गीकरण किया गया है। वे है, (क) तैल रूप ('ऑइल टाइप्'),[1] (ख) जल-विलेय ('वाटर सौल्यूबुल')[2] रूप, और (ग) प्रागारिक विलायक ('ऑर्गेनिक सौल्वैन्ट')[3] रूप। इनका सविस्तर वर्णन नीचे दिया गया है।

(क) तैल-रूप परिरक्षी

इनमे मुख्यतः राल ('टार') तैल है और इनके विशेष गुण निम्न प्रकार से है—

(१) ये धावन-रोधी होते है, अर्थात् जल-क्रिया से शीघ्र नही धुल सकते। अतः एव ये उन काष्ठों के उपचार के लिए उपयुक्त होते है जिनका उपयोग बाह्य-कार्य, पानी अथवा भूमि मे गाड़ने आदि के लिए करना हो।

1 Oil Type. 2 Water Soluble. 3 Organic Solvent.

(२) धातु पर सक्षारण-क्रिया नही होती।

(३) इनसे उपचारित काष्ठों पर रग-लेप नही किया जा सकता।

(४) जिन वस्तुओ के सस्पर्श मे ये आते है उन पर फैलने की इनकी प्रवृत्ति होती है।

(५) इनमे तीव्र गन्ध होती है, जिसे खाद्य या अन्य पदार्थ थोडी बहुत मात्रा मे ग्रहण कर लेते है, भले ही इन्हे इनसे उपचारित काष्ठो के निकट सग्रह क्यो न किया गया हो।

(६) इनके द्वारा उपचारित काष्ठ आरम्भ मे अनुपचारित काष्ठ की अपेक्षा अधिक ज्वलनशील[1] होता है, परन्तु कुछ समय पश्चात् जब तैल का उड़नशील भाग भाफ बनकर उड़ जाता है तो फिर इनमे कोई विशेष ज्वलनशीलता नही रहती। इस बात का प्रमाण है कि क्रियोजोट द्वारा शोधित काष्ठ, अशोधित काष्ठ की अपेक्षा अधिक ज्वलनशील नही होता।

(७) इनके द्वारा उपचारित-काष्ठ बहुधा धूप मे रहने से उत्स्रवित ('ब्लीड्') होते है, अर्थात् तैल बाहर निकलकर काष्ठ के ऊपर बहता रहता है।

तैलरूपी परिरक्षियो के समूह मे वे उपसृष्ट पदार्थ ('उपजात या बाइ-प्रौडक्टस्') जो कोयला-आसवन ('डिस्टिलेशन') या कोलटार परिष्करण से प्राप्त होते है शामिल है। इनमे से कुछ ऐसे भी उपजात है जो काष्ठ-आसवन और जल-गैस से (जो घरेलू व्यावसायिक तापन-कार्य मे प्रयुक्त की जाती है) प्राप्त होते है। पैट्रोल-परिष्करणी ('पैट्रोलियम् रिफाइनैरीज्') से प्राप्त पदार्थ भी इनमे गिने जाते है। इन तैलो मे सैकडो प्रकार के रासायनिक सयोग है जिनका अभी तक निर्णय नही हो सका है। इनका अंश भी निर्माण के अनुसार पृथक-पृथक मात्रा मे होता है। इन परिरक्षियो के अधोलिखित नाम है —

कोलटार क्रियोजोट

सन् १८३८ से जब जौन बैथल ने काष्ठ-परिरक्षण के लिए' टार आइल' का ब्रिटिश पेटैन्ट लिया था, कोलटार क्रियोजोट एक प्रामाणित (मानकित) परिरक्षी[2] गिना जाने लगा है। आज लगभग १२० वर्ष से भी ऊपर हो चुके है जब से यह सामान्यत: हर प्रकार के काष्ठ-परिरक्षण के लिए प्रयोग मे लाया जाता है और उससे सतोष-

1 Inflammable. 2 Standard preservative.

जनक परिणाम निकले हैं। अमेरिकन काष्ठ-परिरक्षक संस्था की वार्षिक कार्यवाही रिपोर्ट में इस परिरक्षी के व्यावसायिक काष्ठ-परीक्षण कार्य हेतु उपयोग का सांख्यिक विवरण दिया जाता है। उदाहरणार्थ, सन् १९५५ में बिना मिलावट के लगभग १५ करोड़ गैलन कोलटार क्रियोजोट का उस देश में प्रयोग किया गया।

कोलटार क्रियोजोट जो व्यवसाय में क्रियोजोट नाम से ही प्रसिद्ध है, कोलटार के आसवन से बनाया जाता है। कोलटार, खनिज कोयला (अंगार) से कार्बनीकरण (कार्बोनाइजेशन') द्वारा प्राप्त होता है। तापन-गैस और धातुकार्मिक एवं घरेलू कोयला उत्पादन के हेतु कोयले का कार्बनीकरण किया जाता है। इस कार्बनीकरण से अन्य रासायनिक पदार्थ भी मिलते हैं और प्रमुख उद्योगों में इनकी भी गिनती है। कोलटार आसवन ('डिस्टिलेशन') से जो प्रभाग पहले निकलते हैं वे हल्के तैल ('लाइट-ऑइल्स्') कहलाते हैं और इस क्रिया के अन्त में जो शेष रहता है वह निराल ('पिच्') कहलाता है। इन दोनों पदार्थों के मध्य में (२००° सेन्टीग्रेड से ४००° सेन्टीग्रेड तक) उबलनेवाला जो तरल पदार्थ प्राप्त होता है वही क्रियोजोट तैल कहलाता है। इसमें सैकड़ों रासायनिक पदार्थ सम्मिलित हैं, पर मुख्यतः ये तीन वर्ग के होते हैं—(क) उदांगार ('हाइड्रोकार्बन्स्')[1], (ख) राल-अम्ल ('टार एसिडस्')[2] और (ग) राल-क्षार ('टार बेसेज')[3]। इन पृथक-पृथक वर्गों में निम्नलिखित रसायन सम्मिलित होते हैं—

(क) उदांगार में, बैन्जीन, टौल्वीन, जाइलीन, नैफ्थैलीन, फ्लोरीन, एन्थ्रसीन, इत्यादि, अधिक मात्रा में होते हैं।

(ख) राल-अम्ल में, फीनोल, क्रीजोल, जाइलीनोल, इत्यादि हैं, जो ५ प्रतिशत से कम मात्रा में हैं।

(ग) राल-क्षार में, पाइरीडीन, क्यूनोलीन, एक्रीडीन, इत्यादि हैं। ये भी राल-अम्ल से अधिक मात्रा में नहीं होते।

इन उपरि-लिखित सभी रसायनों के क्रियोजोट संयोजन से काष्ठ-नाशक कवक, कीट और सामुद्रिक छिद्रकों पर विषैला प्रभाव पड़ता है। क्रियोजोट एक स्थायी पदार्थ है और जल में नहीं घुलता। अतः इससे काष्ठ-परिरक्षण कार्य में अत्यन्त सफलता मिली है।

क्रियोज़ोट की विशिष्टियों में पूर्वोक्त संयोगों का यथार्थ अनुपात-मात्रा में होने

1 Hydrocarbons. 2 Tar Acids. 3 Tar Bases.

का उल्लेख नहीं है। केवल इतना ही प्रतिबन्ध लगाया गया है कि यह तैल कोलटार से प्राप्त होना चाहिए और इसके आपेक्षिक घनत्व व आसवन तापक्रम की सीमा निश्चित कर दी गयी है। इसमें जो बाह्य-मल पदार्थ पाये जाते हैं उनका भी सीमा-बन्धन कर दिया गया है। भारतीय मानक संस्था ने क्रियोजोट की जो विशिष्टि बनायी है वह निम्न प्रकार से है।

(१) आपेक्षिक भार (३८° सेन्टीग्रेड)—१.०३ से लेकर १.१० तक—सीमित मात्रा।

(२) जल-मात्रा, आयतन पर प्रतिशत, अधिकतम—२.०।

(३) बैन्जीन में न घुलनेवाले पदार्थ, भार पर प्रतिशत, अधिकतम—०.५०।

(४) आसवन प्रभाग भार पर प्रतिशत, अधिकतम—

२१०° सेन्टीग्रेड तक—५
२३५° सेन्टीग्रेड तक—३०
३१५° सेन्टीग्रेड तक—७५

३१५° सेन्टीग्रेड से ऊपर का शेष भाग मृदु हो, न कि चिपकनेवाला।

यह क्रियोजोट बहुधा उस कोलटार से प्राप्त होता है जो उच्च तापक्रम (१६००° सेन्टीग्रेड से २०००° सेन्टीग्रेड) प्रांगारण क्रिया से बना हो, परन्तु लघुतापक्रम (१०००° सेन्टीग्रेड से १४००° सेन्टीग्रेड) कार्बनीकरण से बने कोलटार से भी एक प्रकार का क्रियोजोट बनता है जिसे लघु-तापक्रम कोलटार क्रियोजोट कहते हैं। इसका प्रयोग विदेशों में (शीतोष्ण जलवायुवाले देशों में) किया गया है। इसके हल्के प्रभाग में (उड़नेवाले) तैलों की मात्रा अधिक होती है। अतः यह क्रियोजोट, भारत-जैसे उष्ण देशों के लिए उपयुक्त नहीं माना गया है, यद्यपि इससे बड़े पैमाने में परीक्षण नहीं किये गये हैं।

क्रियोजोट का पर्याप्त मात्रा में (लगभग ३,६०० टन प्रतिवर्ष) उत्पादन, शालीमार टार प्रौडक्टस् (१९३५) लिमिटेड, कलकत्ता, के उद्योग-केन्द्रों में होता है। अंगार आसवन, जिससे क्रियोजोट का उत्पादन होता है, एक प्रकार का प्रमुख उद्योग गिना जाता है। आर्थिक दृष्टि से भी क्रियोजोट का मूल्य यथोचित है।

एन्थ्रेसीन अथवा कार्बोलीनियम तैल भी उच्च आपेक्षिक भारवाले और उच्च उबलनेवाले क्रियोजोट हैं और भारतवर्ष-जैसे उष्ण प्रदेश के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं, पर इनमें अधिक ठोस पदार्थ रहते हैं जिनके कारण यह तैल काष्ठ के अन्तः-प्रवेशन के लिए सुविधाजनक नहीं हैं।

लिग्नाइट कोल से प्राप्त टार से भी एक प्रकार का क्रियोजोट बनाया जाता है जो लिग्नाइट टार क्रियोजोट कहलाता है। यह हल्का तैल है जिसका आपेक्षिक भार जल से कम होता है और टार-अम्ल की मात्रा अधिक होती है। इससे अभी तक परीक्षण नही किये गये है और हल्का तैल होने से इससे सतोषजनक परिणाम की आशा भी नही की जा सकती। 'वाटर-गैस' (जल-वाति) टार से भी एक प्रकार का क्रियोजोट बनाया जाता है। इसे वाटर-गैस-टार क्रियोजोट कहते है। यह कम प्रभावशाली होने के कारण प्राय. प्रयोग मे नही लाया जाता।

क्रियोजोट-कोलटार मिश्रण (५० प्रतिशत तक) का अमेरिका मे काष्ठ-परिरक्षण मे प्रयोग किया गया है। वहाँ यह अनुभव है कि इससे उपचार किये गये रेलवे-स्लीपरो मे फटन कम होती है यद्यपि शोधित काष्ठ के ऊपर इस तैल-मिश्रण के फैलने की अधिक आशका होती है। भारत मे इसका प्रयोग अभी तक नही किया गया, पर सामुद्रिक काष्ठ उपचार के लिए, वन-अनुसन्धानशाला ने इससे परीक्षण अभी आरम्भ किये है। वैसे कोलटार का भी बहुधा पृथक प्रयोग किया जाता है, पर यह गाढ़ा होने से काष्ठ की सतह पर शीघ्र नही सूखता और काष्ठ मे इसका प्रचूषण भी नही कराया जा सकता। इसी कारण केवल कोलटार से उपचारित काष्ठो के परिणाम सतोषजनक नही रहे।

सौलिग्नम् और क्रियोजैन्ट् भी स्वामि-काष्ठपरिरक्षी ('प्रोप्राइटरी वुड प्रीजरवेटिव्स्') है। ये उच्च उबालवाले क्रियोजोट हैं, और काष्ठ पर कूँची से लेप करने के लिए उपयुक्त है। क्रियोजैन्ट, शालीमार टार प्रौडक्टस् कम्पनी ने बनाया है।

काष्ठ-राल ('वुड-टार क्रियोजोट')

वुड-टार क्रियोजोट, काष्ठ आसवन से प्राप्त काष्ठ-राल से उसी प्रकार बनाया जाता है जैसे कि कोलटार क्रियोजोट कोलटार से। इसमे एसिटिक एसिड की मात्रा अधिक रहती है। यह कोलटार क्रियोजोट की अपेक्षा कम प्रभावशाली है और इससे लोहे के उपचार-सयन्त्रो पर सक्षारण भी अधिक होता है। सन् १९२८ के लगभग मैसूर वन-विभाग ने आइरन एन्ड स्टील वर्कस् से प्राप्त वुड-टार क्रियोजोट से व्यावसायिक काष्ठ-परिरक्षण किया था, पर लोह-संयन्त्रो के सक्षारण के कारण परिरक्षी को बदलकर कोलटार क्रियोजोट का प्रयोग करने लगे। इसका उत्पादन भी अत्यन्त कम है और जितना भी बनता है वह अन्य कार्य और औषधियो के लिए ही काम आता है।

'पेट्रोलियम ऑइल्स' (मिट्टी के तैल)

ये एक प्रकार के खनिज-तैल है। इनके कई नाम है जैसे, इन्धन तैल ('फ्यूयल ऑइल'), भ्राष्ट्र-तैल ('फर्नेस्-ऑइल') अपरिष्कृत-तैल, ('क्रूड ऑइल') और पीड-

ज्वाल-तैल ('डीजल ऑइल')। खनिज-तैल के परिष्करण ('रिफाइनिग') और आसवन क्रियाओ से ये भिन्न-भिन्न प्रभागो मे प्राप्त होते है। इन तैलो की काष्ठ-विनाश कारक विरोधी विषालुता क्रियोजोट की अपेक्षा अत्यन्त कम है, पर ये खनिज तैल, आर्द्रता-रोधी गुण प्रदान करने के कारण कुछ सीमा तक काष्ठ को सडने से बचा देते है। इन तैलो मे भी आधार तत्त्वो की भिन्नता के कारण परस्पर भेद होता है। जिनका मूल, 'एस्फल्ट' होता है उनमे सुरभि सयोग ('एरोमैटिक कम्पौन्डस्') अधिक मात्रा मे होते है जिससे वे विषालुतायुक्त हो जाते है। जिनका मूल 'पैरेफिन' (मृद्वसा) होता है उनमे स्नैहिक सयोग ('एलीफैटिक कम्पौन्डस') होते है जो अपेक्षाकृत कम विषैले है। कुछ वर्तमान परिष्करण उद्योगो मे भजन ('क्रैकिग') क्रिया से इन तैलों मे भारी परिवर्तन हो जाते है और इनसे सश्लिष्ट क्रियो-जोट ('सिन्थैटिक क्रियोजोट') बनाया गया है। इनसे कुछ अच्छे परिणाम निकले है। पर अभी इनका उत्पादन अधिक मात्रा मे नही हुआ है यद्यपि अमेरिका मे इन पदार्थो के कई एकस्व ('पेटैन्टस्') लिये जा चुके है। पतले मिट्टी के तैल से काष्ठ-छिद्रको को मारने मे सफलता प्राप्त हुई है, पर यह तैल स्थायी नही रहता और कुछ समय पश्चात् काष्ठ से उड जाता है। काष्ठ-परिरक्षण कार्य मे भी इस प्रकार के तैलों से काष्ठ की अभिज्वाल्यता बढने का भय है।

खनिज-तैलो का प्रयोग बहुव्ययी क्रियोजोट को मन्द करने के लिए किया जाता है। व्यवसायिक काष्ठ-परिरक्षण के लिए यह तेल ५० प्रतिशत तक क्रियोजोट मे मिलाये जाते है। इन तैलो का प्रयोग कुछ ठोस विषैले सयोगो को घोलने मे भी किया गया है जिससे कि काष्ठ मे ये सयोग व्यापित किये जा सके।

तैल पायस ('ऑइल इमल्शन्स्')

पानी में क्रियोजोट के पायस का प्रयोग, काष्ठ के अन्दर उसके व्यापन और तदनन्तर उपचारण-व्यय को कम करने के उद्देश्य से किया जाता है। विष-लवणो के खनिज-तैल द्वारा पायस बनाने का उद्देश्य लवणो को पानी मे अघुलनशील बनाने का है। यद्यपि इस प्रकार के परिरक्षी सगठन, काष्ठ-परिरक्षण कार्य मे लाये गये है, पर इनको तैयार करने की विधियाँ असुविधाजनक होने के कारण, व्यावसायिक काष्ठ-परिरक्षण मे सफलता नही मिली। पायस के लम्बे अवसर तक स्थायी न रहने और फट जाने के कारण, वह परिरक्षीय प्रयोजन के लिए उपयुक्त सिद्ध नहीं हुए।

(ख) जलविलेयरूप परिरक्षी

जो परिरक्षी पानी मे घोले जाते है, वे जल-विलेय परिरक्षी कहे जाते है। इनके दो वर्ग है। एक तो इनमे शुद्ध (अमिश्रित) जल-विलेय परिरक्षी है, और दूसरे स्थिर अथवा बद्ध (मिश्रित) जलविलेय परिरक्षी। चाहे ये किसी भी वर्ग के हो, इनके मुख्य गुण निम्न प्रकार से होते है।

(१) ये तैल-परिरक्षी से कम गाढ़े होते है, जिसके कारण इनसे काष्ठ के अन्तर्व्यापन मे सरलता होती है।

(२) ये बहुधा गंधहीन होते है।

(३) इनसे उपचारित काष्ठो के सूखने पर उन पर बाह्य-लेपन किया जा सकता है।

(४) ये काष्ठ अभिरञ्जन नही करते न सतह पर फैलते ही है।

(५) ये काष्ठ की अभिज्वाल्यता (ज्वलनशीलता) को नही बढ़ाते।

(६) ये परिरक्षी की अपेक्षा सस्ते होते है, और चूर्ण रूप मे होने के कारण इन्हे इधर-उधर ले जाने मे सुगमता होती है।

(७) यद्यपि शुद्ध (अमिश्रित) लवण पानी मे घुलनशील होने के कारण अन्दर के कार्य के लिए उपयुक्त होते है, पर स्थिर (मिश्रित) वर्ग-वाले परिरक्षी लवण बाहर (खुले मे) और अन्दर, अर्थात् दोनो कार्यो के लिए योग्य समझे गये है, चाहे उनसे उपचारित काष्ठ भूमि के सस्पर्श मे हो अथवा पानी के।

(८) इनसे उपचारित काष्ठो को पुनः सुखाना आवश्यक होता है, और इसलिए अत मे काष्ठ-भार, तैल द्वारा उपचारित काष्ठ की अपेक्षा, हल्का रहता है।

(९) इनमे कुछ ऐसे भी परिरक्षी है जो काष्ठ की पेटियो के उपचार के लिए उपयोगी सिद्ध हुए है क्योकि इनमे सचित खाद्य-पदार्थ दूषित नही हो सकते।

(१०) ये हरे अथवा शुष्क, सभी प्रकार के काष्ठो के उपचार के लिए उपयुक्त है।

जल-विलयन परिरक्षी मुख्यतः अप्रागारिक लवण होते है। इनका वर्णन अधो-लिखित प्रकरणो मे दिया गया है--

(१) शुद्ध (अमिश्रित) जल-विलेय परिरक्षी

आर्सेनिक (संखिया या नैपालिक)

कई वर्षो से आर्सेनिक के यौगिक परिरक्षी के रूप मे प्रयुक्त किये जा रहे है। आर्सेनिक के जारेय ('आर्सेनिक औक्साइड') का उपयोग बहुधा अकेले या अन्य लवणो के साथ काष्ठ-परिरक्षण कार्य में किया गया है।

कच्ची धातुओ के विधायन मे आर्सेनिक एक उपजात पदार्थ है और इसका उत्पादन बहुत बडी मात्रा मे स्वीडन और पश्चिमी सयुक्त राज्य अमेरिका मे होता है।

आर्सेनिक यौगिक काष्ठ-नाशक अभिकर्त्ताओ के प्रति अत्यन्त ही विषैले होते है। इनमे दीमको को मारने की शक्ति विशेषतः अत्यधिक होती है। मानव और पशुओ के लिए भी ये विष है। अतः इनके प्रयोग-काल मे सावधान रहने की आवश्यकता है यद्यपि इनके द्वारा न तो मनुष्य के मरण का विशेष सकेत ही मिला है और न गृह-निवासियो को, जहाँ इससे उपचारित काष्ठ प्रयुक्त किये गये, कोई हानि होने की सूचना ही मिली है।

भारतवर्ष मे सन् १९११ से १९१६ तक परीक्षणार्थ काष्ठ के कुछ रेलवे-स्लीपर 'पौवेल विलयन' से उपचार करने के पश्चात् रेलवे लाइनो मे लगाये गये। जिन काष्ठो का उपचार किया गया वे अल्प-स्थायी चीड़, कैल और सैन जाति के थे। 'पौवेल विलयन' मे 'आर्सेनिक ट्राइ औक्साइड' और शीरे को पानी मे घोला गया था। उन शोधित स्लीपरो से अच्छे परिणाम (८क) निकले है, और मुख्य लाइनो मे २० वर्ष से ऊपर की ही औसत आयु उन्हे प्राप्त हुई है।

आर्सेनिक के बहुत-से एकस्वी-कृत परिरक्षी सगठनो मे प्रयोग का वृत्तान्त आगे दिया गया है।

कॉपर सल्फेट (ताम्र शुल्बीय-नीला थोथा)

कॉपर सल्फेट् का परिरक्षी के रूप मे प्रयोग फ्रास और अन्य यूरोपीय देशो मे १०० वर्ष से भी अधिक पूर्व किया गया था। यह काष्ठ-नाशक कवको के प्रति अत्यन्त प्रभावशाली है। इसके प्रयोग मे यह असुविधा है कि इससे लोह-सयन्त्रो का सक्षारण होता है और यह शीघ्र ही घुलकर काष्ठो मे से निकल जाता है।

इसका प्रयोग 'बूशरी' प्रक्रिया से हरी काष्ठ बल्लियो के उपचार के लिए फ्रांस और जर्मनी मे अधिकतर किया गया और उससे अच्छे परिणाम निकले। 'बूशरी' प्रक्रिया मे केवल ताँबा, रबर और काष्ठ काम मे लाये गये और लोह उपकरण का

त्याग कर दिया गया । इसका उपयोग पानी मे बहुधा १ प्रतिशत से लेकर ४ प्रतिशत तक घोल बनाकर किया जाता है।

जिस पानी मे कैलशियम या मैगनीशियम के लवणों की मात्रा हो उसका नीले थोथे के घोल बनाने मे प्रयोग नही किया जा सकता क्योकि इनके कारण कौपर सल्फेट का अन्य अघुलनशील लवणो मे परिवर्तन हो जाता है जिसके कारण यह रसायन अक्रियाशील हो जाता है। जिस धरती पर एमोनिया या चूना हो वहाँ भी कॉपर सल्फेट द्वारा उपचारित काष्ठ असफल रहे है।

कॉपर सल्फेट के क्रोमियम लवणो के साथ मिश्रण का बहुत-से स्वामि-परिरक्षी संगठनो मे प्रयोग किया गया है। इस प्रकार के मिश्रण से धातु पर सक्षारण भी नही होता और धावन क्रिया द्वारा लोप हो जाने की सम्भावना भी नही रहती। अगले प्रकरणो मे इस प्रकार के सगठनो का वर्णन किया गया है।

मरक्यूरिक क्लोराइड—करोसिव् सब्लिमेट (पारद नीरेय)

इस रसायन के काष्ठ-परिरक्षण मे प्रयोग का अभिलेखन सन् १७०५ से है। १८३२ मे जौन क्यान नामक वैज्ञानिक ने इग्लैंड मे इसका एकस्वीकरण किया था, और इस परिरक्षी विलयन मे काष्ठ को डुबाने की प्रक्रिया को कायैनाइजिग नाम दिया गया है। सन् १८४८ मे सयुक्त राज्य अमेरिका मे लोवल नामक स्थान पर इस प्रक्रिया से काष्ठ उपचारण के लिए व्यावहारिक सयन्त्र खोला गया जो १९३८ तक चलने के पश्चात् बन्द कर दिया गया ।

मरक्यूरिक क्लोराइड एक विषैला पदार्थ है। इससे लोह मे सक्षारण होता है और यह मनुष्यों के लिए घातक विष भी है। इस कारण इसका प्रयोग सीमित मात्रा मे ही हुआ। सन् १९२६ मे जर्मनी मे एक सक्षारणरोधी लेप को लोह-उपचारण संयन्त्र मे लगाकर और काष्ठ-ठेला गाड़ियो को उपचार प्रभार के लिए प्रयोग कर व्यावसायिक काष्ठ-शोधन कार्य किया गया। सन् १९३६ मे भी चैकोस्लोवाकिया मे निपीड विधि से इस रसायन द्वारा काष्ठ-शोधन किये जाने का अभिलेख मिलता है। इससे उपचारित काष्ठ खम्भों की आयु जर्मनी मे १४½ वर्ष से १६½ वर्ष तक रही जब कि क्रियोजोट द्वारा उपचारित काष्ठ-खम्भो की औसत आयु २३ वर्ष की थी। इस परिरक्षी के प्रायः १ प्रतिशत भाग का पानी मे घोल बनाकर उपयोग किया जाता था । इस रसायन की प्रवृत्ति भी काष्ठ से पानी मे घुलकर निकल जाने की थी और इसका मूल्य भी अपेक्षाकृत अधिक था । अतः इसका प्रयोग सीमित ही

रहा, यद्यपि अन्य रसायनों के साथ इसके मिश्रण को सक्षारण और धावन-रोधी बनाने के उद्देश्य से परीक्षण किये गये। ऐसे सगठनों का एकस्वीकरण ब्रिटिश सयुक्त राज्य मे किया गया।

सोडियम् फ्लोराइड

यह परिरक्षी सयुक्त राज्य अमेरिका मे सन् १९१४ मे परीक्षणार्थ प्रयुक्त किया गया, और उसके थोड़े ही समय पश्चात् रेलवे और खान के स्लीपरों तथा अन्य प्रकार के काष्ठ के उपचार के लिए काम मे लाया जाने लगा। यूरोप मे बहुत काल तक यह प्रयोग बिना किसीके साथ मिश्रण किये जानेवाले लोकप्रिय परिरक्षियो मे एक था। यह कवको के प्रति अति प्रभावशाली है, और इससे धातुओं का सक्षारण भी अधिक नही होता।

यह भारी पानी और चूने के सस्पर्श पर निस्सादित हो जाता है। इस कारण इसका परिरक्ष प्रभाव भी कम हो जाता है। इसका विषालुमान जिन्क क्लोराइड के समान है, पर महँगा होने के कारण इसका उतना अधिक प्रयोग नही किया जाता जितना कि जिक क्लोराइड का। यह जल द्वारा काष्ठ पर से धुल जाता है, अतः आन्तरिक काष्ठों के उपचार के लिए उपयुक्त है। पानी में ४ प्रतिशत तक इसका घोल उपचार के लिए पर्याप्त होता है। यह जिक क्लोराइड की तरह आर्द्रताग्राही[1] नही होता, अतः थैलियों मे बिना गीला हुए ही परिवहित किया जा सकता है। परिरक्षी के लिए यह एक सुविधाजनक गुण है।

निकट पूर्व-काल मे क्रोमियम लवणों के साथ इसके कुछ ऐसे संयुक्त सगठनों का विकास हुआ है जिनके कारण इसमे जल-रोधी और स्थायी गुण आ जाते हैं।

जिक क्लोराइड

जिक क्लोराइड को भी १०० वर्ष से ऊपर परिरक्षी के रूप मे प्रयुक्त होते हो गये है। सन् १८३८ मे विलियम वर्नेट नामक वैज्ञानिक ने इंग्लैंड मे इसका एकस्वीकरण कराया था। इसका प्रयोग यूरोप मे इतना नही हुआ जितना संयुक्त-राज्य अमेरिका मे, पर वहाँ भी इसकी कई त्रुटियो के कारण इसका प्रयोग कम होता जा रहा है।

जिक क्लोराइड से कई लाभ है। यह अल्प-मूल्य का है। इससे शोधन करने के पश्चात् काष्ठतल स्वच्छ रहता है और तदनन्तर उस पर बाह्य-लेप किया जा सकता

1 Hygroscopic.

है। उपचार-संयन्त्रो मे इस परिरक्षी का व्यवहार भी सुविधाजनक है। इसमे अग्नि-रोधक गुण भी हैं, और इससे उपचारित होने पर काष्ठ अग्निरोधी भी बन जाता है।

यह भी सोडियम् फ्लोराइड की तरह काष्ठ से पानी द्वारा धुल जाता है अथवा उद्विलयित हो जाता है। काष्ठ-उपचार के लिए लगभग ४ से ६ तक प्रतिशत इसका घोल पानी मे बनाया जाता है। यह हवा से आर्द्रता ग्रहण कर लेता है और इसी आर्द्रताग्राही गुण के कारण इसको बन्द पात्रो मे रखा जाता है। यह बहुधा गाढ़े विलयन (५० से ७० प्रतिशत तक) के रूप मे मिलता है। इसके विलयन के लिए थोडी मात्रा मे अम्ल की आवश्यकता पडती है जिससे तलछट नही रहती।

इसके द्वारा काष्ठ-उपचार की विधि 'कार्ड' विधि कहलाती है। इस विधि में क्रियोजोट के साथ इसके मिश्रण को काष्ठ मे व्याप्त किया जाता है। कभी-कभी इससे उपचारित होने के पश्चात् काष्ठ का क्रियोजोट से पुनः शोधन किया जाता है जो एक प्रकार से द्वि-प्रक्रिया है। उद्विलयन ('लीचिग') से रक्षा करने के लिए अन्य तैल (पैट्रोलियम् तैल) से भी पश्च-उपचार किया जाता है।

सन् १९११–१६ के परीक्षणो मे वन-अनुसन्धानशाला ने कुछ रेलवे-स्लीपरो पर जिक क्लोराइड और तैल के मिश्रण द्वारा सेवा-आयु निर्णयन के लिए कुछ उपचार किये थे। इससे आयु की (८ ख) कुछ वृद्धि तो अवश्य हुई, पर अधिक वर्षावाले स्थानों मे कुछ सतोपजनक परिणाम नही निकले।

इस परिरक्षी का क्रोमियम् लवणो के साथ संयुक्त सगठन धुलने से बचाव करने के लिए किया गया।

जिंक सल्फेट्

दक्षिणी अफ्रिका की खानों मे जिक सल्फेट द्वारा उपचारित काष्ठों से अच्छे परिणाम निकले। वहाँ यह रसायन, अयस्क-विधायन ('ओर प्रोसैसिग') क्रिया से प्राप्त एक उपसृष्ट पदार्थ था और मितव्ययी होने के कारण प्रयोग मे लाया जाता था। बाद मे अन्य लवणो के साथ विशेषतः सोडियम् फ्लोसिलिकेट के साथ इसका मिश्रण कर निपीड क्रिया द्वारा खान-काष्ठो के उपचार के लिए काम मे लाया जाने लगा। जहाँ यह रसायन प्रचुर मात्रा मे मिले वहाँ इसका उपयोग लाभप्रद हो सकता है।

सिलिकोफ्लोराइडस्

हाइड्रोफ्लोसिलिसिक् अम्ल के मैग्नीशियम्, जिन्क और सोडियम् के लवण, परिरक्षी के रूप मे प्रचलित हैं। यह लवण काष्ठ-नाशक अभिकर्त्ताओ के प्रति पर्याप्त

विषालु हैं, पर लोह-संयन्त्रों का इनके कारण संक्षारण होने से इनका अधिकतर प्रयोग नहीं किया जाता। इन रसायनों के कई ऐसे एकस्वी-सगठन है जिनका परिरक्षण-कार्य मे उपयोग हुआ है। ये अपेक्षाकृत अल्प-जलविलेय पदार्थ है।

बोरिक एसिड (टांकिक अम्ल) और बोरैक्स (सुहागा)

आस्ट्रेलिया मे बोरिक अम्ल **लिक्टस्** प्रजाति के छिद्रक कीटो का नाश करने मे प्रभावशाली सिद्ध हुआ है, विशेषत. उन काष्ठो के उपचार के लिए जिनमे रस-काष्ठ हों। बोरिक अम्ल पृथक ही या सुहागे के साथ मिलाकर अन्त.प्रयुक्त काष्ठो (जैसे उपस्कर एव भवन-निर्माण काष्ठ) के उपचार के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ है। ये जल-विलेय पदार्थ है और लौह-आधान मे सक्षारण के कारण प्रयोग नही किये जा सकते।

सोडियम् पैन्टाक्लोरोफीनेट

इस रसायन से काष्ठ-उपचारण करने के पश्चात् हवा मे कार्बन-डाइ-ऑक्साइड (प्रांगार द्विजारेय) से क्लोरीनेटेड फीनौल (नीर-दर्शव) जो तीव्र-विष है, पृथक् हो जाते है। क्लोरीनेटेड फीनौल जल मे अघुलनशील है, अतः स्थायी रहने के कारण अन्य जल-विलेय परिरक्षियों की अपेक्षा अधिक काल तक सक्रिय रहते है। सोडियम् पैन्टाक्लोरोफीनेट काष्ठ को अभिरञ्जक कवको से दाग लगने से बचाता है। इसीलिए संशोषण काल मे नील-वर्ण दाग उत्पन्न होने से अस्थायी काष्ठो की रक्षा के हेतु इस रसायन का जल-विलयन अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। काष्ठ को इसके १ प्रतिशत पानी के घोल मे डुबोने मात्र से ही पर्याप्त समय तक काष्ठ-अभिरञ्जन-रोधन मे सफलता प्राप्त हुई है।

निकल (रूपक) लवण

यद्यपि इस रसायन से बड़े पैमाने पर परीक्षण नही किये गये, तथापि जितने भी परिणाम प्राप्त हुए है वे आशाजनक है, विशेषतः तब जब इन्हे सखिया से सयुक्त किया गया हो। यदि टकशाला ('मिन्ट') परिष्करणी मे ये अधिक मात्रा मे लघु-व्यय-उपजात रूप मे प्राप्त हो सके तो सशोधन के पश्चात् ये उपयोगी परिरक्षी सिद्ध हो सकते है।

(२) बद्ध-रूप (मिश्रित) जल-विलेय परिरक्षी

पूर्वोक्त सरल रासायनिक परिरक्षियों को क्रोमियम (वर्णातु) सयोगो के साथ मिलाने से बहुधा बद्ध-रूप परिरक्षी का सगठन होता है। इस प्रकार से मिश्रण करने

का उद्देश्य यही है कि इनसे काष्ठ-उपचार होने के पश्चात् विषालु-रसायन जल में अघुलनशील बन जाते हैं। ऐसे रसायन-सगठनों का मुख्यतः एकस्वीकरण किया गया है और अधिकांश मे ये ही असली स्वामि-परिरक्षी हैं। ये निम्न प्रकार के होते हैं—

एस्क्यू (कौपर-क्रोम-आर्सेनिक मिश्र)

भारतवर्ष मे सन् १९३३ मे एस० कामेसम ने जो काष्ठ परिरक्षण शाखा, वन-अनुसन्धान शाला, देहरादून, के भूतपूर्व कार्यभारी अफसर थे इस परिरक्षी-सगठन का एकस्वीकरण किया था। इसकी रचना इस प्रकार है—

आर्सेनिक पैन्टोक्साइड् ($As_2O_5 \cdot 2H_2O$) १ भाग,

कॉपर सल्फेट् ($CuSo_4 \cdot 5H_2O$) ३ भाग,

पौटेशियम अथवा सोडियम डाइक्रोमेट (K_2 या $Na_2Cr_2O_7$) ४ भाग।

उक्त रसायनो का मिश्र लेकर ४ से ८ प्रतिशत तक पानी के घोल मे प्रयोग किया जाता है। इस मिश्र मे क्रोमियम लवण का कार्य विषालु आर्सेनिक और कॉपर लवणों को काष्ठ मे स्थिर अथवा बद्ध करना है। इसके अतिरिक्त क्रोमियम लवण धातुओं को कॉपर सल्फेट द्वारा सक्षारित होने से भी बचाते है। इस परिरक्षी मिश्र[1] के जल-विलयन को उच्च तापक्रम पर (४०° सेन्टीग्रेड से ऊपर) गरम करने से निस्सादन[2] होने लगता है, अतएव इसको वायुमडलीय ताप पर ही उपचारित किया जाता है।

काष्ठ को उपचार के पश्चात् हवा मे ३ या ४ सप्ताह तक सूखने दिया जाता है और तदनन्तर पूर्वोक्त रसायन काष्ठ मे बद्ध हो जाते है और जल मे परिच्युत नहीं किये जा सकते अर्थात् जल में वे अघुलनशील बन जाते हैं। इसी कारण विष-रसायनों का प्रभाव कालान्तर तक बना रहता है। यदि इस रसायन से उचित प्रकार से निपीड क्रिया द्वारा काष्ठ-शोधन किया जाय और यथोचित मात्रा मे इसका काष्ठ में प्रचूषण कराया जाय तो अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकते है। बाहर खुले मे प्रयोग किये जानेवाले काष्ठों के उपचार के लिए यह परिरक्षी विशेषतः उपयुक्त है। इसका एकस्वीकरण सयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन मे भी हो चुका है। अमेरिका मे यह ग्रीनसौल्ट (हरा-लवण) नाम से प्रसिद्ध है। सयुक्त राज्य अमेरिका में बेल टेलीफोन लेबोरेटरीज ने एस्क्यू पर कई परीक्षण किये है। वहाँ कई परिपत्र प्रकाशित हुए है जिनमे इन परीक्षणों के परिणाम दिये हुए है। उनसे यही पता चलता है कि यह परिरक्षी वहाँ सफल रहा है।

1 Composition. 2 Precipitation अवक्षेपण।

भारतवर्ष में भी सन् १९३४ से लेकर वर्तमान समय तक काष्ठ-परिरक्षण क्षेत्र में बड़े और छोटे पैमाने पर इस परिरक्षी से जितने भी परीक्षण किये गये हैं वे भारतीय वन-प्रकाशन के रूप मे प्रकाशित हो रहे हैं। इसमे इस परिरक्षी द्वारा शोधित काष्ठ पर जितने भी परिणाम निकले है उनका पूर्ण विस्तार से विवरण दिया गया है। इनसे यही संकेत मिलता है कि यदि एस्क्यू उचित मात्रा मे प्रचूषण कराया जाय तो उससे पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती है। एस्क्यू-शोधित काष्ठ खम्भो का सर्वप्रथम बड़े पैमाने पर सेवा-परीक्षण ट्रावन्कोर (अब केरल) राज्य मे आरम्भ हुआ। २० वर्ष उपरान्त अब भी ये शोधित खम्भे अच्छी दशा मे है, जब कि अशोधित खम्भे थोडे ही समय मे (२ या ४ वर्ष के अन्दर ही) नष्ट होते रहे। समुद्र-जल मे भी एस्क्यू शोधित काष्ठ-प्रादर्श सामुद्रिक कीटों के आक्रमण से कई वर्षो तक सुरक्षित रहे। समुद्र में काष्ठ-विनाशकारक परिस्थितियाँ अत्यन्त उग्र रहती है और तीव्र विष-रसायन भी वहाँ असफल रहे।

एस्क्यू एकस्वीकृत परिरक्षी है, पर भारत सरकार बिना अधिकारशुल्क[1] दिये ही इसका प्रयोग कर सकती है। सर्वश्री एस्क्यू वुड प्रौड्क्टस्, कलकत्ता, इस परिरक्षी के एक मात्र निर्माता है।

सैल्क्यूर (कॉपर-क्रोम मिश्र)

इस परिरक्षी का आविष्कार स्कॉटलैंड मे सन् १९२७ मे गन् ने किया। तभी ब्रिटेन मे इसका एकस्वीकरण हुआ। आरम्भ काल मे इसमे कॉपर सल्फेट और सोडियम् या पौटेशियम् डाइक्रोमेट, लगभग बराबर मात्रा मे मिश्रित किये गये थे, और इस प्रकार मिलाने से जो जल-विलयन मे निस्साद या तलछट ('प्रेसीपिटेट्') हो जाता था, उसको घोलने के लिए थोडा एसीटिक अम्ल डाला जाता था। उसके पश्चात् शनैः-शनैः इस मे सुधार किया गया और एसिटिक अम्ल के स्थान पर क्रोमिक अम्ल मिलाया गया, और कुछ समय बाद क्रोमियम एसिटेट का प्रयोग होने लगा।

सन् १९५० में इसका संगठन इस प्रकार था—

कॉपर सल्फेट ($CuSO_4 \cdot 5H_2O$)	५० भाग,
सोडियम डाइक्रोमेट ($Na_2Cr_2O_7 \cdot 2H_2O$)	४७.५ भाग,
क्रोमिक एसिड (CrO_3)	१.६८ भाग,
(जो २.५ भाग सोडियम् डाइक्रोमेट के तुल्य है)	

बहुधा इसका ४ से ५ प्रतिशत भाग पानी के घोल मे प्रयुक्त किया जाता है।

1 Royalty.

वन-अनुसन्धान शाला, देहरादून, के परीक्षणो मे इस परिरक्षी से भी अच्छे परिणाम निकले है ।

आज कल इसी प्रकार का एक नया परिरक्षी 'कुक्रोम' नाम से बेचा जा रहा है। यह मेसर्स किनलैब, कलकत्ता से मिल सकता है ।

कॉपर-क्रोम बोरिक मिश्र

यह परिरक्षी एस्क्यू का ही एक प्रकार है जिसमे आर्सेनिक के स्थान पर उसका १ ५ गुना बोरिक अम्ल मिलाया जाता है। इसका सगठन इस प्रकार है—

बोरिक एसिड	१.५ भाग,
कॉपर सल्फेट	३ भाग,
सोडियम डाइक्रोमेट	४ भाग ।

इसके निर्माता भी मेसर्स ऐस्क्यू वुड प्रौडक्टस् है । आर्सेनिक की अनुपस्थिति मे यह इतना प्रभावशाली नही हो सकता जितना कि एस्क्यू, यद्यपि इस पर महानुमाप (बड़े पैमाने के) परीक्षण आरम्भ नही किये गये है ।

'धौलडौन' लवण (जिंक-कॉपर-क्रोम-आर्सेनिक मिश्र)

इसमे एस्क्यू के सयोग के अतिरिक्त जिक के लवण (जिक सल्फेट) भी हैं। इसका आविष्कार सन् १९३८ के लगभग स्वीडन मे हुआ और तदनन्तर इसका एकस्वीकरण भी किया गया। देहरादून की वन-अनुसन्धान शाला के लघु-अनुमाप[1] (छोटे पैमाने के) परीक्षणो मे इससे अच्छे ही परिणाम निकले है, पर अभी तक इनको थोडा ही समय हुआ है, और पर्याप्त अनुभव एवं सेवाकाल के बाद ही इसके बारे मे निर्णय किया जा सकता है ।

क्रोमेटेड जिंक क्लोराइड

जिक क्लोराइड को पानी मे घुलने से बचाने के लिए उसमें न्यूनतम २० प्रतिशत के लगभग सोडियम् डाइक्रोमेट डाला जाता है । अतः क्रोमेटेड जिक क्लोराइड द्वारा उपचारित काष्ठ नम स्थानो के लिए उपयुक्त है । इस सगठन का प्रायः ६ से लेकर ८ प्रतिशत तक जल विलयन काष्ठ-उपचार के लिए प्रयोग किया जाता है । इसको ७०° सेन्टीग्रेड से ऊपर गरम करने पर निस्सादन होने लगता है । यद्यपि इसका एकस्वीकरण नही हुआ है, पर कुछ ऐसे क्रोमियम ट्राइऑक्साइड व अन्य अम्ल संयोगों

1 Small scale.

के इस परिरक्षी संगठन मे मिश्रण का, निस्सादन को बचाने के लिए, अमेरिका मे एक-स्वीकरण किया गया है।

एक और एकस्व-परिरक्षी इस क्रोमेटेड-जिक-क्लोराइड मे कॉपर क्लोराइड मिलाने से बना है। इसका नाम कॉपराइज्ड्-क्रोमेटेड-जिक क्लोराइड है। इसका सूत्र इस प्रकार है—

कौपर क्लोराइड	७ प्रतिशत,
जिक क्लोराइड	७३ प्रतिशत,
सोडियम् डाइक्रोमेट	२० प्रतिशत।

यह साधारण क्रोमेटेड जिक क्लोराइड से अधिक प्रभावशाली बतलाया गया है क्योकि इसमे ताम्र है, पर भारत मे एतद्विषयक अनुभव अभी तक प्राप्त नही है।

'वुलमन' लवण (फ्लोराइड-फीनोल मिश्र)

इसी परिरक्षी मिश्र का आविष्कार वुलमन ने जर्मनी मे सन् १९०७ के लगभग किया। आरम्भ मे उसने खनिज-काष्ठ के उपचार के लिए फ्लोरीन के लवण प्रयोग किये, पर वाद मे उसने अन्य लवणो को जैसे, डाइनाइट्रोफीनोल, सोडियम्-हाइड्रोजन-आर्सिनेट, सोडियम क्रोमेट मिलाकर सुधारा। अब यह कई नामो से प्रसिद्ध है, जैसे टैनैलिथ, ट्रायोलिथ, इत्यादि। सन् १९३४ मे जिस सगठन का अमेरिका मे एकस्वीकरण किया गया वह इस प्रकार है—

सोडियम् फ्लोराइड	२५ प्रतिशत,
सोडियम् हाइड्रोजन आर्सिनेट	२५ प्रतिशत,
सोडियम् क्रोमेट	३७ ५ प्रतिशत,
डाइनाइट्रोफीनोल	१२ ५ प्रतिशत।

यद्यपि मन्द-जलवायु वाले यूरोपीय देशो मे इस परिरक्षी से अच्छे परिणाम निकले है, पर देहरादून की वन-अनुसन्धान शाला के अन्तर्गत किये गये परीक्षणों में इससे सतोषजनक फल नही प्राप्त हुए। सम्भव है कि भारतवर्ष-जैसे उष्ण देश में विपालु पदार्थ या तो उड गये या पूर्ण प्रकार से बद्ध न होने के कारण जल मे घुलकर लुप्त हो गये।

जिक मेंटा आर्सिनाइट

यह जिक ऑक्साइड (ZnO) और आर्सेनिक ट्राइऑक्साइड (As_2O_3) को ४०:६० के अनुपात मे जल मे, जिसमे एसीटिक अम्ल हो, मिलाने से बनता है।

एसीटिक अम्ल उतनी ही मात्रा मे होता है जितना कि उसको घोलने मे आवश्यक हो। सन् १९३४ में इसका संयुक्त-राज्य अमेरिका मे एकस्वीकरण हुआ था। काष्ठ में व्यापन करने के पश्चात्, इस परिरक्षी मिश्र मे से, एसीटिक अम्ल उड़ जाता है, जिसके फलस्वरूप अन्य परिरक्षी रसायन अघुलनशील हो जाते है, और वे काष्ठ मे स्थिर रहते है। अमेरिका मे २० वर्ष से यह प्रयोग होता आ रहा है, और जैसी आशा की जाती थी, इससे कही-कही सफलता भी मिली। पर पिछले वर्षो मे इसका प्रयोग अन्य श्रेय बद्ध संगठनो के आविष्कार होने पर कम हो गया है। देहरादून की वन-अनुसन्धान-शाला के लघु-अनुमाप परीक्षणो से इसके साधारण परिणाम निकले है।

(ग) प्रांगारिक (कार्बनिक) विलायक रूप परिरक्षी

प्रांगारिक-विलायक रूप परिरक्षी वह विपालु कार्बनिक यौगिक है जो उड़ने वाले (उत्पत) तैल विलायक मे घोले जाते है। ये उत्पत तैल बहुधा श्वेत-प्रासव (ह्वाइट स्पिरिट), सौलवैन्ट नैफ्था, मिट्टी तैल (पैट्रोलियम्) इत्यादि होते हैं। उपचार के पश्चात् उत्पत-विलायक उड़ जाता है और काष्ठ मे केवल परिरक्षी ही रह जाता है। सामान्य प्रकार से जो विपालु कार्बनिक पदार्थ व्यवहार मे लाये जाते है, वे क्लोरीनेटैड् फ़ीनोल (जैसे कि पैन्टाक्लोरोफीनोल), क्लोरीनैटैड नैफ्थैलीन्, कौपर और जिंक नैफ्थीनेट इत्यादि है।

इन परिरक्षियों के गुण निम्न प्रकार से है।

(१) ये जल-धावन-रोधी होते है, अर्थात् पानी मे धुल नही सकते, और स्थायी होते है। अतः बाहर और भीतर दोनो स्थानों पर प्रयोग के लिए उपयुक्त होते है।

(२) विलायक के उड़ जाने के पश्चात् काष्ठ पर लेप ('पेन्ट') किया जा सकता है।

(३) ये काष्ठ को अभिरञ्जित नही करते और उसकी सतह पर नही फैलते।

(४) इनसे धातुओ का संक्षारण नही होता।

(५) उत्पत विलायकों मे घोलने के कारण इनका विलयन काष्ठ के अन्दर अन्य प्रकार के परिरक्षियों की अपेक्षा अधिक दूरी तक व्याप्त नही हो पाता। अतः ये कूची से लगाने, शीकरण (पिचकारी से छीटने), तथा ठंडे विलयन मे डुबोने के लिए उपयक्त होते है।

(६) आरम्भ मे उत्पत तैल के कारण इनसे काष्ठ की अभिज्वाल्यता बढ़

जाती है, पर कुछ समय पश्चात् उत्पत तैल के उड़ जाने पर शोधित और अशोधित काष्ठ मे कोई भेद नही रहता ।

(७) इनमे से कुछ परिरक्षी गन्धवाले भी होते है जिनके कारण इनके निकट सचित खाद्य वस्तुओं में गन्ध फैल जाती है परन्तु इनमे से कुछ परिरक्षी गन्धहीन भी होते है ।

(८) ये प्राय: दूसरे प्रकार के परिरक्षियों से महँगे होते है ।

(९) इनसे काष्ठ नही फूलता, अत: काष्ठ को उपचार से पहले सही आकार में काटा जा सकता है ।

(१०) विलायक के उड़ जाने के पश्चात्, उपचारित काष्ठ से पेड़ अथवा पौधो को हानि नही पहुँचती, अतएव ये कृषि और उद्यान कार्य में प्रयोग किये जानेवाले काष्ठो के उपचार के लिए उपयुक्त होते हैं ।

ये कार्बनिक-विलायक प्रकार के परिरक्षी व्यवसाय मे बहुधा स्वामिक-पदार्थो मे मिलते है । इनमे एक या उससे अधिक भिन्न-भिन्न यौगिक पदार्थ मिले रहते है । जिन-जिन रसायनों (रसद्रव्यो) का प्रयोग का इनमे किया जाता है, वे सभी प्रकार के काष्ठ-विनाशकारकों के प्रति विष का कार्य करते है । यद्यपि मुख्यत: इनका प्रयोग कूँची से लगाने और डुबोने के लिए किया जाता है, पर निपीड़-क्रिया विधि और उष्ण-शीत विधि मे भी इन्हे खुले कुण्ड में काष्ठ के भीतर प्रविष्ट किया जा सकता है । इन परिरक्षी पदार्थो का वर्णन नीचे दिया गया है ।

पैन्टाक्लोरोफ़ीनोल

यह एक स्फट रासायनिक यौगिक है जो फीनोल और क्लोरीन गैस के संयोग से बनाया जाता है । सन् १९३० के लगभग संयुक्त-राज्य अमेरिका मे परिरक्षी के रूप में इसका विकास हुआ । यह पानी मे अघुलनशील है, और एक स्थायी रसायन (रस-द्रव्य) है । यह काष्ठ-नाशक कीटो और कवकों के प्रति अत्यन्त विषालु है, पर सामुद्रिक कीटों को मारने मे इतना प्रभावशाली नही है । पैन्टाक्लोरोफीनोल, मिट्टी अथवा इन्धन तैल और अन्य उत्पत तैलों मे आसानी से घुल जाता है । इसका ५ प्रतिशत का तैल विलयन काष्ठ-उपचार के लिए प्रयुक्त होता है । यदि इसके उत्पत तैल-विलयन से काष्ठ का उपचार किया जाय तो उसके पश्चात् काष्ठ-पृष्ठ स्वच्छ रहता है, और उस पर रगलेप भी किया जा सकता है । अत: यह परिरक्षी काष्ठ की चौखटों, द्वारों और पट्टो के उपचार के लिए उपयुक्त है । यदि भारी भूतैल (पैट्रोलियम) विलायक मे इसका घोल किया गया हो तो रेलवे-स्लीपरों और बल्लियो के उपचार के लिए वह

उपयुक्त होता है, क्योंकि उस अवस्था मे वह अधिक स्थायी रहना है। क्रियोजोट-जैसे तैलीय परिरक्षी को अधिक तीव्र बनाने के लिए उसमे बहुधा कुछ अश तक पैन्टाक्लोरोफीनोल घोल दिया जाता है। इसके फलस्वरूप यह मिश्रण अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध हुआ है।

इसका उत्पादन और प्रयोग अमेरिका मे ही सबसे अधिक है। सन् १९५१ मे वहाँ लगभग ३० करोड पौड पैन्टाक्लोरोफीनोल काष्ठ-परिरक्षण उद्योग के काम मे लाया गया। वहाँ इसके कई प्रकार के स्वामिक-तेल-विलयन, व्यवसाय मे मिलते है। यह परिरक्षी स्वभावतः काष्ठ-तेल पर स्फट (मणिभ) रूप मे एकत्रित रहना है। इस वृत्ति को रोकने के लिए स्वामिक-सगठनो मे थोडा बिरोजा ('रोजिन') मिला दिया जाता है। इससे परिरक्षी बद्ध हो जाता है। इस परिरक्षी के स्वामिक-मिश्र मे टैट्राक्लोरोफीनोल और अध वर्ग के क्लोरीनेटेडफीनोल भी रहते है, पर अधः वर्ग के क्लोरीनेटेडफीनोल उतने स्थायी और प्रभावशाली नही होते। इसके स्पर्श से शरीर मे सताप होता है और इसकी धूल से छीके भी बहुत आती है। अतएव इस परिरक्षी से काम लेते समय सावधान रहना पड़ता है। यदि पूर्वोपाय किये जायँ तो इसके व्यवहार मे आपत्ति नही हो सकती।

कॉपर और जिक के साथ भी पैटाक्लोरोफीनोल के सयोग का उल्लेख पाया जाता है। वह कॉपर पैन्टाक्लोरोफीनेट और जिक-पैन्टाक्लोरोफीनेट के नाम से प्रसिद्ध है। आशा की जाती है कि जल मे अघुलनशील होने के कारण ये प्रभावशाली परिरक्षी सिद्ध होगे।

भारतवर्ष मे इसका उत्पादन नही होता। प्रायः विदेशों से इसका आयात किया जाता है। मौन्सैन्टो कैमिकल्स् (इन्डिया) लिमिटेड्, जो इसके निर्माता है, इसको 'सैन्टोफन् २०' नाम से बेचते है। अभी हाल मे पता चला है कि बम्बई की एक फर्म ने भी इसे बनाना आरम्भ किया है।

देहरादून की वन-अनुसन्धानशाला मे किये गये लघु-अनुमाप परीक्षणो मे 'सैन्टोफन २०' से अच्छे परिणाम निकले है। इससे शोधित रेलवे-स्लीपरो पर भी क्रियोजोट शोधित स्लीपरो की तुलना मे सेवा-परीक्षण किये गये है, पर अभी तक इतना समय नही हुआ है कि कोई परिणाम निकल सके।

धातु नैफ्थीनेट् (कॉपर और जिंक नैफ्थीनेट्)

कॉपर और जिक नैफ्थीनेट, कॉपर और जिक लवणो के साथ नैफ्थिनिक अम्ल के सयोग से बनते है। नैफ्थिनिक अम्ल मृत्तैल-परिष्करण ('पैट्रोलियम रिफाइनिग')

का उपजात पदार्थ है। नैफ्थिनेट्स बहुधा मोम या गोंद की तरह चिपचिपे पदार्थ होते हैं। इनके तैल-विलयन का काष्ठ-परिरक्षण मे ठीक उसी प्रकार प्रयोग किया जाता है जैसे कि पैन्टाक्लोरोफीनोल का। कॉपर नैफ्थिनेट हरे रग का और जिक नैफ्थिनेट रगहीन होता है। कॉपर नैफ्थिनेट, जिक नैफ्थिनेट की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ है। इनके विलयन का सकेन्द्रण कॉपर और जिक धातु के आधार पर माना जाता है। कूँची से लगाने और डुबोने की क्रिया मे १ से लेकर ३ प्रतिशत तक ताम्र के आधार पर विलयन उपयुक्त है। निपीड उपचार के लिए ०.५ प्रतिशत का (ताम्र के आधार पर) विलयन पर्याप्त है।

विदेशो मे लगभग ५० वर्ष से इसका प्रयोग किया जा रहा है और इससे परिणाम भी सतोपजनक निकले हैं। यह स्थायी रसायन है और जल मे अघुलनशील है। काष्ठ-उपचार के पश्चात् इन पर रगलेप किया जा सकता है। कॉपर नैफ्थिनेट से काष्ठ मे हरापन आ जाता है और जिकवाला काष्ठ रगहीन रहता है। इनमे गध भी पर्याप्त मात्रा मे रहती है। इससे धातु पर किसी प्रकार का सक्षारण नही होता।

इन परिरक्षियो का एकस्वीकरण विदेशो मे किया गया है। कुप्रिनौल नामक परिरक्षी यूरोपीय देशो मे प्रसिद्ध है। हार्डीप्रूफ और आल्मेटोक्स् नाम के एकस्व-परिरक्षी भी भारतवर्ष मे प्रचलित है। यह सब कॉपरनैफ्थीनेट के तैल-विलयन है, पर इनमे भेद केवल विलायक का रहता है। किसी मे हलका और किसी मे भारी मृत्तैल विलयन के लिए प्रयुक्त किया जाता है। अमेरिका मे दूसरे महायुद्ध के बाद जब क्रियोजोट की कमी हो गयी थी, तब कॉपर नैफ्थीनेट का अधिक मात्रा मे प्रयोग किया गया। कहा जाता है कि सन् १९४७ मे २० लाख से लेकर २५ लाख पौंड तक कॉपर नैफ्थिनेट का प्रयोग किया गया।

यह परिरक्षी पेड और पौधो के लिए हानिकारक नही है। इसलिए यह कृषि और उद्यान मे प्रयोग किये जानेवाले काष्ठो के उपचार के लिए उपयुक्त है।

देहरादून की वन-अनुसन्धान शाला के परीक्षणों मे कॉपर नैफ्थिनेट से सतोपजनक परिणाम निकले है।

क्लोरीनेटेड नैफ्थैलीन (नीरजित नैफ्थैलीन)

क्लोरीनेटेड नैफ्थैलीन मे तीन प्रकार के यौगिक है—मोनोक्लोर (एक-नीरजी), डाइक्लोर (द्वि-नीरजी), और ट्राइक्लोर (त्रि-नीरजी) नैफ्थेलीन। ये तीनों सयोग काष्ठ-नाशक कवक और विशेषत: कीटों के प्रति हानिकारक हैं, पर इनमे प्रथम और

द्वितीय-क्लोरीनैटेड संयोग मनुष्यों और पशुओं के प्रति उतने हानिकारक नही है जितने कि तृतीय हैं। ये स्पर्शी और श्वसन विष है।

चालीस वर्ष पहले इनका आविष्कार जर्मनी मे हुआ था, और यह वहाँ ही अधिकतर प्रचलित है। 'जाइलैमोन' नाम का परिरक्षी, जिसमे क्लोरीनेटैड नैफ्थैलीन है, जर्मनी का एक प्रसिद्ध परिरक्षी है और इसका एकस्वीकरण भी वही हुआ है। वन-अनुसन्धान शाला, देहरादून, के परीक्षणो मे इससे कोई विशेष आशाप्रद परिणाम नही निकले है। सम्भव है कि यहाँ उष्ण जलवायु के कारण इसके उत्पत-विपैले पदार्थ उड़ गये हो।

कॉपर और जिंक रेजीनेट

देहरादून की वन-अनुसन्धान शाला मे चीड़-लीसा ('चीर-रेजिन') और ताम्र व कुप्यातु के टुकडे अथवा चूर्ण के सयोग मे एक प्रकार के प्रागारिक (कार्बनिक) विलायक रूप परिरक्षी का आविष्कार हुआ है। यह ताम्र ('कॉपर') के सयोग से उत्पन्न कॉपर रेजीनेट और कुप्यातु ('जिक') के संयोग से जिक रेजीनेट कहलाता है। इनको बनाने की विधि इस प्रकार है

चीड़-लीसा का बैन्जीन मे विलयन बनाने के पश्चात् उसको एक ताम्र के बर्तन मे रख दिया जाता है। कॉपर और जिक के टुकडों को एक काष्ठ के छिद्रवाले चपटे बक्से में रख कर और उसको विलयन के मध्य मे लटका कर बिजली के मोटर द्वारा घुमाया जाता है। ताम्र के बर्तन को वाष्प या बिजली द्वारा गरम किया जाता है और धातु के टुकडों के साथ लीसा-विलयन के सयोग से कॉपर या जिक लीसेय यौगिक पदार्थ बन जाता है। इस पदार्थ का यथार्थ सकेन्द्रण, मृत्तैल (भूतैल) या अन्य विलायक मे घोल कर, परिरक्षी विलयन बन जाता है। इस प्रकार ३.६३ प्रतिशत कॉपर के आधार पर और ६.७५ प्रतिशत जिक के आधार पर विलयन प्राप्त हो चुका है। कॉपर के विलयन को लगभग ६ गुना और जिकवाले को २ गुना मद अथवा अवमिश्रण कर काष्ठ-परिरक्षण कार्य मे प्रयुक्त कर सकते है।

इस परिरक्षी से एक लाभ यह है कि लीसे के कारण इसमे वार्निश के भी गुण प्राप्त हो जाते है। अतः इसका लेप सयुक्त परिरक्षी एवं वार्निश का काम करता है। कॉपर परिरक्षी का रग हरा और जिक का रगहीन होता है।

वन-अनुसन्धान शाला के अन्तर्गत किये गये वेगकालीन परीक्षणों से यही अनुमान लगता है कि इससे संतोषजनक परिणाम निकलेगे। प्रयोगशाला मे किये गये प्रयोग द्वारा प्राप्त कवक प्रतिरोधी विषालुता अर्हा से यही प्रतीत होता है कि यह पर्याप्त मात्रा

में प्रभावशाली है । सामुद्रिक कीटों के प्रति भी इससे अच्छे परिणाम निकले है । यह आयात किये गये कॉपर नैफ्थीनेट से सस्ता (नि० मू० मे ९ दे०) है ।

बैन्जीन हैक्जाक्लोराइड (बी० एच० सी०)

बैन्जीन हैक्जाक्लोराइड का गामा-आइसोमर, जो बहुधा गैमैक्सेन नाम से भी प्रसिद्ध है, काष्ठ-नाशक कीटो को मारने मे, विशेषत: छिद्रक कीटो को मारने मे, अत्यन्त उपयोगी है । यह एक स्थायी रसद्रव्य नही है, पर इसका तैल रूपी स्थायी परिरक्षियों मे मिश्रण किया जा सकता है जिससे वे अधिक प्रभावशाली बन जायँ । इसका जल मे फैलनेवाला एक चूर्ण तैयार कर दिया गया है जिसका प्रयोग जलविलयन परिरक्षी मे मिश्रण के पश्चात् कर सकते है । इसके मिश्रण द्वारा परिरक्षोपचार करने पर पर्याप्त समय तक छिद्रक कीटो से विशेषत. लिक्टस् प्रजाति के छिद्रको से रक्षा हो सकती है ।

कही-कही डी० डी० टी० का भी प्रयोग तैल विलायक रूपी परिरक्षियो मे किया जाता है । एकस्व किये गये स्वामीय-परिरक्षियों मे इसको मिलाने की सूचना मिली है । अतएव इसको मिलाने से भी वही फल प्राप्त हो सकते है जो कि बी० एच्० सी० से होते है ।

डील्ड्रिन

डील्ड्रिन एक प्रकार का क्लोरीनेटेड हाइड्रोकार्बन (नीरजित उदागार) है । यह भी तैल-विलेय पदार्थ है । लोक-स्वास्थ्य के क्षेत्र मे मच्छर इत्यादि को मारने मे इससे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है । अत. काष्ठ-नाशक कीटो के नियन्त्रण के लिए यह भी एक उपयुक्त पदार्थ है । यह एक प्रकार का सस्पर्श विष है । इसको कवकमार परिरक्षियों के साथ मिलाने से एक आदर्श परिरक्षी सगठन बन सकता है । ऐसा एक मिश्र बर्मा शेल कम्पनी ने बनाया है, जो 'डील्ड्रिन–पी० सी० पी० विलयन–३:९' नाम से विख्यात है । पी० सी० पी० का अर्थ पैन्टाक्लोरोफीनोल से है जो एक सर्वगुण परिरक्षी है । अतएव इन दोनो रसायनों का मिश्रण एक उपयोगी परिरक्षी सिद्ध हो सकता है । काष्ठ-उपचार के लिए इस मिश्र को अपने से ४ गुना मृत्तैल मे मिला कर निपीड क्रिया द्वारा काष्ठ मे प्रचूषित कराने के उद्देश्य से इसका उपयोजन हुआ है । यह भी कहा गया है कि इस मद किये विलयन का ०५ गैलन प्रति घन फुट काष्ठ मे प्रचूषण कराने से सतोषप्रद परिणाम निकल सकते है । बर्मा-शेल कम्पनी ने इनका एक ऐसा सगठन भी बनाया है जिसका जल मे बनाया गया पायस ('इमल्शन') अल्प उपचार के लिए कम खर्चीला और लाभप्रद है ।

५. परिरक्षियों का चुनाव

पूर्वोक्त परिरक्षियों के वर्णन से यह स्पष्ट हो गया है कि परिरक्षियों के भिन्न-भिन्न गुण अथवा लक्षण होते हैं। काष्ठ-उपचार के लिए यह आवश्यक है कि परिरक्षियों की इन विशेषताओं पर ध्यान दिया जाय। विविध कार्यों के निर्माण-काष्ठ के उपचार के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के परिरक्षी उपयुक्त होते हैं। उदाहरणार्थ जो काष्ठ सीमेंट-प्लास्टर के संस्पर्श में हो उसके उपचार के लिए तैलरूप परिरक्षी उपयुक्त नहीं है। इसी प्रकार खाद्य पदार्थों के संस्पर्श में आनेवाले काष्ठ-शोधन के लिए विषालु परिरक्षियों का उपयोग उचित नहीं है। बीज और पौधों की काष्ठ-पेटियों के उपचार के लिए तैल रूपी परिरक्षी का उपयोग ठीक नहीं है, क्योंकि टार तैल पौधों के लिए विष का काम करता है, और उससे पेड़ पौधे मर जाते हैं। ऋतुक्षरण से बचाने के लिए बहुधा तैलेय परिरक्षी का प्रयोग किया जाता है, और यदि जल-विलयन परिरक्षी प्रयुक्त भी किये गये हों तो उनके ऊपर आर्द्रता-रोधी लेप लगाना आवश्यक हो जाता है। सामुद्रिक-काष्ठों के उपचार के लिए या तो तैलेय परिरक्षी प्रयुक्त किये जायें या जल-विलेय बद्ध-रूपी परिरक्षी का ही प्रयोग किया जाना चाहिए। सारिणी संख्या १२ में तीनों प्रकार के (प्ररूप) परिरक्षियों की विभिन्न काष्ठ-उपचार के लिए उपयुक्तता के उदाहरण दिये गये हैं।

सारणी—१२

क्रमाक	काष्ठ का प्रयोग	तैलेय परिरक्षी	जल-विलेय रूपी परिरक्षी		प्रागारिक (कार्बनिक) विलायक रूपी परिरक्षी
			शुद्ध-रूपी	बद्ध-रूपी	
१	रेलवे-स्लीपर	अति-उपयुक्त	उपयुक्त नही	साधारणतया उपयुक्त यदि विपटन-रोधी माध्यम से पश्च उपचार किया जाय	खर्चीला होने से उपयुक्त नही
२	विजली या तार के खम्भे	साधारणतया उपयुक्त	उपयुक्त नही	अति उपयुक्त	पैन्टाक्लोरोफीनौल को छोड़ अन्य उपयुक्त नही
३	बाड़-खम्भ	उपयुक्त	उपयुक्त नही	उपयुक्त	,,
४	सामुद्रिक-आधार-खम्भ	अति उपयुक्त	उपयुक्त नही	उपयुक्त	उपयुक्त नही
५	पुल-निर्माण	उपयुक्त	उपयुक्त नही	उपयुक्त	पैन्टाक्लोरोफीनौल को छोड़ अन्य उपयुक्त नही

६	गृह-निर्माण, फैक्टरी की छतें और ट्रस, इत्यादि	उपयुक्त नहीं	उपयुक्त। बाहर खुले में रंगलेप आवश्यक है	उपयुक्त	अति उपयुक्त
७	मुर्गीखाना, सुअर-गृह, इत्यादि	उपयुक्त नहीं	उपयुक्त	उपयुक्त	उपयुक्त नहीं
८	नौ-निर्माण	उपयुक्त	उपयुक्त नहीं	उपयुक्त	उपयुक्त
९	रेल-डिब्बे, लॉरीकाय ('बडी') इत्यादि	उपयुक्त नहीं	उपयुक्त नहीं	उपयुक्त	उपयुक्त
१०	कृषि, उद्यान, कंचगृह, पेटी, इत्यादि	उपयुक्त नहीं	साधारणतया उपयुक्त	उपयुक्त	उपयुक्त
११	खाद्य पदार्थ-संचय कोष्ठ	उपयुक्त नहीं	उपयुक्त	उपयुक्त नहीं	उपयुक्त नहीं
१२	उपस्कर (फर्नीचर), स्तर-काष्ठ (प्लाइवुड) इत्यादि	उपयुक्त नहीं	उपयुक्त	उपयुक्त	उपयुक्त

६. संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रयुक्त किये गये परिरक्षियों का विवरण

काष्ठ-परिरक्षण मे संयुक्त राज्य अमेरिका सब देशों से प्रगतिशील है। अतएव, उदाहरणार्थ, सारिणी १३ में वहाँ प्रयोग किये गये परिरक्षियो का विवरण दिया गया है। यह विवरण अमेरिकन काष्ठ परिरक्षक संस्था ('अमेरिकन वुड प्रिजर्वर्स एसोसियेशन) की १९५६ की कार्यवाही ('प्रोसीडिंग्स्') मे दिया गया है। यह इस प्रकार है।

सारणी १३

संयुक्त राज्य अमेरिका में सन् १९५४ और सन् १९५५ में प्रयुक्त किये गये काष्ठ-परिरक्षी और अग्नि-रोधी संगठन

परिरक्षी	सूचना देने वाले परिरक्षण-निर्माणी की संख्या	सन् १९५४ में	सन् १९५५ में
		गैलन	गैलन
क्रियोजोट (अकेले)	२०१	८६८६२४९३	९७२७९७१९
क्रियोजोट-कोलटार मिश्र में क्रियोजोट	९५	३९०५८५२९	३११४४६७७
क्रियोजोट-मृत्तैल मिश्र मे क्रियोजोट	६५	२३०३३७१७	२१६०५४१०
अन्य मिश्र	२	४६०८१३	५९१७१२
कुल क्रियोजोट	२२५	१४९४१५५५२	१५०६२१५१८
क्रियोजोट-कोलटार मिश्र में कोलटार	९५	१९१६४६०३	१४५३९१९७
कुल क्रियोजोट और कोलटार		१६८५८०१५५	१६५१६०७१५
क्रियोजोट-मृत्तैल मिश्र मे मृत्तैल	६५	२७३४४७१२	२५४०७५१२
पैन्टाक्लोरोफीनोल—मृत्तैल मिश्र में मृत्तैल	१११	१९९०३०२१	२४५९६१२८
अन्य मिश्र	१	४४५८४४	५७५२३८
कुल मृत्तैल	१५४	४७६९३५७७	५०५७८८७८
विविध	६	१०२४१३	१०९८५६
कुल तैल		२१६३७६१४५	२१५८४९४४९

		१९५४ मे, पौड	१९५५ मे, पौड
पैन्टाक्लोरोफीनौल	११२	८३४०९९७	१०५०२८९७
क्रोमेटैड जिक क्लोराइड।	२७	२४०९८५७	२५८३८३५
वुलमन लवण (टैनेलिथ)	३५	१९६६७९०	२१३३२१५
सैलक्यूयर	१९	१०८८९४८	१४३१७८०
मिनैलिथ *	९	३०७७९९	८८३९४७
प्रटिक्मौल और पाइरीजोट *	३	७२१५७०	६८२७०९
चैमोनाइट	४	२७९७६६	३५९०५१
वोलीडोन लवण	४	२७५६९५	३४१८५६
कूपराइज्ड क्रोमेटैड जिक-क्लोराइड	९	४०८६३८	३३३११८
औममौस	१३	५६७७५	२२४९६१
अन्य	६	१५७८५५	१९५२४६
कुल ठोस पदार्थ		१६०१४६९०	१९६७२६१५

७ भारत में काष्ठ-परिरक्षियों की माँग।

अभी तक भारत मे प्रयुक्त परिरक्षियो के बारे मे कोई आँकडे प्राप्त नही है, और भविष्य मे कितनी मात्रा मे परिरक्षियो की आवश्यकता होगी, इस की भी कोई निश्चित सूचना नही है। एक स्थूल गणना (३क) के अनुसार यह अनुमान लगाया जाता है कि वर्तमान समय मे काष्ठ-परिरक्षियो की माँग निम्न प्रकार से है—('३ क' के लिए भाग के अन्त मे निर्देश-सूची देखिए)।

परिरक्षी	लगभग प्रतिवर्ष अपेक्षित मात्रा
(क) क्रियोजोट–	६००० टन से लेकर ७०००टन तक, अर्थात् लगभग १२ लाख गैलन से लेकर १४ लाख गैलन तक।
(ख) मृत्तैल अथवा इंधन तैल–	पूर्वोक्त समान मात्रा।
(ग) क्रियो-जैन्ट और सौलिग्नम्	५ टन से १० टन तक (लगभग १००० गैलन से २००० गैलन तक)।
(घ) एस्क्यू—	१०० टन से लेकर १५० टन तक (ठोस लवण)।

(ङ) अन्य (विविध परिरक्षी)—
जैसे, पैन्टाक्लोरोफीनौल, सोडियम्-पैन्टाक्लोरोफीनेट, जिक क्लोराइड, कॉपर सल्फेट (नीलाथोथा), सोडियम्-और पोटेसियम् डाइक्रोमेट (लाल-कसीस), आर्सनिक पैन्टोक्साइड (सखिया), इत्यादि— ५० टन से लेकर ७५ टन तक (ठोस पदार्थ)।

(च) बोरिक अम्ल और सुहागा— ५ टन से १० टन तक (ठोस पदार्थ)

(छ) कॉपर और जिक नैफ्थीनेट, डील्ड्रिन-पैन्टाक्लोरोफीनोल मिश्र— ५ टन तक (ठोस पदार्थ)।

पूर्वोक्त परिरक्षी रसायनों की भारत मे प्राप्यता के विषय मे जो सूचना मिली है वह इस प्रकार है—

(क) क्रियाजोट—इसका उद्भव और निर्माण स्वदेश मे ही है, यद्यपि पिछले दिनों इसका निर्माण अपरिष्कृत ('क्रूड') टार की अप्राप्यता के कारण कम हो गया था।

(ख) मृत्तैल अथवा इधन तैल—बडी मात्रा मे प्राप्य है, यद्यपि कुछ भाग आयात किया जाता है। आशा है कि भविष्य मे खनिज-तैल के विकास से स्वदेशीय उत्पादन पर्याप्त मात्रा मे हो सकेगा।

(ग) क्रियोजोट और सौलिगनम्—सीमित मात्रा मे उपलब्ध है, यद्यपि कुछ भाग स्वदेश मे बनता है।

(घ) ऐस्क्यू और कुक्रोम—इनका स्वदेश मे निर्माण होता है, यद्यपि एस्क्यू के लिए सखिया विदेशों से आयात की जाती है।

(ङ) अन्य विविध परिरक्षी—पैन्टाक्लोरोफीनोल और सोडियम् पैन्टाक्लोरोफीनेट विदेशो से आयात किये जाते है, पर हाल मे ही इनका स्वदेश मे निर्माण होने के बारे मे सूचना मिली है।

जिक क्लोराइड, कॉपर सल्फेट, सोडियम और पोटैशियम डाइक्रोमेट का बड़ी मात्रा मे स्वदेश में निर्माण होता है।

आर्सनिक पैन्टोक्साइड—विदेशों (विशेषतः स्वीडन) से आयात किया जाता है। कहा जाता है कि इसके अयस्क ('ओर्स') कश्मीर में पाये जाते हैं और इसका स्वदेश-निर्माण सम्भव है।

(च) बोरिक अम्ल और सुहागा—विदेशों से आयात किया जाता है।

(छ) कॉपर और जिंक नैफ्थीनेट, डील्ड्रिन, इत्यादि—नैफ्थैनिक अम्ल का आयात किया जाता है और फिर उसी से भारत में कॉपर और जिंक के लवण बनाये जाते हैं। आशा है कि जब भारत में तैल-परिष्करणी ('ऑइल-रिफाइनैरीज') स्थापित हो जायँगी तो नैफ्थैनिक अम्ल पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो जायगा। डील्ड्रिन का आयात किया जाता है।

कुछ स्वामिक परिरक्षी, अर्थात् वुलमन लवण, बैसीलिट, कोबरा काष्ठ-परिरक्षी जाइलैमौन, इत्यादि लाइसैन्स् मिलने पर विदेशों से आयात किये जा सकते हैं।

अध्याय २

उपचार के लिए काष्ठ की तैयारी

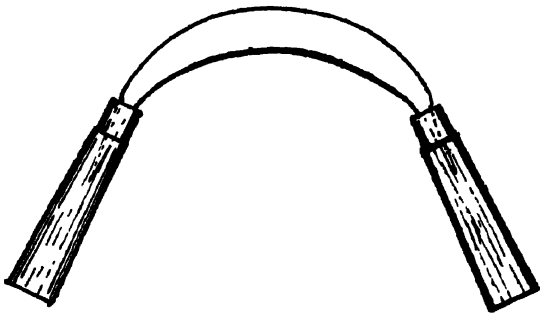
परिरक्षोपचार करने के पूर्व यह आवश्यक है कि काष्ठ को भली-भाँति तैयार किया जाय। तभी इस कार्य में सफलता प्राप्त हो सकती है। तैयार करने से यह आशय है कि काष्ठ को इस दशा में लाया जाये जिससे परिरक्षी का सरलता से काष्ठ में अन्तः व्यापन किया जा सके। इस दिशा में कई उपाय करने पड़ते हैं, जैसे कि बाह्य और आन्तर छाल निकालना, काष्ठ की सतह और गाँठों को साफ करना, उचित आकार में काटना, यथार्थ आर्द्रता तक संशोषण करना, वाष्प-क्रिया और शून्यक में सुखाना, आपाक (भट्ठी) संशोषण, छिद्रण करना, इत्यादि-इत्यादि। यद्यपि एक उपचार-विधि जो बूशरी प्रक्रिया के नाम से प्रसिद्ध है, ऐसी भी है जो हरे काष्ठ के वल्क सहित शोधन के लिए उपयुक्त है। एक औसमौस विधि है जो हरे काष्ठ को वल्क-रहित कर बाह्य लेपन करने में सक्रिय है, तथापि उपचार से पूर्व काष्ठ का उचित प्रकार से तैयार किया जाना अनिवार्य है। परिणाम तभी सफल हो सकते हैं। इस दिशा में क्रमानुसार जो कार्य करने पड़ते हैं वे नीचे दिये गये हैं।

(१) छीलना

उपचार के लिए ,खम्भों और बल्लियों-जैसे गोल काष्ठ को, वल्करहित अथवा छालरहित करना अत्यावश्यक है, क्योंकि वल्क से होकर तरल पदार्थ प्रविष्ट नहीं हो सकता। केवल बाह्य-वल्क ही नहीं, किन्तु आन्तर-वल्क को भी छीलना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, यदि वल्क को काष्ठ में रहने दिया जाय तो उससे काष्ठ के सूखने में बाधा पड़ती है। वल्क की उपस्थिति से काष्ठ-नाशक कवक और छिद्रक कीटों को भी आश्रय मिलता है।

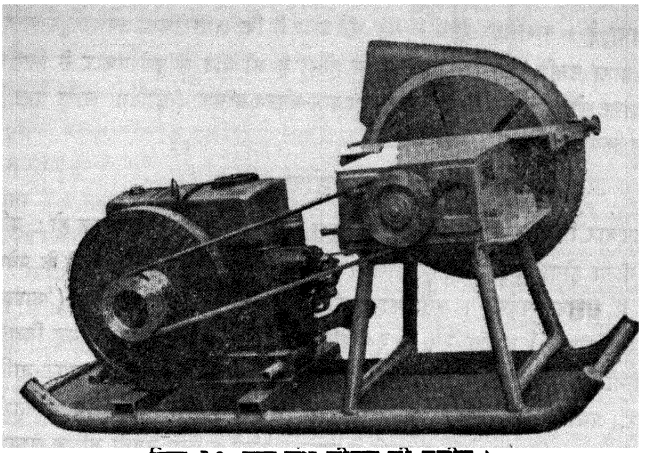
वसन्त तथा ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ में आन्तर वल्क कोमल और पिच्छिल रहता है, और तब उसको सरलता से उतार सकते हैं। इसके लिए साधारण औजार

जैसे कि कुल्हाड़ी और द्वि-हस्तक दराँती उपयुक्त होते है। अन्य ऋतु में आन्तर-वल्क इतनी दृढ़ता से चिपटा रहता है कि उसको निकालने मे कठिनाई पड़ती है। वल्क-सहित काष्ठ को पानी में डुबोकर रखने या वाष्पीकरण से वल्क आसानी से निकल जाता है। स्तरकाष्ठों के लट्ठों का वल्क इसी प्रकार उतारा जाता है, पर यह विधि काष्ठ-परिरक्षण कार्य में व्यवहार्य नही है। विदेशों मे यह कार्य मशीनों द्वारा भी होता है, परन्तु भारत में श्रम सुलभ एवं सस्ता होने से हाथ से ही छीलना लाभदायक है। यह कार्य, जहाँ कहीं जंगलों मे नया कटान हो, आसानी से किया जा सकता है, और तत्पश्चात् काष्ठ का भार भी परिवहनार्थ कम हो जाता है। इससे कवक और छिद्र-कीटों के आक्रमण की आशंका कम हो जाती है और काष्ठ को परिवहन मे शीघ्र सूखने का अवकाश मिल जाता है। देहरादून की वन-अनुसन्धान शाला ने इसके लिए एक द्वि-हस्तक दराँती का उपयोग किया जिससे शीघ्रता और आसानी से यह कार्य हो सकता है। यह दराँती चित्र ३८ में दर्शायी गयी है।



चित्र ३८—वल्क छीलने की द्वि-हस्तक दराँती।

बाड़-खम्भों को छीलने की एक मशीन, देहरादून की वन-अनुसन्धान शाला ने, पश्चिमी जर्मनी से आयात की है। यह मृत्तैल के इन्जन से चलती है और इससे सरलतापूर्वक कार्य किया जा सकता है। इसको चित्र ३९ में दिखलाया है। इसका मूल्य लगभग ३२५० रुपया है। इसका भार भी कम है और इसका इधर-उधर ले जाना भी आसान है।



चित्र ३९—बाड़-खंभ छीलन की मशीन।

(२) क्षतिरोधक उपाय 'प्रोफिलैक्टिक् मेजर्स'

काष्ठ-लट्ठों के छिलने के पश्चात् उन पर कवक (विशेषतः अभिरञ्जन कवक) के आक्रमण की आशंका रहती है। इसके अतिरिक्त रस-काष्ठ (बाह्य-काष्ठ) शीघ्र ही छिद्रक-कीटग्रस्त हो जाते हैं। भूमि के संस्पर्श से दीमकों का भी आक्रमण आरम्भ हो जाता है। काष्ठ के खण्डित होने पर भी आक्रमण की दशा प्रवृत्त रहती है। इसकी सुरक्षा के निमित्त क्षतिरोधक उपाय अनिवार्य हो जाते हैं। यदि स्थायी काष्ठ जैसे कि टीक, साल, देवदार, इत्यादि हों तो उनका भी रसकाष्ठ आक्रमण-संक्रान्त रहता है। अधिकांश द्वितीय श्रेणी के काष्ठों के रस-काष्ठ और सारकाष्ठ दोनों ही अस्थायी होते हैं। अतः यह आवश्यक है कि उनको क्षति से बचाया जाय। भारत-जैसे देश में, जिसका अधिकतर भाग उष्ण कटिबंध में है, नम-ऋतु के आरम्भकाल में और सर्वांग वर्षा-ऋतु में क्षति की आशंका अधिक रहती है। अतएव पूर्ण-परिरक्षोपचार से पूर्व उनका अल्पकालीन उपचार, जो क्षतिरोधक उपायों द्वारा किया जाता है, लाभप्रद होता है। इन क्षतिरोधक उपायों में वे उपाय भी सम्मिलित हैं जो काष्ठ के सिरों (टक्करों) पर लेप लगाकर उसे फटने से बचाते हैं। इन क्षतिरोधक उपायों का सविस्तर वर्णन सारणी १४ (परिशिष्ट २) में दिया गया है। इस सारणी में, प्रयोग किये जानेवाले परिरक्षी, उनकी मात्रा, मूल्य, लगाने की विधि, इत्यादि का पूर्ण विवरण

दिया गया है। पाश्चात्य देशों मे यह भी प्रथा है कि क्षतिरोधक उपचार में मन्द-निपीड द्वारा उन्हीं परिरक्षियों का प्रयोग होता है जो बाद में पूर्ण प्रकार से निपीड क्रिया द्वारा शोधन करने के उद्देश्य से उपचार-संयन्त्र-प्रांगण ('ट्रीटिग प्लान्ट यार्ड') मे संग्रह किये जाते हैं।

(३) संशोषण[1]

उपचार क्रिया करने के पूर्व यह देख लेना आवश्यक है कि काष्ठ शुष्क हो। यदि काष्ठ गीला होगा अर्थात् उसकी कोशाओं में स्वतन्त्र पानी होगा तो परिरक्षी के प्रवेश कराने मे रुकावट पड़ेगी। अतः काष्ठ की आर्द्रता तन्तु-परिपूर्णक बिन्दु ('फाइबर सैच्यूरेशन पौइन्ट') अर्थात् २५ से ३० प्रतिशत से कम होनी चाहिए। यह कितनी कम होनी चाहिए इसका कोई निश्चित परिमाण नही है, क्योंकि यह सब काष्ठ-जाति आकार, प्रयोग किये जानेवाले परिरक्षी और उपचारित-काष्ठ के उपयोग पर निर्भर रहता है। जल-विलयन रूपी परिरक्षी से उपचार करने के लिए उतनी अधिक शुष्कता नही चाहिए जितनी कि तैल-रूपी परिरक्षी से उपचार करने के लिए आवश्यक है, क्योकि जल और काष्ठ-रस परस्पर मिल जाते हैं, पर तैल और काष्ठ-रस नही मिल सकते। अतएव गीले काष्ठ-खम्भो, बल्लियों और नये परिवर्तित काष्ठ टुकड़ों का उपचार कराने से पूर्व उनमे यथोचित आर्द्रता लाने के लिए निम्न संशोषण-विधियों का प्रयोग किया जाता है।

(अ) वायु-संशोषण (हवा में सुखाना)

हरे काष्ठ को उपचार के पूर्व सुखाने की सर्वसाधारण विधि बाहर खुले मे उसका उचित प्रकार से चट्टा लगाना है। गीला काष्ठ यदि बाहर वर्षा से बचा दिया जाय, तो हवा मे सूखने लगता है। यह सुखाने की सबसे सरल विधि है। यथोचित समय में, जो स्थान के जल-वायु व आपेक्षिक आर्द्रता पर निर्भर रहता है, काष्ठ उस स्थान की सम-आर्द्रता मे पहुँच जाता है। शुष्क स्थानों मे सम-आर्द्रता ५ प्रतिशत तक कम रहती है, और नम स्थानो मे २० प्रतिशत से भी ऊपर रहती है। सामान्यतः भारत के मध्यवर्ती स्थानों में हवा मे पूर्णतया सशोषित काष्ठ १२ से लेकर १५ प्रतिशत आर्द्रता पर रहता है। प्रतिशत आर्द्रता की गणना काष्ठ को भट्ठी द्वारा सुखाये गये भार के आधार पर की जाती है। वायु-संशोषित काष्ठ की आर्द्रता, काष्ठ की जाति

1 Seasoning.

और मोटाई पर भी निर्भर रहती है। काष्ठ की मोटाई जितनी अधिक होगी, सम-आर्द्रता पर पहुँचने में उसे उतना ही अधिक समय लगेगा। घने और ठोस काष्ठ के सूखने में भी पर्याप्त समय की आवश्यकता पड़ती है। रेलवे-स्लीपर, बल्लियाँ इत्यादि को भली प्रकार सूखने मे कई महीने लग जाते है। फिर भी इन काष्ठो के आन्तरतम भाग गीले ही रहते हैं, यद्यपि बाह्य स्तर घेरे से कुछ दूरी तक अन्दर की ओर शुष्क हो जाता है। पतले काष्ठ, तख्ते इत्यादि समान प्रकार से शुष्क हो जाते है। काष्ट को उचित प्रकार से वायु-सशोषित करने मे निम्न बातो पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

सर्वप्रथम संशोषण के लिए उपयुक्त भूमि को ढूँढना चाहिए। वायु-संशोषण के लिए काष्ठ का चट्टा लगाने योग्य भूसि स्वच्छ और ढालू होनी चाहिए, ताकि उसमे पानी एकत्रित न हो। नीची भूमि में सील के कारण कवक की वृद्धि होती है। वहाँ पर झाड़ियाँ भी न होनी चाहिए अपितु वायु-संचालन के लिए खुला स्थान हो। काष्ठ के चट्टे क्षैतिज दिशा मे भूमि से कम से कम आधा मीटर ऊँचे उठे हुए सीमेंट या सु-उपचारित काष्ठ के आधार-स्तम्भों पर स्थित हों, जिससे उनके नीचे से वायु-सचालन भली प्रकार हो सके। ये आधार-स्तम्भ लगभग ३ मीटर की दूरी पर स्थित हों और इनके सिरे भी चौरस रहें, जिससे क्षैतिज दिशा में आधार-बत्ते या बल्लियाँ भली प्रकार स्थिर रह सके। आधार-स्तम्भ सीमेंट या उपचारित काष्ठ के होने के कारण दीमक के भूमि से काष्ठ पर चढ़ने की संभावना भी न रहेगी। काष्ठ के चट्टों के बीच मे निरीक्षण के लिए आने-जाने के मार्ग भी हों, जिससे काष्ठ-खण्डों को उतारने अथवा चढ़ाने मे सुविधा हो सके। बीच-बीच मे कही मार्ग इतने भी चौड़े हो कि गाड़ियों के परिवहन मे रुकावट न पड़े। काष्ठ का चट्टा भी नियमानुसार लगाया जाता है। सबसे भारी काष्ठ को नीचे और उससे कम मोटाई अथवा लम्बाई वालों को क्रमानुसार ऊपर की ओर लगाते है। काष्ठ के स्तरों के बीच मे समान मोटाई के आड़े बत्ते ('क्रौसर्स') भी हो, जिससे संपूर्ण चट्टे मे वायु का सचार बिना रुकावट हो सके। आड़े बत्ते उदग्र दिशा में भी एक ही पक्ति मे रहे। इससे लकड़ी टेढ़ी नही होने पाती और उसमे फटन भी कम होती है।

रेलवे-स्लीपरों के चट्टे लगाने की सर्वोत्तम विधि १ मे ९ की ('वन इन नाइन') है, अर्थात् ९ स्लीपरों के स्तर मे एक स्लीपर आड़े बत्ते का कार्य करता है। इसी प्रकार चट्टा ४ या ५ मीटर तक ऊँचा लगाया जाता है। अधिक फटनेवाले काष्ठ-स्लीपरों के संवृत चट्टे लगाते है, जिनमे ९ स्लीपरों का एक स्तर दूसरे स्तर से आड़ा रहता है। यद्यपि इसमे सशोषण-क्रिया मे विलम्ब हो जाता है, तथापि इस विधि द्वारा

काष्ठ मे विपटन कम रहता है। काष्ठ के स्लीपरों के सिरे, मुख्यत: जिनमें बद्ध-मज्जक ('बौक्स्ड् हार्ट') रहता है, बहुधा संशोपण क्रिया मे सावधानी रखने पर भी फट जाते हैं। इनको कुछ सीमा तक प्रति-विपटन लोह-पत्तियों से रोका जा सकता है। इन लोह-पत्तियों को 'ऐस', 'ज़ैड्' और 'सी'—लोह कहते है, जो चित्र ४० में दिखाये गये है।

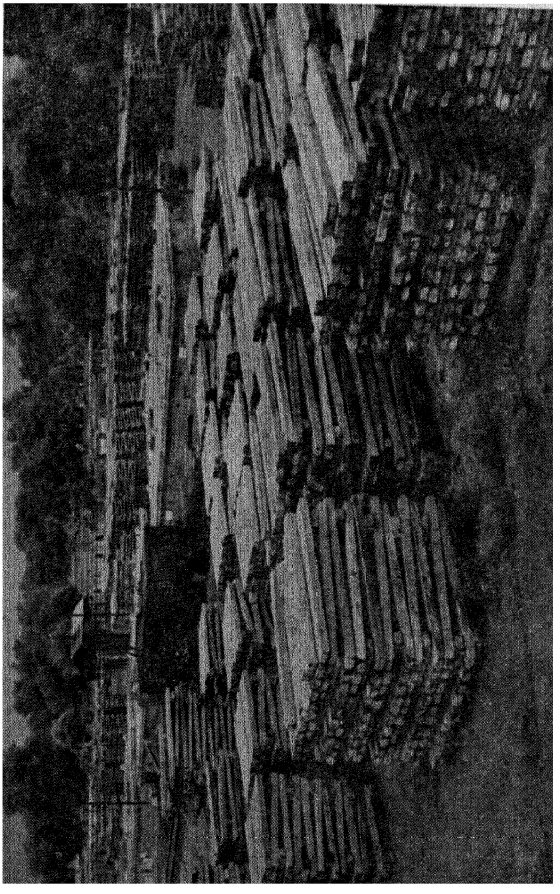


चित्र ४०—प्रतिविपटन लोह पत्तियाँ।

स्लीपर के सिरों को जैक से बन्द कर विपटन के आर-पार ठोका जाता है। कहीं-कहीं सिरों को इस प्रकार मिलाकर लोह-पत्तियों से चारों ओर बाँधा भी जाता है।

बिजली, तार और बाड़ के काष्ठ-खम्भों का चट्टा भी इसी प्रकार लगाया जाता है। कहीं-कही आड़े बत्ते चौकोर आकार के होते हैं, पर अधिकांश अवस्थाओं में खम्भों का ही प्रयोग आड़े बत्तों के रूप में किया जाता है। सबसे ऊपर का स्तर ढलवाँ बना दिया जाता है, जिससे वर्षा का पानी बह जाय। चित्र ४१, ४२, ४३ में रेलवे-स्लीपर, बिजली, तार व बाड़ के खम्भों के संशोषण चट्टे दिखाये गये हैं।

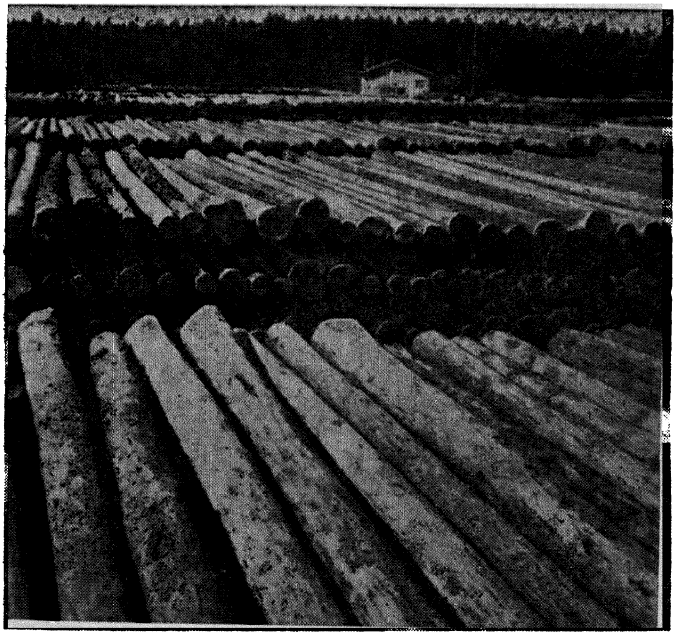
भारत मे भिन्न-भिन्न जलवायु वाले स्थान है। कोई तो अति उष्ण है, कोई शुष्क और कोई उष्ण-नम है। अत: आवश्यक है कि काष्ठ को वायु-संशोषण के अवधि-काल में जलवायु की चरम सीमा से सुरक्षित रखा जाय, जिससे विपटन (स्प्लिटिंग) और सड़न के कारण क्षति न हो। इसी कारण संशोषण-चट्टे शालाओं के अन्दर लगाने चाहिए। देहरादून की वन-अनुसन्धान-शालास्थ काष्ठ-संशोषण शाखा ने ऐसी शालिकाओं (sheds) की कई प्रकार की रचनाएँ की हैं, जो तीव्र, मध्यम और अधम श्रेणी की फटने-



चित्र ४१—रेलवे-स्लीपरों, बिजली, तार व बाड़-खंभों के वायु संशोषण चट्टे।

चित्र ४२—रेलवे-स्लीपरों, बिजली, तार व बाढ़-स्तंभों के वायु संशोषण चट्टे।

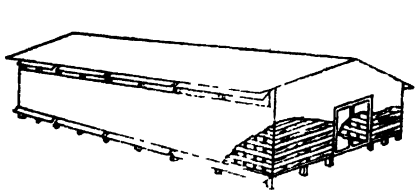
वाली लकड़ियों के लिए उपयुक्त हैं। इनमें वर्षा एवं गरम और शुष्क हवा के आवागमन का नियन्त्रण करने के साधन रहते हैं। ये शालिकाएँ सामान्यतः तीन प्रकार की होती हैं। इनमें से एक तो अधिक फटनेवाली लकड़ियों के चट्टे के लिए चारों तरफ बन्द रहती है और केवल छत के नीचे खुली रहती है। दूसरे प्रकार की शालिका केवल उत्तर की ओर खुली रहती है तथा अन्य तीनों ओर से बन्द रहती है। इसमें मध्यम श्रेणी के फटनेवाले काष्ठों का चट्टा लगाया जाता है। तीसरे प्रकार की शालिका चारों तरफ खुली रहती है, जो उन काष्ठों के चट्टे के लिए उपयुक्त है जो फटनेवाले नहीं होते। इन



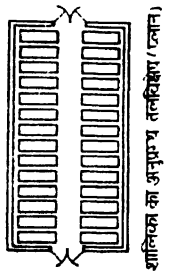
चित्र ४३—रेलवे-स्लीपरों, बिजली, तार व बाड़-खंभों के वायु-संशोषण चट्टे।

शालिकाओं को यदि स्थायी बनाना हो तो ईंट की दीवारों और सीमेंट-एस्बैसटौस् की छतों का प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु मितव्ययी उपचारित काष्ठ-खम्भ और फूस

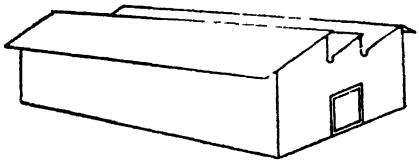
की छतों का प्रयोग भी छादक के लिए सतोषजनक होता है। चित्र ४४ मे इस प्रकार के छादको का प्रदर्शन है।



तीव्र श्रेणी की फटने वाली लकड़ी के लिए शालिका



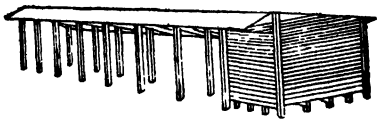
शालिका का अनुप्रस्थ तलचित्र (प्लान)



मध्यम श्रेणी की फटने वाली लकड़ी के लिए शालिका



शालिका का पार्श्व-दृश्य (साइड व्यू)



अधम श्रेणी की फटने वाली लकड़ी के लिए शालिका



चित्र ४४—वायु-संशोषण शालिकाएँ।

इस प्रकार की शालिकाएँ, जल-विलयन द्वारा उपचारित काष्ठ के उपचार-कालोत्तर वायु-सशोषण के लिए, काष्ठ को परिरक्षी-बद्ध करने के उद्देश्य से उपयोगी सिद्ध हुई है। एस्क्यू-जैसे परिरक्षी द्वारा काष्ठ-उपचार करते समय काष्ठ को कुछ समय तक छप्परो के नीचे तत्काल सुखाना आवश्यक है। ऐसा करने से परिरक्षी वर्षा से धुलेगा नही और उसे काष्ठ मे बद्ध होने का अवकाश मिल जायगा। यह संशोषण-अवधि लगभग तीन या चार सप्ताह की होती है। उसके पश्चात् उपचारित काष्ठ का जैसे भी चाहें प्रयोग कर सकते है।

(आ) आपाक संशोषण (भट्ठी में सुखाना)

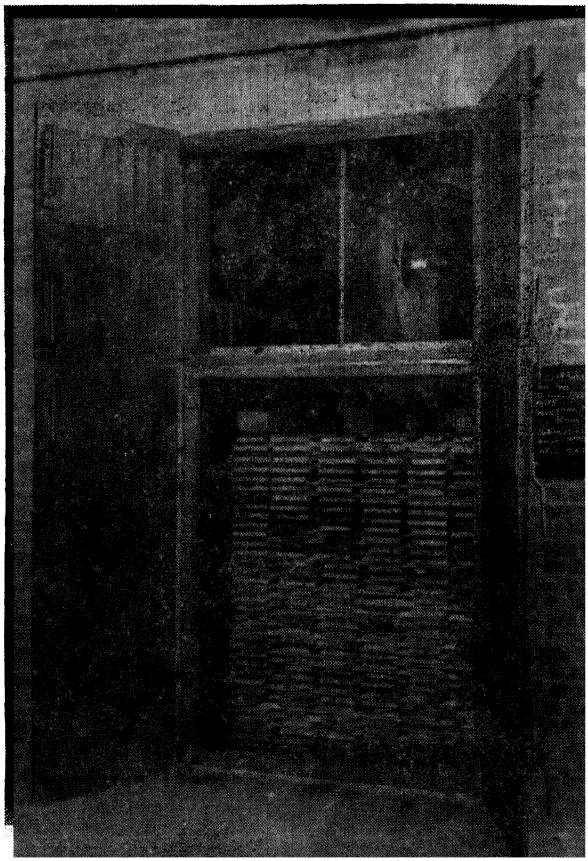
यदि काष्ठ अधिक मोटाई का न हो अर्थात् ५ सैन्टीमीटर (२ इंच) से अधिक मोटा न हो, तो आपाक अथवा भट्ठी ('किल्न') मे शीघ्र और इच्छानुसार सुखाया जा सकता है। यह विधि तख्तों और बत्तो को सुखाने के लिए अत्यन्त लाभदायक है। किल्न एक प्रकार के बन्द कमरे होते हैं, जिनमे गरम वायु का परिवहन नियन्त्रित किया जा सकता है। उनमे वाष्प द्वारा आर्द्रता देने की भी सुविधा रहती है और सशोषण को यहाँ तक नियन्त्रित किया जाता है, जिससे विपटन भी न हो और यथा-सम्भव शीघ्रतापूर्वक लकड़ी सुखायी भी जा सके। इन भट्ठियों मे आरम्भ मे कम ताप और अधिक आपेक्षिक आर्द्रता (उदाहरणत: ४०° सेन्टीग्रेड और ८५ प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता) पर उसे सुखाया जाता है और अन्त मे दोनो की ही तीव्र अवस्था, अर्थात् ५५° सेन्टीग्रेड और ४० प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता, पर सशोपण किया जाता है। काष्ठ की जाति, आकार और मोटाई के अनुसार सशोपण अनुसूचियो के आधार पर उनमे परि-वर्तन किया जाता है। काष्ठ मे अभीष्ट आर्द्रता प्राप्त होने पर सशोपण क्रिया बन्द की जाती है। वायु-सशोपण द्वारा काष्ठ को अभीष्ट आर्द्रता प्राप्त करने मे कई महीने लगते है। वह अभीष्ट आर्द्रता आपाक-सशोपण द्वारा कुछ ही दिनो मे हो जाती है। नम जलवायु वाले स्थानो के लिए ये भट्ठियाँ लाभकारी सिद्ध हुई है। आपाक कई प्रकार के होते है, जो इन्टर्नल् फैन किल्न, एक्सटर्नल ब्लोवर किल्न, इत्यादि नामों से प्रसिद्ध है। एक प्रकार के स्मोक-किल्न भी है जिनमे अग्नि से तप्त वायु का भट्ठी मे परिवहन होना है। इनमे बहुत अधिक खर्च नही पड़ना। चित्र ४५ मे आपाक-संशोपण के लिए भट्ठी ('किल्न') दिखायी गयी है।

भट्ठियों द्वारा काष्ठ-संशोपण करने के कई लाभ है। एक तो इनमें विपटन नहीं होता, तथा और काष्ठ-नाशक अभिरञ्जक कवको का भी नाश हो जाता है। जो छिद्रक कीट काष्ठ के अन्दर प्रविष्ट रहते है, उनके डिम्भ (लारभा) इत्यादि भी मर जाते है। जल-विलयन-परिरक्षी द्वारा उपचारित काष्ठो का, जिनकी उपस्कर और अन्य निर्माण-काष्ठ के लिए शीघ्र आवश्यकता होती है, इन भट्ठियों मे दक्षतापूर्वक संशोपण किया जा सकता है।

(इ) वाष्प-संशोषण

वाष्प-सशोपण क्रिया का सिद्धान्त यह है कि जब कोई ऐसा प्रागारिक यौगिक विलायक, जिसका क्वथनाक पानी के क्वथनाक से अधिक हो, वाष्प द्वारा हरे काष्ठ मे

से पार कराया जाय तो वह अपनी वाष्प के साथ काष्ठ की आर्द्रता को जल-वाष्प में परिणत कर निकाल ले जाता है। इस क्रिया को पर्याप्त समय तक चालू रखने से,



चित्र ४५—**आपाक संशोषण के लिए भट्ठी।**

आर्द्र काष्ठ का संपूर्ण जल निकाला जा सकता है, जो एक प्रकार से काष्ठ-संशोषण के ही तुल्य है। प्रांगारिक विलायक-वाष्प और जल-वाष्प के मिश्रण को एक विशेष प्रकार

के साधित्र में जमा कर दोनों वाष्पों को पृथक्-पृथक् किया जाता है। इस प्रकार अलग हुए प्रांगारिक विलायक का बार-बार प्रयोग कर सकते हैं। इस क्रिया का एकस्वीकरण संयुक्त राज्य अमेरिका में सन् १९४८ में हुआ है। वहाँ कुछ काष्ठ-परिरक्षण-बाणिज्य सम्बन्धी संयन्त्रों में परिरक्षोपचार के पूर्व यह वाष्प-संशोषण विधि प्रयुक्त की जाती है। विशेषतः हरे काष्ठों के रेलवे-स्लीपरों के क्रियोजोटीकरण के पूर्व इस विधि से इन स्लीपरों का संशोषण किया जाता है। यद्यपि इसमें अधिक समय लगता है और इसमें विशेष संयन्त्रों की आवश्यकता भी है, पर कहा जाता है कि इसके कारण काष्ठ की सतह पर केश-तुल्य छोटी-छोटी दरारें उत्पन्न हो जाती हैं, उन्हीं में से परिरक्षी गहराई तक प्रविष्ट हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप काष्ठ अधिक समय तक सुरक्षित रह सकता है। यह भी कहा गया है कि रेल-पथ में इस प्रकार उपचारित स्लीपरों का फटना कम रहा और सेवा-आयु भी अन्य सामान्य विधि से उपचारित स्लीपरों की अपेक्षा अधिक रही। इस वाष्पीकरण क्रिया का मुख्य लाभ यह है कि हरे काष्ठ के लम्बे समय तक अन्य विधि से संशोषण की प्रतीक्षा किये बिना ही उसका शीघ्र उपचार किया जा सकता है और साधारण-संशोषण क्रिया से जो काष्ठ को क्षति पहुँचती है वह भी बचायी जा सकती है।

(ई) वाष्पीकरण द्वारा समुचितोपचार (स्टीम कन्डीशनिंग)

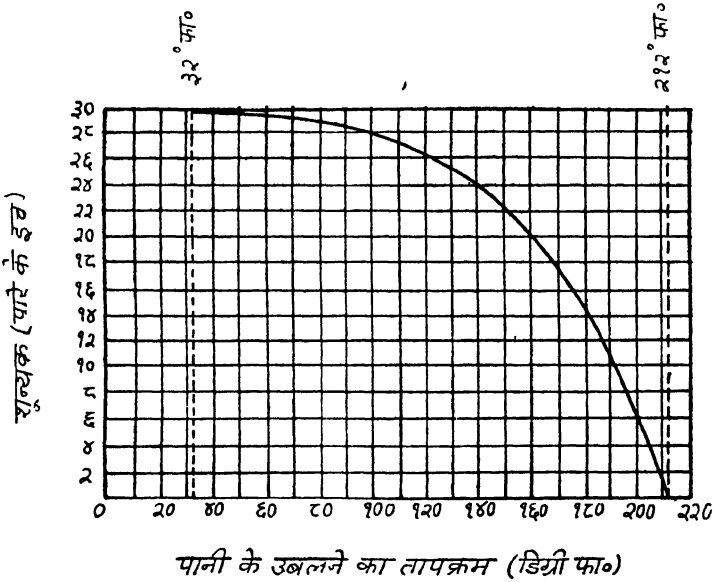
इस क्रिया से हरे या आंशिक-संशोषित काष्ठ को उपचार से पूर्व वाष्पीकरण द्वारा उपचार योग्य बनाया जाता है। इस क्रिया में काष्ठ को साधन-संयन्त्र (रम्भ) में डालकर घंटों तक दबाव के साथ वाष्पीकरण ('स्टीमिंग') किया जाता है। वाष्प का दबाव २० पौंड प्रति वर्ग इंच (१.४०६ किलोग्राम प्रति वर्ग-सैन्टीमीटर) के लगभग होता है। उसके पश्चात् रम्भ में शून्यक ('वैकुअम्') लगा देते हैं जिसके कारण काष्ठ की आर्द्रता कम हो जाती है और साथ-साथ कवक और छिद्र-कीट मर जाते हैं, अर्थात् काष्ठ-नाशक जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। वाष्पीकरण कितने दबाव पर और कितने समय तक रखना है, इसका निर्णय सूत्रों और वक्रों द्वारा किया जाता है। यह काष्ठ-जाति और उसके आकार पर निर्भर रहता है। सारांश में, वाष्पीकरण का उद्देश्य है वाष्प द्वारा वस्तु को गरम करना। वाष्प का जितना अधिक दबाव होगा उतना ही काष्ठ का ताप भी बढ़ेगा। जब काष्ठ में यथोचित गहराई तक ताप बढ़ जायगा तो शून्यक के कारण उसमें से आर्द्रता क्वथनांक-तापक्रम ('बौइलिंग पौइन्ट') से कम तापक्रम पर वाष्प बनकर उड़ने लगेगी। इसी सिद्धान्त के आधार पर हरे काष्ठ

का वाष्पीकरण किया जाता है। यह क्रिया वहीं की जा सकती है जहाँ इसको करने के साधन हो। निपीड क्रिया को उपयोग मे लानेवाले उपचार-सयन्त्रो मे इसे करने की सुविधा प्राप्त हो सकती है।

सयुक्त-राज्य अमेरिका की वन-पदार्थ प्रयोगशाला मे मैक्लीन नामक इन्जीनियर ने, अभीष्ट आर्द्रता प्राप्त करने के लिए कौन-सी जाति, आकार और आर्द्रता के काष्ठ का कितने समय तक और कितनी मात्रा मे वाष्पीकरण करना है, इसके लिए वक्र बनाये है। इन वक्रो के निर्देशन से यथार्थ वाष्पीकरण-समय का निर्णय कर सकते है। इसमे भी सावधानी की आवश्यकता होती है, क्योंकि यदि वाष्प का दबाव अधिक हो या अधिक समय तक वाष्पीकरण किया जाय तो काष्ठ के फटने का भय रहता है।

(उ) शून्यक मे उबालना ('बौईलिंग अन्डर वैकुअम')

हरे काष्ठ मे उपचार योग्य आर्द्रता लाने की एक और विधि काष्ठ को क्रियोजोट मे डुबोकर और उसके ऊपर शून्यक देकर उबालने की है। इस विधि का एकस्वीकरण



चित्र ४६—शून्यक के अनुसार जल के उबलने का तापक्रम।

बोल्टन ने १८७९ ई० मे इग्लैण्ड मे कराया था। यह बोल्टन् की विधि कहलाती है। इस विधि का सिद्धान्त यह है कि यदि जल को उसके ऊपर शून्यक (वैकुअम) देकर गरम किया जाय तो उसका उबाल तापक्रम कम हो जाता है। चित्र ४६ मे जो वक्र दिया गया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है।

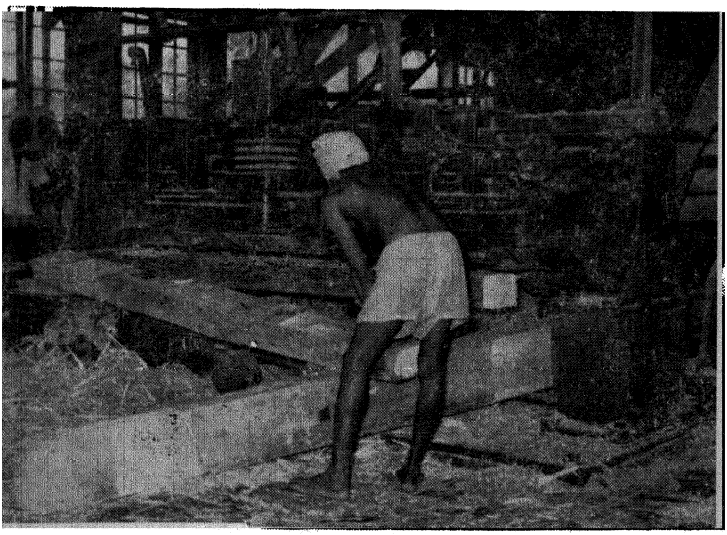
यह क्रिया उपचार-साधन-सयन्त्रो मे की जा सकती है। निपीड क्रिया द्वारा क्रियोजोट से जहाँ काष्ठ उपचार करना हो, वहाँ के लिए यह विधि उपयुक्त है। इस क्रिया मे हरे काष्ठ का तत्काल उपचार हो सकता है और वायु-सशोषण काल मे जिन अस्थायी काष्ठों पर कवक और छिद्रक कीटो मे आक्रमण का भय रहता है, वह दूर हो सकता है। तैलीय पदार्थ द्वारा उपचार करने मे काष्ठ-विपटन की आशका भी कम रहती है। आमाम और अडमान-जैसे स्थानो मे, जहाँ का जलवायु नम होने के कारण वायु-सशोपण मे अत्यधिक समय लगता है और वायु-सशोपण अवधि मे काष्ठ के कवक से सड़ने की दशा सर्वदा बनी रहती है, वहाँ उचित समय तक क्रियोजोट माध्यम मे शून्यक देकर उबालने और तत्पश्चात् निपीड क्रिया द्वारा क्रियोजोटीकरण करने से काष्ठ को बहुत बड़ी मात्रा मे बचाया जा सकता है।

(४) पूर्व कटाई और छिद्रण

काष्ठ के परिरक्षोपचार से अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी कटाई व छटाई उपचार के पूर्व ही की जाय। यदि ऐसा न किया गया तो काटने व छेदने से अनुपचारित काष्ठ के खुल जाने की आशका रहती है, जिसके कारण इस दुर्बल स्थान से काष्ठ-नाशक जीवाणु का आक्रमण आरम्भ हो जाता है, और यदि काष्ठ पूर्णतया परिरक्षी से व्याप्त न हो, तो काष्ठ-अग विफल हो जाता है, जैसे शृखला की शक्ति उसकी सबसे निर्वल कड़ी की शक्ति के ऊपर निर्भर रहती है। ऐसी दशा होने पर काष्ठ-परिरक्षण का उद्देश्य प्राप्त नही होता। यदि उपचार के पश्चात् काष्ठ को काटना अनिवार्य हो तो अनुपचारित काष्ठ के प्रकट होने पर उसमे परिरक्षी के गाढ़े विलयन से परिपूर्णतया लेप लगा देना चाहिए। यदि वहाँ पर छिद्र किया गया हो तो एक विशेष सयन्त्र द्वारा निपीड क्रिया से उस स्थान पर परिरक्षी व्यापन किया जा सकता है, जिससे यह दोष मिट जाता है।

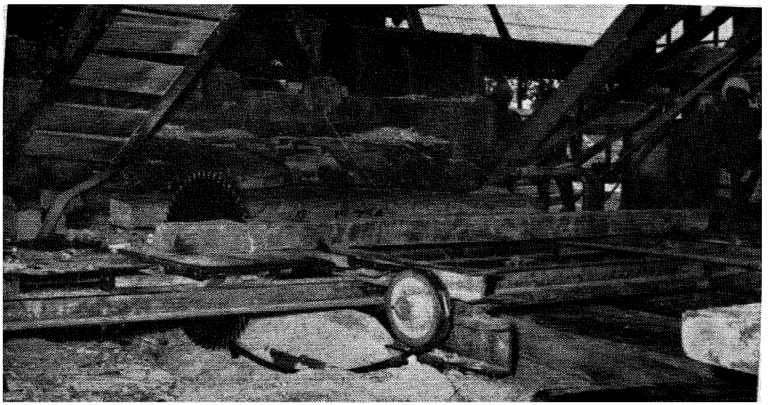
काष्ठ-स्लीपरों मे रेल-आसन पर उपचार (क्रियोजोटीकरण) से पूर्व खाँचे और प्रकील (Spike) छिद्र किये जाते हैं। ऐसा करने पर रेलो को ठीक प्रकार से बैठाने, प्रकील ठोकने के लिए स्लीपरों को फिर से छीलने और छिद्रण की आवश्यकता नही

पड़ती । स्लीपर के रेल-आसन और प्रकील के स्थानों को विशेष प्रकार से सुरक्षित रखने की आवश्यकता है । इन स्थानों पर यदि सड़न हो जाय तो पटरी काष्ठ के अन्दर धँसने लगती है और स्पाइक ढीले पड़ जाते हैं, जिससे गाड़ी के पटरी से उतरने का भय रहता है । भारत के उत्तरी रेलवे के धिलवाँ नामक स्थान पर स्लीपरों के क्रियोजोटीकरण कार्यालय में स्लीपरों की चौकोर टक्कर काटने और रेल-आसन को छीलने की मशीनें हैं । प्रकील-छिद्रण हस्त-श्रम से किया जाता है, स्लीपरों के सिरों पर संक्षेप में अक्षर और क्रमांक खोदे जाते हैं, जिससे कि काष्ठ-जाति, उपचार और विधायन समय का ब्यौरा ज्ञात हो सके । चित्र ४७, ४८, ४९, ५० में इन क्रियाओं का प्रदर्शन किया गया है ।



चित्र ४८—मशीन द्वारा रेल-आसन छीलना ।

बिजली और तार-खम्भों के सिरे उलटे 'वी' (∧) अक्षर के आकार में काटे जाते हैं, जिससे वर्षा का पानी तुरन्त बह जाय । उनके ऊपर आड़ी पट्टियाँ ('क्रौस आर्मस्') लगाने के लिए भी उपचार से पूर्व छीलन व छिद्रण किया जाता है,



चित्र ४७—घिलवां क्रियोजोटीकरण संयन्त्र में स्लीपरों के टक्कर काटना, पृ० १९० ।



९—हस्तक्रिया द्वारा प्रकील-छिद्रण।



चित्र ५०—स्लीपरों पर अक्षर लिखना और उन्हें क्रमांकित करना।

जिससे कि शोधन के पश्चात् काटने व छिद्रण करने की आवश्यकता न पड़े। इसी प्रकार अन्य निर्माण-काष्ठों में भी शोधन से पूर्व उचित आकार में ढाँचा बना लेना आवश्यक है ।

(५) भेदन ('इनसाइजिंग')

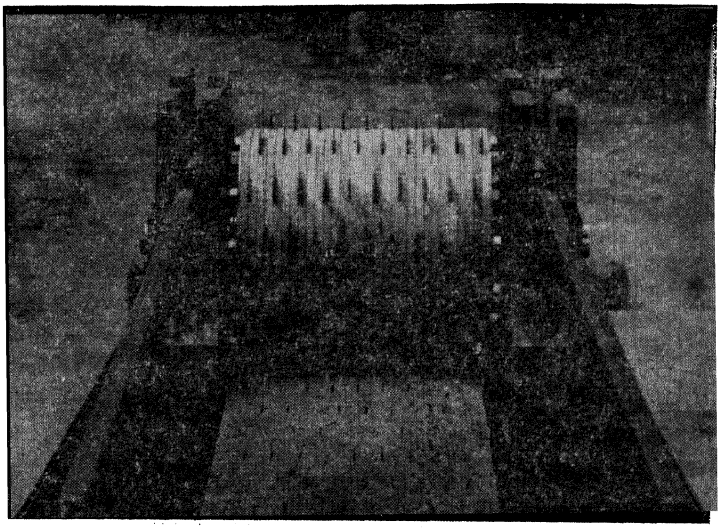
बहुत से काष्ठ-परिरक्षी व्यापन-रोधी होते हैं, अर्थात् काष्ठों में परिरक्षी-प्रवेश कराना दुष्कर होता है। काष्ठ में परिरक्षी-व्यापन पार्श्व (साइड) और छोर('एन्ड') भाग से होता है। कुछ अप्रवेश्य काष्ठ पार्श्व-भाग से व्यापित न होने पर भी छोर भाग से कुछ दूरी तक परिरक्षी के प्रवेश योग्य बनाये जा सकते हैं। इस गुण की विद्यमानता के कारण इन काष्ठों के पार्श्व-भाग का एक विशेष प्रकार के लोह-दन्तों से परिरक्षोपचार-पूर्व भेदन किया जाता है, जिससे बाद में निपीड क्रिया से उपचार करने पर परिरक्षी का सामान्यतः दन्त की गहराई तक प्रवेश हो सके। ये भेदन-दन्त दो प्रकार के होते हैं । इनमें से एक तो छेनी के सिर और दूसरा सीप के सिर के समान होता है। इनसे काष्ठ-तन्तु का कर्तन हो जाता है, जिसके कारण परिरक्षी का समान रूप से दोनों छोरों से व्यापन हो जाता है । ये दन्त सामान्यतः १ इंच से लेकर १.२५ इंच तक लम्बे और आधार पर लगभग ०.२५ इंच मोटाई के तथा ०.७५ इंच चौड़े होते हैं। इनको काष्ठ की सतह से लम्बाई में (काष्ठ के रेशे की दिशा में) ०.७५ इंच गहरे तक प्रवेश कराया जाता है । भेदनक्रिया मशीन द्वारा होती है, जिसमें उदग्र और क्षैतिज दिशा में चार भेदन-दन्त लगे हुए ड्रम घूमते रहते हैं, काष्ठ-खंड इनके बीच में से होकर निकाला जाता है । ड्रमों के दबाव के कारण काष्ठ-भेदन हो जाता है ।

भेदन की दूरी और उनका प्रतिरूप काष्ठ की जाति के ऊपर निर्भर रहता है । इनका वितरण इतना ही होना चाहिए, जितना कि परिरक्षी को समान रूप से व्यापन करने के लिए आवश्यक हो। उससे अधिक मात्रा मे भेदन करने पर काष्ठ के बल को क्षति पहुँचने की सम्भावना रहती है।

चित्र ५१ में एक भेदन करने की मशीन दिखलायी गयी है । उससे भेदन किये गये काष्ठ-स्लीपर के तल पर भेदन का वितरण स्पष्ट है।

भारत में उत्तरी रेलवे के धिलवाँ स्थान के क्रियोजोटीकरण कार्यालय में फर, स्प्रूस, कैल और देवदार जाति के व्यापन-रोधी काष्ठों के स्लीपरों का परिरक्षोपचार-पूर्व भेदन किया जाता है । इसके कारण इन स्लीपरों के पार्श्व-भाग में समान रूप से चारों ओर ०.७५ इंच गहराई तक परिरक्षी का प्रवेश हो जाता है। इसी के

फलस्वरूप इन जातियों के स्लीपरों से संतोषजनक सेवा-आयु प्राप्त हुई है। इस बात का प्रमाण भी मिलता है कि पूर्व-भेदन के कारण स्लीपरों के सेवा-अवधि-काल में विपटन कम रहा है।



चित्र ५१—काष्ठों का भेदन करने की मशीन।

अध्याय २

उपचार-विधाएँ

परिरक्षी को व्यवहार में लाने की रीतियाँ उतनी ही महत्त्वपूर्ण होती हैं जितना कि उनका रासायनिक संगठन। परिरक्षी प्रतिष्ठित अर्थात् प्रथम श्रेणी का होने पर भी यदि अनुचित प्रकार से प्रयुक्त किया गया हो, तो उचित प्रकार से प्रयुक्त किये गये लघु अर्थात् हीन परिरक्षी से भी अल्प-प्रभावशाली सिद्ध हो सकता है। अतः काष्ठ-परिरक्षण क्षेत्र में परिरक्षी-उपचार-विधियों के अन्वेषण-कार्य पर उतना ही बल दिया जाता है, जितना परिरक्षी-रसायनों के आविष्कार पर।

काष्ठ के सरंध्र होने के कारण यही विश्वास किया जाता है कि उसको परिरक्षी विलयन में डुबोने मात्र से ही परिरक्षी अंतर्व्याप्ति हो सकेगा। पर यथार्थ में ऐसा नहीं होता। परिरक्षी के अन्तः-प्रवेशन में अनेक बाधाएँ पड़ती हैं। इस विषय में अन्वेषण करनेवालों का यही लक्ष्य और उद्देश्य रहा है कि ऐसी उपचार-विधाएँ ढूँढ निकाली जायँ, जिनके द्वारा काष्ठ को हानि पहुँचाये बिना ही यथोचित मात्रा में परिरक्षी का समान रूप से काष्ठ के अन्दर दूर तक प्रवेश कराया जा सके। कृत्रिम निपीड क्रिया से इस दिशा में सफलता (४ च) उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ काल से प्राप्त हुई। इसमें विशेष संयन्त्रों की आवश्यकता थी। सन् १८३० और १८४० में कौथल, बूशरी, बर्नेट और क्यान नामक वैज्ञानिकों ने जो उपचार प्रक्रियाएँ निकालीं, उनका उल्लेख काष्ठ-परिरक्षण के इतिहास में पाया जाता है। तबसे इस क्षेत्र में लगातार प्रगति होती जा रही है, पर अभी तक व्यावहारिक दृष्टि से संतोषजनक किसी ऐसी विधा का आविष्कार नहीं हुआ जो सभी काष्ठों में पूर्ण रीति से परिरक्षी का व्यापन करा सके, यद्यपि इस दिशा में कुछ मात्रा तक सफलता प्राप्त हो चुकी है।

स्थूल रूप से काष्ठ-परिरक्षण-उपचार रीतियों का दो विधाओं में वर्गीकरण किया गया है। इनमें पहली तो अनिपीड विधाएँ हैं और दूसरी निपीड विधाएँ। अनिपीड विधाएँ वे सामान्य विधाएँ हैं जिनमें कृत्रिम दबाव का प्रयोग नहीं किया जाता, किन्तु निपीड विधा में कृत्रिम दबाव का प्रयोग, बन्द लोह-रम्भों द्वारा किया जाता है। इसका सविस्तर वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

१. अनिपीड[1] विधाएँ

अनिपीड विधाएँ परिरक्षोपचार की वे रीतियाँ हैं जिनमे निपीड अर्थात् दबाव का किसी भी रूप मे प्रयोग न किया गया हो। इनमे वे क्रियाएँ भी सम्मिलित हैं जिनमे मन्द-वायु दबाव का प्रयोग हरे काष्ठ के उपचार के लिए साधारण यन्त्रों द्वारा किया जाता है। जीवित वृक्षो का परिरक्षोपचार भी इन्ही विधियो के अन्तर्गत है। इनमें कई विधियो का एकस्वीकरण किया गया है। मुख्यत. ये विधियाँ निम्न प्रकार की है।

(क) आदहन ('चारिंग')

कभी-कभी काष्ठ को अल्प सुरक्षा के लिए बाह्य सतह पर किसी मशाल (टार्च) द्वारा आदग्ध अथवा प्रागारित करते है। विशेष कर खभो के बाह्यस्तर को आग मे जलाने से उनकी सुरक्षा हो जाती है। यदि प्रागारित (कार्बनीकृत) स्तर टूटकर न गिरे तो कुछ समय तक यह अन्दर के काष्ठ को सुरक्षित रख सकता है, पर सर्वदा ऐसा होना सम्भव नही है। कुछ सीमा तक काष्ठ के प्रागारण से उत्पन्न पदार्थ भी अन्दर के काष्ठ को सुरक्षित रखने मे सहायक होते है, पर प्रागारित पदार्थ अधिक मात्रा मे न होने के कारण कुछ समय पश्चात् वे लुप्त हो जाते है। इस क्रिया से कही-कही अच्छे परिणाम प्राप्त होने का उल्लेख (४ च) मिलता है, पर इससे अधिक समय तक सुरक्षा की आशा नही की जा सकती। सीमित खर्चवाली होने के कारण अल्प-सुरक्षा के लिए, विशेष कर बाड़ के खम्भो के परिरक्षण के लिए, यह क्रिया उपयुक्त है।

(ख) कूर्चन और शीकरन ('ब्रशिंग'[2] और स्प्रेइंग'[3])

परिरक्षी को कूची से लगाना कूर्चन और पिचकारी से छीटना शीकरन कहलाता है। इस क्रिया से परिरक्षी काष्ठ की सतह पर ही रहता है, यद्यपि केशाल ('कैपीलरी'[4]) क्रिया के फलस्वरूप कही थोड़ी ही दूरी तक परिरक्षी प्रवेश कर सके, परन्तु इस विधि से सामान्यत. परिरक्षी बहुत ही कम दूरी तक प्रविष्ट हो पाता है। यह प्रवेश-रोधी गुण काष्ठ मे स्वाभाविक होता है, इसी कारण इन सामान्य विधियो से परिरक्षी का प्रवेश कराना कठिन हो जाता है। कूर्चन और शीकरन के उपचार काष्ठ के अस्थायी परिरक्षण की सरल विधियाँ हैं। इनमे कही विशेष कीमती यन्त्रों की आवश्यकता नही पड़ती और थोड़ी ही पूँजी लगाने से कार्य किया जा सकता है। साधारण कूची और पिचकारियो से ही काम चल जाता है। ये चीजे सभी

1 Pressure-less. 2 Brushing. 3 Spraying. 4 Capillary.

जगह आसानी से ले जायी जा सकती है। इस कार्य के लिए अधिक मात्रा में परिरक्षी का सग्रह करना आवश्यक नही होता। परिमित मात्रा मे ही परिरक्षी का सचय किया जा सकता है।

इन विधियो का प्रयोग मुख्यत: कटान के पश्चात् हरे काष्ठ को क्षति-रोधक बनाने के लिए किया जा सकता है या स्थिरीकृत काष्ठ के तत्स्थानीय ('इन सिटचू') उपचार के लिए। इन विधियो का प्रयोग एक निश्चित अवकाश के बाद पुनः क्रम से निरन्तर करते रहने से, काष्ठ को चिरकाल तक भी सुरक्षित रख सकते है, यदि काष्ठ के प्रत्येक भाग, अर्थात् उसके कोने-कोने मे, परिरक्षी का लेपन किया जाना सम्भव हो। काष्ठ के सयन्त्रों द्वारा स्थायी उपचार के पूर्व इस प्रकार की विधियो का उपयोग लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

कूर्चन और शीकरन विधियो मे काष्ठ की सतह पर परिरक्षी का लेप उदारता-पूर्वक लगाना चाहिए। काष्ठ का प्रत्येक भाग खूब तर कर देना आवश्यक है। कम से कम आरम्भ मे दो लेप लगाना उचित होगा। एक लेप के सूखने पर ही दूसरा लेप लगाया जा सकता है। इस क्रिया से काष्ठ के पार्श्व-भाग की अपेक्षा, छोर भाग से अधिक दूरी तक परिरक्षी का प्रवेश हो जाता है। हरे काष्ठो मे परिरक्षी के घोल का प्रयोग करने पर प्रसारण-क्रिया द्वारा काष्ठ मे थोडी गहराई तक परि-रक्षी-व्यापन की सम्भावना रहती है। लेप करने से पूर्व तैलीय परिरक्षी को गरम कर लेना आवश्यक है। इससे तैल पतला हो जाता है और काष्ठ मे प्रचूषित होने मे सहायक होता है। जल-विलयित और प्रागारिक विलायक परिरक्षी का शीत अवस्था मे भी प्रयोग कर सकते है।

कूर्चन और शीकरन विधियो का प्रयोग उन अवस्थाओ मे भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है, जहां उपचारित काष्ठ को फिर से छीलने या काटने पर अनुपचारित काष्ठ प्रकट हो गया हो। इन जगहो पर परिरक्षी का उदारतापूर्वक लेप करने से न्यूनाधिक रूप मे यह दोष मिट सकता है।

(ग) डूबन ('डिपिंग')

डूबन क्रिया मे निर्माण काष्ठ को कुछ ही सेकन्ड या मिनट तक किसी पात्र मे रखे परिरक्षी मे डुबो देते है। इसके पश्चात् उसमे से काष्ठ बाहर निकाला जाता है और उसमे से टपकन एकत्र कर फिर से पात्र मे रख ली जाती है। तैलीय परिरक्षी

1 Dipping.

को उसमे डुबाने से पूव गरम करना उचित है, क्योकि इससे काष्ठ को परिरक्षी के प्रचूषण मे सहायता मिलती है। अन्य प्रकार के परिरक्षी-विलयन को भी थोड़ी मात्रा मे गरम करना उपयुक्त होगा, यदि ऐसा करने से कोई नुकसान न हो।

यद्यपि यह क्रिया कूर्चन और शीकरन क्रिया से महँगी पडती है, तथापि कूर्चन और शीकरन की अपेक्षा इस डुबाने की क्रिया से अच्छे परिणाम निकल सकते है, क्योकि इस क्रिया मे काष्ठ को परिरक्षी के स्पर्श मे रहने का अधिक अवकाश मिलता है, जिसके फलस्वरूप काष्ठ की दरारो और छेदो मे परिरक्षी आसानी से पहुँच जाता है। इस काम मे परिरक्षी के सचय के लिए बडे पात्र की आवश्यकता पडती है और परिरक्षी भी अपेक्षाकृत अधिक मात्रा मे सग्रह करना पडता है।

डुबोने की क्रिया अल्पस्थायी काष्ठो की आयु को थोडे ही वर्ष (बाहर खुले मे ४ या ५ वर्ष तक) अधिक बढाने मे सहायता करती है और सरचनात्मक काष्ठों की अल्पकालिक सुरक्षा के लिए उपयोगी सिद्ध हुई है। खिड़की के चौखटो, दरवाजो और सिल्लियो को प्रागारिक-विलायक परिरक्षी द्वारा उपचारित करने के लिए भी यह क्रिया विशेष प्रकार से उपयुक्त है। यदि काष्ठ शुष्क हो तो उसे कुछ अधिक समय तक परिरक्षी विलयन मे डुबाये रखने से अच्छे परिणाम निकल सकते है। पर यह क्रिया सर्वांग-पूर्ण निपीड क्रिया का स्थान नही ले सकती।

(घ) चूषण ('सोकिंग'[1] और 'स्टीपिंग'[2])

इस विधा मे काष्ठ को परिरक्षी से भरी टकी मे डुबोकर कई दिनो तक पडा रहने दिया जाता है। डुबोकर रखने की अवधि काष्ठ की जाति, आकार और आर्द्रता पर निर्भर रहती है। यह अवधि एक या दो दिन मे लेकर कई महीनो तक की भी हो सकती है। यह ऊपर लिखी सब विधियो मे, अर्थात् कूर्चन, शीकरन और ड्रबन की अपेक्षा बहुव्ययी है, क्योकि इसमे साधन-सयन्त्र और परिरक्षी की अधिक मात्रा की आवश्यकता पडती है। यह विधि काष्ठ के बडे पैमाने के उपचार के लिए उपयुक्त नही है। परन्तु इस विधा मे पूर्वोक्त सब विधाओ मे अधिक मात्रा और गहराई तक परिरक्षी प्रचूषण कराने के फलस्वरूप अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकते है।

यह क्रिया शुष्क तथा हरे, दोनो काष्ठो के लिए उपयुक्त है। शुष्क काष्ठ के लिए गरम तैल अथवा घोल के रूप मे तथा हरे काष्ठ के लिए जलीय घोल के रूप में तैयार किया परिरक्षी लाभप्रद होता है। शुष्क काष्ठ मे परिरक्षी आचूषित हो

1. Soaking. 2 Steeping.

जाता है और हरे काष्ठ मे प्रसारण ('डिफ्यूजन्') द्वारा व्याप्त हो जाता है। परिरक्षी का प्रचूषण आरम्भ मे एक या दो दिन तक अधिक रहता है और फिर उसकी व्यापन गति कम होती जाती है, पर चालू रहती है। अतः यदि सम्भव हो तो अधिक काल तक काष्ठ को डुबा कर रखने से अच्छा उपचार होगा। रस काष्ठ यदि अधिक काल तक डूबा रहने दिया जाय तो उसमे परिरक्षी प्रायः संपूर्ण रूप से व्याप्त हो सकता है। यह एक सामान्य नियम (४ ज) है कि शुष्क काष्ठ की प्रति १ इच मोटाई के लिए उसे एक दिन तक डुबा रखने की आवश्यकता होती है। इसी गणना से काष्ठ के चूषण-अवधिकाल का निर्णय किया जाता है। इसके अतिरिक्त एक और दिन इस क्रिया के परिपूर्ण होने के हेतु दिया जाता है।

इस विधा मे निपीड क्रिया की अपेक्षा अधिक सकेन्द्रित परिरक्षी प्रयोग मे लाना चाहिए, विशेष रूप से हरे काष्ठो के उपचार के लिए। हरे काष्ठों को टकियो मे से निकालने के पश्चात् बन्द चट्टा लगाकर गीला रखने से कुछ समय उपरान्त, प्रसारण के कारण अधिक गहराई तक परिरक्षी व्याप्त हो सकता है। अतः यह विधा शुष्क काष्ठों की अपेक्षा हरे काष्ठो के उपचार के लिए अधिक प्रभावकारी सिद्ध हुई है। छादन घास, हरे बेत और बाँसो की पट्टियों का उपचार भी इन क्रियाओ द्वारा सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

मर्करी क्लोराइड द्वारा किया गया काष्ठो का यह उपचार 'कियेनाइजिंग' नाम से प्रसिद्ध है, जिसका एकस्वीकरण जौन क्यान ने इंग्लैंड मे सन् १९३२ मे कराया था। जर्मनी और अन्य यूरोपीय देशो मे बहुत समय तक काष्ठ-खम्भों का उपचार इस रीति से होता रहा और सयुक्त राज्य अमेरिका मे निर्माण-काष्ठ के लिए भी यह प्रक्रिया प्रयुक्त की गयी। चूँकि मर्करी क्लोराइड धातुरूप मे सक्षरित हो जाता है, इसलिए इस क्रिया मे आवश्यक परिरक्षी को रखने का पात्र या कुण्ड काष्ठ या सीमेंट का होना चाहिए। मनुष्यो पर मर्करी क्लोराइड का तीव्र विषैला प्रभाव पडता है, अत. अब अन्य परिष्कृत किये गये परिरक्षी इस विधि मे प्रयुक्त किये जाने लगे है।

(ङ) आसारण ('औसमौस्'[1]) और प्रसारण ('डिफ्यूजन्')

इस विधि से प्रसारण द्वारा परिरक्षी काष्ठ मे प्रविष्ट किया जाता है। इस प्रक्रिया का विकास जर्मनी मे सन् १९३३ के लगभग हुआ। उस देश, ब्रिटेन और

1 Osmoss.

अमेरिका, तीनों में इस विधि का एकस्वीकरण हो गया है। इस में जल-विलयित गाढ़े घोल के रूप में परिरक्षी की मोटी तह का हरे काष्ठ की सतह पर लेप किया जाता है। तत्पश्चात् उस काष्ठ को बन्द चट्टे में लगाकर तिरपाल या अन्य जल-रोधी वस्त्र से ढक दिया जाता है, जिससे वायु-संशोषण न हो सके। कुछ दिनों पश्चात् एक मास से लेकर तीन मास की अवधि के बाद (काष्ठ की जाति और परिमाण के अनुसार) यह उपचार समाप्त कर दिया जाता है। इससे परिरक्षी काष्ठ में पर्याप्त गहराई तक प्रवेश कर जाता है। इस विधि में सोडियम् फ्लोराइड्[1], डाइनाइट्रोफीनौल,[2] क्रोमेट्स्[3] और कभी-कभी संखिया[4] के मिश्रण का परिरक्षी के

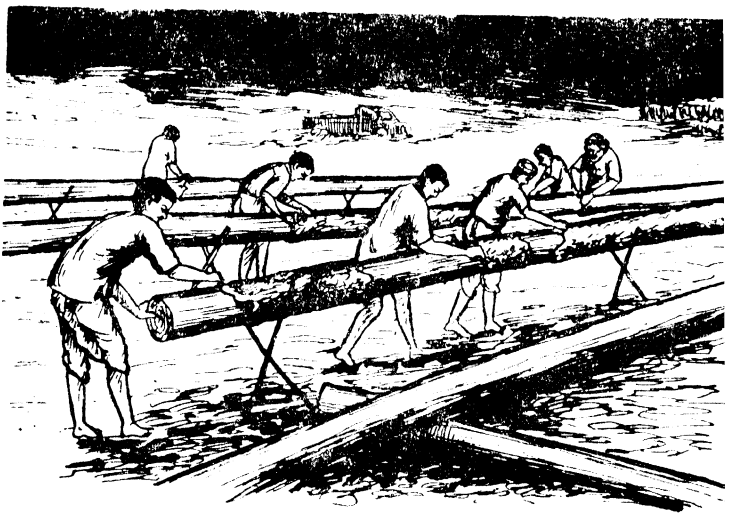


चित्र ५२—कोदाई कनाल में आसारण विधि द्वारा काष्ठ-खंभ का उपचार।

रूप में प्रयोग किया जाता है। बिजली और बाड़ के खम्भों के लिए यह अति उपयोगी है और इस विधि से बद्धरूप परिरक्षी का प्रयोग करने पर संतोष-

1 Sodium Fluoride. 2 Dinetrophenol. 3 Chromates.
4 Arsenic.

जनक परिणाम निकल सकते हैं। इस क्रिया से कोदाइ कैनाल में **पाइनस् इन्सिग्निस्**[1] काष्ठ से बने बिजली-खम्भों का उपचारण चित्र ५२-५३ में दिखलाया गया है। वहाँ की नगरपालिका ने ऐसे २००० उपचारित खम्भे लगाये हैं।



चित्र ५३—**कोदाई कनाल में आसारण विधि द्वारा काष्ठ-खंभ का उपचार।**

इस विधि के मूलभूत सिद्धान्त का परिरक्षी पट्टी बन्धन में भी प्रयोग किया जाता है। पट्टी बन्धन में जल-विलेय परिरक्षी का गाढ़ा लेप मोटे वस्त्र की पट्टी पर लगा कर, हरे खम्भे के भूमि-निकटवर्ती भाग के कुछ ऊपर और नीचे, जहाँ कवक और दीमकों के आक्रमण की संभावना बनी रहती है, बाँधा जाता है। प्रसारण क्रिया से परिरक्षी खम्भे के ऊपर और नीचे फैलकर काष्ठ को सुरक्षित रखता है। इस विधि का एकस्वीकरण स्वीडन में सन् १९२० में हुआ, फिर १९२८ में जर्मनी में भी इसका प्रयोग होने लगा। कहीं-कहीं संपूर्ण हरे खम्भे पर परिरक्षी का लेप कर उसके ऊपर जल-रोधी कागज लपेटा जाता है, फिर प्रसारण क्रिया द्वारा संपूर्ण भाग में कुछ गहराई तक परिरक्षी फैल जाता है। एक पुरानी विधि काष्ठ में छिद्र कर

1 Pinus Insignis.

वर्ग इंच (१.७६ या २.११ किलोग्राम प्रति वर्ग सें.) हस्त या पद-पम्प द्वारा वातिक दबाव ('न्यूमैटिक प्रशर') आ सके। दबाव-माप मोटर टायर-पैन-गेज से नापा जा सकता है। परिरक्षी-कुंड, पैट्रोल टंकी या पतले लोहे की चादर का बनाया जा सकता है, और उसकी डाट में वाल्व लगाने से हवा रोकी जा सकती है। टंकी के तले में एक निकास-नल लगा रहता है, जिसका अन्त-भाग एक मोटे नल द्वारा निपीड रबड़-नाल द्वारा काष्ठ-खम्भ के तनु-छोर से दृढ़ता से बाँधा जा सके। इस उपचार रीति में यह आवश्यक नहीं है कि खम्भे का मुंड-छोर ही परिरक्षी से संबद्ध हो। कोई भी छोर, जो रबर-ट्यूब में ठीक प्रकार से बैठ जाय, लगाया जा सकता है। इस विधि में यह ऐसी विशेष सुविधा है जो उपर्युक्त विधि में नहीं है। इस प्रकार काष्ठ-खंभ को बाँधने पर, कुंड में परिरक्षी-विलयन पर (लगभग २५ पौंड प्रति व० इं० अर्थात् १.७६ किलोग्राम प्रति व० सें० तक) वातिक दबाव दिया जाता है। इस दबाव के कारण खुले छोर से काष्ठ-रस अति वेग से बहने लगता है और प्रायः २० फुट लम्बे खम्भे का उपचार लगभग दो-तीन दिन के अन्दर ही हो सकता है। एस्क्यू परिरक्षी द्वारा किये जानेवाले इस प्रकार के उपचार का प्रदर्शन, **चित्र ५४, ५५** में किया गया है। **चित्र ५६** में हरे पूर्ण गोल बाँसों का उपचार भी दर्शाया है। इस सामान्य साधित्र में ५ या ६ बाँसों की शोधन-क्रिया एक साथ हो सकती है। उपयुक्त टंकी और नलों को जोड़ने से ऐसा भी उपचार-संयन्त्र बनाया जा सकता है जिसमें प्रायः ५० या ६० बाँसों का एक साथ उपचार हो सके।

गोल बाँसों का उपचार दुष्कर कार्य है, केवल यही एक ऐसी विधि है जिससे पूर्ण प्रकार से बाँसों का उपचार किया जा सकता है। टहनी सहित बाँसों का उपचार करने पर गाँठों के द्वार से परिरक्षी बहने लगता है तथा उसकी हानि बचा दी जा सकती है।

बाँसों पर इस विधि से किये गये उपचार-परीक्षणों से यह परिणाम निकले हैं कि तीन वर्ष उम्र तक के बाँस संतोषजनक रूप में उपचारित हो सकते हैं। बाहर खुले में उपयोग के योग्य बाँसों का इस विधि से उपचार करने में लगभग तीन घंटे लगते हैं, किन्तु जिन बाँसों का प्रयोग भीतरी जगह में किया जाय उनके लिए दो घंटे लगते हैं। क्षतिरोधक उपायों के लिए आधे घंटे की उपचार-अवधि पर्याप्त है। बाँसों की संपूर्ण लम्बाई, केवल सिरे और जड़ के भाग को छोड़कर, इस रीति से शोधित की जा सकती है। तीन वर्ष से अधिक उम्र वाले बाँसों का इस विधि से उपचार करने में कठिनाई पड़ती है। यदि बाँसों की निर्माण-शक्ति लगभग तीन

लगता है। यह क्रिया खम्भे के मुण्ड-छोर पर पुराने मोटर-ट्यूब के टुकड़े को कसकर बाँधकर और तब उसे परिरक्षी पात्र बनाकर भी की जा सकती है। यथार्थ मात्रा में परिरक्षी निकलने पर क्रिया समाप्त कर दी जाती है। तब काष्ठ को, उसका वल्क छीलकर और वायु-संशोषण करके काम में लाया जा सकता है।

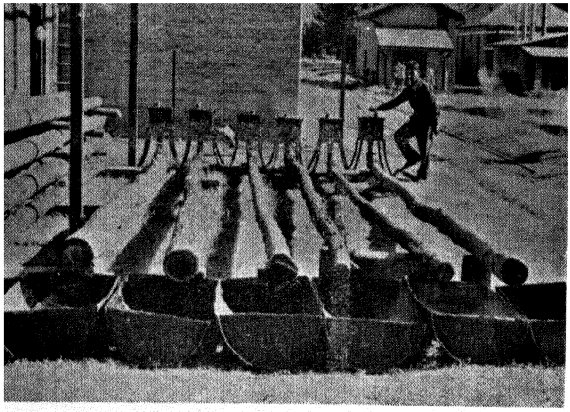
फिनलैंड और जर्मनी में ऐसे संयन्त्र हैं जहाँ बूशरी प्रक्रिया से सैकड़ों काष्ठ-खम्भों का एक साथ उपचार किया जाता है। इनके लिए एक उच्च मञ्च पर मध्यवर्ती कुंड स्थापित किया जाता है, जो परिरक्षी प्रदायक होता है। आरम्भ-काल में इस विधि के लिए कॉपर सल्फेट[1] (नीला थोथा) का विलयन परिरक्षी के रूप में प्रयुक्त किया जाता था, पर अब इसमें किसी भी जल-विलेय परिरक्षी का प्रयोग कर सकते हैं। यदि परिरक्षी रंगीन हो तो क्रिया की समाप्ति का अनुमान सरलता से हो सकता है। यूरोपीय देशों में इस प्रकार उपचारित काष्ठ के खम्भे बहुत संख्या में लगाये गये, उनकी सेवा-आयु के बारे में अभिलेख प्राप्त हुए हैं। कहीं-कहीं इनसे संतोषजनक परिणाम निकले हैं, जो प्रयुक्त परिरक्षी, जल में उसके संकेन्द्रण, उपचार-अवधि, काष्ठ-जाति और स्थानीय जल-वायु आदि पर निर्भर हैं। उपचार के लिए काष्ठ-खम्भे नये कटान के होने चाहिए। यदि इस विधि से तुरन्त ही उपचार करने में कुछ विलम्ब हो जाय, तो शुष्क छोर को काटने पर ही यह विधि कार्यकर सिद्ध हो सकती है। अतः वनों के समीप ही इस कार्य के संयन्त्र स्थापित किये जा सकते हैं। तैलीय और प्रांगारिक-विलायक परिरक्षी का प्रयोग इस विधि में नहीं किया जा सकता। भारत के उत्तर प्रदेश में अल्मोड़ा नामक स्थान की नगरपालिका ने कुछ हरे चीड़-खम्भों का एस्क्यू परिरक्षी से इस विधि द्वारा उपचार किया था और तत्पश्चात् नगर में बिजली के खम्भों के रूप में वे खम्भे लगाये गये थे। उनमें से जो खम्भे समुचित प्रकार से उपचारित हुए थे, वे लगभग १२ वर्ष के सेवा-कार्य के पश्चात् अब भी अच्छी दशा में हैं।

उपरिलिखित विधा से काष्ठ के लम्बे खम्भों के उपचार में कई दिन (लग-भग २ सप्ताह) लग जाते हैं, जिससे इस विधा के वाणिज्योपयोग में बाधा पड़ती है। इस समस्या को सुलझाने के लिए देहरादून वन-अनुसन्धान शाला की काष्ठ-परिरक्षण शाखा ने इस विधि में कई परीक्षण करने के बाद संशोधन (१घ) किया। परिरक्षी कुण्ड की ऐसी रचना की गयी जिससे उसमें २५ या ३० पौंड प्रति

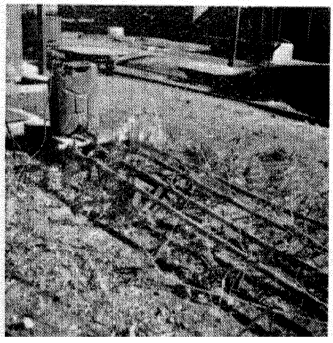
1 Copper Sulphate.



चित्र ५५—हरे काष्ठ खंभों का उपचार, पृ० २०३ ।



चित्र ५४—हरे काष्ठ खंभों का उपचार, पृ० २०३ ।



चित्र ५६—पूर्ण गोल हरे बाँसों का उपचार, पृ० २०३ ।

वर्ग इंच (१.७६ या २.११ किलोग्राम प्रति वर्ग सें.) हस्त या पद-पम्प द्वारा वातिक दबाव ('न्यूमैटिक प्रशर') आ सके। दबाव-माप मोटर टायर-पैन-गेज से नापा जा सकता है। परिरक्षी-कुंड, पैट्रोल टंकी या पतले लोहे की चादर का बनाया जा सकता है, और उसकी डाट में वाल्व लगाने से हवा रोकी जा सकती है। टंकी के तले में एक निकास-नल लगा रहता है, जिसका अन्त-भाग एक मोटे नल द्वारा निपीड रबड़-नाल द्वारा काष्ठ-खम्भ के तनु-छोर से दृढ़ता से बाँधा जा सके। इस उपचार रीति में यह आवश्यक नहीं है कि खम्भे का मुंड-छोर ही परिरक्षी से संबद्ध हो। कोई भी छोर, जो रबर-ट्यूब में ठीक प्रकार से बैठ जाय, लगाया जा सकता है। इस विधि में यह ऐसी विशेष सुविधा है जो उपर्युक्त विधि में नहीं है। इस प्रकार काष्ठ-खंभ को बाँधने पर, कुंड में परिरक्षी-विलयन पर (लगभग २५ पौंड प्रति व० इं० अर्थात् १.७६ किलोग्राम प्रति व० सें० तक) वातिक दबाव दिया जाता है। इस दबाव के कारण खुले छोर से काष्ठ-रस अति वेग से बहने लगता है और प्रायः २० फुट लम्बे खम्भे का उपचार लगभग दो-तीन दिन के अन्दर ही हो सकता है। एस्क्यू परिरक्षी द्वारा किये जानेवाले इस प्रकार के उपचार का प्रदर्शन, चित्र ५४, ५५ में किया गया है। चित्र ५६ में हरे पूर्ण गोल बाँसों का उपचार भी दर्शाया है। इस सामान्य साधित्र में ५ या ६ बाँसों की शोधन-क्रिया एक साथ हो सकती है। उपयुक्त टंकी और नलों को जोड़ने से ऐसा भी उपचार-संयन्त्र बनाया जा सकता है जिसमें प्रायः ५० या ६० बाँसों का एक साथ उपचार हो सके।

गोल बाँसों का उपचार दुष्कर कार्य है, केवल यही एक ऐसी विधि है जिससे पूर्ण प्रकार से बाँसों का उपचार किया जा सकता है। टहनी सहित बाँसों का उपचार करने पर गाँठों के द्वार से परिरक्षी बहने लगता है तथा उसकी हानि बचा दी जा सकती है।

बाँसों पर इस विधि से किये गये उपचार-परीक्षणों से यह परिणाम निकले हैं कि तीन वर्ष उम्र तक के बाँस संतोषजनक रूप में उपचारित हो सकते हैं। बाहर खुले में उपयोग के योग्य बाँसों का इस विधि से उपचार करने में लगभग तीन घंटे लगते हैं, किन्तु जिन बाँसों का प्रयोग भीतरी जगह में किया जाय उनके लिए दो घंटे लगते हैं। क्षतिरोधक उपायों के लिए आधे घंटे की उपचार-अवधि पर्याप्त है। बाँसों की संपूर्ण लम्बाई, केवल सिरे और जड़ के भाग को छोड़कर, इस रीति से शोधित की जा सकती है। तीन वर्ष से अधिक उम्र वाले बाँसों का इस विधि से उपचार करने में कठिनाई पड़ती है। यदि बाँसों की निर्माण-शक्ति लगभग तीन

वर्ष मे परिपूर्ण हो जाय, जैसी कि आशा की जाती है, तो इस उम्र तक ही उपचार कर लेना उचित होगा। तीन वर्ष से अधिक उम्र वाले बाँसो के उपचार के विषय मे, काष्ठ-परिरक्षण शाखा की प्रयोगशाला मे परीक्षण चल रहे हैं। आशा है कि निकट भविष्य मे इसका भी समाधान प्राप्त हो जायगा। तब तक यही उचित होगा कि अधिक उम्र वाले बाँसो को फाड़कर और उनका वायु-सशोपण करके ही उन्हे निपीड क्रिया से शोधित किया जाय।

काष्ठ-खम्भो का वल्क, उपचार के पश्चात् उतारा जाता है। बाँसो की टहनियाँ साफ कर उन्हे समूचा या फाड़कर रख दिया जाता है। प्रयोग करने के पूर्व कम से कम ३ या ४ सप्ताह तक छादित स्थान के अन्दर इनका वायु-सशोपण करना आवश्यक होता है।

इस प्रकार के उपचार-सयन्त्र सुवाह्य होते हैं और इधर उधर, विशेष कर पर्वतीय स्थानो मे, ले जाने के लिए सुगम होते है। जगल के निकटवर्ती स्थानो मे इस प्रकार के सयन्त्रो की स्थापना करना और उपचार-कार्य समाप्त हो जाने पर, आस-पास के कार्य-क्षेत्र मे उनका स्थान-परिवर्तन वहा सरलता से किया जा सकता है जहाँ हरे काष्ठ प्राप्य हो सके। बाँसो के इस प्रकार के साधन-सयन्त्र ग्रामीण सामुदायिक विकास योजना केन्द्रो मे स्थापित करना लाभप्रद होगा। वहा पर उपचार किये गये हरे काष्ठ व बासो का उपयोग गृह और अन्य निर्माणकार्यो के लिए मितव्ययी सिद्ध हो सकता है। इस कार्य मे अधिक पूँजी की आवश्यकता भी नही पडती। वन-अनुसन्धान शाला की काष्ठ-परिरक्षण शाखा ने पाँच बाँसो या एक बडे काष्ठ-खम्भे (बल्ली) के उपचार के लिए लगभग १०० रुपये मे एक साधित्र बनाया है। यह मृदु-इस्पात चादर का बना एक प्रबल सयन्त्र है।

(छ) तापन और शीतन,[1] खुले कुण्ड मे

इस रीति से काष्ठ-उपचार खुली टकियो मे किया जाता है। अत. इसको उष्ण और शीत खुली टकी विधा भी कहते है। इस विधा का सिद्धान्त है कि यदि सशोधित काष्ठ को खुली टकी मे रखे हुए क्रियोजोट तैल मे डुबोकर गरम किया जाय, तो काष्ठ-कोशा मे समावृत वायु फैलने लगती है, और साथ ही काष्ठ की आर्द्रता भी वाष्प मे परिणत होकर बाहर निकलने लगती है। उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि तैल उबल रहा हो। पर वास्तव मे उतने ताप पर क्रियोजोट

1 Heating and cooling in open tank.

नही उबल सकता। कुछ देर तक गरम करने के पश्चात् यदि वही डुबोया काष्ठ तैल सहित ठडा किया जाय, तो काष्ठ मे से फैलकर निकली हवा और जल-वाष्प के स्थान पर शून्यक बन जाता है, जिसके फलस्वरूप वायुमण्डलीय दबाव द्वारा तैल, काष्ठ की कोशाओ के अन्दर व्याप्त हो जाता है। काष्ठ मे तैल अथवा परिरक्षी का प्रचूषण और व्यापन, काष्ठ की जाति, आर्द्रता, परिमाण, तापनकाल, शीतन-तापक्रम और परिरक्षी के आलगत्व[1] अर्थात् गाढेपन पर निर्भर रहता है। यद्यपि कुछ सरध्र काष्ठों मे तापन के समय कुछ परिरक्षी प्रचूषण भी हो जाता है, पर मुख्यत. शीतन काल मे ही परिरक्षी-प्रचूषण ओर प्रवेशन होता है। काष्ठ के तापन और शीतन कराने की कई रीतियाँ है। एक रीति उसी टकी मे गरम और उसी मे ठडा करने की है, जिसमे लगभग २४ घटे लग जाते है और इतने समय मे केवल एक ही काष्ठ-प्रभार का उपचार करना सम्भव होता है। कही-कही यह प्रथा है कि तापन एक कुड मे और शीतन दूसरे ऐसे कुड मे किया जाता है, जिसमे ठडा परिरक्षी रखा हुआ हो। इसमे गरम किये हुए काष्ठ को तुरन्त ही शीत परिरक्षी मे डुबोना पड़ता है, जिससे कि स्थानान्तरण काल मे काष्ठ-कोशा मे वायु-प्रवेश होने का अवकाश न मिले। यदि इसमे कुछ विलम्ब होगा तो परिरक्षी उचित मात्रा मे प्रविष्ट न हो सकेगा। कही गरम परिरक्षी को कुड से तुरन्त निकालकर उसकी जगह ठडा परिरक्षी भर दिया जाता है और कही काष्ठ को भट्ठियो मे गरम कर तुरन्त ही ठडे परिरक्षी के कुड मे डुबोया जाता है। जो भी क्रिया की जाय, इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि तापन के पश्चात् शीतन-काल मे काष्ठ यथासम्भव परिरक्षी से समावृत रहे। यदि ऐसा न किया गया तो सतोषप्रद परिणाम नही प्राप्त होगे।

इस विधि से तैल और जल-विलयन रूपी परिरक्षी प्रयुक्त किये जा सकते हैं, पर बहुधा यह विधि क्रियोजोट और इन्धन तैल के मिश्रण से उपचार करने के लिए उपयुक्त है, क्योकि तैल का यह मिश्रण बिना उद्वाष्पन हुए अधिक ताप तक गरम किया जा सकता है और जल-विलयन की अपेक्षा कम आपेक्षिक ताप होने के कारण शीघ्रता से गरम हो सकता है। जल-विलयन को गरम करने से भाप बनने का भय रहता है। लगातार गरम करने से जल-विलयन मे परिरक्षी का सकेन्द्रण परिवर्तित होता रहता है और रासायनिक क्रिया द्वारा तलछट बनने की आशका भी बनी रहती

1 Viscosity, श्यानता।

है। तैलीय परिरक्षी (क्रियोजोट और इन्धन तैल) के ५०:५० मिश्रण को ९५° सेन्टीग्रेड से लेकर १००° सेन्टीग्रेड तक गरम किया जाता है, और इसी तापक्रम को शीतनपूर्व, कुछ घटों तक स्थिर रखना पड़ता है। तैल का शीत तापक्रम ३५° सेन्टीग्रेड से नीचे नही होना चाहिए, क्योकि इससे कम तापक्रम पर तैल मे वर्तमान ठोस पदार्थो के जमने की आशका रहती है। जल-विलयन परिरक्षी को ८०° सेन्टीग्रेड से ऊपर गरम करना उचित नही है, उसको वायुमडल ताप (यदि ५° सेन्टीग्रेड मे कम न हो) तक भी ठडा किया जा सकता है। उपचारकाल मे काष्ठ को परिरक्षी-द्रव में बाँधकर या उस पर भार देकर डुबाये रखना अनिवार्य है।

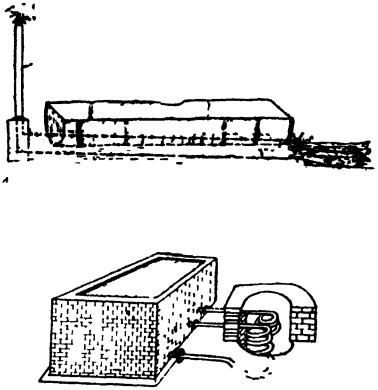
इस विधि से उपचार करने की अवधि काष्ठ-प्रजाति, परिमाण और आर्द्रता पर निर्भर रहती है। सामान्य प्रकार मे निर्माण-काष्ठो, स्लीपरो और बल्लियो के उपचार मे, एक ही कुड प्रयोग करने पर, लगभग २४ घटे लगते है, जिसमे ४ से लेकर ६ घटे तक तापन-क्रिया मे और शेष समय (रात्रि भर) शीतन-क्रिया मे लगता है। प्रति दिन एक ही उपचार-प्रभार किया जा सकना है। यदि तापन और शीतन पृथक्-पृथक् कुडो मे किये जायें, तो प्रति दिन तीन पारी (रात और दिन) काम करने मे कम मे कम तीन उपचार-प्रभार किये जा सकते है। इस विधि से परिरक्षी-प्रचूषण का नियन्त्रण करने मे कठिनाई पडती है, पर यदि सयन्त्र-चालक दक्षतापूर्वक कार्य करे और उसे पर्याप्त अनुभव प्राप्त हो तो यथावत् प्रचूषण कराने मे सफलता हो सकती है। परिरक्षी का अधिक मात्रा मे प्रचूषण होने पर काष्ठ-भार का थोड़े समय तक पुन तापन करने से प्रचूषण की अभीप्ट मात्रा प्राप्त हो सकती है।

इस विधि से रसकाष्ठ मे परिरक्षी-प्रवेश सपूर्णतया हो जाता है, और कुछ ऐसे काष्ठो के सारकाष्ठ मे भी परिरक्षी प्रविष्ट हो जाता है जिनके रन्ध्र खुले हो। खम्भो (विशेष कर बाड़-खम्भो) के लिए यह विधा अति उपयोगी है। इसमे अधिक पूँजी की आवश्यकता नही पड़ती और परिरक्षण कार्य करना भी जटिल नही होता।

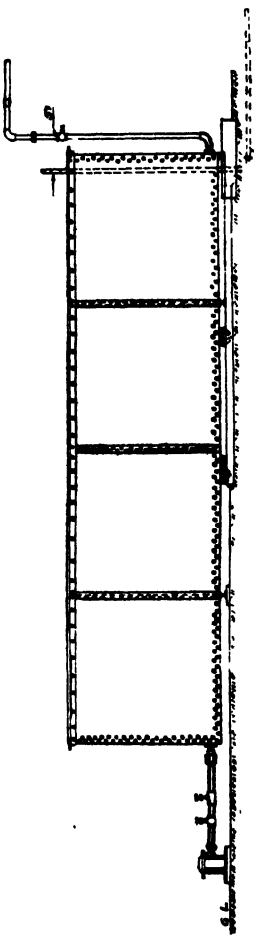
चित्र ५७ मे वन-अनुसन्धान शाला मे स्थापित एक तापन-शीतन द्वारा उपचार करने का अछादित कुड (खुली टकी) दिखलाया गया है। वाष्पित्र[1] से वाष्प प्राप्त होने की सुविधा मौजूद होने की वजह से इस टकी मे वाष्प द्वारा गरमी पहुँचाने

1 Boiler.

के नल है। जहाँ ऐसा न हो वहाँ टकी के नीचे एक सिरे से लम्बी नाली बनाकर अग्नि से गरम किया जा सकता है। नाली के दूसरी ओर एक चिमनी बनाना इस लिए आवश्यक है, जिससे कि हवा आती-जाती रहे और अग्नि प्रज्वलित रहे। जितनी मात्रा मे काष्ठ का उपचार करना हो उसी के अनुसार यह कुड छोटा या बड़ा बनाना चाहिए। एक प्रकार की साधारण टकी ४५ गैलन वाले गोल ड्रम को लम्बाई मे बीचों-बीच से काटकर और सिरे के टुकड़ो को काट और जोड़कर सन्धान ('वैल्ड') करके बनायी जा सकती है। इसमे तापन के लिए



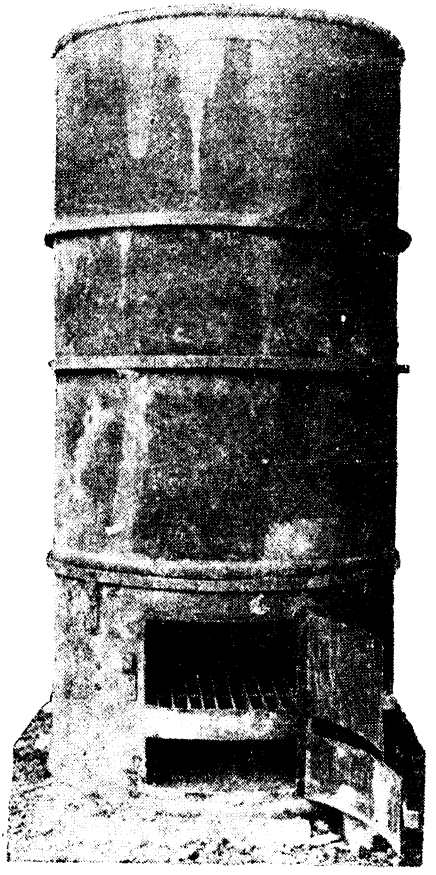
चित्र ५८–(ऊपर) ड्रमों को काटने से बनाया गया कुंड।
(नीचे) सीमेंट कंक्रीट का बना, अप्रत्यक्ष रूप से गरम किया जानेवाला कुंड।



चित्र ५७–वन-अनुसंधान शाला में आयताकार अछादित कुंड।

प्रत्यक्ष अग्नि का प्रयोग किया जा सकता है। सीमेंट-कंक्रीट के भी इस प्रकार के कुंड बनाये जा सकते है, परंतु उनको सीधे अग्नि से गरम करने पर फटने का भय

रहता है, अतः इन टंकियों में तापन-क्रिया अप्रत्यक्ष रूप से की जाती है। इसके लिए टंकी के नीचे से निकास-नली बाहर निकाल कर और चक्राकार मोड़कर फिर ऊपर मिला दी जाती है। बाहर चक्राकार नलों द्वारा गरम करने का काम सीधे अग्नि से किया जा सकता है। ठंडा तैल भारी होने पर चक्राकार नलों में आ जाता है और तत्पश्चात् गर्मी से हलका होकर ऊपरी नल से पुनः कुंड में चला जाता है। इस प्रकार वहन-क्रिया से कुंड का संपूर्ण तैल गरम हो जाता है।

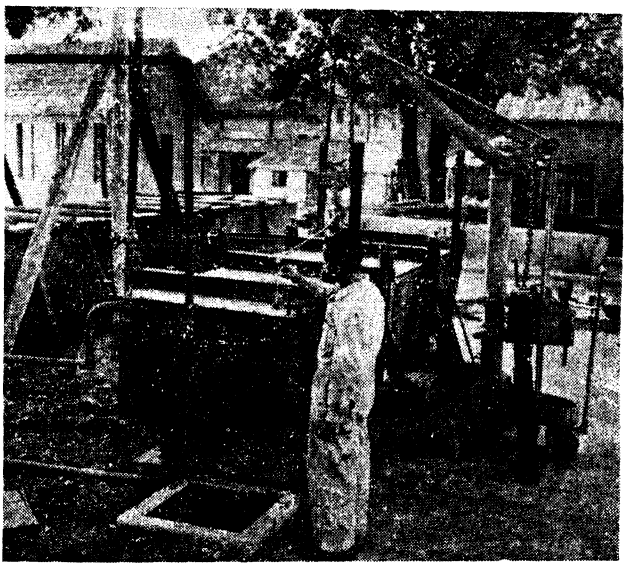


चित्र ५९—खंभ मुण्ड उपचार के लिए ड्रम टंकी।

इसी प्रकार की एक और साधारणविधि खम्भों के मुंड-छोर ('बट') के उपचार के लिए है। इसमें उपचार-कुंड एक बड़े गोल ड्रम के ऊपरी भाग को काटकर बनाया जाता है। खम्भ के मुंड-छोर भाग का, जो भूमि में गाड़ा जाता है, उष्ण-शीत विधा से शोधन किया जाता है और अन्य ऊपरी भाग उदार गरम तैल के लेपन से गरम किये जाते हैं। चित्र ५९ में ऐसी टंकी का प्रदर्शन किया गया है।

तापन और शीतन की उपचार गति, इन अछादित कुंडों में कुछ संशोधन करके बढ़ायी जा सकती है। वन-अनुसन्धानशाला, देहरादून ने एक खुली टंकी में लोहे की

एक चादर का ढक्कन अलग से बनाकर टंकी को दृढ़ता से बन्द करने का उपाय किया है। इस रीति से टंकी को छादित करने के पश्चात्, उस पर मन्द शून्यक (५०.८ सेन्टीमीटर या २० इंच) और वातिक दबाव (१.४ किलोग्राम प्रति वर्ग सैन्टीमीटर या २० पौंड प्रति वर्ग इंच) पम्प द्वारा दिया जा सकता है। उपचार के लिए काष्ठ-प्रभार को तैल में गरम कर और उस पर मन्द शून्यक और फिर वातिक दबाव दिया जाता है। इस क्रिया से उपचार-अवधि कम की जा सकती है और परिरक्षी भी काष्ठ के अन्दर समान रूप से व्याप्त हो सकता है। आयताकार होने पर ऐसा संयन्त्र स्तरकाष्ठ ('प्लाइवुड') और चौड़े तख्तों के उपचार के लिए उपयुक्त होता है। इसका प्रदर्शन चित्र ६० में किया गया है।



चित्र ६०—मन्द शून्यक और निपीड तापन-शीतन कुंड।

देहरादून स्थित वन-अनुसन्धान शाला के परीक्षण-क्षेत्रों में क्रियोजोट-इन्धन तैल (५०:५०) मिश्रण से तापन और शीतन प्रक्रिया द्वारा उपचारित कई जाति के काष्ठ-खम्भ लगभग १८ वर्ष सेवा-काल के बाद अब भी अच्छी दशा में हैं।

लगभग ३० वर्ष पूर्व लगाये हुए उपचारित बाड़-खम्भ तो अब भी सेवा-कार्य में लगे हुए हैं।

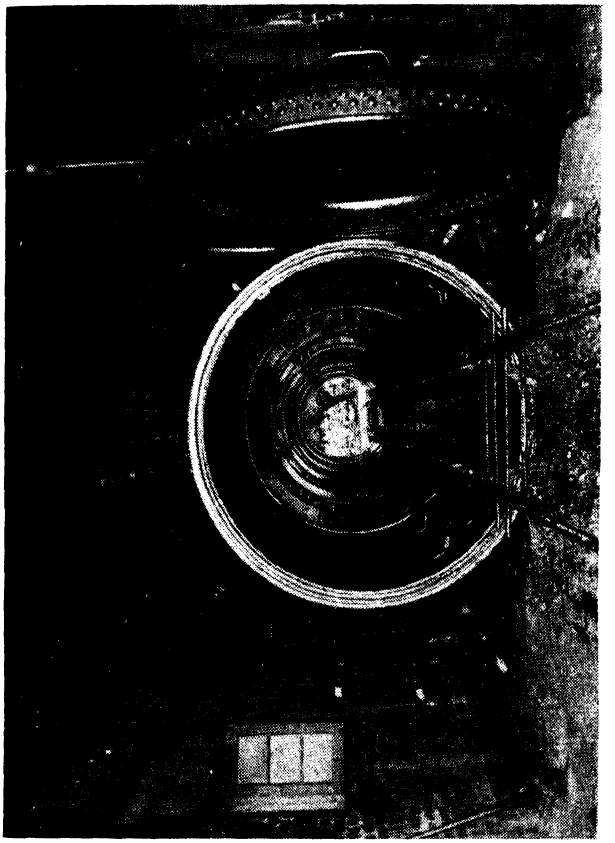
२ निपीड विधियाँ (प्रशर प्रोसेसेज[1])

निपीड विधियाँ काष्ठ-उपचार की सर्वोत्तम विधाएँ हैं। निपीड-विधा मे बन्द लोहरम्भ में काष्ठ का उपचार किया जाता है। निपीड द्वारा उपचारित काष्ठ का यही मतलब है कि परिरक्षी द्वारा काष्ठ का उपचार लोह-रम्भों मे निपीड क्रिया से किया गया है। लोह-रम्भ मे उपचार करने से कई लाभ है। सर्वप्रथम लाभ तो यह है कि काष्ठ में परिरक्षी का प्रचूषण अधिक मात्रा मे और प्रवेशन समानता से तथा अधिक गहराई तक हो सकता है, जिसके फलस्वरूप काष्ठ मे अत्यन्त प्रभावकारी आक्रमण-रोधी गुण आ जाते है। सयन्त्रो की सहायता से परिरक्षी-प्रचूषण का आवश्यकतानुसार नियन्त्रण किया जा सकता है। विभिन्न सेवा-कार्यो के लिए भिन्न-भिन्न मात्रा मे परिरक्षी की आवश्यकता होती है और उसी के अनुसार काष्ठ मे प्रचूषण कराने से परिरक्षी का मितोपयोग किया जा सकता है। यद्यपि निपीड क्रिया से सामान्यतः संशोधित काष्ठ का ही उपचार किया जाता है, पर विशेष रीतियों से हरे काष्ठ का भी उपचार कर सकते है, और बन्द रम्भ मे वाष्पीकरण अथवा क्रियोजोटीकरण से काष्ठ के आन्तरिक भाग मे काष्ठ-नाशक जीवाणु प्रवेश कर जाने पर उनका भी हनन हो जाता है, जिससे बाद मे अन्दर ही अन्दर काष्ठ-अपक्षय की आशका नही रहती। निपीड-क्रिया से उपचार-काल मे बहुत बचत हो जाती है और अधिक बड़ी मात्रा मे काष्ठ का उपचार किया जा सकता है। अतः वाणिज्य की दृष्टि से निपीड-क्रिया द्वारा काष्ठ-उपचार का बड़ा महत्त्व है। जितने भी काष्ठ के स्लीपर उपचारित किये जाते है उनका शोधन प्रायः निपीड-क्रिया से ही होता है। बिजली व तार के काष्ठ-खम्भों का भी इसी प्रकार उपचार किया जाता है। निपीड-क्रिया मे केवल यही असुविधा है कि काष्ठो को विशेष केन्द्रों मे स्थित निपीड संयन्त्रों तक लाने और उपचार-पश्चात् प्रयोग किये जाने वाले स्थानों तक ले जाने मे, उपचार-व्यय के अतिरिक्त भाड़ा भी लगता है। उपचार-क्रिया के लिए निपुण कार्यकर्ताओं की भी आवश्यकता पड़ती है।

निपीड-क्रिया द्वारा काष्ठ का उपचार, पक्के लोह-रम्भों[2] मे किया जाता है। ये रम्भ इस्पात की मोटी चादरों से बनाये जाते हैं। इनका व्यास ९ फुट (२.७

1 Pressure Processes. 2 Cylinders.

मीटर) तक भी होता है और लम्बाई १५० फुट (४५·७ मीटर) तक होती है। ये रम्भ २५० पौंड प्रति वर्ग इंच अर्थात् १७·६ किलोग्राम प्रति वर्ग सेन्टीमीटर तक का दबाव सहन कर सकते हैं। इनके अन्दर रेल-पटरियाँ भी लगी



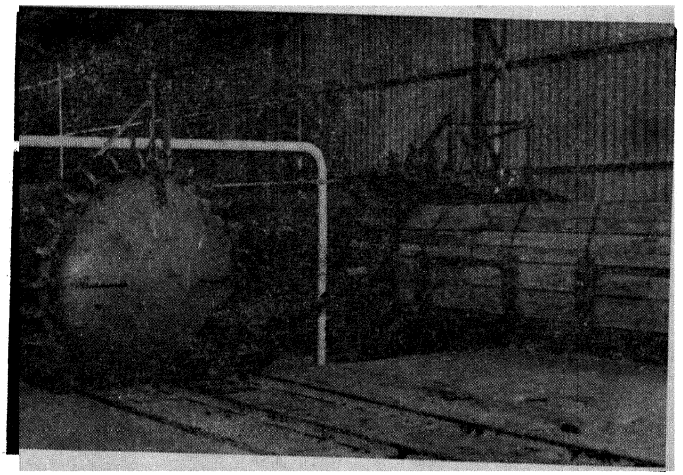
चित्र ६१—बिलवाँ में स्थापित निर्पीड-उपचार-यन्त्र।

रहती हैं जिनके द्वारा रम्भ के बाहर और भीतर काष्ठ-प्रभार आसानी से ले जाया व लाया जा सके। पटरियों के नीचे तैलीय परिरक्षी को गरम करने के लिए, वाष्प-नल ('स्टीम पाइप्स्') भी लगे रहते हैं। रम्भ के एक या दोनों सिरों पर उसे दृढ़ता

से बन्द करने और खोलने के लिए द्वार लगे रहते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य मशीनें, पम्प, कुंड, नल इत्यादि होती हैं, जिनके द्वारा निपीड-क्रिया की जाती है। इनकी विशिष्टियों का सविस्तर वर्णन आगे दिया गया है।

रेलवे-स्लीपरों के उपचार के लिए भारत की उत्तरी रेलवे के धिलवाँ नामक स्थान में स्थित एक निपीड संयन्त्र और उत्तर-पूर्वीय रेलवे के क्लटरबकगंज (बरेली) में स्थापित दूसरा संयन्त्र क्रमशः चित्र ६१, और ६२ में दर्शाये गये हैं।

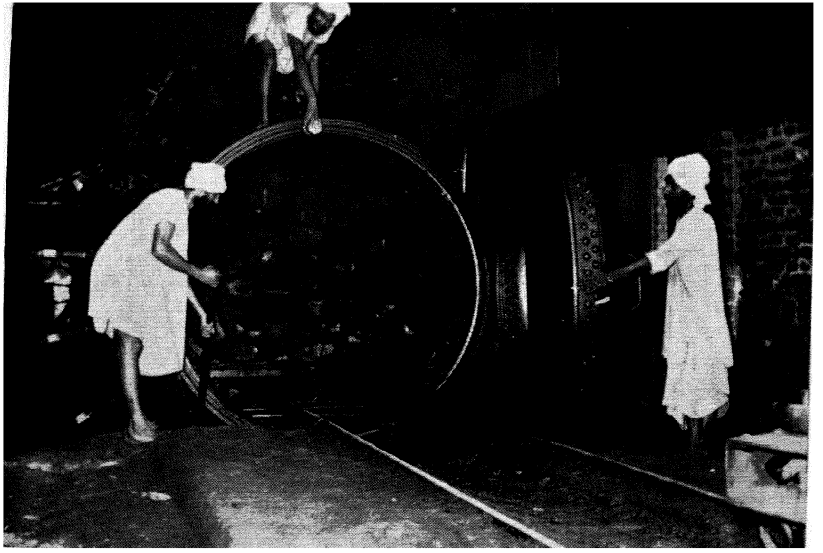
यद्यपि काष्ठ-उपचार की निपीड-क्रियाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं, तथापि काष्ठ-प्रभार को ट्रौलियों में भर कर रम्भ के अन्दर डालना एवं रम्भ-द्वार को दृढ़ता से



चित्र ६२—क्लटरबक गंज (बरेली) में स्थापित निपीड उपचार यन्त्र।

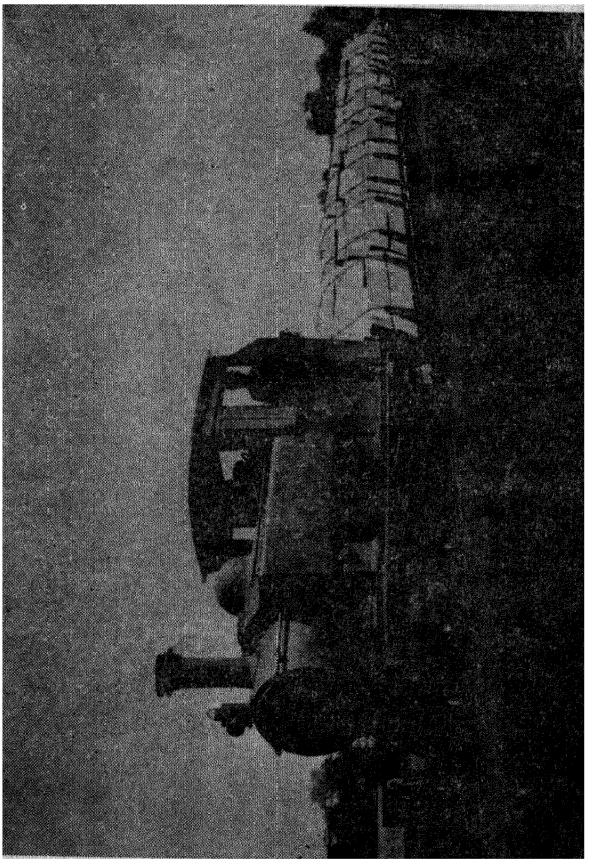
बन्द करना और उपचार पश्चात् द्वार खोल कर बाहर निकालना, इत्यादि कार्य-प्रणाली प्रायः सभी में एक सी होती है। चित्र ६३, ६४, ६५, ६६ में स्लीपरों को उपचारार्थ ले जाया जाना, रम्भ में प्रवेशन, रम्भ का बन्द करना और उपचार पश्चात् खोला जाना दर्शाया गया है।

निपीड-उपचार विधाएँ मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त हैं। इनमें एक तो पूर्णकोशा ('फुल सेल') विधा, और दूसरी रिक्त-कोशा ('एम्टी सेल') विधा हैं। समु-



चित्र ६६—उपचार के पश्चात् रंभ खोलना, पृ० २१२।

चितोपचार प्रक्रिया ('कन्डीशनिंग प्रोसेस्')[1], निपीड विधा से पूर्व की जाती है, यह संयुक्त वाष्पीकरण एवं बोल्टन नाम से प्रसिद्ध है। पूर्ण और रिक्त कोशा के



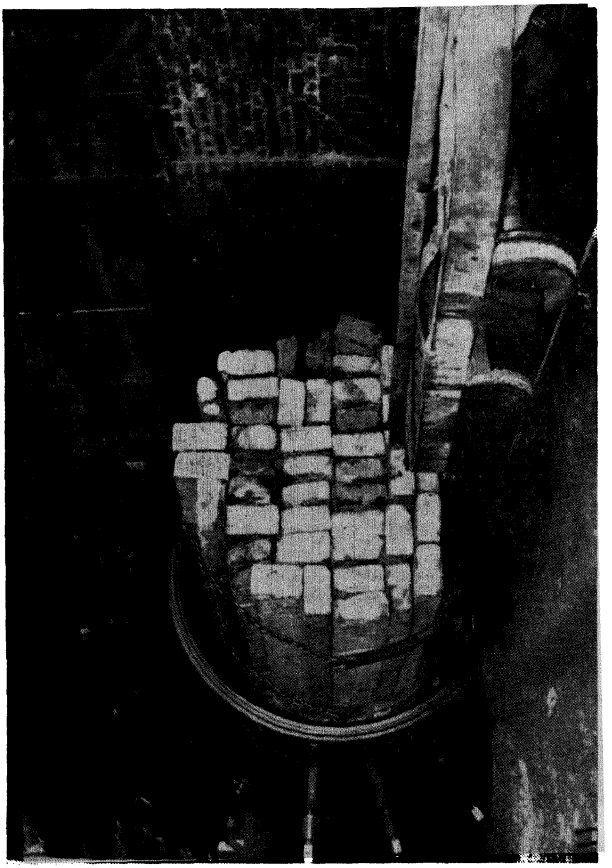
चित्र ६३—उपचारार्थ स्लीपरों का ले जाया जाना।

अन्तर्गत इसका वर्गीकरण किया जा सकता है। इन विधियों की कार्य-प्रणाली का सविस्तर वर्णन निम्नलिखित प्रकार से है।

1 Conditioning Process.

(क) पूर्ण-कोशा ('फुलसेल')[1] विधा

पूर्ण-कोशा नाम से ही सूचित होता है कि इस विधि में काष्ठ की कोशाएँ परिरक्षी से संपूर्णतया भरी रहती हैं। इस विधि का मुख्य उद्देश्य यही है कि निपीड-क्रिया

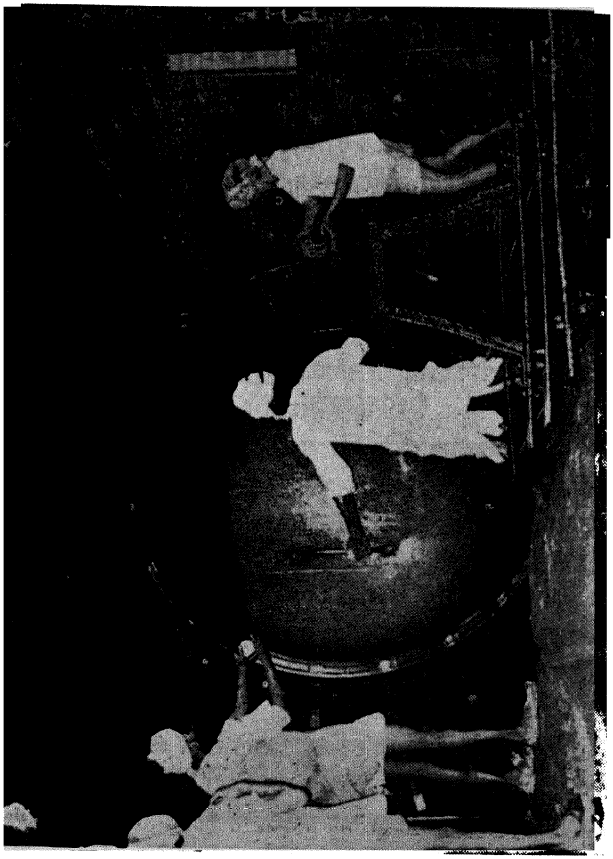


चित्र ६४–रंभ के अंदर प्रवेशन।

द्वारा परिरक्षी का काष्ठ के अन्दर अधिकतम मात्रा में प्रवेश कराया जाय। इसके

1 Full Cell.

फलस्वरूप काष्ठ का जितना भी भाग परिरक्षी से व्याप्त होगा, उसमें उतना ही अधिक परिरक्षी संकेन्द्रण रहेगा।



चित्र ६५—रंभ का बंद करना।

पूर्णकोशा विधि का एकस्वीकरण जौन बैथल ने इंग्लैंड में सन् १८३८ में कराया। इस विधा का मुख्य उद्देश्य बन्द रम्भ में निपीड-क्रिया द्वारा काष्ठ को टार-तैल पिलाना था। तभी से क्रियोजोट तैल रूपी परिरक्षी के पूर्णकोशा विधि से उपचार करने की प्रक्रिया को बैथल विधि भी कहते हैं। वहाँ उसी वर्ष विलियम

बैनेट ने भी जिंक क्लोराइड विलयन का इसी विधि से काष्ठ-उपचार करने की विधि का एकस्वीकरण किया और तभी से यह बर्नेट-विधा अथवा बर्नेटाइजिंग नाम से प्रख्यात है। परिरक्षियों के अनुसार इन विधियों का जो भी नाम रखा जाय, पूर्णकोशा विधा की प्रणाली निम्न प्रकार है।

काष्ठ-प्रभार को उपचार-रम्भ में बन्द करने के उपरान्त, यन्त्र (पम्प) द्वारा प्रारम्भिक शून्यक दिया जाता है। जितना भी अधिक माप का शून्यक यथासम्भव हो सके उतना बनाये रखते हैं। शून्यक का अधिकतम माप उस स्थान की समुद्रतल से ऊंचाई पर निर्भर होता है। यह अधिकतम शून्यक माप, पर्याप्त समय अर्थात् आधा घंटे से लेकर १ या २ घंटे तक धारण किया जाता है। शून्यक का प्रयोजन काष्ठ की कोशाओं से यथासंभव वायु को निकाल देना है। तब शीघ्र ही, शून्यक को बिना समाप्त किये ही, रंभ में परिरक्षी-प्रवेश कराया जाता है। इस अवसर पर शून्यक पम्प को चलते ही रहने देते हैं। जब रम्भ परिरक्षी से पूर्णतया भर जाता है तो फिर एक निपीड पम्प द्वारा, जो परिरक्षी को पात्र में खींच कर अनावर्तीकपाट ('नौनरिटर्न वाल्व') द्वारा रम्भ में फेंकता है। रंभ में १८० पौंड प्रति वर्ग इंच (अथवा १२·७ किलोग्राम प्रति वर्ग सैन्टीमीटर) तक परिरक्षी-दबाव दिया जाता है। इस दबाव-माप को उपयुक्त समय (१ या २ घंटे) तक धारण करते हैं। उसके पश्चात् जब यथार्थ मात्रा में माप-यन्त्रों से सूचित होने पर परिरक्षी प्रचूषण हो जाय, तो पम्प बन्द कर दिया जाता है। तब रम्भ को रिक्त कर देते हैं और तत्पश्चात् १५ या २० मिनट तक रम्भ में मन्द शून्यक कर देने पर उपचार-अवधि समाप्त कर दी जाती है। अन्तिम शून्यक क्रिया का उद्देश्य काष्ठ की सतह से शेष परिरक्षी को निरर्थक होने से बचाना है। रम्भ तब खोला जाता है और उपचारित काष्ठ को बाहर निकाल लेते हैं।

क्रियोजोट-इन्धन तैल के मिश्रण का प्रयोग करते समय आदि से अन्त तक तैल को ९०° सेन्टीग्रेड से ९८° सेन्टीग्रेड तक गरम रखना चाहिए, पर जल-विलयन रूपी परिरक्षी का प्रयोग वायुमंडलीय ताप पर ठंडे में ही किया जाता है।

(ख) रिक्त-कोशा (एम्पटी सेल) विधा

रिक्त कोशा का उद्देश्य यह है कि काष्ठ-उपचार में न्यूनतम परिरक्षी प्रचूषण से अधिकतम परिरक्षी-प्रवेशन प्राप्त हो। इस विधा में काष्ठ-कोशाओं में समावृत वायु रहने दी जाती है, यहाँ तक कि जब कम प्रचूषण कराना हो तो समावृत्त वायु

के ऊपर प्रारम्भिक वातिक दबाव भी दिया जाता है, जिससे निपीड-क्रिया के उपरान्त कोशा मे समावृत्त वायु फैलकर परिरक्षी को अधिक मात्रा मे बाहर की ओर निकालने मे सहायक हो और साथ ही साथ कोशाभित्ति के ऊपर परिरक्षी का पर्याप्त मात्रा मे लेपन भी हो सके। इस विधा मे निपीड-क्रिया पर्यन्त सकल ('ग्रौस') प्रचूषण तो अधिक होता है, पर निपीड-क्रिया उपरान्त वास्तविक ('नेट्') प्रचूषण कम रह जाता है। यही कारण है कि न्यूनतम प्रचूषण द्वारा भी अधिक गहराई तक परिरक्षी व्याप्त हो जाता है। यह विधा उन काष्ठो के लिए उपयुक्त है जिनमे खुले व बडे रन्ध्र हो अथवा जिनमे रसकाष्ठ का परिमाण अधिक हो। अतः इन काष्ठो के कोशा-कोष्ठो मे आवश्यकता से अधिक परिरक्षी सचय करना निरर्थक रहता है, पर परिरक्षी उस मात्रा मे अवश्यमेव होना चाहिए, जितना कि काष्ठ को सेवा-अवधि तक सुरक्षित रखने के लिए पर्याप्त हो। रिक्त-कोशा विधा मे दो मुख्य रीतियाँ है, एक तो लौरी विधि और दूसरी रूपिग विधि। इनकी कार्यप्रणाली निम्न प्रकार से है।

(ख–१) लौरी विधि

इस विधि का एकस्वीकरण सी० बी० लौरी ने अमेरिका मे सन् १९०६ मे कराया था। लौरी प्रक्रिया के आरम्भ मे काष्ठ को रभ के अन्दर डालकर बन्द कर दिया जाता है। उसके उपरान्त परिरक्षी को रम्भ मे भर देते है और तब शीघ्र ही उसमे द्रव-निपीड-पम्प द्वारा परिरक्षी-दबाव क्रिया की जाती है। दबाव का माप परिरक्षी-प्रचूषण कराने की मात्रा, काष्ठजाति, आर्द्रता, परिमाण इत्यादि पर निर्भर रहता है, पर सामान्यतया यह दबाव १८० पौड प्रति वर्ग इच (१२·७ किलोग्राम प्रति वर्ग सेन्टीमीटर) तक का १ अथवा २ घटे तक दिया जाता है। दबाव-काल तभी समाप्त किया जाता है जब परिरक्षी-कुड की सतल-रेखा से यह सकेत मिल जाय कि पर्याप्त मात्रा मे परिरक्षी प्रचूषित हो चुका है। तत्पश्चात् रम्भ मे से परिरक्षी को बाहर निकाल लेते है और काष्ठ-प्रभार मे मन्द शून्यक देने के पश्चात् क्रिया समाप्त कर दी जाती है।

जैसा कि पूर्ण कोशा के वर्णन मे बताया गया है, तैलीय परिरक्षी को सर्वदा गरम (९० सैन्टीग्रेड से ऊपर) करके प्रयोग मे लाया जाता है और जलविलयन परिरक्षी का प्रयोग सामान्य वायुमण्डलिक तापक्रम पर ही होता है।

लौरी विधि को एक ओर तो पूर्ण कोशा विधि तथा दूसरी ओर आगे वर्णन की जानेवाली रूपिग विधि की मध्यवर्तिनी विधि होने के कारण परिरक्षी-प्रचूषण कराने की दृष्टि से माध्य विधि कहा जा सकता है।

(ख-२) रूपिंग विधि

रूपिंग[1] विधि का एकस्वीकरण जर्मनी के मैक्स् रूपिग ने सन् १९०२ मे कराया था। काष्ठ को रम्भ मे बन्द कर देने के पश्चात् उस पर वायु-सपीडक ('एयर कम्प्रेसर') द्वारा वातिक[2] दबाव दिया जाता है। दबाव माप ४० से लेकर ६० पौड प्रति वर्ग इच (२.८ से ४.२ किलोग्राम प्रति वर्ग सैन्टीमीटर) तक दिया जाता है और उसको लगभग आधा घटा धारण करते है। इससे काष्ठ-कोशा मे हवा बलात् प्रविष्ट होती है। तत्पश्चात् वायु का दबाव बिना कम किये रम्भ मे परिरक्षी भरा जाता है। यह भरने का कार्य या तो विशेष शक्तिशाली पम्प द्वारा होता है, जो वातिक दबाव के प्रति परिरक्षी को रम्भ मे प्रवेश कराकर रम्भ को भर सके, या ऊँचाई पर स्थित समान आयतन की टकी मे रखे हुए परिरक्षी द्वारा, जिस पर कि उतना ही वातिक दबाव साथ-साथ दिया गया हो जिससे परिरक्षी ऊँचाई पर रहने से शीघ्र ही रम्भ मे भर जाय और उसका स्थान रम्भ की हवा ग्रहण कर ले। तब निपीड-पम्प द्वारा द्रव-दबाव १८० पौड प्रति वर्ग इच (१२.७ किलोग्राम/वर्ग सैन्टीमीटर) तक बढाया जाता है। इसको उतने काल तक धारण रखते है जब तक कि पर्याप्त मात्रा मे सकल परिरक्षी प्रचूषण का सकेत मापयन्त्रो द्वारा न मिले। सामान्य प्रकार से यह काल १ या २ घटे का होता है। अभीष्ट परिरक्षी-प्रचूषण प्राप्त होने पर निपीड-क्रिया समाप्त कर दी जाती है और तब परिरक्षी को निकाल लेने के पश्चात् अन्य क्रियाओ की तरह अन्त मे थोड़े समय के लिए मन्द शून्यक दिया जाता है।

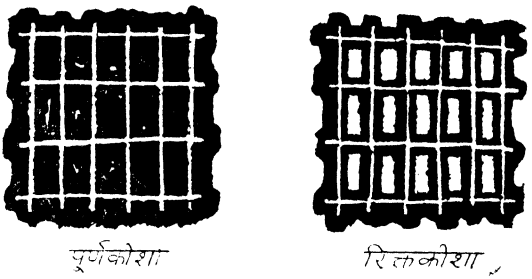
इस विधि मे निपीड क्रिया के समाप्त होने पर, अन्य क्रियाओ की अपेक्षा परिरक्षी अधिक परिमाण मे काष्ठकोशा-कोष्ठों से बाहर निकल आता है, क्योकि जो हवा बलात् काष्ठ-कोशा मे भरी गयी है वह परिरक्षी को ढकेलकर बाहर निकाल देती है। अत: सकल प्रचूषण का भार ५० या ६० प्रतिशत कम हो जाता है, जिसके कारण वास्तविक प्रचूषण कम ही रह जाता है और परिरक्षी की अधिक परिमाण मे पुन: प्राप्ति हो जाने के कारण भारी बचत हो जाती है, पर परिरक्षी-प्रवेशन सीमा मे कोई कमी नही होती। परिरक्षी प्रयोग दृष्टि से यह विधि मितव्ययी है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, तैलीय परिरक्षी का प्रयोग गरम रूप मे और जल-विलयन परिरक्षी का प्रयोग ठडे रूप मे करना चाहिए।

1. Rueping. 2. Pneumatic, वायव्य।

भारत की उत्तरी रेलवे के धिलवाँ नामक स्थान के निपीड-क्रियोजोटीकरण संयन्त्र में चीड़ के स्लीपरों का उपचार रूपिंग विधि से होता है। चीड़ ऐसा काष्ठ है जिसमें सरलता से परिरक्षी-व्यापन किया जा सकता है, पर इसका रसकाष्ठ, सार-काष्ठ की अपेक्षा अधिक परिरक्षी प्रचूषण करता है। चीड़ के स्लीपरों का, जिनमें रसकाष्ठ और सारकाष्ठ दोनों सम्मिलित थे, उपचार रूपिंग विधि अपनाने के पूर्व एक दुष्कर कार्य था, क्योंकि रस-काष्ठ स्वयं ही संपूर्ण परिरक्षी चूस लेता था और सारकाष्ठ में अत्यन्त कम परिरक्षी व्याप्त होता था, अतएव रेलवे अधिकारियों ने चीड़ के स्लीपरों में रसकाष्ठ की विद्यमानता पर नियन्त्रण लगा दिया। पर वन अनुसन्धान शाला की सलाह से इन स्लीपरों का उपचार रूपिंग विधि से किया जाने लगा। इसमें सफलता प्राप्त हुई और चीड़ के स्लीपरों में रसकाष्ठ की विद्यमानता पर से नियन्त्रण हटा लिया गया, जिससे क्रियोजोटीकृत चीड़ स्लीपर कम खर्चीला हो गया है। तभी सन् १९२८ से इसके उपचारार्थ रूपिंग विधि प्रयोग की जाने लगी है। फ़र, देवदार, कैल इत्यादि परिरक्षी-व्यापन-रोधी काष्ठों के लिए पूर्णकोशा विधि प्रयोग करते हैं। चित्र ६७ में पूर्णकोशा और रिक्तकोशा विधियों द्वारा काष्ठ-कोशाओं में परिरक्षी व्यापन का अन्तर रेखाचित्रों द्वारा स्पष्ट किया गया है।

(ग) संयुक्त वाष्पीकरण एवं बोल्टन विधि

वाष्पीकरण एवं बोल्टन विधि का प्रयोग हरे काष्ठों के उपचार के लिए किया जाता है। यदि हरे काष्ठों को उष्ण और नम स्थानों में वायु-संशोषण काल में कवक



चित्र ६७—**पूर्णकोशा और रिक्तकोशा में भेद।**

के कारण क्षति पहुँचने की संभावना हो तो उनका शीघ्र ही उपचार करना आवश्यक हो जाता है। जिस सिद्धान्त पर यह विधि आधारित है, वह यह है कि यदि हरा काष्ठ

रम्भ मे डालकर वाष्प अथवा तैल माध्यम मे गरम किया जाय और उसके उपरान्त शून्यक मे रखा जाय, तो हरे काष्ठ की आर्द्रता कम तापक्रम पर भी वाष्प द्वारा उड जाती है। उदाहरणार्थ, यदि २५ इच (६२८ सैन्टीमीटर) पारे का शून्यक हो तो पानी १३५° फारनहाइट, अथवा ५७.२° सैन्टीग्रेड तापक्रम पर ही उबलने लगता है। इस विधि की कार्य-प्रणाली इस प्रकार है।

हरे काष्ठ प्रभार को रम्भ मे बन्द करने के उपरान्त, कार्यरत वाष्प रम्भ मे प्रायः २० पौड प्रति वर्ग इच अर्थात् १.४ किलोग्राम प्रति वर्ग सैन्टीमीटर के दवाव पर प्रविष्ट की जाती है, और इसको ३ या ४ घटे तक चालू रखते है। रम्भ मे जो कुछ पानी जमने के कारण एकत्रित हो जाता है उसे निकास-नल द्वारा बाहर निकालते रहते है। तत्पश्चात् रम्भ मे शून्यक प्राय एक घटे तक दिया जाता है। ऐसा करने से गरम हरे काष्ठ मे से आर्द्रता वाष्प मे परिणत होकर निकलने लगती है। यह क्रिया वाष्पीकरण कहलाती है। शून्यक के पश्चात् गरम क्रियोजोट और इन्धन तैल का मिश्रण, रम्भ को पूर्णतया भरते समय कुछ कम मात्रा मे लेते है, जिससे काष्ठ तैल मे तो डूब जाय, पर रम्भ मे तैल उबलने के लिए स्थान रहे। फिर उसको लगभग ९५° सैन्टीग्रेड तापक्रम मे ४ या ५ घटे तक लगातार गरम रखते है। रम्भ मे तैल के ऊपर पम्प द्वारा शून्यक बनाये रखते है। इस क्रिया को शून्याकाधीन उबलन ('बौइलिग अन्डर बैकुअम्') कहते है, जो बोल्टन विधि के नाम से प्रख्यात है। इस क्रिया के फलस्वरूप हरे काष्ठ की आर्द्रता वाष्प मे परिणत होकर निकल जाती है और इस वाष्प का घनत्व नापने का यन्त्र प्राप्त होने पर काष्ठ की आर्द्रता कितनी कम हुई यह भी नापा जा सकता है। वाष्पीकरण और बोल्टन प्रक्रिया को पृथक्-पृथक् भी कर सकते है, और इसके उपरान्त काष्ठ को पूर्णकोशा या रिक्तकोशा विधाओं मे से किसी एक के द्वारा निपीडोपचारित कर सकते है।

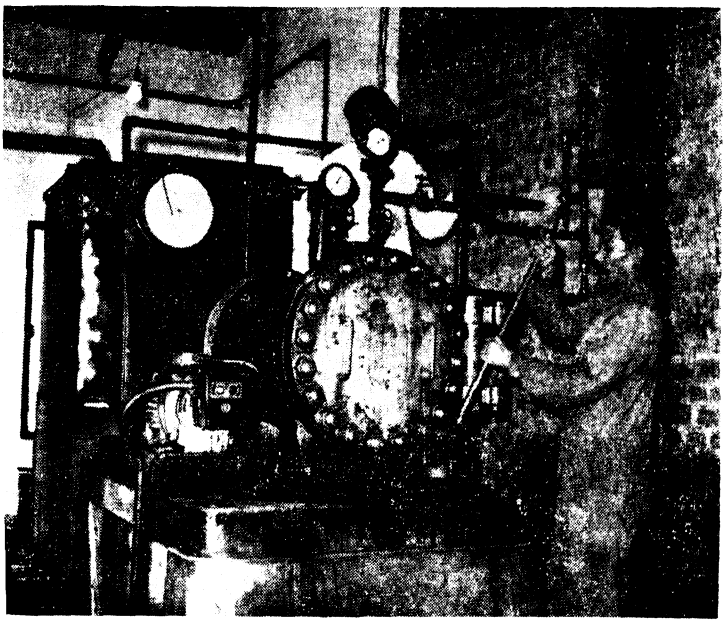
उत्तर-पूर्वीय रेलवे के नहरकटिया (आसाम) मे स्थित स्लीपर-क्रियोजोटीकरण संयन्त्र मे वाष्पीकरण एव बोल्टन विधि से स्लीपरो का उपचार होता है। इसके पूर्व वहाँ पर सामान्य निपीड-उपचार विधियो से सतोषजनक परिणाम नही निकले थे, क्योंकि उपचार के पूर्व वायुसशोषण काल मे स्लीपर सड़ जाया करते थे। हौलौग और हौलौक जाति के स्लीपर अस्थायी होने के कारण आसाम के उष्ण और नम स्थानो म शीघ्र ही सडने लग जाते है और यदि आरम्भ से ही काष्ठ ऐसी सडी दशा मे हो तो कोई भी उपचार विधि उसे कार्य-योग्य नही बना सकती। वन-अनुसन्धान-शाला की काष्ठ-परिरक्षण शाखा मे परीक्षण करने के उपरान्त रेलवे अधिकारियो को इस

विधि का आश्रय लेने का आदेश दिया गया था। तब से वहाँ यह विधि कार्य में लायी जाती है और उपचारित स्लीपरों से संतोषजनक परिणाम निकले हैं।

(घ) उच्च निपीड ('हाइ प्रेशर') विधा

बहुत सी काष्ठ जातियाँ ऐसी हैं जिनका उपचार पूर्वोक्त निपीड क्रियाओं से होना असम्भव है। काष्ठ-जातियों से अभिप्राय उनके सारकाष्ठ से ही है, क्योंकि सभी जाति के रसकाष्ठों में परिरक्षी व्याप्त कराये जा सकते हैं।

आस्ट्रेलिया में एक ऐसी ही काष्ठ-प्रजाति, यूकेलिप्टस्, है जिसका उपचार साधारण निपीड क्रिया से करना दुष्कर है। वहाँ परीक्षणों से पता चला है कि उच्च-



चित्र ६८—**वन-अनुसंधानशाला में उच्च निपीड-उपचार-संयन्त्र।**

निपीड़ क्रिया द्वारा इस काष्ठ का उपचार करना संभव है। उच्च निपीड, १००० पौंड प्रति वर्ग इंच अर्थात् ७०.३ किलोग्राम प्रति वर्ग सैन्टीमीटर माप का द्रव-दबाव

है। यह कार्य करने के लिए वहाँ एक विशेष बज्र-लोह रम्भ बनाया गया, और थोड़े ही परिमाण मे यूकेलिप्टस् स्लीपरो का उस सयन्त्र मे परिरक्षी से उपचार किया गया। स्लीपरों को काटने से पता चला कि परिरक्षी पर्याप्त गहराई तक व्याप्त था जिससे संतोषप्रद परिणाम निकल सकते है । उच्च निपीड क्रिया से उपचारित यूकेलिप्टस् काष्ठ के स्लीपर वहाँ सेवा-आयु निश्चयन के लिए रेलवे-मार्गो मे लगाये गये है ।

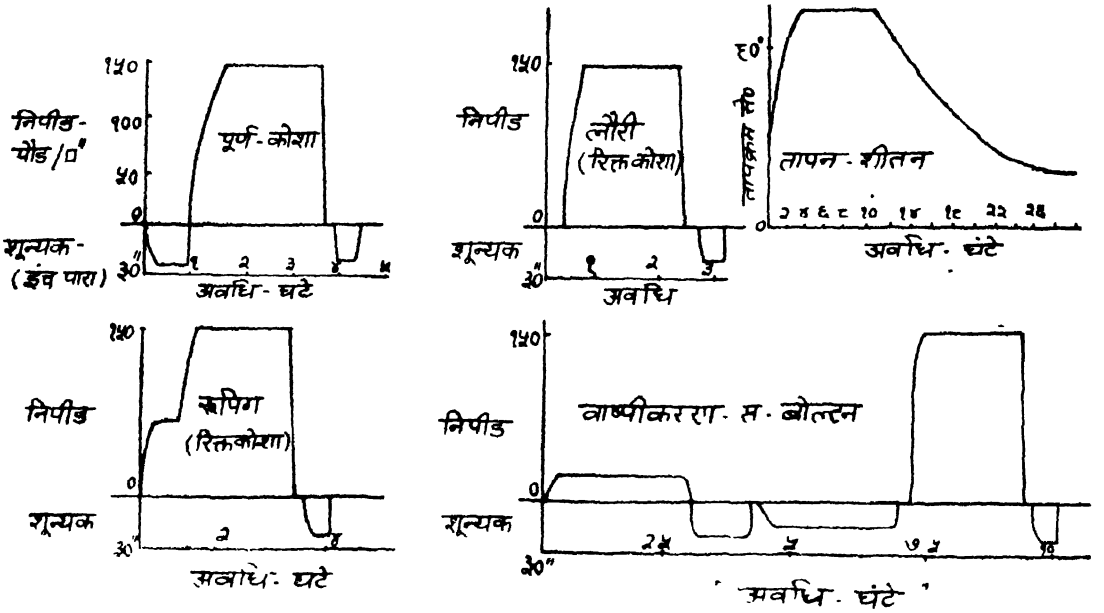
भारत की वन-अनुसन्धान शाला की काष्ठ-परिरक्षण शाखा मे अप्रतिचारी[1] अर्थात् उपचारित न हो सकने वाले काष्ठों पर उच्च-निपीड क्रिया से एक विशेष सयन्त्र मे परीक्षण किये गये । कुछ काष्ठों के उपचार मे निपीड-क्रिया (७०.३ किलोग्राम/वर्ग सैन्टीमीटर) से सफलता प्राप्त हुई है । अभी यह क्रिया परीक्षणावस्था मे ही है, और वास्तविक प्रयोग मे आने वाले काष्ठीय आकारो के लिए उचित परिमाण का सयन्त्र न होने के कारण उनका उपचार करना सम्भव नही हो सका है । उच्च-निपीड क्रिया मे अधिक तापक्रम के संयोग से भी कुछ काष्ठ दब कर विरूप हो गये, पर उचित परिस्थितियो पर नियन्त्रण करने से यही आशा की जाती है कि उच्च-निपीड से बहुत से अप्रतिचारी काष्ठो का उपचार होना सम्भव हो सकता है । चित्र ६८ मे उच्च-निपीड-उपचार-संयन्त्र दिखाया गया है।

चित्र ६९ मे ऊपर (क), (ख) और (ग) खंडों मे वर्णित निपीड-विधियों की कार्य-प्रणाली रेखा-चित्र द्वारा दिखायी गयी है ।

३. स्थानीय उपचार 'ट्रीटमेन्ट इन सिट्यू'

कुछ काष्ठ-उपचार विधाएँ ऐसी भी है जो वस्तुतः सेवायुक्त काष्ठों के उपचार के लिए उपयोगी सिद्ध हुई है। यद्यपि इन विधियो से उस सीमा तक संतोषजनक परिणाम नही प्राप्त हो सकते जितने सेवाकार्य मे लगाने के पूर्व की गयी उन प्रमाप उपचार विधियो से जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है परन्तु स्थानीय उपचार विधियों को कुशलतापूर्वक प्रयोग मे लाने से निर्माण-काष्ठ की सेवा-आयु कुछ वर्षो तक बढ़ा दी जा सकती है । इस सेवा-आयु मे ५ वर्ष या उससे भी अधिक वृद्धि हो सकती है, और यदि इन्ही विधियो से पुन. उपचार करते रहे तो कुछ दशाब्दियों तक भी काष्ठ सुरक्षित अवस्था मे रखे जा सकते है। ये विधियाँ मुख्यत. सेवा-कार्य मे लगे हुए बिजली और तार के खड़े काष्ठ-खम्भो के उपचार के लिए विकसित की गयी है। रेलवे-पथ पर लगे हुए काष्ठ-स्लीपरो के उपचार के लिए भी कुछ विधियो का विकास हुआ

1 Refractory.

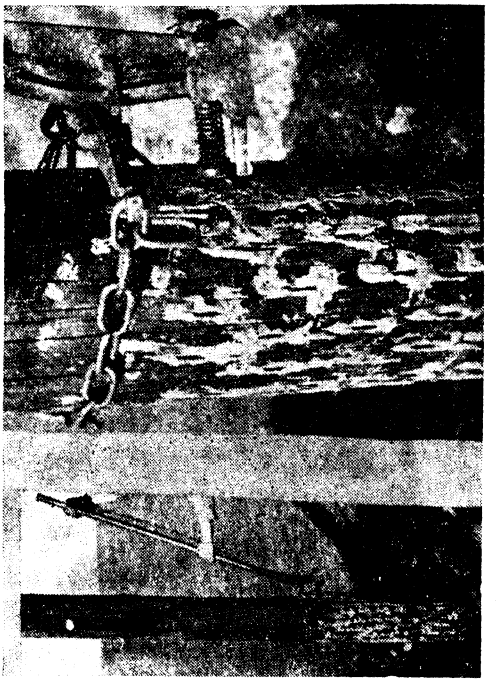


चित्र ६९—रेखाचित्र द्वारा निपीडविधियों का स्पष्टीकरण।

है। इनमें से कई ऐसी विधियाँ भी हैं, जिनका तत्काल प्रयोग करके प्रमाप-विधियों द्वारा उपचारित काष्ठों के सेवाकाल की वृद्धि में असफल रहने पर सेवाआयु में वृद्धि की जा सकती है । ये विधियाँ निम्न लिखित हैं।

(क) कोब्रा विधि ।

इस विधि से काष्ठ-उपचार करने में एक ऐसे यन्त्र का प्रयोग किया जाता है जिससे परिरक्षी का गाढ़ा लेप काष्ठ के अन्दर, खोखले और छिद्रल लोह दन्त द्वारा



चित्र ७०—**कोब्रा विधि से काष्ठ-खंभ का उपचार ।**

प्रविष्ट कराया जाता है । अतः इसका नाम कोब्रा (सर्प) विधि पड़ा है । काटने पर सर्पदन्त से जिस प्रकार विष-वमन होता है, उसी प्रकार इस यन्त्र के लोह दन्त से, जिसका सिरा छेनी की तरह होता है, काष्ठ में विष-प्रवेश किया जाता है । यह यन्त्र हथौड़ी

की तरह होता है और इसके मध्य में एक नाल होती है जिसमे परिरक्षी लेप भरा रहता है । जब इसका सिरा काष्ठ मे ठोक कर प्रवेश किया जाता है, तो इसके हस्तक पर दबाव देने से परिरक्षी काष्ठ मे प्रविष्ट हो जाता है । यदि खड़े काष्ठ-खम्भ का उपचार करना हो तो खम्भ पर भूमितल से लगभग ०.५ मीटर नीचे और ऊपर चारों ओर समीप-समीप स्थानों पर इस यन्त्र द्वारा प्रायः ४ या ५ सैन्टीमीटर गहरे छिद्र किये जाते है। कुछ समय पश्चात् छिद्रों मे प्रसारण-क्रिया द्वारा जल-विलेय परिरक्षी संपूर्ण पार्श्व भाग मे फैल जाता है । बद्ध-जल-विलेय अच्छे प्रकार के परिरक्षी का प्रयोग करने से संतोषप्रद परिणाम निकल सकते है। इस प्रकार काष्ठ-खम्भ भूमितल से ऊपर और नीचे परिरक्षी द्वारा परिव्याप्त होकर चिरकाल तक सुरक्षित रह सकते हैं, क्योकि भूमि के निकट ही काष्ठ-अपक्षय की अनुकूल दशा बनी रहती है, अतः इस स्थान पर परिपूर्ण-उपचार की आवश्यकता रहती है । काष्ठ-खम्भ के बहुत नीचे के तथा ऊपरी भाग मे साधारण परिरक्षी-व्याप्ति द्वारा (प्रायः १ सैन्टीमीटर तक गहरी) पर्याप्त अवधि तक काष्ठ सुरक्षित रह सकता है ।

कोब्रा विधि का आविष्कार जर्मनी मे सन् १९२० के लगभग हुआ, और ब्रिटेन और जर्मनी मे इसका एकस्वीकरण भी हुआ। चित्र ७० मे कोब्रा-विधि द्वारा काष्ठ-खम्भ की उपचार-विधि दिखायी गयी है ।

इस विधि का उपयोग पूर्वोपचारित काष्ठ-खम्भो पर भी किया जा सकता है, यदि वे कुछ वर्षों मे, निरीक्षण करने पर, अपक्षय की दशा को प्राप्त होते हुए दिखलाई दे । ऐसा करने से उनकी आयु कुछ वर्षों तक और बढ़ा दी जा सकती है ।

(ख) पट्टी बन्धन और मृदा (मिट्टी)—जीवाणुहनन ('बैन्डेजिंग एण्ड सॉइल स्टैरीलाईज़ेशन') ।

यह क्रिया भी खड़े लगे हुए काष्ठ-खम्भों के, जिनमे कवक और दीमक का आक्रमण आरम्भ हो गया हो, उपचार के लिए उपयुक्त है । काष्ठ-खम्भ के चारों ओर ०.५ मीटर गहराई तक भूमि खोद कर मिट्टी निकाली जाती है। काष्ठ का सड़ा हुआ भाग तब धमदीप ('ब्लोलैम्प') से प्रांगारित किया जाता है । उसके ऊपर भूमि से ०.५ मीटर ऊपर के भाग पर बद्धरूप परिरक्षी का लेप किया जाता है और तत्पश्चात् जल-रोधी कागज की या फैल्ट की पट्टी बाँध दी जाती है । भूमि के रिक्तस्थान में तब मिट्टी भर देते है । इस विधि से कुछ समय पश्चात् परिरक्षी प्रसारणक्रिया द्वारा खम्भ के अन्दर तक फैल जाता है और इस प्रकार भूमि के निकट काष्ठखम्भ का आक्राम्य भाग सुरक्षित बन जाता है ।

कभी-कभी काष्ठ-खम्भ के भूमितल से नीचे तथा ऊपर के भाग को प्रांगारित कर के गरम क्रियोज़ोट से उदार मात्रा में लिप्त करने के बाद, मिट्टी में क्रियोज़ोट मिला कर, खोदे हुए गड्ढे को भर देते हैं। कभी-कभी आसपास से खोदी मिट्टी में और भी कई विषैले पदार्थों, पैन्टाक्लोरोफीनौल, सोडियम फ्लोराइड, संखिया, इत्यादि, का मिश्रण किया जाता है और तब वह मिट्टी गढ़े में भर दी जाती है। ऐसा करने से भूमि के निकटवर्ती आक्रमणकर्त्ताओं का नाश हो जाता है और कुछ वर्षों तक काष्ठ सुरक्षित रह सकता है। इस क्रिया का पुनरावर्तन करके काष्ठ-खम्भ से दीर्घकालीन सेवा प्राप्त की जा सकती है।

यूरोप, आस्ट्रेलिया और उत्तरी-अमेरिका में पूर्वोक्त विधियाँ खड़े काष्ठ-खम्भों के उपचार के लिए अधिक प्रचलित हैं। वहाँ कई प्रकार के योग, जो औसमौस् कम्पाउन्ड, 'ऐनैकौन्डा पेस्ट', 'वुलमन पेस्ट', इत्यादि के नाम से प्रसिद्ध ह, प्रयुक्त किये जाते हैं। भारत में एस्क्यू और कुक्रोम का भी जो इसी प्रकार के जल-विलेय बद्ध-रूप परिरक्षी हैं, पट्टी-बन्धन में प्रयोग किया जा सकता है।

यूरोपीय देशों, अमेरिका और आस्ट्रेलिया में खड़े काष्ठ-खम्भ की अनेकों उपचार विधियों का एकस्वीकरण हुआ है। इन विधियों में से कई प्रख्यात है, जैसे 'फर्नीस' विधि, औस्मोप्लास्टिक' विधि, 'सैन्डक्रियोजोट-कॉलर' विधि, 'ऐनैकौन्डा' विधि, 'ऑक्सीएसीटलीन' विधि, 'फिल्टर' विधि, 'सोडियम् फ्लोराइड-क्रियोजोट' विधि, इत्यादि।

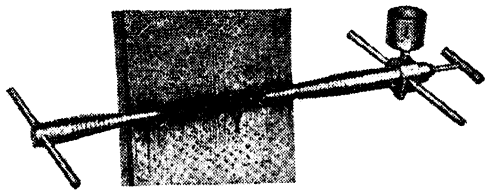
(ग) छिद्रण और भरण

जर्मनी में रेलवे-मार्गों पर बिछे रेलवे-स्लीपरों के उपचार के लिए छिद्रण और भरण की प्रथा प्रचलित है। काष्ठ-स्लीपरों में रेल-आसन पर सड़न द्वारा अपक्षय होने की दशा बनी रहती है, जिसके कारण रेल को स्लीपरों पर जकड़ कर रखने वाले प्रकील ('स्पाइक्स्') ढीले पड़ जाते हैं। स्लीपरों के इन भागों को सुरक्षित रखना आवश्यक होता है। इसके लिए स्लीपरों के रेल-आसन के समीपवर्ती भागों के नीचे तिरछे छिद्र बना कर उनमें जल-विलेय परिरक्षी चूर्ण भरने के पश्चात् उनमें डाट लगा कर छिद्र बन्द कर दिया जाता है। आर्द्रता के कारण काष्ठ के निकटवर्ती स्थानों में प्रसारण होकर परिरक्षी फैल जाता है, जिसके फलस्वरूप उन स्थानों पर काष्ठ सुरक्षित रहता है।

स्लीपरों पर बने रेल-प्रकील छिद्रों में पानी भरने के कारण सड़न शुरू हो जाती

है और प्रकील ढीले पड़ जाते हैं । ऐसा होने पर उन छिद्रों का सड़ा हुआ हिस्सा साफ कर दिया जाता है और फिर उसमें दृढ़ता से तीव्र परिरक्षी द्वारा उपचारित काष्ठ का डट्टा ठोक दिया जाता है । डट्टा से प्रसारण द्वारा परिरक्षी फैल कर निकट-वर्ती भागों में फैल जाता है । तब उस पर पुनः प्रकील ठोकी जाती है । यूरोप के हॉलैंड देश में इस प्रकार डट्टा विधि से पुनः उपचारित (५ झ) होने पर स्लीपरों की आयु कई वर्षों तक बढ़ गयी है । जर्मनी में इन डट्टों का निर्माण सन् १९३८ में एकस्वित किया गया था ।

छिद्रों के निपीड-क्रिया द्वारा उपचार के लिए एक विशेष प्रकार का साधित्र आविष्कृत हुआ है । यह ग्रीनली अर्गला-छिद्र उपचारक ('ग्रीनली बोल्ट होल ट्रीटर') के नाम से प्रसिद्ध है । इसके दो भाग होते हैं । इसके मुख्य-भाग में पेचवाली शुण्डा-कार नली होती है, जिसके सिरे पर निपीड पम्प लगा रहता है और दूसरा भाग बन्द शुण्डाकार पेच होता है । यह साधित्र उन काष्ठों के पुनः उपचारण के लिए उपयोगी है जिनमें सर्वत्र छिद्रण के कारण अनुपचारित काष्ठ प्रगट हो गया हो । इस छिद्र के सिरे पर साधित्र का बन्द भाग कस दिया जाता है, और दूसरे छिद्र पर निपीड-पम्प वाले भाग से परिरक्षी दबाव द्वारा प्रविष्ट कराया जाता है । यदि छिद्र आर-पार न हो, अर्थात् एक ओर बन्द हो, तो पम्प वाले भाग को ही कस कर लगाने से परिरक्षी प्रविष्ट कराया जाता है । ऐसा करने से परिरक्षी काष्ठ-छिद्र के संपूर्ण भाग पर लम्ब दिशा में व्याप्त हो जाता है । चित्र ७१ में निपीड-अर्गला-छिद्र -उपचारक द्वारा काष्ठ-छिद्र का उपचार दिखाया गया है ।



चित्र ७१—**निपीड-अर्गला-छिद्र-उपचारक ।**

इस क्रिया से गृह-निर्माण कार्य में लगे हुए काष्ठ की वल्लियों, स्तम्भ आदि को भी दीमकों के आक्रमण से कुछ सीमा तक सुरक्षित किया जा सकता है । काष्ठ के

उन भागों में जहाँ ऐसी संभावना हो कुछ छोटे छिद्र पास-पास बनाने के उपरान्त क्रियोजोट या अन्य परिरक्षी, इस निपीड-उपचारक द्वारा, इन छिद्रों के मार्ग से काष्ठ में व्याप्त कराया जाता है । इस क्रिया से काष्ठ-तन्तु की लम्ब दिशा में दबाव के अनुपात से परिरक्षी बहुत दूर तक व्याप्त हो सकता है, यहाँ तक कि उचित छिद्र-अन्तरालन द्वारा संपूर्ण काष्ठ-भाग परिरक्षी से शोधित करना संभव हो जाता है ।

अध्याय ४

उपचार-देयता

१. काष्ठ-उपचारिता

यद्यपि परिरक्षोपचार की कार्य-साधकता और अन्तिम मितव्ययता उपचारित काष्ठ की सेवा-आयु पर निर्भर है, परन्तु काष्ठ-उपचार की वर्तमान साधकता को परखने के दो ही साधन हैं । उनमें एक तो काष्ठ में परिरक्षी-प्रचूषण की मात्रा है और दूसरी काष्ठ में परिरक्षी-प्रवेश्यता । इनमें से परिरक्षी-प्रवेश्यता अधिक महत्त्व रखती है, यद्यपि परिरक्षी-व्याप्त भाग में उचित परिरक्षी संकेन्द्रण का होना भी आवश्यक है ।

उपचारित काष्ठ से सेवाकार्य में शीघ्र ही असफलता होगी यदि काष्ठ-विपटन के कारण तरेड़े व्यापित भाग को पार कर लें, क्योंकि अनुपचारित काष्ठ के प्रगट हो जाने पर, काष्ठ-नाशक-जीवाणु उन तरेड़ों से प्रविष्ट होकर आन्तरिक भाग को संपूर्णतया नष्ट कर देंगे । संयुक्त-राज्य अमेरिका में बेल टेलीफोन लैबोरेटरीज़ में उपचारित काष्ठ खम्भों के सेवा-आयु के अध्ययन (४अ) से यह परिणाम निकला है कि ९५ प्रतिशत वे काष्ठखम्भ निष्फल रहे हैं जिनमें क्रियोजोट १.८ इंच (४·६ सैन्टीमीटर) से कम प्रविष्ट हुआ था; और उन काष्ठ-खम्भों, में से जिनमें परिरक्षी २·१ इंच (५·३ सैन्टीमीटर) से अधिक प्रविष्ट हुआ था, एक भी निष्फल नहीं रहा । इससे यही परिणाम निकलता है कि परिरक्षी-प्रवेशन का सेवा-कार्य पर अधिक प्रभाव पड़ता है ।

वैसे तो ऐसे कई कारक हैं जिनका प्रभाव काष्ठ-परिरक्षी-प्रवेशन पर पड़ता है, पर इन प्रतिकारकों को तीन मुख्य वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। ये हैं: (१) उपचार से पूर्व काष्ठ की तैयारी (२) उपचार-विधाएँ, और (३) काष्ठ शरीर रचना तथा काष्ठ-जाति । इनमें से पहले तथा दूसरे का वर्णन, भाग ३ के अध्याय २ और ३ में दिया गया है । तीसरे प्रतिकारक के विषय में सविस्तर वर्णन भाग २ के अध्याय १ में दिया है । काष्ठ-शरीर रचना और काष्ठ-जाति का परिरक्षी-प्रवेशन से क्या सम्बन्ध है, यह विषय निम्न प्रकरणों में दिये जाते हैं ।

(क) शंकुधारी और उरुपाती काष्ठों की संरचना में भेद

जैसा पहले वर्णन किया जा चुका है, शकुधारी (कोमल) काष्ठों में वाहिकोशाएँ ('ट्रेकीड्स') होती है, जिनके सिरे बन्द होते है। एक वाहिकोशा से दूसरी वाहिकोशा में तरल पदार्थ किनारीदार गर्तो से, जो वाहिकोशा के सिरों में ही अधिक संख्या मे होते है, होकर जाता है। अतः शकुधारी काष्ठों मे परिरक्षी - प्रवेशन अधिकांश में कोशाभित्ति की अतिवेध्यता पर ही निर्भर है। उरुपाती (कठोर) काष्ठो मे रस-सवाहन के लिए विशेष प्रकार की कोशाएँ होती है। ये कोशाएँ एक दूसरे के ऊपर सिरों से सटी रहती है और मिलकर लगातार केश्नाल बनाती है जिनको वाहिनी ('वेसल्स') अथवा रन्ध्र ('पोर्स') कहते है। इन वाहिनियों के चारो ओर, तन्तु अथवा रेशे ('फाइबर्स') होते है जिनसे काष्ठ को बल मिलता है। अतः इन काष्ठो मे परि-रक्षी-प्रवेशन मुख्यतः इन वाहिनियों और रन्ध्रो के खुले अथवा बन्द रहने की दशा पर निर्भर होता है।

(ख) रसकाष्ठ ('सैपवुड') और सारकाष्ठ ('हार्टवुड')

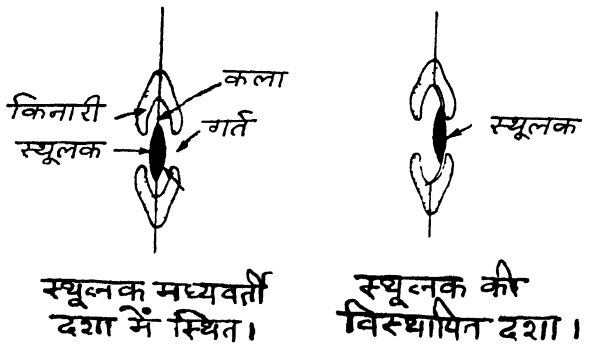
सामान्यतः हर प्रकार के काष्ठों मे, चाहे वे शकुधारी हो अथवा उरुपाती, रसकाष्ठ और सारकाष्ठ की संरचना में भेद रहने के कारण परिरक्षी-प्रवेशन भिन्न प्रकार से होता है। रस-काष्ठ मे, जो वृक्ष की वृद्धि में सक्रिय होता है, परिरक्षी पूर्णतया व्याप्त किया जा सकता है। इसमे केवल फ़र और स्प्रूस जाति के काष्ठ ऐसे है जिनके रसकाष्ठ और सारकाष्ठ मे कोई प्रत्यक्ष भेद न होने के कारण, रसकाष्ठ मे सपूर्ण प्रकार से परिरक्षी व्याप्त होने की पुष्टि नही की जा सकती। सारकाष्ठ मे परिरक्षी-प्रवेशन उसके कोशा-रन्ध्रो की अवस्था पर निर्भर है। यदि सारकाष्ठ के रन्ध्रों में कठोर पदार्थ, जैसे कि राल, गोद, गुहारुध, इत्यादि न हों, अर्थात् काष्ठ-रन्ध्र खुले हो, तो परिरक्षी-प्रवेशन मे रुकावट नही पडती। अतः परिरक्षी इनमे सामान्य प्रकार से व्याप्त कराया जा सकता है। इसके विपरीत ऐसे पदार्थो के न्यूनाधिक मात्रा मे रन्ध्रों मे रहने पर, उसीके अनुसार परिरक्षी-प्रवेशन मे बाधा पडती है। ऐसे बहुत से उरु-पाती काष्ठ है, जैसे कि साल, टीक, इत्यादि, जिनके रन्ध्र गुहारुध से भरे रहते है। इनमे किसी भी विधि से परिरक्षी व्याप्त कराना असम्भव है। तरुण-वृक्षो मे सपूर्ण रसकाष्ठ ही रहता है, अत. काष्ठ-खम्भ जो छोटे व्यास के होते है, पूर्ण प्रकार से परिरक्षी से व्याप्त कराये जा सकते है। ऐसे खम्भो का उपचार सरल होता है। अन्य काष्ठों का, जिनमे रसकाष्ठ और सारकाष्ठ सम्मिलित हो, जैसे कि स्लीपर, कडियाँ और बड़े

आकार के काष्ठ, सफलतापूर्वक उपचार कराना एक जटिल कार्य होता है। इसमे निपुणता की आवश्यकता पड़ती है ।

परिरक्षी के सपूर्ण प्रकार से व्याप्त हो जाने के कारण ही रसकाष्ठ, परिरक्षोपचार के बाद, एक अत्यन्त उपयोगी निर्माण-सामग्री गिना जाता है ।

(ग) किनारीदार और साधारण गर्त ('बॉर्डर्ड् एन्ड सिम्पल पिट्स')

कोशाभित्ति का पतला भाग, जिससे एक कोशा से दूसरी कोशा मे रस-प्रवाह होता है, गर्त कहलाता है । किनारीदार गर्त में ऊपर और नीचे चाप की तरह छोर लटके रहते है। साधारण गर्त मे ऐसे किनारे नही होते। किनारीदार गर्त वृत्ताकार होते है, और उनके मध्य मे पतली और सूक्ष्म छिद्रवाली कला ('मैम्ब्रेन')[1] होती है जिसके केन्द्र मे मोटी स्थूलक ('टोरस')[2] कला रहती है। **चित्र ७२** (बायी ओर) मे किनारीदार गर्त का रेखाचित्र दिखाया गया है। यह एक तिर्यक्छेद चित्र है जिसमे स्थूलक मध्यवर्ती दशा मे स्थित है। इस अवस्था मे रसका, एक कोशा से दूसरी कोशा मे प्रवाह हो सकता है । चित्र के दाहिने भाग मे स्थूलक विस्थापित हो गया है । इसे अग्रेजी



चित्र ७२—**किनारीदार गर्त का रेखाचित्र ।**

मे 'एस्पिरेटेड्' की दशा कहते है । अतः इस दशा मे गर्त-छिद्र बन्द हो जाता है । ऐसी अवस्था मे रस, एक कोशा से दूसरी कोशा मे प्रवेश नही कर सकता । स्थूलक का यह विस्थापन सारकाष्ठ की सशोषण-क्रिया मे होता है जब उसकी आर्द्रता, तन्तु परिपूर्णक

1 Membrane. 2 Taurus.

बिन्दु ('फाइबर सैच्यूरेशन पॉइन्ट') से कम होने लगती है। यही कारण है जिससे काष्ठ अप्रतिचारी बन जाता है। फर और स्प्रूस-जैसे शकुधारी काष्ठों की परिरक्षी-अप्रवेश्यता का कारण यही है।

कुछ शकुधारी काष्ठों मे यह भी देखा गया है कि परिरक्षी-प्रवेशन मुख्यतः ग्रीष्म-काष्ठ मे ही होता है। सम्भवतः इसका कारण यही है कि बहुधा ग्रीष्म-काष्ठ में स्थूलक मध्यवर्ती स्थान पर अधिक संख्या में रहते है जब कि वसन्तकाष्ठ मे वे इस प्रकार से नही रहते, बल्कि अधिकतर विस्थापित रहते है।

साधारण गर्तो मे स्थूलक नही होता। उसकी कला के ऊपर लटके छोर भी नही रहते। इस प्रकार के गर्त काष्ठो की जीवितक और किरण कोशा मे पाये जाते है, और कठोर काष्ठो के रेशे मे भी कुछ ऐसे ही गर्त होते हैं। इनकी रचनानुसार, परि-रक्षी-प्रवेशन में रुकावट नही पड़ सकती, पर इनसे परिरक्षी-प्रवाहन में सहायता मिल सकती है यदि कोशाएँ गुहारुध[1] से भरी हो।

(घ) लीसा प्रणाली

कुछ शंकुधारी काष्ठो मे अनिश्चित लम्बाई की लीसा-कुल्या या प्रणाली रहती है। चीड़ मे लीसा-कुल्याएँ सबसे बड़ी और अधिक होती है। ये काष्ठ-तन्तु के समा-नान्तर और किरण दिशा मे स्थित सूक्ष्म कुल्याओं का एक दूसरे के साथ छेदन करती है जिसके कारण चीड़ काष्ठ मे परिरक्षी-प्रवेशन कराना सम्भव हो जाता है। कैल काष्ठ में लीसा प्रणालियाँ इतनी बड़ी और अधिक नही होती। स्प्रूस काष्ठ मे वे और भी कम और सूक्ष्म होती है। इसी कारण ये दोनों अप्रवेश्य काष्ठ है। फर काष्ठ मे तो लीसा प्रणाली होती ही नही, अतः इसमे भी परिरक्षी-प्रवेश कराना असम्भव होता है।

(ङ) घनत्व

घनत्व से यह सूचित होता है कि काष्ठ मे कितना रिक्त स्थान है। आशा यही की जाती है कि कम घनत्व वाले अथवा हल्के काष्ठ में परिरक्षी सरलता से व्याप्त किये जा सकेंगे और अधिक घनत्व वाले भारी काष्ठों मे उनका प्रवेश कराना कठिन होगा। पर वास्तव मे सदा ऐसा नही होता। विभिन्न घनत्व के काष्ठों के उपचार से यही परिणाम प्राप्त हुआ है कि घनत्व का परिरक्षी-व्यापन से कोई विशेष सम्बन्ध

1 Tyloses.

नही है । सैन, कुसुम इत्यादि भारी काष्ठों का उपचार सरल है, परन्तु फर, स्प्रूस जैसे हल्के काष्ठ अप्रवेश्य है । जैसा ऊपर कहा गया है, परिरक्षी-प्रवेश्यता मुख्यतः काष्ठ-सरचना पर ही निर्भर है ।

तथापि कुछ परिस्थितियो मे घनत्व का प्रभाव परिरक्षी-प्रवेशन पर पड़ता ही है । तून-जैसे बलयरन्ध्र ('रिगपोरस्') काष्ठ मे कम घनत्व वाला वसन्तकाष्ठ परिरक्षी से व्याप्त हो जाता है, और अधिक घनत्ववाले ग्रीष्मकाष्ठ मे ऐसा नही होता ।

यद्यपि घनत्व के आधार पर परिरक्षी-प्रवेशन के बारे मे कोई निश्चित सूचना नही मिलती, तो भी इतनी जानकारी तो हो ही जाती है कि सशोधित काष्ठ में अधिक से अधिक कितना परिरक्षी-प्रचूषण कराया जा सकता है । जितना ही घना काष्ठ होगा उतना ही रिक्त स्थान उसमे कम होगा, अतः उतनी ही कम मात्रा मे परिरक्षी-प्रचूषण भी होगा ।

(च) परिरक्षी-प्रवेशन की दिशा

काष्ठ मे परिरक्षी तीन दिशाओ मे प्रविष्ट होता है--(१) लम्ब दिशा मे, अर्थात् वृक्ष के तने की लम्बाई की दिशा मे, (२) किरण दिशा मे, अर्थात् वृक्ष के अर्ध-व्यास की दिशा में, और (३) स्पर्श दिशा मे, अर्थात् वृक्ष की परिधि अथवा वार्षिक-वलय दिशा मे ।

काष्ठ की लम्ब दिशा में परिरक्षी सरलता से प्रविष्ट हो सकता है, यदि कठोर-काष्ठ मे वाहिनियाँ खुली हों तो उसमें, और कोमल काष्ठ में वाहिकोशा की पूरी लम्बाई तक, परिरक्षी प्रविष्ट हो जाता है, परन्तु किरण और स्पर्शीय दिशा में परिरक्षी को थोड़ी ही दूरी तक प्रवेश करने मे कई कोशाभित्तियों को पार करना पड़ता है ।

शंकुधारी-काष्ठों की चीड़ जाति के काष्ठ मे परिरक्षी-प्रवेशन किरण दिशा की ओर अधिक अच्छा रहता है, क्योंकि इस दिशा मे किरणों मे स्थित लीसा प्रणाली द्वारा परिरक्षी-प्रवेशन में सहायता मिलती है । कहीं-कही स्पर्श दिशा में ग्रीष्म-काष्ठ के कुछ भागों मे भी परिरक्षी प्रविष्ट हो जाता है, पर अधिकाश शकुधारी काष्ठ-जातियों में परिरक्षी-प्रवेश अत्यन्त कम रहता है

कठोर अथवा उरुपाती काष्ठों में, जिनकी वाहिनियाँ खुली रहती है, अर्थात् गुहा-रुध आदि जैसी कठोर राल से बन्द नही रहती, परिरक्षी लम्ब दिशा मे पार्श्व भाग

1 Vessels.

की अपेक्षा छोर-भाग से ही अधिक प्रविष्ट होता है, और तब इस प्रकार वह संपूर्ण भाग मे प्रविष्ट हो जाता है । यदि काष्ठ तिरछा काटा गया हो, तो परिरक्षी पार्श्व भाग मे प्रविष्ट हुआ दिखलाई देता है, पर वास्तव मे परिरक्षी तिरछे कटी कोशा के लम्ब से ही प्रविष्ट होता है । ऐसी दशा मे परिरक्षी समान रूप से व्याप्त नही रहता । लम्बाई मे छोटे कटे काष्ठ, चाहे उनकी टक्कर कितनी ही चौड़ी हो, पूर्णतया परिरक्षी से व्याप्त हो सकते है । इसका कारण परिरक्षी का लम्ब दिशा मे प्रविष्ट होना है ।

(छ) काष्ठजाति और बाँसों का परिरक्षी-प्रवेश्यता के अनुसार वर्गीकरण

इस प्रकरण में काष्ठजाति से प्रयोजन उनके सारकाष्ठ से ही है, क्योकि सभी काष्ठों का रसकाष्ठ पूर्णतया परिरक्षी द्वारा प्रवेश्य हो सकता है । यह वर्गीकरण देहरादून की वन-अनुसन्धान शाला मे सामान्य निपीड क्रिया द्वारा किये गये उपचार परीक्षणों पर आधारित है । कही तो छोटे पैमाने पर परीक्षण किये गये और कही बडे पैमाने पर, किन्तु जितनी भी सख्या मे परीक्षण किये गये, प्रत्येक काष्ठ-जाति का परिरक्षी-प्रवेशन सदा समान रहा ।

परिरक्षी-प्रवेशन की दृष्टि से काष्ठ-जातियों का वर्गीकरण (१०क) पाँच मुख्य श्रेणियों मे किया गया है । वे इस प्रकार है—(१) सरलता से पूर्णतया प्रवेश्य सार-काष्ठ, अर्थात् काष्ठ की वे जातियाँ जिनके सारकाष्ठ का सपूर्ण भाग परिरक्षी-व्याप्य है, (२) असंपूर्ण-प्रवेश्य सारकाष्ठ, अर्थात् काष्ठ की वे जातियाँ जिनको परिरक्षी से व्याप्त कराना तो शक्य है, पर सपूर्ण रूप मे नही, (३) अंशत: प्रवेश्य सारकाष्ठ, अर्थात् काष्ठ की वे जातियाँ जिनके सारकाष्ठ के कुछ भाग तो परिरक्षी से व्याप्त हो जाते है और कुछ नही होते, (४) अप्रवेश्य सारकाष्ठ, (पर २ सैन्टी-मीटर प्रवेशन के लिए भेदन अनिवार्य है) इनमे काष्ठ की वे जातियाँ है जिनके सार-काष्ठ के छोर-भाग से कुछ दूरी तक परिरक्षी-प्रवेश कराना शक्य है, पर पार्श्व भाग से नही । अत: भेदन-क्रिया से इनकी अनुप्रस्थ दिशा मे चारों ओर लगभग २ सैन्टीमीटर गहराई तक परिरक्षी को समानता से व्याप्त कराया जा सकता है, (५) अति अप्र-वेश्य काष्ठ अर्थात् काष्ठ की वे अप्रतिचारी जातियाँ जिनके सारकाष्ठ मे भेदन-क्रिया से भी परिरक्षी-प्रवेश असम्भव है । इन काष्ठों मे छोर दिशा से भी परिरक्षी-प्रवेश कराना दुष्कर होता है ।

पूर्वोक्त वर्गों के अनुसार भिन्न-भिन्न काष्ठजातियों के पारिभाषिक ('बोटैनिकल') नाम नीचे दिये गये है । उनके आगे कोष्ठों में उनके व्यापारिक नाम भी दिये है ।

वर्ग १

सरलता से परिरक्षी-प्रवेश्य काष्ठ-जातियाँ (सारकाष्ठ)

क्रमांक	पारिभाषिक नाम	व्यापारिक नाम
१.	एडाइना कौर्डीफोलिया	हल्दू
२.	एलन्थस् ग्रैन्डिस्	बोरपत
३.	एन्थोसिफेलस कदम्बा	कदम
४.	बील्समीडिया जाति	लेलुक
५.	बौम्बैक्स मैलेबैरिकम	सीमल, सेमर
६.	ब्रूगीरा जाति	
७.	डिलीनिया इन्डीका	डिलीनिया
८.	डिप्ट्रोकार्पस मैक्रोकार्पस	होलौग
९.	इन्डौस्पर्मम् मैलैसैस	बकोटा
१०.	इलैक्स जाति	हट्टी केरापा
११.	मैंगीफरा इन्डिका	आम
१२.	टैरौस्पर्मम् जाति	हातीपोइला
१३.	सैपियम् जाति	सिलग
१४.	सिलीचरा ट्रिजुगा	कुसुम
१५.	स्टर्क्यूलिया एलाटा	पहारी
१६.	टर्मिनेलिया मनी	काला चुगलम
१७.	टर्मिनेलिया माइरियोकार्पा	होलौक

वर्ग २

असंपूर्ण परिरक्षी-प्रवेश्य काष्ठ जातियाँ (सारकाष्ठ)

१.	एकेशिया ऐरेबिका	बबूल
२.	बैम्बूसा जाति	बाँस
३.	बोरैसस् फ्लैबीलीफर	पल्मीरा पाम
४.	कैस्टैनौप्सिस् हिस्ट्रिक्स	इन्डियन चैस्नट्
५.	सिनैमोमम् सैसीडोडैफ्नी	सिनैमौन
६.	क्रटेभा रिलिजियोसा	ब्रुआ
७.	क्रिप्टोकार्या एमिग्डैलीना	

क्रमांक	पारिभाषिक नाम	व्यापारिक नाम
८.	कुलूनिया इक्सैल्सा	करानी
९.	साइनोमीट्रा पौलीआन्ड्रा	पिंग
१०.	डैन्ड्रोक्लेमस् जाति	बॉस
११.	डिप्ट्रोकार्पस इन्डीकस	गुर्जन
१२.	डिप्ट्रोकार्पस टघूबरक्यूलेटस्	इंग
१३.	डिप्ट्रोकार्पस टर्बिनेटस्	गुर्जन
१४.	डिप्ट्रोकार्पस जिलैनिकस्	होरा
१५.	ड्रिपिटस् जाति	जाम
१६.	होलोप्टिलिया इन्टीग्रीफोलिया	कान्जू
१७.	होमैलियम् टोम्यनटोसम्	म्यौकचाउ
१८.	माइकीलिया इक्सैल्सा	चम्प
१९.	मिट्रैजाइना डाइभर्सीफोलिया	बीगा
२०.	मिट्रैजाइना पार्भीफोलिया	कैम
२१.	पाइनस् रौक्सबर्गी	चीड़
२२.	स्टीरियौस्पर्मम् चैलैनौइडीज	
२३.	स्विन्टोनिया फ्लोरीबन्डा	सिभिट
२४.	टर्मिनेलिया अर्जुना	अर्जुन
२५.	टर्मिनेलिया बैलैरिका	बहेडा
२६.	टर्मिनेलिया प्रोसीरा	सफेद बौम्बवे या बादाम
२७.	टर्मिनेलिया पाइरीफोलिया	लेन
२८.	टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा	सैन
२९.	भैटिका लैन्सीफोलिया	मोर्हाल
३०.	वाल्सूरा रोबस्टा	लाली

वर्ग ३

अंशतः परिरक्षी-प्रवेश्य काष्ठजातियाँ (सारकाष्ठ)

१.	ऐक्रोकार्पस फ्रैक्सीनीफोलियस्	मुन्दानी
२.	एल्बीजिया लैबैक्	कोक्को
३.	एल्बीजिया प्रोसीरा	सफेद सिरिस्
४.	एनोजाइसस् एक्यूमिनाटा	यौन

क्रमांक	पारिभाषिक नाम	व्यापारिक नाम
५.	कैनैरियम् जाति	धूप
६.	कैसुएरीना इक्वीजैटीफोलिया	कैसुएरीना
७.	सैड्रीला तूना	तून
८.	सीड्रस देवदारा	देवदार
९.	चुक्रेसिया टेब्यूलैरिस्	चिक्रेसी
१०.	डिप्ट्रोकार्पस ग्रिफिथी	गुर्जन
११.	द्वाबगा सोनरेटियोइडीज़	लम्पती
१२.	हैरीटीरा माइनर	सुन्द्री
१३.	हैटीरोफ्रेग्मा एडीनोफिलम्	करेन काष्ठ
१४.	फोबी हैनीसियाना	बौन्सम्
१५.	पाइनस् इक्सैल्सा	कैल
१६.	टैरोकार्पस डल्बरजियोइडीज	अन्डमान पैडोक
१७.	टैरौस्पर्मम् एसरीफोलियम्	मायेग
१८.	क्वर्कस लैमीलोसा	बक
१९.	क्वर्कस लिनीयाटा	फलट
२०.	शोरिया एसैमिका	मकई
२१.	टर्मिनेलिया चैबुला	माइरोबोलैन काष्ठ
२२.	टर्मिनेलिया पैनीक्यूलाटा	किन्डल

वर्ग ४

परिरक्षी-अप्रवेश्य काष्ठजातियाँ (सारकाष्ठ), २ सेन्टीमीटर प्रवेशनार्थ भेदन अनिवार्य

१.	एबिस पिन्ड्रो	फर
२.	एबिस विबियाना	फर
३.	अर्टोकार्पस चपलासा	चपलाश
४.	क्रिप्टरोनिया पैनीक्यूलाटा	
५.	डिलीनिया पैन्टैजाइना	डिलीनिया
६.	एन्गलहार्डटिया जाति	लीवा
७.	यजीनिया गार्डनरी	जामन
८.	ग्रीविया टिलीफोलिया	धामन

क्रमांक	पारिभाषिक नाम	व्यापारिक नाम
९.	लैगस्ट्रोमिया टोम्यनटोसा	लीजा
१०.	पैन्टैस बुर्मेनिका	थिट्का
११.	पीसिया मौरिन्डा	स्प्रूस
१२.	स्कीमा वालीची	चिलौनी

वर्ग ५

अति अप्रवेश्य, पार्श्व और छोर दोनों ओर से ही प्रवेशन-शून्य काष्ठजातियाँ सारकाष्ठ

१.	एग्लैइया इडूलिस्*	मोमालैटकू
२.	एल्बीजिया लूसीडा	
३.	एल्बीजिया ओडोराटिसिमा	काला सिरिस
४.	एल्बीजिया स्टीपुलाटा	
५.	अल्टिजिया इक्सैल्सा	जुटीली
६.	एमूरा जाति	अमारी
७.	एनोजाइसस् लैंटीफोलिया	बाक्ली
८.	बसिया लैंटीफोलिया	महुआ
९.	बिस्चोफिया जैभैनिका	विशप-काष्ठ
१०.	बौस्वेलिया सिराटा	सलाइ
११.	बुर्सरा सिराटा	इन्डियन रैड पियर
१२.	कैलोफिलम् टोम्यनटोसम्	पून
१३.	कैलोफिलम् वेटियानम्	पून
१४.	क्रिप्टोमैरिया जैपोनिका	सूजी
१५	कूप्रसस् टोरूलोसा	साइप्रस
१६.	डाइकौपसिस् इलिप्टिका	पाली
१७.	डायौस्पीरौस जाति*	केन्डू
१८.	यूकेलिप्टस् ग्लोब्यूलस	
१९.	यूजीनिया जम्बोलाना	जामुन
२०.	यूजीनिया पैरीकौक्स	जामुन
२१.	गैरूगा पिनाटा*	गैरूगा
२२.	हार्डविकिया बिनाटा	अंजन
२३.	होपिया कौर्डीफोलिया	होपिया

क्रमांक	पारिभाषिक नाम	व्यापारिक नाम
२४.	होपिया ओडोराटा	थिंगन
२५.	होपिया पार्भीफ्लोरा	होपिया
२६.	कैइया एसैमिका	सिया नैहारे
२७.	लैगरस्ट्रोईमिया फ्लोसरैजिनी*	जारूल
२८.	लैगरस्ट्रोईमिया लैन्सियोलाटा*	बैनटीक
२९.	लैगरस्ट्रोईमिया पार्भीफ्लोरा	लैन्डी
३०.	लैनिया ग्रेन्डिस	झिंगन
३१.	मैशीलस् गैम्बलाइ	मैशीलस्
३२.	मैन्सोनिया जाति*	
३३.	मैसुवा फैरिया	मैसुवा
३४.	पाराशोरिया स्टीलाटा	थिंगाडू
३५.	फोवी कूपरियाना*	
३६.	प्लैन्चोनिया एन्डेमैनीका	लाल बौम्बवे
३७.	पोइसीलौन्यूरौन इन्डिकम	बलागी
३८.	टैरोकार्पस मैक्रोकार्पस	बर्मा पैडौक
३९.	टैरोकार्पस मार्स्यूपियम*	बीजासाल
४०.	शोरिया औब्टयूचा	थिट्या
४१.	शोरिया रोबस्टा	साल
४२.	शोरिया टैलूरा	
४३.	टैक्टोना ग्रैन्डिस*	टीक
४४.	टर्मिनेलिया बियालाटा	सफेद चुगलम्
४५.	टर्मिनेलिया ओलीभरी	थान
४६.	वैटीरिया इन्डिका	भिलापिनै
४७.	जाइलिया डोलाब्रीफौर्मिस	पिन्काडो
४८.	जाइलिया जाइलोकार्पा	इरूल

* ये काष्ठ-जातियाँ उच्च दबाव पर (५०० से १००० पौंड प्रति वर्ग इंच, अर्थात् ३५.१ से ७०.३ किलोग्राम प्रति वर्ग सैन्टीमीटर) परिरक्षी-प्रवेश्य हैं (काष्ठ-परिरक्षण शाखा के लघु अनुमाप (Small scale) परीक्षणों के अनुसार)।

(ज) विभिन्न वर्गों के उपचारित काष्ठों के प्रयोग

पूर्वोक्त वर्ग १ के काष्ठों का, जो सरलता से परिरक्षी-प्रवेश्य है, परिपूर्ण उपचार के बाद कहीं भी बाहर खुले स्थानों मे प्रयोग किया जा सकता है। इस कार्य में यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि इस वर्ग के केवल ऐसे काष्ठों का ही प्रयोग किया जाय, जो बल अथवा शक्ति की दृष्टि से उस कार्य के यान्त्रिक संभार सहन करने मे समर्थ हों। परिरक्षी का भी ठीक चुनाव होना चाहिए, तभी संतोषजनक परिणाम निकल सकते है।

वर्ग २ के काष्ठों का प्रयोग भी बाहर खुले मे रेलवे-स्लीपर, पुल, खम्भ, नाव-निर्माण इत्यादि के कार्यो मे परिपूर्ण उपचार पश्चात् कर सकते है। खम्भों और भूमि में गाड़े जानेवाले काष्ठों के लिए केवल उन्ही काष्ठों का प्रयोग किया जाय जो संतोष-जनक रूप से पर्याप्त गहराई तक परिरक्षी से व्याप्त हो सकें, अथवा जिनके चारों ओर उपचारित काष्ठ का मोटा स्तर हो।

वर्ग ३ के काष्ठों को उपचार पश्चात् बाहर खुले में केवल स्लीपरों अथवा छत-पट्ट बनाने के काम मे ला सकते है। ऐसे काष्ठो का भूमि से सीधा संस्पर्श न होना चाहिए, वे भूमि से उठे हों। ऐसे उपचारित काष्ठों का यदि स्लीपरों के रूप में प्रयोग किया जाय, तो रोडी ('बैलस्ट') के मोटे स्तर के ऊपर ही उन्हे रखना उचित होगा। गृह-निर्माण के लिए उपचार-पश्चात् ही ये काष्ठ उपयुक्त होंगे, इन्हे भूमि का स्पर्श न होने देना चाहिए। रेल-डब्बो, लॉरी तथा बसों इत्यादि के काय-निर्माण के लिए ऐसे उपचारित काष्ठ समुपयक्त होते है। अन्दर की छत, कड़ी इत्यादि अन्दर के अन्य निर्माण कार्यों के लिए भी ऐसे काष्ठ उपयुक्त होते है।

वर्ग ४ के काष्ठ भेदन के पश्चात् उपचार किये जाने पर ही बाहर खुले में केवल रेलवे-स्लीपरों के कार्य में लाये जा सकते है। अन्दर के कार्यो मे भी ऐसे उपचारित काष्ठों का प्रयोग किया जा सकता है, यदि उन्हे भूमि के सस्पर्श मे न आने दिया जाय।

वर्ग ५ के काष्ठों का उपचार के पश्चात् भी बाहर खुले मे कही प्रयोग नही किया जा सकता। केवल उन्ही काष्ठो का प्रयोग किया जा सकता है जो स्वभावतः ही स्थायी हों, जैसे साल, टीक, पिनकाडो, इरूल, होपिया इत्यादि। अस्थायी काष्ठों, जैसे सलाइ, विलापिने, मेशीलस्, पून इत्यादि का पेटी और साधारण कार्यो के लिए ही प्रयोग कर सकते है। यदि इनको अपेक्षित आकार मे ही काटकर उपचारित किया जाय तो अच्छे परिणाम निकल सकते है।

प्रत्येक काष्ठ के लिए अनुकूलतम विधि व परिरक्षी-प्रचूषण का विवरण यहाँ विस्तार से देना असम्भव है । काष्ठ-परिरक्षण का मुख्य सिद्धान्त यही है कि परिरक्षी न केवल रसकाष्ठ और अस्थायी सारकाष्ठ मे पूर्णतया प्रविष्ट हो, बरन् उपचारित काष्ठ मे उसका सम्यक् सकेन्द्रण भी हो । यह परिरक्षी-प्रकार, काष्ठ-जाति, प्रयोग-स्थान, अपेक्षित आयु, जलवायु, कवक और दीमकों की प्रचण्डता तथा अन्य सेवा-परिस्थितियो पर निर्भर रहता है। सारणी १५ मे विविध उपयोगों के लिए विभिन्न काष्ठों की उपयुक्त उपचार विधियाँ, परिरक्षी-प्रकार, परिरक्षी-संकेन्द्रण, परिरक्षी-प्रवेशन और प्रचूषण-मात्रा का विवरण दिया गया है ।

२. उपचार कार्य प्रणाली

जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है, परिरक्षोपचार की सफलता काष्ठ-शारीर-रचना, काष्ठ-आर्द्रता, काष्ठ-आकार, परिरक्षी-प्रकार और उपचार-विधाओ पर निर्भर रहती है । यद्यपि इन सबकी अनुकूलतम दशाओं को व्यवहार मे लाने से सफलता हो सकती है, फिर भी कुछ पृथक् उपचार की परवर्ती दशाएँ ऐसी है जिनका विशेष महत्त्व है। ये हैं—(क) विधा-प्रारूप, (ख) परिरक्षी-आचरण, (ग) परिरक्षी-आलगत्व और तापक्रम, तथा (घ) निपीड-प्रचण्डता और अवधि । इन सबका, परिरक्षोपचार अर्थात् परिरक्षी-प्रचूषण और प्रवेशन पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह सक्षेप में नीचे दिया गया है ।

(क) विधा-प्रारूप

उपचार-विधा का परिरक्षोपचार पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है । अधिकांश दशाओ मे निपीड-विधाएँ सेवा-काल मे न केवल काष्ठ को अधिक सुरक्षित रखती हैं, अपितु अन्त मे आयु-वृद्धि की दृष्टि से कम खर्चीली भी होती हैं । यदि संकेन्द्रित परिरक्षी का प्रयोग किया जाय तो अनिपीड क्रिया मे प्रसारण और बूशरी प्रक्रियाएँ हरे काष्ठ के उपचार के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है, परन्तु फिर भी वे उन काष्ठो के उपचार के लिए अपर्याप्त होती है, जिन्हे प्रबल आक्रमणकारी अभिकर्त्ताओं का सामना करना पड़ता है, जैसे कि सामुद्रिक खम्भ में, अथवा जहाँ यान्त्रिक विघर्षण अधिक हो, जैसे कि रेलवे-स्लीपरों मे । साधारण उपचार के लिए, जहाँ रस-काष्ठ अधिक हो, तापन-शीतन विधि भी उपयुक्त होती है, पर इसमें परिरक्षी-प्रचूषण का नियन्त्रण करना कठिन होता है, और इस कार्य में केवल तैलरूपी परिरक्षी का प्रयोग किया जाना आवश्यक होता है ।

सारणी-१५

विविध उपयोगों के लिए विभिन्न काष्ठों की उपचार-प्रणाली

वर्ग-संख्या	उपयोग-स्थान और विविध उपयोग	काष्ठ-प्रकार	अभिस्तावित उपचार-विधियाँ	अभिस्तावित परिरक्षी	प्रचूषण	
					किलोग्राम प्रति घन-मीटर	पौंड प्रति घनफुट
१	बाहर खुले में, भूमि में, पानी में और समुद्र में लगे अथवा गड़े । (क) रेलवे-स्लीपर (ख) खम्भ	सभी वर्गों के परिरक्षी-प्रवेश्य काष्ठ, अथवा अनि-स्थायी काष्ठ (वर्ग* १ और २ के), यदि बाहरी स्तर रसकाष्ठ से ढका हो।	निपीड विधा; प्रसारण और बशरी प्रक्रिया; तापन-शीतन विधि (प्रवेश्य काष्ठो के लिए)।	(क) १. क्रियोजोट-इन्धन तैल (५०:५०)	८०से१२०	५ से ८
				(क) २ एस्क्यू	८·०	०·५
				(क) ३ सैल्क्यूयर या कुक्रोम	८·०	०·५
				(ख) १. क्रियोजोट-इन्धन तैल (५०:५०)	१६०	१०
				(ख) २ एस्क्यू	१६	१
				(ख) ३. सैल्क्यूयर या कुक्रोम	१६	१
	(ग) सामुद्रिक खम्भ			(ग) १. क्रियोजोट-इन्धन तैल (५०:५०)	३२०	२०
				(ग) २. एस्क्यू	३२	२
				(ग) ३. कुक्रोम	३२	२

२	बाहर खुले मे, पर भूमि के सस्पर्श मे नही। पुल, छतपट्ट, बुर्ज इत्यादि।	सभी वर्गो के परिरक्षी-प्रवेश्य काष्ठ अथवा स्थायी (वर्ग‡ १, २ और ३ के) काष्ठ।	निपीड, अथवा तापन-शीतन (परिरक्षी-प्रवेशनीय काष्ठो के लिए)।	१. क्रियोजोट-इन्धन तैल (५०:५०)	४८ से ८०	३ से ५
				२. एस्क्यू	८·०	०·५
				३. सैल्क्यूयर या कुक्रोम	८·०	०·५
३	बाहर खुले मे, पर भूमि के सस्पर्श मे नही। उपचार पश्चात् रग लेप देना अनिवार्य है। बाड, रेल, ऋतु-पट्ट, कृषि क्षेत्र, गृह, उप-गृह इत्यादि।	तत्रैव	तत्रैव	१. एस्क्यू, सैल्क्यूयर और कुक्रोम।	६·४	०·४
				२. पैन्टाक्लोरोफीनौल	४·८	०·३
				३. कौपरनैफ्थीनेट	४·८ से ६·४	०·३– ०·४
४	अन्दर कार्य के लिए। उपस्कर, छत, दरवाजे, रेलडब्बे, लौरी और बस-काय इत्यादि।	तत्रैव	निपीड और तापन-शीतन विधि अस्थायी काष्ठो के लिए; डूबन, शीकन और लेपन स्थायी काष्ठों के लिए।	१. एस्क्यू, सैल्क्यूयर, कुक्रोम	४·८– ६·४	०·३– ०·४
				२. क्रोमेटैड जिक-क्लोराइड	१६·०– ३२ ०	१·०– २·०
				३. जिक-क्लोराइड	१२·०– १६·०	०·७५– १·०
				४. कौपरनैफ्थीनेट	४·०	०·२५
				५. पैन्टाक्लोरोफीनौल	४·०	०·२५
				६. क्रियोज़न्ट, सोलिगनम् (गरम) लेपन के लिए ही।	—	—

वर्ग-संख्या	उपयोग-स्थान और विविध उपयोग	काष्ठ-प्रकार	अभिस्तावित उपचार-विधियाँ	अभिस्तावित परिरक्षी	प्रचूषण	
					किलोग्राम प्रति घन-मीटर	पौंड प्रति घनफुट
५	बक्सों और पेटियों के लिए।	अल्प-स्थायी काष्ठ (वर्ग* ४ से लेकर ६ तक), विशेषतः प्रवेशनीय काष्ठ।	मन्द-निपीड (२५–५० पौंड/व. इं.), या तापन-शीतन, या डूबन, शीकन और लेपन, अपेक्षित आयु के अनुसार।	१. एस्क्यू ६ प्रतिशत ‡	४·८	०·३
				२. सैल्क्यूयर, कुक्रोम ६ प्रतिशत।	४·८	०·३
				३. क्रोमेटेड जिंकक्लोराइड १२, प्रतिशत।	१६·०	१·०
				४. जिंकक्लोराइड ८ प्रतिशत।	१२·०	०·७५
				५. पैन्टाक्लोरोफीनोल ५ प्रतिशत।	४·०	०·२५
				६. कौपरनैफ्थीनेट १० प्रतिशत।	४·०	०·२५
				७. बोरिक एसिड-बौरेक्स २·५ प्रतिशत (केवल लिक्टम् छिद्रक के प्रति)	—	—

६	नये कटान के छाल-रहित लठ्ठों, तख्तो, बल्लियों के अस्थायी उपचार के लिए।	सभी प्रकार के काष्ठ जिनमे रस-काष्ठ भी सम्मिलित है।	डुबन, शीकन और लेपन।	१. एस्क्यू ६ प्रतिशत ‡ २. सल्क्यूयर, कुक्रोम ६ प्रतिशत। ३. सोडियम पैन्टाक्लोरोफीनेट–१ ० प्रतिशत नील-वर्णक कवक के प्रति। ४. गैमैक्सेन–१ ० प्रतिशत छिद्रक कीटो के प्रति। ५. डीलिड्रन–पी सी. पी. १ ० प्रतिशत–कीट-कवक के प्रति।	– – – – – –	– – – – – –

टिप्पणी—

* प्राकृतिक-स्थायित्व के वर्गीकरण के अनुसार (भाग २, अध्याय ३ ३ देखिए)।

‡ प्रतिशत घोल पानी मे, केवल पैन्टाक्लोरोफीनौल और कौपरनैफ्थीनेट, जिनका घोल मृत्तैल मे तैयार किया जाता है।

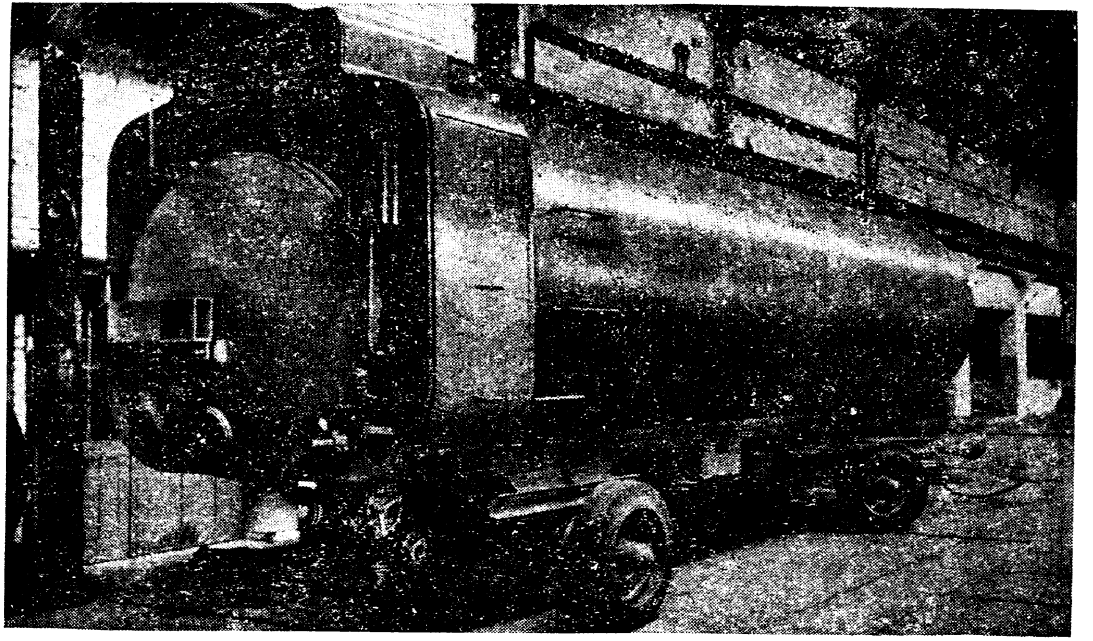
निपीड-विधा में भी विशिष्ट प्रक्रिया का चुनाव, काष्ठ-उपचारिता और उसकी आर्द्रता पर निर्भर है। सरल-प्रवेश्य और शुष्क काष्ठ मे रिक्त-कोशा विधि उपयुक्त होती है, क्योंकि इसमे परिरक्षी का प्रतिधारण, निपीड काल मे सकल प्रचूषण का ४० प्रतिशत तक होता है, जिसके कारण न्यून परिरक्षी-मात्रा से अधिकाधिक काष्ठ-भाग का उपचारण हो जाता है। यदि काष्ठ अंशतः शुष्क और दुष्प्रवेश्य हो, तो यह विधा उतनी अधिक उपयोगी सिद्ध नही हो सकती। उस दशा मे पूर्णकोशा विधा का प्रयोग करना पडता है। रूपिग विधा का प्रयोग अधिक रसकाष्ठ वाले काष्ठों के लिए किया जाता है।

साधन-सयन्त्र के काष्ठ-प्रभार मे मिले-जुले अर्थात् प्रवेश्य और दुष्प्रवेश्य काष्ठों को उपचारण के लिए सम्मिलित करना उचित नही है। उसी प्रकार विभिन्न आर्द्रता के काष्ठो का भी मिश्रण एक ही उपचार-प्रभार के लिए ठीक नही है। संयन्त्र-चालक को भी इसमे निपुण होना चाहिए कि वह निश्चय कर सके कि कौन से काष्ठ एक ही उपचार-प्रभार मे सम्मिलित किये जा सकते है, जिससे एक ही विधा के प्रयोग करने पर काष्ठ में परिरक्षी-प्रचूषण और प्रवेशन एक समान हो सके। इसके लिए उपचार-विधियो का और काष्ठ के विशेष लक्षणो का पूर्ण तथा पूर्व ज्ञान होना चाहिए।

(ख) परिरक्षी आचरण

परिरक्षी-प्रकार का काष्ठ-उपचारण पर अतिस्पष्ट प्रभाव पड़ता है। बहुधा यह पाया गया है कि तैल-रूपी परिरक्षी की अपेक्षा जल-विलयन परिरक्षी का काष्ठ में अधिक प्रचूषण और प्रवेशन होता है। इसी प्रकार सीधे क्रियोजोट का प्रवेश भी क्रियोजोट-इन्धन-तैल मिश्रण की अपेक्षा अधिक होता है। इसके अतिरिक्त इन्धन-तैल की जैसे-जैसे इस मिश्रण मे अधिकता होती है, वैसे ही वैसे प्रचूषण और प्रवेशन मे भी कमी हो जाती है। यद्यपि यह बात सदा सत्य नही होती, क्योकि अन्य बहुत सी परवर्ती दशाओं का भी प्रभाव पडता है, तथापि यह भिन्नता प्रथम तो आलगत्व अथवा गाढेपन पर निर्भर होती है और दूसरे, जल-विलयन कोशभित्ति के अवशोषण पर। पर तैल के विषय मे ऐसा नहीं हो सकता, विलायक-रूपी परिरक्षी यदि पतले मृत्तैल में घोल लिये जायँ, तो ये अधिक गहराई तक प्रविष्ट हो जाते है।

बहुधा आर्द्रक पदार्थों (वेंटिग एजेन्ट्स्) का भी उपयोग परिरक्षी-प्रवेशन को बढाने के लिए किया जाता है, पर वाणिज्य सम्बन्धी उपचार के लिए यह उपयुक्त नही समझा गया है।



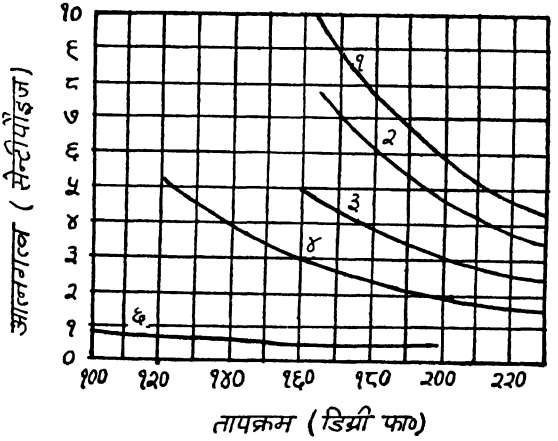
चित्र—७३ बाह्य निर्गीड उपचार संयन्त्र (कलकत्ते का बना)



चित्र—७४ बाह्य निपीड उपचार संयंत्र (जर्मनी का बना)।

(ग) आलगत्व और ताप

ताप का परिरक्षी-विलयन के आलगत्व[1] पर प्रभाव पड़ता है। ज्यों-ज्यों परिरक्षी गरम किया जाता है, उसका आलगत्व कम होता जाता है, जिसके फल-स्वरूप वह काष्ठ मे अधिक दूरी तक अन्तःप्रविष्ट हो सकता है। ताप का प्रभाव जल-विलयन की अपेक्षा तैल के आलगत्व पर अधिक पड़ता है। चित्र ७५ मे जिंक-क्लोराइड-विलयन, क्रियोजोट, क्रियोजोट–इन्धन तैल (५०:५०), क्रियोजोट-इन्धन (१०:९०) और केवल इन्धन तैल के आलगत्व पर ताप के प्रभाव के सम्बन्ध मे वक्र (४ ट) दिये गये है।



चित्र ७५—परिरक्षी विलयन, आलगत्व और ताप के सम्बन्ध में वक्र।

इससे यही सिद्ध होता है कि जिंक-क्लोराइड विलयन के आलगत्व में ताप के बढ़ने से उतना सुस्पष्ट भेद नही आता, जितना कि तैलों के आलगत्व मे और विशेष कर इन्धन तैल में, जिसके आलगत्व मे भारी कमी हो जाती है। यही कारण है कि तैल से उपचार करने मे तैल को लगभग ९५° सैन्टीग्रेड तक गरम करना पड़ता है।

1 Viscosity श्यानता।

जल-विलयनरूपी परिरक्षी को इतने उच्च तापक्रम तक गरम नही कर सकते, क्योकि बहुत-से बद्धरूपी परिरक्षी सगठन मे इस तापक्रम पर रासायनिक परिवर्तन से तलछट रहने लगती है। केवल जिक क्लोराइड विलयन मे ऐसा नही होता और सपरीक्षणों से यही पता चला है कि जिक-क्लोराइड विलयन से उच्च ताप पर काष्ठ मे प्रवेशन, ठडे विलयन की अपेक्षा अच्छा रहा है।

क्रियोजोट और इन्धन-तैल के मिश्रण के उपचार-परीक्षणो से भी यही सूचना मिलती है कि यह तैल-मिश्रण जितना ही अधिक गरम प्रयोग किया जाय उतना ही प्रचूषण और प्रवेशन अच्छा रहता है, परन्तु गरम करने की भी सीमा है। १००° सेन्टीग्रेड से अधिक गरम तैल प्रयोग करने से लकडी मे विपटन हो जाती है और उच्च-ताप-निपीड मे दबन अवस्था उत्पन्न हो जाती है, जिसके कारण लकडी के आकार मे परिवर्तन हो जाता है। गरम तैल से काष्ठ-उपचार-अवधि भी उतनी होनी चाहिए कि काष्ठ का आन्तरिक भाग भी गरम हो जाय और परिरक्षी वहाँ उष्ण अवस्था मे ही रहे, तभी प्रवेशन अच्छा रहेगा। काष्ठ मे परिरक्षी द्वारा निपीड क्रिया मे ऊष्मीकरण अवधि बहुधा दो घटे से लेकर चार घटे तक भी होती है। यह सब काष्ठ की जाति, उसकी आर्द्रता, आकार और काष्ठ-ऊष्म-सवाहिता पर निर्भर रहता है।

चीड और कैल जैसे लीसा वाले काष्ठ का गरम जल-विलयन से उपचार करने पर लीसा बाह्य सतह पर एकत्रित हो जाता है, जो वाञ्छनीय नही है।

(घ) निपीड-प्रचण्डता और अवधि

परिरक्षी-दबाव की प्रचण्डता और उसकी अवधि का भी परिरक्षी प्रचूषण और प्रवेशन पर प्रभाव पड़ता है। काष्ठ-उपचार परीक्षणो से यही पता लगा है कि यदि दबाव या उसकी अवधि मे से किसी एक या दोनो की बुद्धि की जाय तो प्रचूषण और प्रवेशन की मात्रा अधिक हो जाती है। दबाव या उसकी अवधि के लिए कोई विशेष नियम निश्चित नही किये गये है, क्योंकि ये कई प्रतिकारकों पर आश्रित है, जैसे कि अभीष्ट प्रचूषण, काष्ठ-उपचारिता, आर्द्रता, ताप इत्यादि। काष्ठ-उपचार प्रक्रिया के प्राप्त अनुभव से ही यह निश्चित किया जाता है। सामान्य नियम यही है कि निपीड-अवधि उतने काल तक रखी जाय जितने में अभीष्ट प्रचूषण प्राप्त हो सके। वाणिज्य-उपचार क्रिया से यही अनुभव प्राप्त हुआ है कि उच्च दबाव पर थोड़ी अवधि तक उपचार करने की अपेक्षा सामान्य दबाव

पर लम्बे काल तक उपचार करने से अधिक सफल परिणाम निकलते है, क्योंकि उसमे परिरक्षी को अधिक समय तक ताप मे रहने के कारण समानता पूर्वक व्याप्त होने का अवकाश मिल जाता है। यह भी सूचना मिली है कि ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा शीतकाल मे उपचार करने पर अधिक समय की आवश्यकता पडती है। उच्च दबाव और न्यून उपचार अवधि मे समान प्रवेशन नही होता। परिरक्षी दबाव भी इतना प्रचण्ड नही होना चाहिए कि उससे काष्ठ को क्षति पहुँचे। काष्ठ की बल-धारण शक्ति के अनुसार ही काष्ठ पर परिरक्षी-दबाव देना उचित है।

वाणिज्य काष्ठ-उपचारण मे पूर्णकोशा और लौरी विधा मे परिरक्षी-दबाव १५० से १७५ पौड प्रति वर्ग इंच (१०.५ से १२.३ किलोग्राम प्रति वर्ग सैन्टीमीटर) पर दिया जाता है, और रूपिग विधा मे, जिसमे पूर्व वातिक-दबाव देते है, कभी-कभी २०० पौड प्रति वर्ग इच (१४.१ किलोग्राम प्रति वर्ग सेन्टीमीटर) तक भी परिरक्षी-दबाव दिया जाता है।

३. प्रचूषण और प्रवेशन का निर्धारण

(क) प्रचूषण

प्रचूषण[1] तीन प्रकार का होता है। एक तो आदि-प्रचूषण ('इनीशियल एब्सौर्पशन), दूसरा सकल-प्रचूषण ('ग्रौस एब्सौर्पशन') और तीसरा वास्तविक-प्रचूषण ('नेट एब्सौर्पशन')। निपीड-क्रिया के पूर्व जो प्रारम्भिक शून्यक अथवा रम्भ मे परिरक्षी-भरण-काल मे प्रचूषण होता है, वह आदि-प्रचूषण कहलाता है। तत्पश्चात् निपीड अवधिकाल मे जो प्रचूषण होता है वह सकल-प्रचूषण है, अर्थात् अधिकाधिक मात्रा का प्रचूषण सकल-प्रचूषण है। निपीड-क्रिया के उपरान्त दबाव समाप्त होने पर काष्ठ मे से परिरक्षी कुछ मात्रा मे बाहर निकल आता है, इसे पादप्रहार ('किक्बैक्') कहते है। तब अन्तिम शून्यक के पश्चात् जो प्रचूषण रहता है वही वास्तविक प्रचूषण है। सकल-प्रचूषण मे पादप्रहार द्वारा निकले परिरक्षी को घटाने से वास्तविक प्रचूषण निकलता है।

आदि-प्रचूषण इतने महत्त्व का नही होता जितना कि अन्य दो प्रचूषण। सकल-प्रचूषण से यह सकेत मिलता है कि काष्ठ मे परिरक्षी का कितनी गहराई तक प्रवेश हुआ है। रिक्त कोशा-विधा मे, विशेष कर रूपिग विधा मे, सकल-प्रचूषण पूर्ण-कोशा

1 Absorption, अवशोषण।

की अपेक्षा अधिक होता है और पाद-प्रहार से भी अधिक मात्रा मे परिरक्षी बाहर निकल आता है, जिससे वास्तविक प्रचूषण कम रह जाता है। यही कारण है कि रिक्त-कोशा विधा में थोड़े परिरक्षी-प्रचूषण से अधिकाधिक काष्ठ-भाग परिरक्षी से व्याप्त हो जाता है।

प्रयोगशालाओ के परीक्षणों में परिरक्षी की काष्ठ-व्याप्त मात्रा और प्रवेशन-सीमा ज्ञात करना सरल होता है। प्रचूषण के लिए काष्ठ को आरम्भ में और उपचार पश्चात् तौल लिया जाता है, इस तरह तौल का जो अन्तर है वही वास्तविक प्रचूषण होता है। इस प्रचूषण को काष्ठ के आयतन से भाग देने पर, प्रचूषण प्रति इकाई आयतन पर निश्चित किया जाता है। इसका प्रमाप किलोग्राम प्रति घनमीटर अथवा पौड प्रति घनफुट होता है। उपचारित काष्ठ मे रासायनिक विश्लेषण द्वारा भी परिरक्षी-प्रचूषण ज्ञात कर सकते है।

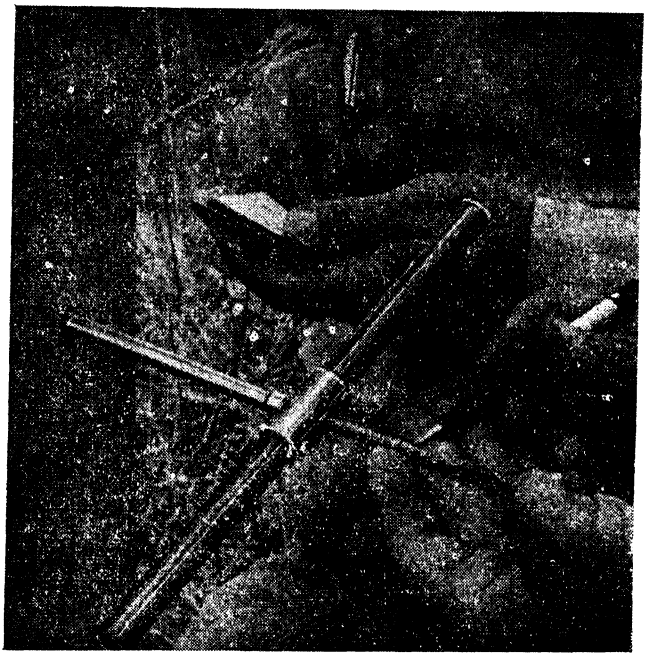
वाणिज्य-काष्ठ-उपचार मे साधन-सयन्त्रो से काष्ठ-प्रचूषण विदित किया जा सकता है। इसको सेवा-कुण्ड मे उपचार-आरम्भ और अन्तिम काल परिरक्षी-तलमान के अन्तर द्वारा आसानी से निकाला जा सकता है। यह वास्तविक प्रचूषण है, पर निपीड-क्रिया-काल मे सेवा-कुण्ड का परिरक्षी-तलमान लेते रहने से सकल प्रचूषण भी ज्ञात कर सकते है। यद्यपि परिरक्षी-कुण्ड के ताप की भिन्नता के कारण शुद्ध प्रचूषण का ज्ञात होना कठिन है, पर इसके लिए एक ही ताप पर अक-परिवर्तन के लिए सूचियाँ बनी रहती है, जिससे कि यथार्थ प्रचूषण प्राप्त हो सके। बहुधा वास्तविक प्रचूषण जानने के लिए काष्ठ-प्रभार को ट्रालियो मे भरकर उपचार-आरम्भ और उपरान्त एक महातुला मे तौल लेते है। इसके अन्तर द्वारा वास्तविक प्रचूषण विदित हो जाता है।

(ख) प्रवेशन

प्रयोगशाला मे तो प्रवेशन, उपचार-पश्चात् काष्ठ को काटकर या फाड़कर देखने मात्र से ही विदित हो जाता है। काष्ठ के अनुप्रस्थ छेद अथवा तिर्यक् छेद से पार्श्वभाग प्रवेशन ('साइड पैनीट्रेशन') विदित होता है, और रेशे की दिशा मे फाड़ने से छोर-भाग प्रवेशन ('एन्ड पैनीट्रेशन') ज्ञात हो जाता है।

वाणिज्य-काष्ठ-उपचार मे ऐसा संभव नही है, क्योकि काष्ठ को काटने या फाड़ने से काष्ठ निरर्थक हो जाता है। इसके लिए एक विशेष यन्त्र, जिसे सवृद्धि-छिद्रामान ('इन्क्रीमेन्ट बोरर') कहते है, प्रयोग किया जाता है। इससे काष्ठ का

एक छोटा-सा डट्टा निकल आता है, जिसके निरीक्षण से काष्ठभाग का परिरक्षी-प्रवेशन ज्ञात हो सकता है। इस प्रकार छिद्रित काष्ठ का उपचारित काष्ठ के डट्टे से फिर भरण किया जाता है। चित्र ७६–७७ में संवृद्धि छिद्रामान दिखाया गया है।



चित्र ७६—**संवृद्धि छिद्रामान (इंक्रीमेंट बोरर)।**

तैलीय परिरक्षी का, जैसे कि क्रियोजोट इत्यादि हैं, प्रवेशन देखने में स्पष्ट होता है, पर जल-विलयन रूपी परिरक्षी को काष्ठ के अन्दर देखना इतना सुस्पष्ट नहीं होता। इसके लिए प्रतिकर्त्ता-रसायन होते हैं, जो परिरक्षी के साथ रासायनिक क्रिया से काष्ठ को अभिरञ्जित कर देते हैं, जिससे कि परिरक्षी की व्यापन-सीमा

की अपेक्षा अधिक होता है और पाद-प्रहार से भी अधिक मात्रा में परिरक्षी बाहर निकल आता है, जिससे वास्तविक प्रचूषण कम रह जाता है। यही कारण है कि रिक्त-कोशा विधा में थोड़े परिरक्षी-प्रचूषण से अधिकाधिक काष्ठ-भाग परिरक्षी से व्याप्त हो जाता है।

प्रयोगशालाओं के परीक्षणों में परिरक्षी की काष्ठ-व्याप्त मात्रा और प्रवेशन-सीमा ज्ञात करना सरल होता है। प्रचूषण के लिए काष्ठ को आरम्भ में और उपचार पश्चात् तौल लिया जाता है, इस तरह तैल का जो अन्तर है वही वास्तविक प्रचूषण होता है। इस प्रचूषण को काष्ठ के आयतन से भाग देने पर, प्रचूषण प्रति इकाई आयतन पर निश्चित किया जाता है। इसका प्रमाप किलोग्राम प्रति घनमीटर अथवा पौड प्रति घनफुट होता है। उपचारित काष्ठ मे रासायनिक विश्लेषण द्वारा भी परिरक्षी-प्रचूषण ज्ञात कर सकते हैं।

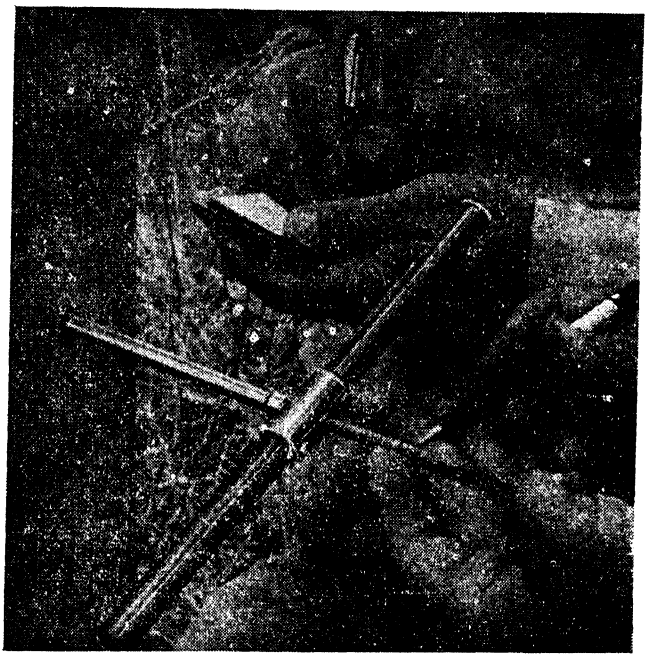
वाणिज्य-काष्ठ-उपचार मे साधन-सयन्त्रो से काष्ठ-प्रचूषण विदित किया जा सकता है। इसको सेवा-कुण्ड मे उपचार-आरम्भ और अन्तिम काल परिरक्षी-तलमान के अन्तर द्वारा आसानी से निकाला जा सकता है। यह वास्तविक प्रचूषण है, पर निपीड-क्रिया-काल मे सेवा-कुण्ड का परिरक्षी-तलमान लेते रहने से सकल प्रचूषण भी ज्ञात कर सकते है। यद्यपि परिरक्षी-कुण्ड के ताप की भिन्नता के कारण शुद्ध प्रचूषण का ज्ञात होना कठिन है, पर इसके लिए एक ही ताप पर अंक-परिवर्तन के लिए सूचियाँ बनी रहती हैं, जिससे कि यथार्थ प्रचूषण प्राप्त हो सके। बहुधा वास्तविक प्रचूषण जानने के लिए काष्ठ-प्रभार को ट्रालियो में भरकर उपचार-आरम्भ और उपरान्त एक महातुला मे तौल लेते हैं। इसके अन्तर द्वारा वास्तविक प्रचूषण विदित हो जाता है।

(ख) प्रवेशन

प्रयोगशाला मे तो प्रवेशन, उपचार-पश्चात् काष्ठ को काटकर या फाड़कर देखने मात्र से ही विदित हो जाता है। काष्ठ के अनुप्रस्थ छेद अथवा तिर्यक् छेद से पार्श्वभाग प्रवेशन ('साइड पैनीट्रेशन') विदित होता है, और रेशे की दिशा में फाड़ने से छोर-भाग प्रवेशन ('एन्ड पैनीट्रेशन') ज्ञात हो जाता है।

वाणिज्य-काष्ठ-उपचार मे ऐसा सभव नही है, क्योकि काष्ठ को काटने या फाड़ने से काष्ठ निरर्थक हो जाता है। इसके लिए एक विशेष यन्त्र, जिसे सवृद्धि-छिद्रामान ('इन्क्रीमेन्ट बोरर') कहते है, प्रयोग किया जाता है। इससे काष्ठ का

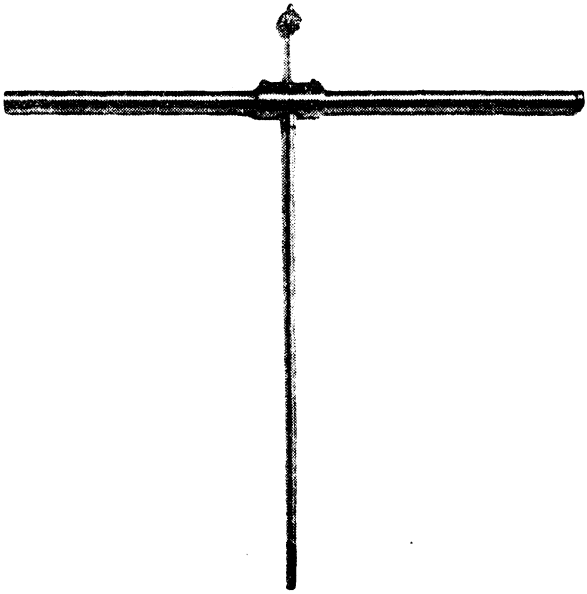
एक छोटा-सा डट्टा निकल आता है, जिसके निरीक्षण से काष्ठभाग का परिरक्षी-प्रवेशन ज्ञात हो सकता है। इस प्रकार छिद्रित काष्ठ का उपचारित काष्ठ के डट्टे से फिर भरण किया जाता है। चित्र ७६–७७ में संवृद्धि छिद्रामान दिखाया गया है।



चित्र ७६—**संवृद्धि छिद्रामान (इंक्रीमेंट बोरर)।**

तैलीय परिरक्षी का, जैसे कि क्रियोजोट इत्यादि हैं, प्रवेशन देखने में स्पष्ट होता है, पर जल-विलयन रूपी परिरक्षी को काष्ठ के अन्दर देखना इतना सुस्पष्ट नहीं होता। इसके लिए प्रतिकर्त्ता-रसायन होते हैं, जो परिरक्षी के साथ रासायनिक क्रिया से काष्ठ को अभिरञ्जित कर देते हैं, जिससे कि परिरक्षी की व्यापन-सीमा

सुस्पष्ट हो जाती है। ऐसे रसायनों की सूची सारणी ११ (परिशिष्ट १) में दी गयी है।



चित्र ७७—संवृद्धि छिद्रामान (इंक्रीमेंट बोरर)

अध्याय ५

काष्ठ-अग्निरोधन

१. काष्ठ का प्राकृतिक अग्निरोधन

काष्ठनाशक जीवाणु के अतिरिक्त काष्ठ को अग्नि से भी पर्याप्त क्षति पहुँचती है। इसका कारण यह है कि काष्ठ में अधिकांश भाग कोषाधु[1] का होता है, और कोषाधु प्रज्ज्वलनशील है। प्राकृतिक दशा में काष्ठ जलने की गति काष्ठ-जाति के अनुसार विभिन्न होती है। यह उसकी संरचना, घनत्व, आर्द्रता, सरन्ध्रता और उसमें प्रवेश्य पदार्थों पर निर्भर है। सारणी १६ (१ ङ) (परिशिष्ट ३) में काष्ठों के प्राकृतिक दशा में उतरते हुए अर्थात् अवरोही क्रमानुसार अग्निरोधी गुणों की सूची दी गयी है। यह निसन्देह सत्य है कि जलने से पहले लकड़ी शुष्क होनी चाहिए; सड़ी हुई लकड़ी, अच्छी लकड़ी की अपेक्षा शीघ्र जल जाती है।

२००° सेन्टीग्रेड पर काष्ठ को, यदि शुष्क भी हो, जलने में पर्याप्त समय चाहिए। २७५° सेन्टीग्रेड पर काष्ठ धीरे-धीरे प्रांगारित होने लगता है और तब अंत में जलने लगता है। ४००° सेन्टीग्रेड पर काष्ठ शीघ्रता से जलने लगता है। बहुधा अग्नि में तापक्रम १०००° सेन्टीग्रेड से भी ऊपर पहुँच जाता है। उस तापक्रम पर काष्ठ का प्राकृतिक अग्निरोधी गुण का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता और सभी जाति के निर्माण-काष्ठ समान रूप से जलने लगते हैं। इस अवस्था में काष्ठों की मोटाई ही अग्नि का नियन्त्रण-कारक होती है, न कि काष्ठ-जाति। भारी अथवा मोटे काष्ठ, जो निर्माण-रचिति ('मिल कन्सट्रकशन') के नाम से प्रसिद्ध है, अग्नि के प्रति सुरक्षित काष्ठ माने गये हैं। कोई भी काष्ठ जिसकी मोटाई १५ सेन्टीमीटर × १५ सेन्टी-मीटर से अधिक होती है अग्नि के प्रति लोहे से भी अधिक सुरक्षित माना गया है। लोहा या इस्पात अग्नि के तापक्रम पर आसानी से मुड़ जाता है और तब भार के कारण मुड़ जाता है। इसके विपरीत अधिक मोटाई की काष्ठ की बल्लियाँ और खम्भे, जिनका प्रयोग किया जाता है, आग लगने पर शीघ्र ही प्रांगारित हो

1 Cellulose.

जाते है। इस प्रकार बाह्य तल पर कोयले का स्तर बनने के कारण काष्ठ की अभि-ज्वाल्यता कम हो जाती है। साथ-साथ गर्मी के कारण काष्ठ की आर्द्रता भी कम हो जाती है। वास्तव में काष्ठ की शक्ति आर्द्रता के कम होने पर बढ़ जाती है। इस प्रकार प्रांगारित होने पर काष्ठ की शक्ति यदि कुछ कम भी हो गयी हो तो उसकी धारण-शक्ति मे आर्द्रता की न्यूनता के कारण कोई कमी नही पड़ती और काष्ठ-सरचना ज्यों की त्यों बनी रहती है।

२. अग्निरोधन सिद्धान्त व अग्निरोधी रसायन

रासायनिक पदार्थो को, जो अग्नि से काष्ठ की रक्षा करते है, तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है। वे इस प्रकार हैं—

(क) वे रसायन (रसद्रव्य) जो अत्यन्त जल-चूष है, अर्थात् वायु से अधिक मात्रा मे आर्द्रता प्रचूषण करनेवाले है। ऐसे रसायन अग्निरोधी होते है, क्योंकि वे अग्नि से गरम होने पर जल-वाष्प देते है, जिसके कारण स्वतः अग्नि बुझ जाती है। इस वर्ग मे जिक क्लोराइड, सोडियम क्लो-राइड इत्यादि लवण है।

(ख) वे रसायन जो अग्नि के संस्पर्श में आकर कार्बन-डाइ-ऑक्साइड, नाइट्रोजन, अमोनिया इत्यादि गैसें देते है, जो अग्नि को सहारा न देकर बुझाने मे समर्थ होती है। ऐसे पदार्थ अमोनियम नाइट्रेट, कैलसियम कार्बोनेट, सोडियम बाइकार्बोनेट इत्यादि है।

(ग) वे रसायन जो काष्ठ में स्फट् ('किस्टल्') का स्तर बना दें या अग्नि से फूलकर, काष्ठ-रन्ध्रों को बन्द करके उनमें वायु-प्रवेश न होने दें। वायु मे ऑक्सिजन रहता है और उसकी अनुपस्थिति में अग्नि प्रज्वलित नही हो सकती। ऐसे रसायन सोडियम टैट्राबोरेट, बोरिक अम्ल, सुहागा, मैग्नीशियम फॉस्फेट इत्यादि है।

इनके अतिरिक्त और भी कुछ रसायन हैं जिनके प्रयोग से काष्ठ को अग्निरोधी बनने मे सफलता प्राप्त हुई है। ये है अमोनियम सल्फेट, अमोनियम क्लोराइड, एलीम्यूनियम सल्फेट, अमोनियम ब्रोमाइड और मौनोमैग्नीशियम फौस्फेट।

यद्यपि पूर्वोक्त रसायन अकेले या मिलकर अग्नि से काष्ठ की रक्षा कर सकते है, पर इनका उपयोग केवल भीतर प्रयोग किये जाने वाले काष्ठो के उपचार के लिए ही किया जा सकता है, क्योकि बाहर ये रसायन वर्षा से धुल जाने के कारण

काष्ठ से अलग हो जाते है। जैसे कि जल-विलयन परिरक्षी को बद्ध करने के लिए सोडियम डाइक्रोमेट काम मे लाते है, उसी प्रकार इन अग्निरोधी रसायनों को भी बद्ध करने के लिए सोडियम डाइक्रोमेट काम मे लाया जा सकता है। इन रसायनों की अग्निरोधी कार्य-साधकता के लिए काष्ठ मे ३ पौड से लेकर १० पौड (शुष्क लवण) प्रति घनफुट, अर्थात् ४८ किलोग्राम से लेकर १६० किलोग्राम (शुष्क लवण) प्रति घनमीटर का प्रचूषण कराना अनिवार्य होता है। यह प्रचूषण काष्ठ-जाति, रसकाष्ठ-मात्रा और अग्निसह राशि पर निर्भर होता है। यदि अग्नि-रोधन के साथ-साथ काष्ठ की जैविक नाशकारकों से प्रतिरक्षा करानी हो, तो इन अग्निरोधी संगठनों मे उपयुक्त जल-विलयन रूपी परिरक्षी का मिश्रण किया जा सकता है। ऐसा मिश्र[1] अग्निरोधी एव सड़नरोधी अथवा अग्निरोधी-स-परिरक्षी सगठन कहा जाता है।

काष्ठपरिरक्षण-संयुक्त अग्निरोधन कार्य को कम खर्चीला बनाने के लिए काष्ठ को पहले परिरक्षी से १ पौड प्रति घनफुट, अथवा १६ किलोग्राम प्रति घनमीटर पर प्रचूषण कराने के पश्चात् एक उच्च सकेन्द्रित अग्निरोधी मिश्र से बाह्य स्तर पर प्रचूषण कराना पर्याप्त होगा। अग्नि की क्रिया बाह्य स्तर से ही शुरू होती है और इस प्रकार सपूर्ण काष्ठ अग्नि और जैविक कारको से सुरक्षित रखा जा सकता है।

देहरादून की वन-अनुसन्धान-शाला ने एक अग्निरोधी-स-परिरक्षी मिश्र का आविष्कार किया है। यह विशेष कर काष्ठ, बॉस, घास, ताड़ के पत्तों और वस्त्र को जैविक नाश-कर्त्ताओ और अग्नि से सुरक्षित करने के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसका सूत्र निम्न प्रकार से है।

बोरिक अम्ल ..	३ भाग तौल में	सोडियम डाइक्रोमेट	६ से ७ भाग तौल में
कॉपर सल्फेट ..	१ ,,	जल	१०० भाग ,,
जिक क्लोराइड ..	५ ,,		

इसमे बोरिक अम्ल और जिक क्लोराइड कीटों और कवको से प्रतिरक्षा के सिवा, अग्नि से भी मुख्यतः रक्षा करते है। कॉपर सल्फेट केवल कवक और दीमक से ही रक्षा के लिए और सोडियम डाइक्रोमेट इन सब परिरक्षियों को बद्ध करने के लिए डाले गये है। इस उपरिलिखित मिश्र से ६०० चीड़ और सैन काष्ठ के स्लीपरों का उपचार उनको अग्निसह एवं परिरक्षित कराने के उद्देश्य से वन-अनुसन्धान-शाला मे रेलवे मत्रालय के अन्तर्गत किया गया है। ऐसे उपचारित स्लीपर पुलों मे और रेलवे-इन्जन टिकाने के स्थानों पर लगाये गये है। इनके परीक्षण अभी चालू है।

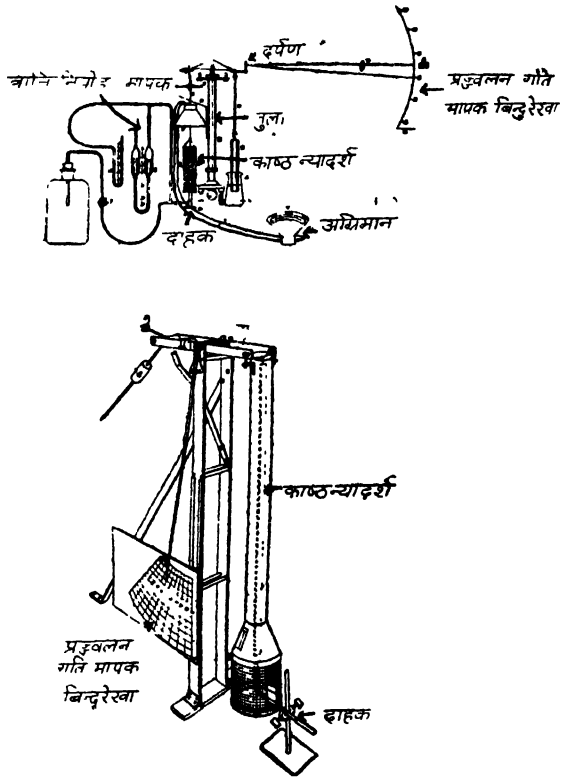
1 Composition.

३. अग्निरोधी गुणों को परखने के साधन

रसायनों के अग्निरोधी गुणों के परीक्षण की विधियाँ इस सिद्धान्त पर आधारित है कि यदि अनुपचारित काष्ठ को साधारण प्रकार से जलाया जाय तो उसमे क्रमानुसार पहले ज्वाला उठने लगती है, फिर उसका तापक्रम बढ़ जाता है और अन्त में उसका भार कम हो जाता है; यहाँ तक कि कुछ दशाओं मे केवल राख ही बनकर रह जाती है। यदि वही काष्ठ उपयुक्त अग्निरोधी रसायनों द्वारा उपचारित किया जाय, तो वह पहले प्रांगारित ही होगा, और यदि उच्च तापक्रम होने पर न्यूनाधिक ज्वाला प्रकट भी होगी, तो वह तत्स्थानीय ही रहेगी तथा अग्नि का स्रोत हटाने पर दहन समाप्त हो जायगा।

पूर्वोक्त तीन लक्षणों पर ही अनुसन्धान-शालाओ ने विभिन्न साधित्रो की अग्निसह गुणों के परीक्षणार्थ कल्पना की है। इनमे से एक अग्नि-नलिका साधित्र अमेरिका और अन्य देशों मे प्रचलित है। इसमे कोई १ मीटर लम्बा और २×१ सेन्टीमीटर मोटा काष्ठ-खण्ड, एक तुला के बाहु से लटकी छेद वाली धातु की चादर से बनी नलिका के मध्य मे बाँधा जाता है। तब एक प्रमापित गैस द्वारा ज्वलित अग्नि उसके नीचे के छोर भाग से ४ मिनट तक लगायी जाती है। यदि साधारण (अनुपचारित) काष्ठ होगा तो तुरन्त अग्नि संपूर्ण काष्ठ में फैल जायगी। उसके साथ ही साथ ताप भी बढ़ता जायगा और शीघ्र ही काष्ठ, कोयला और राख मे परिवर्तित हो जायगा। यदि काष्ठ-खंड का अग्निरोधी उपचार किया गया हो तो अग्निस्रोत को हटाने के पश्चात् काष्ठ-खण्ड प्रज्वलित नही होगा, जिसके फलस्वरूप ताप भी अपेक्षाकृत कम ही रहेगा, और अन्त मे काष्ठ के भार में कमी, अग्निसह गुण का प्रमाप होगी। इसके मापन के लिए तुला के दूसरे बाहु मे एक निर्देशक डंडी होती है जो एक अंकश्रेणी मे लगी रहने से भार मे कमी सूचित कर देती है। इससे पूर्व-भार से प्रतिशत कमी तुरन्त ज्ञात हो सकती है। वन-अनुसन्धान-शाला देहरादून मे इसी सिद्धान्त पर आधारित एक सूक्ष्म साधित्र बनाया गया है, जिसमे छोटे नाप के १०×०.८×०.८ सेन्टीमीटर काष्ठ-खण्ड प्रयुक्त किये गये है। तुला के दूसरे बाहु में, भार में प्रतिशत कमी ज्ञात करने के लिए, एक दर्पण का टुकड़ा लगा रहता है, जिससे एक चाप-रूपी अंकश्रेणी पर प्रकाश-किरण का प्रतिबिम्ब पड़ता है। इसके निर्देशन से भार में कमी का निश्चयन किया जा सकता है। यन्त्र मे एक छोटा वाति-दाहक अग्नि-स्रोत का कार्य करता है। इस विधि से किये गये परीक्षणों से अग्निसह रसायनों की दक्षता, सारणी १७ में दी गयी है।

अग्निरोधी-क्षमता के मापन के परीक्षणार्थ और भी कई भिन्न-भिन्न प्रकार के साधित्रो की रचना की गयी है। कही-कही तो पूर्ण अनुपचारित और उपचारित काष्ठ की संरचना को अग्नि से प्रज्वलित करते है। चित्र ७८ मे ऐसे साधित्र देखिए।



चित्र ७८—अग्निरोधी गुणों के परीक्षणार्थ साधित्र।

४. काष्ठ, बाँस और छादन-घास का उपचार

जैसा कि ऊपर प्रकरण २ मे बतलाया गया है, अग्निरोधन कार्य की सफलता के लिए काष्ठ मे अग्निरोधी रसायनों की प्रचूषण-मात्रा ४८ किलोग्राम से १६० किलोग्राम प्रति घनमीटर (३ पौड से १० पौड प्रति घनफुट) तक होनी चाहिए।

सारणी—१७

वन-अनुसन्धान-शाला में किये गये परीक्षणों में अग्निरोधी रसायनों की दक्षता।

क्रमांक	प्रयुक्त किया गया काष्ठ (जाति)	प्रयुक्त रासायनिक सगठन	प्रचूषण (शुष्क लवण)		उपचार पूर्व अग्निरोधन (अ)	उपचार पश्चात् अग्नि-रोधन (ब)	अग्निरोधी उपचार दक्षता (ब)/(अ)	विशेष-कथन
			पौंड प्रति घ० फु०	किलोग्राम प्रति घ० मी०				
१	चीड़	एमोनियम फौस्फेट (डाइ-बेसिक)	१ २	१९ २	११ ०३	८९ ·२	८ ०	अग्निरोधन अर्हा, (अ) और (ब)
२	आम	,,	० ·८५	१३ ·६	२९ ·०४	८२ ·९	३ ·०	मे यह सूचित
३	चीड	सुहागा ('बौरैक्स')	१ १	१७ ६	११ ०३	७९ ·९	७ ·०	करती है कि
४	आम	,,	० ५१	८ ·२	२९ ०४	६९ ·०	२ ·५	अग्नि-नालिका
५	चीड	जिक फौस्फेट (मौनोबेसिक)	१ ४१	२२ ६	११ ·०३	८१ ·२	७ ·५	विधि से काष्ठ
६	सीमल	,,	१ ५३	२४ ·५	१३ ६५	७५ ·३	५ ·५	प्रादर्शों का
७	आम	,,	१ २	१९ २	२९ ०४	६२ ·१	२ ·०	अग्निपरीक्षण के

८	सीमल	अग्निरोधी-स-परिरक्षी सगठन (वन अनुसन्धान-शाला मे आविष्कृत)	६ ·२४	९९ ·८	१३ ६५	७४ ४	५ ५	उपरान्त कितना प्रतिशत भार था यह अर्हा प्रत्येक दशा मे ६ प्रादर्शोका माध्य है।
९	सीमल	,,	२ ७८	४४ ·५	१३ ६५	५६ ·६	४ ०	
१०	चीड	,,	७ ·९६	१२७ ४	११ ०३	८० ८	७ ०	
११	चीड़	,,	२ ७९	४४ ६	११ ०३	६७ ·५	६ ·०	
			ग्राम प्रति वर्ग इच					
१२	सीमल	अग्निरोधी लेप (वन अनुसन्धान शाला मे आविष्कृत)	० ०	३१	११ ६५	४९ ·६	४ ·०	
१३	चीड़	,,	० ०	३७	११ ०३	४८ ·५	४ ५	
१४	चीड़	एक एकस्वीकृत अग्निरोधी लेप	—		११ ०३	५७ ·०	५ ·०	
१५	आम	,,	—		१३ ६५	५८ ·३	४ ·०	

इसी प्रकार बाँसों और छादन-घासों में भी पर्याप्त प्रचूषण की आवश्यकता पड़ती है। वन-अनुसन्धान-शाला के परीक्षणों से पता चला है कि प्रति दस पौंड (४.५३ किलोग्राम) नानल घास और प्रति चार ताड़ के पत्तों के लिए १ पौंड (०.४५ किलोग्राम), वन-अनुसन्धान-शाला में आविष्कृत अग्निरोधी-स-परिरक्षी शुष्क रसायन की आवश्यकता पड़ती है। इस मात्रा में काष्ठ अथवा बाँसों में प्रचूषण कराने के लिए वही निपीड संयन्त्र उपयुक्त हैं जो काष्ठ-परिरक्षण निपीड़ क्रिया में प्रयुक्त किये जाते हैं। छादन घास व ताड़ की पत्तियों के लिए मन्द-निपीड संयन्त्र का प्रयोग किया जा सकता है। इनके रेखाचित्र विभिन्न काष्ठ-उपचार संयन्त्रों के अध्याय में दिये गये हैं। अग्निरोधी एवं परिरक्षी द्वारा उपचारित की गयी छादन घास इत्यादि की संरचना, जो वन-अनुसन्धान-शाला में सेवा-परीक्षणार्थ लगायी गयी हैं, चित्र ७९ में दिखायी गयी है।



चित्र ७९—सेवापरीक्षणार्थ लगायी गयी उपचारित छादन-घास।

उपचार क्रिया के लिए पूर्ण-कोशा विधा का ही प्रयोग करना उचित होगा, क्योंकि रिक्तकोशा विधा से पर्याप्त प्रचूषण कराना सम्भव नहीं हो सकता। उपचार-पूर्व काष्ठ, बाँस और छादन घास को १२–१५ प्रतिशत आर्द्रता तक सुखा लेना चाहिए और उपचार पश्चात् भी इनको छतों के अन्दर ही कुछ समय तक सुखा लेना अनिवार्य है। इससे रसायनों को काष्ठ-पदार्थ (या कोषाधु) में बद्ध होने का अवकाश मिल जाता है।

निपीड-क्रिया द्वारा प्रयोग किये जानेवाले अग्निरोधी रसायनों के नाम नीचे दिये गये हैं। इनका अभीष्ट प्रचूषण कराने के अनुसार ही जल-विलयन में संकेन्द्रण किया जाता है।

(क) **अन्दर प्रयोग के लिए**

(अ) जिंक क्लोराइड

(आ) अमोनियम फॉस्फेट (मोनोबेसिक)

(इ) अमोनियम बोरेट और

(ई) अमोनियम सल्फेट

(ख) बाहर खुले में प्रयोग के लिए

(अ) जिक क्लोराइड ५४ भाग और अमोनियम फॉस्फेट ४६ भाग

(आ) क्रोमेटेड जिक क्लोराइड

(इ) मैग्नीशियम आर्सिनेट

(ई) मैग्नीशियम पाइरोफॉस्फेट

(उ) वन-अनुसन्धान-शाला का आविष्कृत अग्निरोधी-स-परिरक्षी मिश्र

वन-अनुसन्धान-शाला मे कुछ अग्निरोधी लेपों का भी आविष्कार हुआ है। इनमे कुछ निरर्थक खनिज पदार्थों को, जैसे कि माइका और एसबस्टौस क्षोद पदार्थ हैं, सम्मिलित किया गया है। ये सिनेमा और गृहों की छतों मे, जहाँ आग लगने का भय रहता है, लेपन के लिए उपयुक्त है। इसका सूत्र इस प्रकार है—

राख	..	२५ भाग तौल मे
माइका पाउडर	..	२५ ,,
सुहागा	..	१५ ,,
एसबस्टौस पाउडर	..	१० ,,
जिक ऑक्साइड	..	१० ,,
इमली गुठली का क्षोद	..	१० ,,
गोद (गम एरेबिक)	..	५ ,,

दीवारो मे लेप करने के लिए इसमे चूना और सीमेंट बन्धन के हेतु मिलाया जा सकता है।

यदि बाहर प्रयोग करना हो तो बन्धक के रूप मे कोलतार, डामर या संश्लिष्ट लीसा मिलाकर लेप करना उपयुक्त होगा।

निर्देश सूची

(१घ) पुरुषोत्तम, ए० ; पांडे, जे० एन० ; यादव, वाई० सी० ; भारत मे काष्ठ-परिरक्षण, इन्डियन फौरेस्ट बुलैटिन १६८, १९५३, पृष्ठ १९

(१ङ) तत्रैव, पृष्ठ .. ३३

(३क)—काष्ठ प्रचूषक, और परिरक्षक सस्था की पत्रिका ('जर्नल औफ दी टिम्बर ड्रायर्स एन्ड प्रीजरवर्स एसोसियेशन् ऑफ इन्डिया'), जनवरी १९५८, पृष्ठ .. ३०

(४ङ) हन्ट जी० एम० ; गैरेट, जी० ए० ; काष्ठ परिरक्षण ('वुड प्रीजरवेशन') मैकग्रौहिल बुक कम्पनी, इक, न्यूयौर्क (यू० एस० ए०), १९५३, पृष्ठ ४३

(४च) तत्रैव १७२

(४छ) तत्रैव .. १९१

(४ज) तत्रैव .. १७७

(४झ) तत्रैव . १८६

(४ञ) तत्रैव . २१५

(४ट) तत्रैव .. २४२

(५झ) ब्रोजी भान ग्रोईनऊ, एच० ; रीशन, एच०, डब्ल्यू०, एल० ; भान डन् वर्ग, जे० ; पिछले ५० वर्षो मे काष्ठ परिरक्षण ('वुड प्रीजर्वेशन डचुरिग दी लास्ट फिफ्टी इयर्स'), ए० डब्ल्यू०, सीथौप्स् यूइटगीभर्समाशापिज, एन० भी०, लीडन (हौलैन्ड), १९५२, पृष्ठ ४१

(८क) कामेशम, एस०, 'भारतीय रेलवे मे सन् १९११ से १९१६ तक परीक्षणार्थ लगाये गये उपचारित स्लीपरो के परिणाम', इन्डियन फौरेस्ट बुलैटिन ८५, १९३४, पृष्ठ . १४से१९

(८ख) तत्रैव .. २४–२५

(९) पुरुषोत्तम, ए० ; तेवाड़ी, एम० सी० ; 'एक साधारण विधि, कॉपर और जिक परिरक्षियो का चीड़ लीसा से बनाने पर प्रारम्भिक टिप्पण', 'इन्डियन फौरेस्टर' (सितम्बर १९५४), पृष्ठ ५६०–५६८

(१०क) नारायणमूर्ति, डी०, 'भारत में प्रयोग करनेवालों के लिए काष्ठ परिरक्षण पर एक सूक्ष्म टिप्पण', इन्डियन फौरेस्ट बुलैटिन ११०, १९५१, पृष्ठ १८–२१

भाग ४

अध्याय १

उपचार अथवा साधन संयन्त्र

काष्ठ के परिरक्षोपचार के लिए विभिन्न प्रकार के संयन्त्रों की आवश्यकता होती है। एक ओर तो साधारण कम व्ययवाले संयन्त्र, कूँची, पिचकारी, इत्यादि हैं, जो क्रमशः लेपन और शीकरन के काम आते हैं, तथा दूसरी ओर विस्तृत और जटिल संयन्त्र हैं, जैसे कि विशाल निपीड-रम्भ जिनके साथ निपीड-क्रिया के लिए, दाब और शून्यक पम्प और अन्य श्रम बचाने की मशीनें हैं जिन्हें स्थापित करने में लाखों रुपयों की आवश्यकता पड़ती है। कुछ ऐसे भी हैं जो इन दोनों तरह के संयन्त्रों के मध्यवर्ती हैं, अर्थात् न तो अति साधारण और न अत्यन्त जटिल। इनके लिए साधारण व्यय और कुशलता की आवश्यकता होती है। यह सब उपचार्य काष्ठ की मात्रा और उपयोग पर आधारित हैं।

१. लेपन और शीकरन उपचार-संयन्त्र

जहाँ पर थोड़ी मात्रा में काष्ठ का उपचार करना है, वहाँ साधारण कूँची का प्रयोग किया जा सकता है। यह साधारण छोटे या लम्बे बेंन्ट ('हैन्डल') की, जो सुविधाजनक हो, बनायी जा सकती है। इसके लिए एक छोटे या बड़े पात्र की भी आवश्यकता होती है जिसमें परिरक्षी रख सकें। तैलीय परिरक्षी को गरम करने के लिए स्टोव आदि भी आवश्यक हैं। आग लगने के भय से बचाने के लिए बिजली के तापक का भी प्रयोग किया जा सकता है। जहाँ बॉयलर हो, वहाँ जलवाष्प की नलिका से भी गरम कर सकते हैं। कूँची के बाल तार से बंधे होने चाहिए न कि रबड़ से, क्योंकि क्रियोजोट से रबड़ गल जाता है।

शीकरन के लिए हल्की और इधर-उधर ले जाने योग्य पिचकारी उपयुक्त है। इसको हाथ से या पम्प से चला सकते हैं। यदि इसकी डंडी लम्बी हो तो अति उत्तम होगा, क्योंकि कार्यकर्त्ता को किसी प्रकार की हानि पहुँचने की सम्भावना नहीं रहेगी। इससे कार्य करने में कार्यकर्त्ता को गैसमास्क का प्रयोग करना चाहिए।

२. डूबन और चूषण उपचार-संयन्त्र।

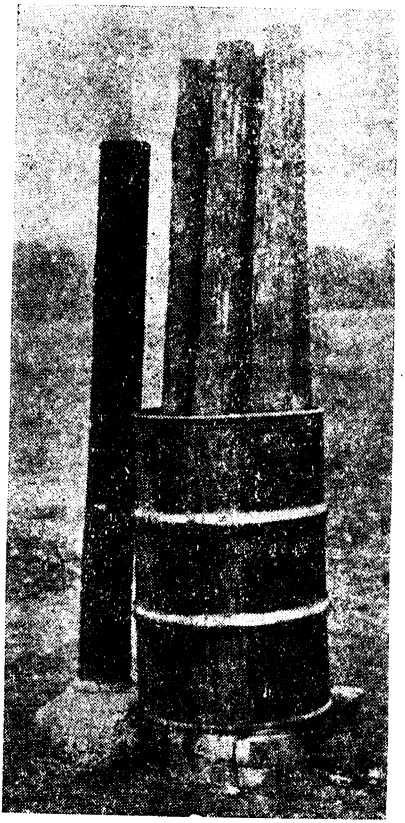
डूबन और चूषण उपचार के लिए कुण्ड इतने सबल हो कि वे काष्ठ-भार सभालने के लिए समर्थ हो सके। कुण्ड के जोड भी ऐसे दृढ हो कि परिरक्षी के चूने की सम्भावना न हो। ये कुण्ड उन पदार्थो के बने हो जिन पर परिरक्षी की सक्षरण क्रिया न हो सके। तैलीय परिरक्षी के लिए इस्पात-चादर के बने कुण्ड उपयुक्त है, पर कॉपर सल्फेट (नीला थोथा), या मरक्यूरिक क्लोराइड के लिए धातु के, विशेष कर लोहे के, कुण्ड का उपयोग नही किया जा सकता। इसके लिए काष्ठ या सीमेट-कक्रीट की टकियों का ही प्रयोग उचित है। बोरिक अम्ल के विलयन को ताँबे के पात्रो मे ही सग्रह किया जा सकता है, और इससे उपचार के लिए यदि लोह-कुण्ड का प्रयोग किया जाय तो उसके ऊपर ताम्र-चादर का अस्तर देना आवश्यक होगा।

काष्ठ की उपचार-क्रिया मे उसे पूर्णतया परिरक्षी-विलयन मे डुबो कर रखने के साधन होने चाहिए; यदि थोडी मात्रा मे काष्ठ-उपचार कराना हो तो इसका प्रबन्ध सरलता से काष्ठ के ऊपर भारी वस्तु रख कर अथवा नीचे बाँध कर हो सकता है, परन्तु व्यावसायिक काष्ठ-उपचार के लिए, विशेष सयन्त्रो की आवश्यकता होती है। काष्ठ-बोझ को भरने और उतारने के लिए हॉइस्ट या क्रेन होते है। कही-कही एक और कुण्ड भी रखते है,जिसमे उपचार पश्चात् परिरक्षी को प्रभार-कुण्ड से पम्प द्वारा वापस लिया जाता है, और दूसरा काष्ठ-प्रभार भरने पर पुन. उपचार कुड मे डाल देते है। इससे बड़ी सुविधा रहती है। कुण्ड मे एक ढलवाँ मञ्च भी होना चाहिए जिसपर उपचार-पश्चात् काष्ठ को थोडी देर तक रखने से काष्ठ से टपका हुआ परिरक्षी एकत्रित किया जा सके। यदि गरम परिरक्षी का चूषण कराना हो, तो परिरक्षी को गरम करने के साधन भी होने चाहिए। यह अगले प्रकरण मे दिये गये है।

३. तापन और शीतन उपचार-संयन्त्र (खुला कुण्ड)

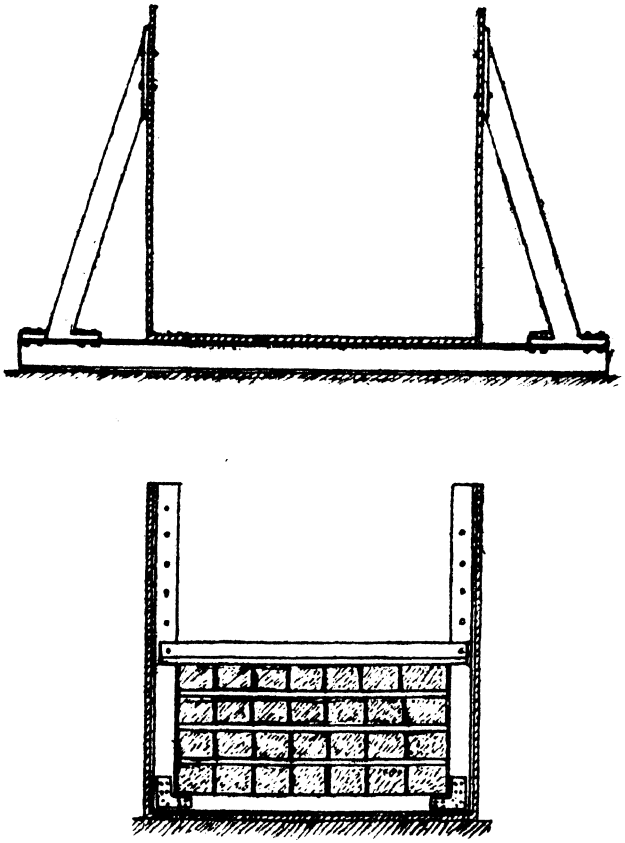
इस क्रिया से उपचार करने मे वही संयन्त्र काम मे लाते है जो डूबन और चूषण क्रिया मे प्रयुक्त किये जाते है। इनमे केवल इतना ही भेद है कि यहाँ परिरक्षी को गरम और ठडा करने के साधन हो। बाड़ खम्भ के मुंडछोर उपचार के लिए एक ड्रम-नुमा सरलतम कुड बनाया जा सकता है, जो ५० गैलन ड्रम के एक छोर भाग को काटने से बनाया गया हो। इसको एक चूल्हे के ऊपर रख कर गरम कर सकते है। यदि यह ड्रम छोटा हो तो उसी के ऊपर एक दूसरा ड्रम दोनो छोरों से काट कर जोड़ दिया जा सकता है। तापन-क्रिया में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है जिससे कि

तैल के उबलने पर आग लगने का भय न रहे। उपयुक्त समय तक तापन और शीतन क्रिया के पश्चात् शेष काष्ठ खम्भ भाग को गरम क्रियोजोट-इन्धन तैल (५० : ५०) मिश्र से लेपन किया जाता है। इससे खम्भ का भाग जो जमीन में गड़ा हुआ होता है, प्रचूषण से भली प्रकार सुरक्षित हो जाता है और अन्य भाग जो भूमि के ऊपर है वहाँ तैल से लेपन करना ही पर्याप्त होगा। यदि यह कुण्ड दृढ़-इस्पात-चादरों के तथा बड़े आकार के बने हों, तो बड़े खम्भों का उपचार भी सरलता से किया जा सकता है। इस संयन्त्र में क्रियोजोट-इन्धन तैल (५० : ५०) का प्रयोग उपयुक्त होता है। शीतन करने में या तो उसी कुण्ड के नीचे से अग्नि हटा दी जाती है या खम्भ को गरम करने के पश्चात् तुरन्त ही एक दूसरे ड्रम में रखे हुए ठंडे तैल में डाल देते हैं। जहाँ बॉयलर से जल-वाष्प आने की सुविधा हो, वहाँ वाष्प-नलिकाओं से भी तापन किया जा सकता है। बिजली के तापन-यन्त्र भी सुविधाजनक होते हैं, पर ये साधन सभी स्थानों में प्राप्त नहीं हो सकते, क्योंकि वे बिजली के उपलब्ध होने पर ही निर्भर रहते हैं। चित्र ८० में यह उपचार-विधि दिखलायी गयी है।



चित्र ८०—खंभ मुंडछोर उपचार-संयन्त्र।

काष्ठ के संपूर्ण भाग का तापन और शीतन विधि से उपचार के लिए बड़े और दृढ़ कुण्डों की आवश्यकता होती है। ये बहुधा आयताकार होते हैं और इनकी लम्बाई, चौड़ाई या गहराई काष्ठों के आकार या नाप पर निर्भर है। इनके तल पर गरम

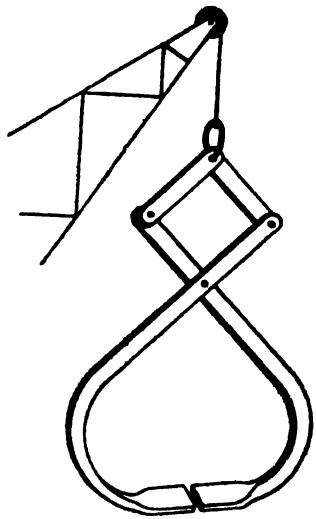


चित्र ८१—तापन और शीतन का आयताकार खुला कुंड।

करने के लिए बहुधा वाष्प-नलिकाएँ होती हैं, जिनके ऊपर काष्ठ-प्रभार की ठोकर लगने से बचाव के लिए लकड़ी के बत्ते लगे रहते हैं। इस कुण्ड के समीप नीचे ही एक

संग्रह कुण्ड रहता है, जिसमे उपचार-कुण्ड से तैल खाली कर संग्रह किया जाता है, और फिर से पम्पो द्वारा उपचार-कुण्ड मे लिया जाता है। यदि उपचार-कुण्ड एक ही हो तो तापन और शीतन मे एक संपूर्ण दिन लगेगा। यदि शीतन के लिए एक और कुण्ड शीत परिरक्षी से भरा हो तो इस क्रिया में कम समय लगेगा, अतः १ दिन में २ या ३ काष्ठप्रभारों का उपचार किया जा सकता है। उपचार-कुण्ड के ऊपर ढकना लगाना हितकारी होगा, क्योंकि इससे तैल का वाष्प द्वारा उडना कुछ सीमा तक बचाया जा सकता है। चित्र ८१ में आयताकार टकियाँ दिखायी गयी है।

एक सुसज्जित तापन और शीतन उपचार-सयन्त्र मे और भी कई नाना प्रकार की मशीने, उपकरण और साधन होते है। काष्ठ के सग्रह और वायु-संशोपण के लिए एक छोटा या बड़ा प्रांगण होता है जिसमे वल्क-छीलन या भार उठाने के यन्त्र, सग्रहालय, छादक, आरे, इत्यादि स्थापित रहते है। परिरक्षी को खीचने के पम्प और तापक्रम ज्ञात करने के लिए तापमान-अभिलेखक भी होते है। इसके अतिरिक्त काष्ठ-प्रभार तोलने के लिए एक पट्टरूपी महातुला और सामान ढोने के लिए ट्रैक्टर, क्रेन, और कॉटों ('हुक') की भी आवश्यकता पड़ती है। चित्र ८२ मे खम्भों को क्रेन द्वारा उठाने के हुक का रेखाचित्र दिया है। एक साधारण तापन और शीतन उपचार-संयन्त्र की विशिष्ट सारणी १८ (परिशिष्ट ४) मे दी गयी है।



चित्र ८२—**काष्ठ खंभ उठाने का हुक।**

४. निपीड-उपचार-संयन्त्र

निपीड-उपचार-संयन्त्र में मुख्य भाग रम्भ होता है, जिसमे निपीड-क्रिया द्वारा परिरक्षी से काष्ठ-उपचार किया जाता है। इसके अतिरिक्त और भी सहायक यन्त्र होते हैं, जैसे कि दाब और शून्यक पम्प; सेवा और संग्रह कुण्ड; दाब, शून्यक और तापमान लेखक; नलिकाएँ; वाल्व (कपाट); वाष्पित्र ('बॉयलर'); छीलन,

छिद्रण, काटन, भेदन, और महातुला मशीने; ट्रौलीलाइन और ठेले; काष्ठ-सशोपण और सग्रह-प्रांगण; कार्यालय और सग्रहालय; प्रयोगशाला; इत्यादि-इत्यादि। निपीड-क्रिया मे उपचार-रम्भ ही इस संयन्त्र का केन्द्रीभूत भाग है और इसी पर बल दिया जाता है। निपीड उपचार-सयन्त्र का माप रम्भ के परिमाण पर ही आश्रित है। इसका और अन्य सहायक यन्त्रों का पृथक्-पृथक् वर्णन नीचे दिया गया है।

(क) उपचार-रम्भ

उपचार-रम्भ, पीडित इस्पात चादरो (३ सेन्टीमीटर से लेकर ४५ सेन्टीमीटर तक मोटी) को मोड़ने और धातु पिघला कर या रिवट ठुकाई द्वारा जोड़ कर बनाये जाते है। छोटे से छोटा रम्भ ०.५ मीटर व्यास का और ६ मीटर तक लम्बा होता है, यद्यपि भारत मे इस समय वाणिज्य उपचार के लिए २.५ मीटर व्यास के और २५ मीटर लम्बे रम्भ भी है। अमेरिका मे सबसे बड़ा उपचार-रम्भ ३.५ मीटर व्यास का और ५० मीटर लम्बा है। वन-अनुसन्धान-शाला, देहरादून मे परीक्षणार्थ, छोटे ०.५ मीटर व्यास और ९ मीटर लम्बाई से लेकर ०.९ मीटर व्यास और १२ मीटर लम्बाई तक के है।

बड़े व्यास का उपचार रम्भ होने से कई लाभ है। प्रथम तो यह है कि बड़े व्यास वाले रम्भ मे मापक रेल या ट्राम लाइन को बिछा देना सम्भव है, जिससे कि उपचार्य काष्ठ-प्रभार को बड़े ट्रौली अथवा रेल-ठेलों में रम्भ को अन्दर ले जाने और खाली करने की सुविधा हो। अमेरिका मे यह मत है कि रम्भ मे प्रमाप रेल-लाइन को लगाने के लिए न्यूनतम व्यास २.२८ मीटर (७५ फुट) होना चाहिए। २.४४ मीटर (८ फुट) व्यास का वाणिज्य रम्भ, काष्ठ-उपचार के लिए एक कम खर्चीला आकार गिना जाता है, यद्यपि अन्त मे सकल उपचार्य काष्ठ-मात्रा, उसकी लम्बाई पर निर्भर रहती है। सारणी १९ में भिन्न-भिन्न व्यास के रम्भ की काष्ठ-उपचार्यधारिता अथवा समाई का विवरण दिया गया है।

उक्त सारणी से स्पष्ट है कि जितना ही रम्भ का व्यास कम होता है उतनी ही उसकी प्रतिशत धारण-क्षमता कम हो जाती है, और व्यास की कमी के अनुपात के तदनुरूप उसकी लम्बाई भी अधिक रखनी पड़ती है। अतः बाणिज्योपचार के लिए बड़े व्यास के ही रम्भ सुविधाजनक होते है। जहाँ थोड़ी ही मात्रा मे काष्ठ-उपचार करना हो वहाँ छोटे ही व्यास के रम्भ उपयुक्त होते है। इसलिए वार्षिक उपचार्य काष्ठ मात्रा ज्ञात होने पर ही रम्भ के व्यास का निर्धारण किया जाता है।

रम्भ की उपचार्य क्षमता इतनी भी अधिक न हो कि इस व्यवसाय मे लगे कार्य-कर्त्ताओ को निरर्थक बैठना पड़े।

सारणी–१९

विभिन्न व्यास के रम्भों की काष्ठ-उपचार्य धारिता।

रम्भ का व्यास	२.९४ मीटर (९ फुट)	२.४४ मीटर (८ फुट)	२.२८ मीटर (७.५ फुट)	२.१३ मीटर (७ फुट)	१.८६ मीटर (६.२ फुट)	१.५२ मीटर (५ फुट)	१.२२ मीटर (४ फुट)
स्लीपर— रम्भ के क्षेत्रफल के प्रतिशत भाग में।	५७.४५	५४.९२	५२.८०	५३.५५	५०.६५	४१.६६	३४.०५
कड़ियाँ और तख्ते— रम्भ के क्षेत्रफल के प्रति शत भाग मे।	५१.३४	४६.४२	४५.७७	४८.५०	४५.३२	३९.६७	३०.९५
खम्भ — रम्भ के क्षेत्रफल के प्रति शत भाग मे।	४६.९१	४५.३१	४२.६७	४४.९०	४५.७७	३६.०६	३१.२६

रम्भ का निर्माण ऐसा हो कि वह अधिकतम २५० पौड प्रति वर्ग इंच (१७.५८ किलोग्राम प्रति वर्ग सेन्टीमीटर) तक दबाव ग्रहण कर सके, और २०० पौड प्रति वर्ग इंच (१४.०६ किलोग्राम प्रति वर्ग सेन्टीमीटर) कर्म-योज्य निपीड सहन कर सके। निपीड-उपचार मे परिरक्षी के दबाव की सीमा बहुधा १५०–१८० पौड प्रति वर्ग इंच, अर्थात् १०.५५–१२.६५ किलोग्राम प्रति वर्ग सेन्टीमीटर तक होती है, अतः रम्भ मे इससे कुछ अधिक दबाव सहन करने की शक्ति होनी चाहिए।

गरम और ठंडे परिरक्षी का प्रयोग होने के कारण, रम्भ इस प्रकार स्थित किया जाता है कि उसके प्रसार और संकुचन में रुकावट न पड़े। इसके लिए विशेष प्रकार के चाप-आधार बने रहते है।

रम्भ के एक या दोनो सिरों पर द्वार होते है। इनको रम्भ पर दृढ़ता से बन्द करने के लिए, इनकी परिधि पर जिह्वा ('टग') और रम्भ की परिधि पर नाली ('ग्रूव्') होती है जिससे कि नाली मे जिह्वा बैठा कर दृढ़ता से बोल्टों द्वारा द्वार को बन्द करने का प्रबन्ध हो सके। ऐसा करने पर उच्च दबाव मे परिरक्षी के रम्भ मे से चूने की सम्भावना नही रहती। रम्भ के सिरे पर द्वार प्रबल कब्जों या डंडों से लटके रहते है। बोल्टों की संख्या भी रम्भ के व्यास के अनुसार होती है। आधुनिक रम्भो मे द्वार बन्द करने का प्रबन्ध मशीनों द्वारा होता है। ऐसे द्वारों को शीघ्र बन्द होने वाले द्वार कहते है। पर अधिकतर बन्द करने की प्रथा रैञ्च द्वारा हाथ से ही करने की है। (चित्र संख्या ६५ देखिए)।

रम्भ के अन्दर रक्षक रेल ('गार्ड रेल') होते है, जो ट्रौली और रेल-ठेलों को पटरी से नही उतरने देते। यदि ऐसा प्रबन्ध न हो तो निपीड-क्रिया मे ठेलों के पटरियो से उतरने की सम्भावना रहती है, क्योकि परिरक्षी-विलयन मे काष्ठ तैरने लगता है। ये रक्षक रेल रम्भ के किनारे लगे रहते है। ट्रौलियों में कर्ण-जैसे मोटे इस्पात की पत्तियाँ होती है जो रक्षक रेल के नीचे दबी रहती है। ऐसा होने पर ढेले ऊपर को नही उठ सकते, अतः ठेले सदा पटरी पर ही रहेगे।

तापन के लिए रम्भ के नीचे भाग मे, अर्थात् रेलो के नीचे, वाष्प नलिकाएँ रहती है। ये नलिकाएँ 'यू' (U) आकार की होती है, और इनकी ४ या ५ पंक्तियाँ रम्भ के व्यास के अनुसार होती है। इन नलिकाओ द्वारा तैलीय परिरक्षी को गरम करते है। काष्ठ के वाष्पीकरण के लिए भी रम्भ मे सजीव-वाष्प की पृथक् नलिकाएँ रहती है जिनको खोलने या बन्द करने का प्रबन्ध रहता है। हरे काष्ठ के वाष्प-संशोषण के लिए भी निपीड-रम्भ इस क्रिया के पात्र का काम करता है। कही-कहीं रम्भ के ऊपरी भाग के एक सिरे मे एक इस्पात का गुम्बज ('डोम') सा बना रहता है जिसका योग संघनक ('कन्डैन्सर') से रहता है। वाष्पीकरण अथवा बोल्टन-जैसी समुचितोपचार विधाओं मे यह गुम्बज बहुत उपयोगी होता है। अति गरम होने पर जब तैल का फेन बनने लगता है तो यह इस गुम्बज मे समा जाता है और संघनक में भरने नहीं पाता। ऐसा होने पर शून्यक पम्प का भी बचाव हो जाता है। वाष्प-नलिका के अन्त भाग में वाष्पजलस्रावी ('स्टीमट्रैप') का होना भी आवश्यक है।

(ख) सेवा और संग्रह-कुण्ड

उपचार-रम्भ का एक मुख्य अंग सेवाकुण्ड होता है। इस कुण्ड मे से परिरक्षी को पम्पों द्वारा रम्भ मे भेजा जाता है, और निपीड-क्रिया के अन्तर्गत दाब-पम्प भी इसी कुण्ड से परिरक्षी को खीचकर अनिवर्ती कपाट ('नौन-रिटर्न वाल्व') द्वारा रम्भ मे भेजता है। उपचार समाप्त होने पर रम्भ को खाली करने के पश्चात् परिरक्षी को इसी मे लौटाया जाता है। इस कुण्ड में एक अकित नाप होता है, जिसको उपचार-पूर्व और अन्त में पढ़ने पर काष्ठ मे परिरक्षी-प्रचूपण की मात्रा ज्ञात हो सकती है। इसी के द्वारा निपीड-काल मे भी सकल ('ग्रौस') प्रचूषण का अनुमान लगाया जा सकता है। इसका ज्ञान कराने के लिए तैरनेवाले यन्त्र रहते है, जिनसे परिरक्षी का तल-मान किसी काल में भी निकाला जा सकता है।

कभी-कभी निपीड-क्रिया मे परिरक्षी को सेवाकुण्ड से न लेकर एक विशेष दाब-कुण्ड द्वारा उसे भेजा जाता है। इस दाबकुण्ड का आयतन उमसे कुछ अधिक होता है जितना कि एक काष्ठप्रभार प्रचूपण कर ले और इसी के परिरक्षीतल को पढ़ने से प्रचूषण की मात्रा ज्ञात की जा सकती है। सेवाकुण्ड मे परिरक्षी को गरम करने के लिए वाष्प-नलिकाएँ होती है।

सेवाकुण्ड के अतिरिक्त अन्य कई संग्रहकुण्ड भी होते है, जिनमे परिरक्षी संचित किया जाता है। जिन संयन्त्रों मे तैलरूपी परिरक्षी का प्रयोग किया जाता है, वहाँ ऐसे बडे कुण्डों की आवश्यकता होती है। इनके तल मे गरम करने के साधन भी होते है। इनमें से एक दिन के उपचार के लिए जितने परिरक्षी की आवश्यकता हो उतना सेवा-कुण्ड में लिया जाता है। वाणिज्य-उपचार संयन्त्रों में कई महीनों के प्रयोग के लिए परिरक्षी का संग्रह करना आवश्यक होता है। ये कुण्ड परस्पर एक-दूसरे से पम्पों द्वारा संबद्ध रहते हैं।

जहाँ जलविलयन रूपी परिरक्षी, जैसे कि एस्क्यू, जिक क्लोराइड इत्यादि प्रयोग किये जाते हों, वहाँ इतने बड़े संग्रह-कुण्डों की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसके स्थान पर एक मिश्रण-कुण्ड रहता है, जिसमे परिरक्षी का विलयन बनाया जाता है और तत्पश्चात् पुनः सेवाकुण्ड में उपचार के लिए उसे भेजते रहते हैं।

(ग) पम्प इत्यादि

छोटे परिमाण के काष्ठ-परिरक्षण संयन्त्र मे एक वायु-संपीडक ('एयर कम्प्रेसर') और एक जल-निपीडक ('हाइड्रौलिक पम्प') पर्याप्त होता है। वायु-संपीडक से

वायु-दाब दिया जाता है और उसके उलटे संयोजन से शून्यक भी किया जा सकता है। जलनिपीडक से परिरक्षी-दबाव देते है। ये पम्प बिजली की मोटर द्वारा, जलवाष्प, या मृत्तैल-इन्जन से, जैसी सुविधा हो उसी के अनुसार चलाये जा सकते है।

बडे परिमाण के सयन्त्र मे इन दोनो पम्पो के अतिरिक्त केन्द्रापग उदञ्च ('सैन्ट्रीफ्यूगल पम्प') भी होते है, जिनसे परिरक्षी को एक कुंड से दूसरे कुड मे, अथवा कुड से रंभ मे भरने का कार्य किया जाता है। केन्द्रापग उदञ्च से कभी-कभी मद परिरक्षी-दबाव भी दिया जाता है।

यदि उपचार-रम्भ की संख्या एक से अधिक हो तो प्रत्येक रम्भ के साथ एक-एक जल-निपीडक भी होना चाहिए, जिससे उपचार-कार्य स्वतत्र और सुचारु रूप से चलता रहे।

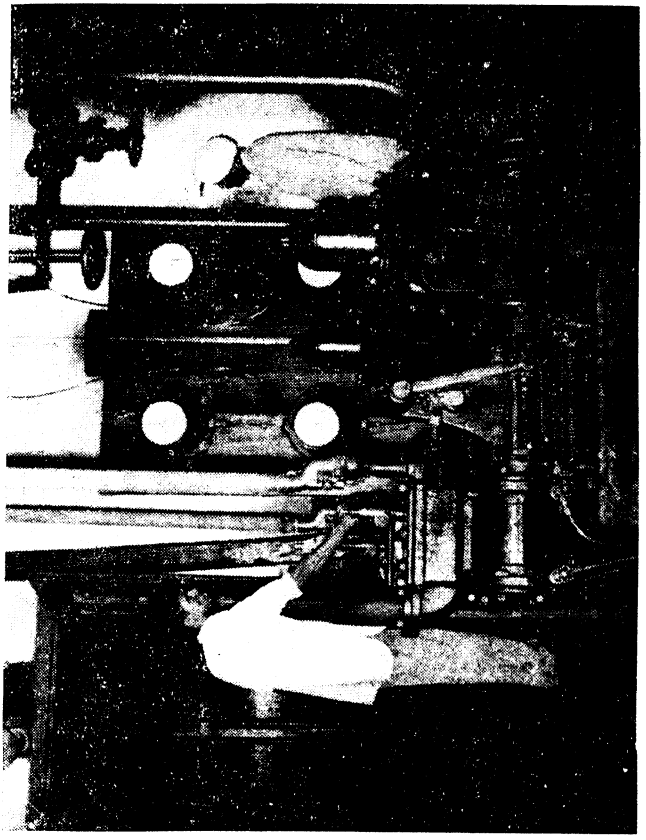
प्रत्येक सयन्त्र मे अग्नि बुझाने के लिए जल-उदञ्च भी हो, जिससे कि आग लगने पर शीघ्रता से जल-धारा प्राप्य हो सके।

(घ) संघनक ('कन्डेन्सर')

शून्यक के नल की दिशा मे वायु-सपीडक से पहले सघनक का स्थापित होना आवश्यक है। इसके होने से, ताप द्वारा जो कुछ भी जल या तल की वाष्प बनती है, सीधे वायुसपीडक अथवा शून्यक पम्प मे प्रवेश नही कर सकती, वह मध्य मे ही सघनक मे ठडी होने से द्रव-रूप मे परिवर्तित होने पर एकत्रित की जा सकती है। सघनक उस दशा मे अति उपयोगी होता है जहाँ तैल मे उबलन ('बोल्टन') विधा, हरे काष्ठ के उपचार के लिए, प्रयुक्त की गयी हो। इससे हरे काष्ठ के सशोषण द्वारा निकली हुई जलमात्रा का अनुमान लगाया जा सकता है। संघनक भी इस्पातचादर का बना हुआ एक प्रकार का छोटा रम्भ होता है, जिसमे मुडी हुई वृत्ताकार नलिकाएँ रम्भ मे भरे ठडे जल मे डूबी रहती है। इस रम्भ मे निरन्तर ठडे जल का परिवहन होता रहता है। मुड़ी नलिका के अन्त मे एक पात्र रहता है, जिससे एकत्र परिवर्तित जल टोटी से निकाला जा सकता है।

(ङ) नल, कपाट, अभिलेखक तापमान और मापक यन्त्र

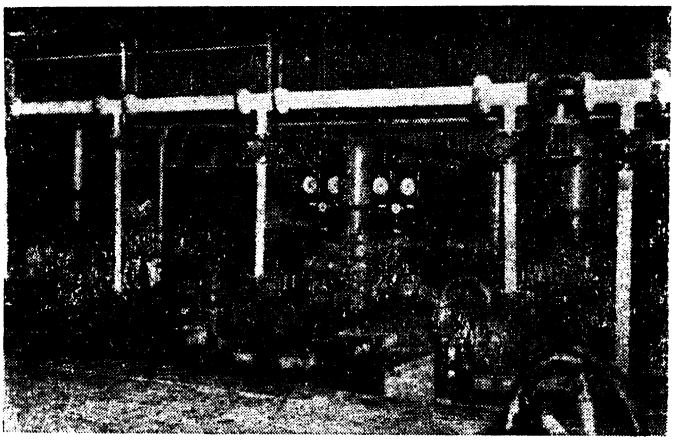
उपचार सयन्त्र के पूर्वोक्त भाग नलो और कपाटो ('वाल्वों') द्वारा एक-दूसरे से सयोजित रहते है। इनका सुविधा के अनुसार संयोजन किया जाता है। इसको जितना सरल बनाया जाय उतना ही अच्छा है। यदि यह जटिल बनाया गया हो तो संयन्त्र-चालक कभी भूल कर सकता है, जिसके कारण दुर्घटना हो सकती है। संयोजन



चित्र ८३—उपचार संयन्त्र के लिपिड-चालक का कमरा।

में निपुणता की आवश्यकता है, यद्यपि यथोचित स्थानों में कपाटों का स्थिरीकरण किया जाता है।

तापमान और निपीड-शून्यक-निर्देशक यन्त्र रम्भ से संयोजित रहते हैं। यदि ये अभिलेखक रूप के हों, तो संपूर्ण उपचार-काल की दशाओं के अंक प्राप्त हो सकते हैं। ये निरीक्षण के लिए सुविधाजनक हैं। ये सब घड़ी-यन्त्रनुमा होते हैं जिनको चाबी लगाकर बन्द किया जाता है। बड़े परिमाण के संयन्त्रों में इस साधन-सामग्री का अतिरिक्त मात्रा में रखना वांछनीय है, जिससे टूट-फूट के समय उसका तत्काल ही पुनः स्थापन सम्भव हो सके। चित्र ८३-८४ में निपीड और अभिलेखन यन्त्रों का कमरा दिखाया गया है। चित्र ८५ में एक निपीड-संयन्त्र का रेखाचित्र है।

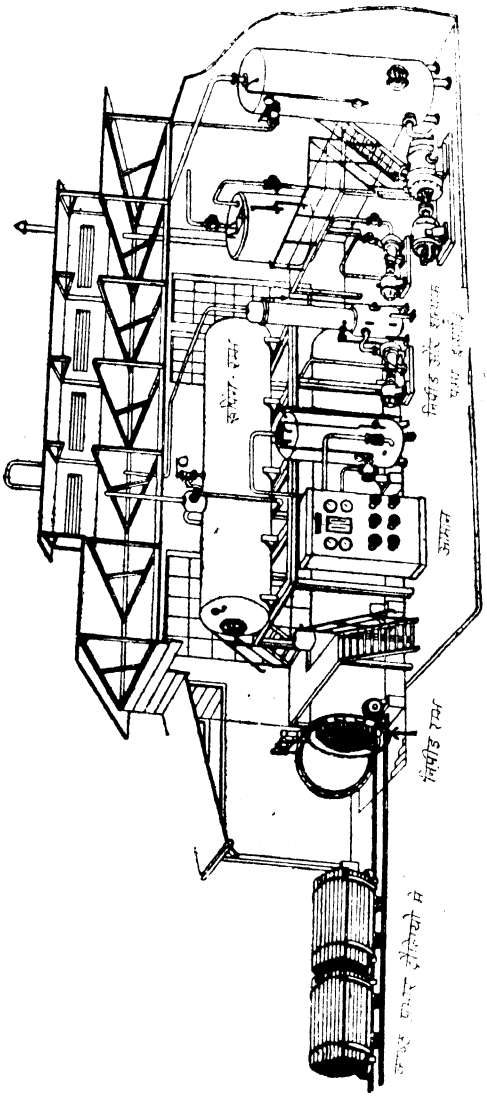


चित्र ८४—उपचार संयन्त्र के निपीड-चालक का कमरा

(च) प्रांगण ('यार्ड')।

काष्ठ-उपचार सरलतापूर्वक चले और उसमें अधिक खर्च न बैठे, इस दृष्टि से प्रांगण का निर्धारण विशेष महत्त्व रखता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, प्रांगण एक ऐसी भूमि में होना चाहिए जिसमें पानी एकत्रित न हो और उसमें स्वच्छता के लिए उचित प्रकार की नालियाँ इत्यादि हों।

प्रांगण में छोटे या बड़े पैमाने की रेल-लाइन संपूर्ण क्षेत्र में बिछी रहे, जिससे सामान, परिरक्षी, काष्ठ और अन्य मशीनें, जहाँ भी उनकी आवश्यकता हो, सरलता



चित्र ८५—लिपीड संयन्त्र का रेखाचित्र।

से ले जायी जा सकें। बहुधा प्रागण के एक ओर वायु-सशोपण के लिए अशोधित काष्ठ का सग्रह किया जाता है। दूसरी ओर उपचारित काष्ठ के चट्टे लगे रहते है, जहां से फिर वह प्रयोग स्थानो को भेजा जाता है। मध्य मे उपचार-रम्भ स्थित रहना है, रेल और ट्राम लाइनों का यहीं अधिक मिलान रहता है और यही से वे अन्य दिशाओं में भी फैली रहती है। प्रागण में उचित प्रकार से लाइनों का लगाना, सग्रह और कार्यालय-स्थान, रम्भ की स्थिति, परिरक्षी-सचयकुड की दूरी, अग्निरक्षा के जलोत्सर्ग, इत्यादि-इत्यादि के प्रबन्ध करने मे निपुण और अनुभवी अभियन्ता की आवश्यकता पड़ती है।

काष्ठ को सशोषण-स्थान से एकत्रित कर उपचार के लिए रम्भ मे ले जाने और उपचार-पश्चात् रम्भ से निकालने के लिए छोटी रेल के वाष्प अथवा मृत्तैल से चलने-वाले इन्जन होते है। कही-कही काष्ठ-प्रभार को ले जाने मे चरखी का भी प्रयोग किया जाता है। अमेरिका मे काष्ठ के स्लीपरों और खम्भों के चट्टे मशीनों द्वारा लगाये जाते है। इनके चट्टों को एक स्थान से दूसरे स्थान मे उठाकर ले जान के लिए क्रेन अथवा हॉइस्ट का भी प्रयोग होता है।

काष्ठ-प्रभार को ले जाने के लिए ट्रौलियाँ होती है जिनके पहियों की दूरी का वही प्रमाप होता है जो रम्भ के अन्दर रेल-पटरियों का होता है। ये ट्रौलियाँ पृथक्-पृथक् प्रकार की होती है; स्लीपरो के लिए अलग और खम्भों के लिए दूसरे प्रकार की होती है। काष्ठ-भूमि गुटकों के लिए भी टोकरीनुमा ट्रौली होती है, जो छिद्रण की हुई इस्पात-चादरों की बनी रहती है।

(छ) अन्य संभार ('इक्विप्मैन्ट')

उपचार-संयन्त्र मे अन्य साधित्रों की भी आवश्यकता होती है। इनमे से एक तो वाष्पित्र ('बॉयलर') होता है। जहाँ तैलरूपी परिरक्षी प्रयोग किये जाते है, वहाँ परिरक्षी को गरम करने के लिए यह आवश्यक है। वाष्पीकरण और तैलीय उबलन विधा मे वाष्प का प्रयोग होता है। जहाँ बिजली प्राप्य न हो, वहाँ निपीडक पम्प इत्यादि भी इसी से चलाये जाते है।

काष्ठ-प्रभार तोलने और नदनन्तर प्रचूषण ज्ञात करने के लिए महातुला का होना भी आवश्यक है। छीलन, छिद्रण और भेदन के लिए भी विशेष प्रकार की मशीने अथवा यन्त्र होते है। काष्ठ के छोर भाग को समान रूप से काटने के लिए आरे भी स्थापित किये जाते है। लकड़ी को विशेष आकार मे बनाने के लिए भी विशेष प्रकार के यन्त्र होते है।

(ज) गृह-कार्य

उपचार-प्रांगण में कार्यालय, कर्मशाला और गृहों का निर्माण भी आवश्यक है। रम्भ को छादित स्थानों में रखा जाता है। अधिक वर्षावाले स्थानों में काष्ठ का वायु-संशोषण भी छादकों के अन्दर होना आवश्यक है। जल-विलयन परिरक्षी द्वारा उपचार के पश्चात् कुछ समय तक काष्ठों का छादित स्थानों में संशोषण करना पड़ता है। संशोषण-कार्य की शीघ्र समाप्ति के लिए कहीं-कहीं भट्ठे ('किल्न') भी स्थापित किये जाते हैं। परिरक्षी-विश्लेषण और काष्ठ-आर्द्रता निश्चयन के लिए रासायनिक प्रयोगशाला का होना भी अनिवार्य है। अतः उपचार-संयन्त्र की रचना कुशलतापूर्वक होनी चाहिए। विशेष प्रशिक्षित निर्माता ही इस कार्य को संभाल सकने में समर्थ होता है। एक आदर्श निपीड-उपचार-संयन्त्र की विशिष्टि सारणी २० (परिशिष्ट ५) में दी गयी है।

अध्याय २

उपचारित काष्ठों का प्रयोग

यह वाञ्छनीय है कि उपचारित काष्ठों का प्रयोग वहाँ किया जाय जहाँ काष्ठनाशक अभिकर्त्ताओं का भय हो। भाग २, अध्याय २ में इन काष्ठविनाश-प्रतिकारकों का वर्णन किया जा चुका है। आधुनिक काल में उपचारित काष्ठों के प्रयोग में वृद्धि होती जा रही है और यह आशा की जाती है कि पञ्च-वर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत, विभिन्न विकास कार्यों के लिए उपचारित काष्ठों का प्रयोग बढ़ता ही जायगा। उपचारित काष्ठों के कुछ मुख्य प्रयोग निम्न लिखित हैं।

१. रेलवे-स्लीपर

विश्व के प्रायः सभी देशों ने काष्ठ के रेलवे-स्लीपरों के उपचार के लिए काष्ठ-परिरक्षण-विधियों को अपनाया है। भारत ने भी ऐसा ही किया है। केवल साल, टीक और कुछ थोड़ी ही मात्रा में अन्य अति स्थायी काष्ठों के सारकाष्ठ से बने स्लीपरों को छोड़, प्रायः सभी प्रकार के काष्ठ-स्लीपरों का उपचार किया जाता है। इस समय भारतीय रेलवे-पथ की लम्बाई लगभग ५० (१च) हजार मील (८०४६७ किलोमीटर) है। अतः संपूर्ण रेल-पथ के लिए, २००० स्लीपर प्रति मील के हिसाब से, १० करोड़ स्लीपरों की आवश्यकता है। इन स्लीपरों की संख्या का लगभग आधा भाग काष्ठ-स्लीपरों का है। काष्ठ में आघात-प्रचूषण गुण होने के कारण, यात्रियों के लिए काष्ठ-स्लीपर धातु-स्लीपरों की अपेक्षा अधिक आरामदेह होते हैं, और इसी कारण रेलडिब्बों की आयु को बढ़ाने में भी सहायक होते हैं। परन्तु धातु-स्लीपरों की आयु अधिक होती है और श्रमिकों को इन स्लीपरों पर काष्ठ-स्लीपरों की अपेक्षा कम ध्यान देने की आवश्यकता रहती है। काष्ठ-स्लीपरों का यदि उचित प्रकार से उपचार किया गया हो तो इनकी औसत आयु प्रायः २० वर्ष से २५ वर्ष तक की होती है। आर्थिक दृष्टि से यह संतोषजनक है। इसके पश्चात् कुछ वर्षों तक इनको मुख्य-रेलपथ ('मेन लाइन') से निकालकर किनारे के पथों ('साइड लाइन्स्') में लगाया जा सकता है, और अन्त में ये अस्थायी बाड़ लगाने के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। उपचारित काष्ठ-स्लीपरों की अयोग्यता

मुख्यतः यान्त्रिक क्षति के कारण ही होती है, यद्यपि इनकी जैविक आयु परिरक्षण द्वारा कई वर्षों तक बढ़ायी जा सकती है।



चित्र ८६—उपचारित साल के अर्धगोल स्लीपरों की १६ वर्ष सेवा-आयु के बाद की दशा।

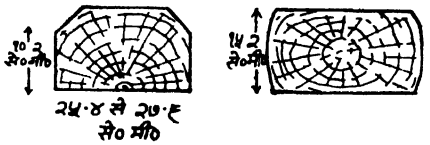
सभी काष्ठ-जातियों के रस-काष्ठ का, उपचार करने के पश्चात्, स्लीपरों के प्रयोग में विशेष महत्त्व होता है। सामान्यतः साल के अनुपचारित स्लीपरों के प्रयोग में रसकाष्ठ की स्वीकृति नहीं होती, इसी कारण साल के लठ्ठों का अधिकांश भाग, जिसमें रसकाष्ठ होता है, सार-काष्ठ-स्लीपरों के परिवर्तन में रद्द कर दिया जाता है। उदाहरणार्थ; १६ इंच (४०.६ सेन्टीमीटर) व्यासवाले साल-लठ्ठे के सारकाष्ठ से एक ही बी० जी० (१०" ५" अथवा २५.४×१२.७ सेन्टीमीटर टक्कर का) स्लीपर प्राप्त हो सकता है, जब कि उसी लठ्ठे से दो और भी अर्ध-गोलाई ('हाफ-राउन्ड') के बी० जी० स्लीपर, जिनमें रसकाष्ठ भी सम्मिलित होता है, निकल सकते हैं। उपचार करने के पश्चात् इन अर्ध-गोल स्लीपरों का भी प्रयोग हो सकता है। ऐसे अर्ध-गोल स्लीपरों से उपचार (क्रियोजोट और एस्क्यू करण) के पश्चात् अच्छी सेवाआयु प्राप्त हुई है। चित्र ८६ में एस्क्यू से उपचारित अर्धगोल साल स्लीपर का १६ वर्ष सेवा आयु के बाद का दृश्य दिखाया गया है। वन-अनुसन्धानशाला के अन्तर्गत किये गये परीक्षणों में ऐसे उपचारित स्लीपर उत्तरपूर्वीय रेलवे के मथुरा कैन्ट और मैलानी नामक स्थानों पर सन् १९४० में लगाये गये थे।

यह अनुमान लगाया गया है कि भारत में नवीकरण और नयी लाइनों के बिछाने में प्रति वर्ष ६० लाख स्लीपरों की आवश्यकता होती है। यदि इसमें अन्य उद्योगों और वनों में ट्राम लाइनें बनाने के लिए स्लीपरों की माँग भी सम्मिलित की जाय तो कुल मिलाकर एक करोड़ स्लीपरों की आवश्यकता होगी। इन स्लीपरों के उपचारार्थ कई वाणिज्य उपचार-संयन्त्रों की आवश्यकता है, जब कि वर्तमान भारत

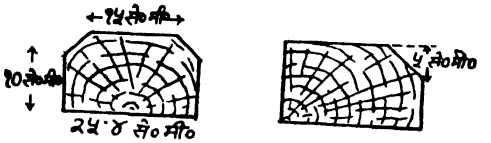
मे एक पारी काम करके केवल २३ लाख बी० जी० स्लीपरों का उपचार करने के ही साधन प्राप्त है।

संसार के विभिन्न देशों मे, जहाँ आयताकार स्लीपरों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के स्लीपर प्रयुक्त किये जाते है, उन स्लीपरों के आकार (अनुप्रस्थ-छेद) के रेखा-

जर्मनी



चेकोस्लोवेकिया और ऑस्ट्रिया



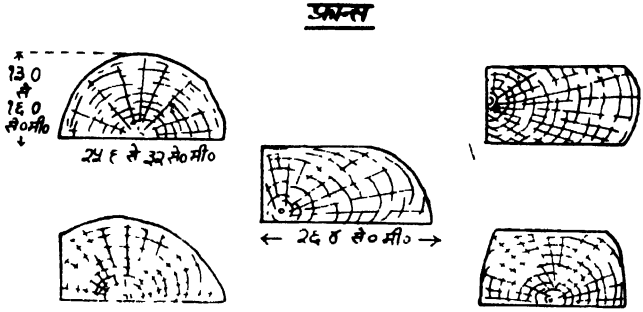
से० मी० = सन्टीमीटर

चित्र ८७—विभिन्न देशों में काष्ठ-रेलवे-स्लीपरों के आकार (अनुप्रस्थ छेद)

चित्र, चित्र ८७, ८८ मे दिये गये है। वहाँ हर प्रकार के अर्ध-गोल ('हाफ-राउन्ड') और गोलाश्री ('वेन') स्लीपरो का प्रयोग होता है।

स्लीपरों के उपचार के लिए प्रायः ५ पौड प्रति घन फुट (८० किलोग्राम प्रति घन मीटर) क्रियोजोट इन्धन तैल (५०:५०) मिश्रण का प्रचूषण चाहिए। वन-अनुसन्धान-शाला, देहरादून ने परीक्षणार्थ पैन्टाक्लोरोफीनौल (४ प्रतिशत मृत्तैल मे विलयित) से स्लीपरो का निपीड-उपचार करके रेलवे लाइनो मे बिछा दिया है। एस्क्यू से भी ०.५ से ०.७५ पौड प्रति घन फुट (८.० से १२.० किलोग्राम प्रति घन

मीटर) के हिसाब से शंकुधारी काष्ठों के स्लीपर बडी संख्या मे उत्तरी रेलवे मे लगाये। पर इन स्लीपरों को एस्क्यू के उपचार-पश्चात्, १० प्रतिशत गरम एस्फाल्ट के इन्धनतैल-विलयन मे डुबोना, उन्हें फटने से बचाने के लिए अनिवार्य है। सारणी



चित्र ८८—फ्रांस में काष्ठरेलवे-स्लीपरों के आकार (अनुप्रस्थ छेद)

२१ (परिशिष्ट ६) मे वन-अनुसन्धान शाला मे परीक्षणार्थ उपचारित कुछ काष्ठ-स्लीपरो की सेवा-आयु का विवरण दिया गया है।

संयुक्त राज्य अमेरिका मे उपचारित काष्ठ, धातु और सीमेंट के स्लीपरो पर कई परीक्षण हुए है, अन्त मे वहाँ यह परिणाम निकला कि उपचारित काष्ठ के स्लीपर कम व्ययवाले और सुविधाजनक होते है, और वहाँ की रेलवे लाइनों मे बहुधा इन्ही का प्रयोग होता है। वहाँ प्रतिवर्षीय साख्यिक विवरण के अनुसार यह स्पष्ट हुआ है कि ज्यो-ज्यो उपचारित काष्ठ-स्लीपरों का प्रयोग सन् १९१५ से बढ़ता गया, त्यो-त्यो स्लीपरो के प्रति मील रेल-पथ के नवीकरण अथवा पुनः स्थापन मे भारी कमी हुई है। इसके फलस्वरूप रेलवे-लाइनो के रख-रखाव में पर्याप्त बचत रही है। सारणी (४ ड) २२ मे एक ऐसा साख्यिक विवरण दिया गया है। वहाँ प्रति मील रेल-मार्ग मे औसतन ३००० स्लीपरो का प्रयोग किया जाता है।

वहाँ साख्यिकी मे इतनी प्रगति हुई है कि रेखाचित्र द्वारा स्लीपरो की आयु की भी पूर्व-सूचना ज्ञात हो सकती है। स्लीपरों की आयु का सम्बन्ध उनके लाइनो पर लगे रहने के एक निश्चित समय पश्चात् प्रतिशत नवीकरण पर होता है। यदि किसी सेवाकाल के पश्चात् स्लीपरों का प्रतिशत नवीकरण अथवा पुनः स्थापन ज्ञात हो, तो उनकी सेवाआयु का अनुमान लगाया जा सकता है। चित्र ८९ मे एक

चित्र ८९—प्रतिशत नवीकरण संख्या द्वारा स्लीपरों की संभाव्य सेवा-आयु का निश्चयन ।

ऐसा रेखाचित्र दिया गया है, जिससे स्लीपरों की सेवा-आयु का अनुमान लगाया जा सकता है।

सारणी–२२ (४ ङ)

प्रति मील रेल-मार्ग में स्लीपरों का नवीकरण

वर्ष (सन्)	प्रतिवेदन करनेवाले रेलवेवालों की सख्या	प्रतिवेदित रेलमार्ग की सकल लम्बाई मीलो मे	प्रति मील पुनः स्थापन किये गये स्लीपरो की औसत सख्या	
			उस वर्ष में	पिछले ५ वर्षो में
१९११	२२	१३६१२९	२६२	२४९
१९१३	२५	१६३४२७	२५९	२५१
१९१५	२६	१८१२७४	२६५	२५६
१९१७	२७	१९०४८६	२०६	२४७
१९१९	२७	१९३८०७	२०३	२२३
१९२१	२७	१९६७२०	२११	२०५
१९२३	२७	१९८८८२	१९८	२०५
१९२५	२७	२०३३३०	१८८	१९६
१९२७	२७	१९८३१२	१८५	१८७
१९२९	२७	२००२६०	१७६	१८३
१९३१	२७	२०००१७	११७	१६३
१९३३	२७	२०१०३०	७३	१२०
१९३५	२७	१९८८०४	९५	९३
१९३७	२७	१९६१७७	११२	९८
१९३९	२७	१९३५९४	११५	१०८
१९४१	१३२	३३५६५९	१४०	१३१
१९४३	१३२	३३१२४७	१३६	१३६
१९४५	१३१	३३१२०१	१३२	१३९
१९४७	१२६	३३०३५०	११२	१२७
१९४९	१२७	३३०६१२	९१	११२
१९५१	१२६	३२९७०५	८७	९९

स्लीपरों की रेल मार्ग के लिए अयोग्यता, सिरों के फटने, रेलो के नीचे कटान, और प्रकीलों (स्पाइक्स्) के ढीले पड़ जाने से भी होती है। अमेरिका में फटन को

रोकने के लिए जलरोधी स्तर, मार्ग मे बिछे हुए स्लीपरो पर शीकरन द्वारा उत्पन्न किया जाता है। इस क्रिया मे एक प्रकार के गरम एस्फौल्ट मे बजरी के मिश्रण की स्लीपरों पर ७ मिलीमीटर मोटी तह दी जाती है। प्रकीलो के ढीले छिद्रों पर एक प्रकार का प्रकील-भरण-संगठन भरा जाता है, जिसके कारण प्रकील पुनः दृढ हो जाते है । इस प्रकार स्लीपरों को यान्त्रिक क्षति से बचाया जा सकता है।

भारत मे रेलवे विभाग के अन्तर्गत वाणिज्य-उपचार सयन्त्रो मे काष्ठ-स्लीपरों के उपचार-मूल्य का विवरण सारणी २३ (परिशिष्ट ७) मे दिया गया है। इसमें पृथक्-पृथक् पदो के लिए व्यय के आँकड़े है। इससे यह पता लग सकता है कि उपचार व्यय किन बातो पर निर्भर रहता है और उसका मूल्याकन किस प्रकार किया जाता है।

अनुपचारित काष्ठ की अपेक्षा, उपचारित काष्ठ-स्लीपर अंत मे कम खर्चीले होते है। यह लघु-व्ययिता उनकी सेवा-आयु के अनुसार वार्षिक मूल्य पर निर्भर रहती है। वार्षिक मूल्य निकालने का सूत्र भाग १ के अध्याय ३ (५) में दिया है। उसी के आधार पर सारणी ६ मे ३, ४ और ५ प्रतिशत ब्याज की दर से पृथक्-पृथक् वार्षिक मूल्य दिया गया है। इस सारणी के अनुसार स्लीपरो का वार्षिक मूल्य निकालने का उदाहरण नीचे दिया जाता है।

जाति	मूल्य रुपयो मे	सेवा-आयु, वर्षो मे	ब्याजदर प्रतिशत	वार्षिक मूल्य (रु०)
अनुपचारित चीड़ स्लीपर ..	१२	२	४	१२×०.५३०१९६१ =६ ३६२३५३२
उपचारित चीड स्लीपर	१८	२०	४	१८×०.०७३५८१७ =१ ३२४४७०६

पूर्वोक्त उदाहरण से उपचारित काष्ठ के कम खर्चीलेपन का अनुमान लगाया जा सकता है।

सारणी २४ (क) (परिशिष्ट ८) मे उन काष्ठजातियों की, जो उपचार-पश्चात् स्लीपरों के लिए उपयुक्त है, एक सूची दी गयी है।

सारणी २४ (ख) (परिशिष्ट ९) मे भारत मे अनुपचारित काष्ठ-स्लीपरों की प्राप्यता और मूल्य का विवरण दिया गया है।

सारणी २४ (ग) (परिशिष्ट १०) में भारत के विभिन्न साधन-सयन्त्रों के आँकड़ों के अनुसार, काष्ठ-स्लीपरों का उपचार मूल्य दिया गया है।

एक साधारण गणना (११) के अनुसार भारतीय रेलवे मे काष्ठ-स्लीपरों की अनुपचारित और उपचारित दशाओ की औसत सेवा-आयु स्थूल प्रकार से नीचे दी जाती है।

सारणी–२५

काष्ठ-जाति, पारिभाषिक नाम	व्यापारिक नाम	अनुपचारित आयु, वर्षों मे	उपचारित आयु, वर्षों मे
अल्टिंजिया इक्सैल्सा .	जुटीली	५	१७ से २०
अर्टोकार्पस् चपलाशा ..	चपलाश	८	२२
सीड्रस देवदारा ..	देवदार	—	१५ से २७
डिप्ट्रोकार्पस इन्डीकस् ..	धूमा	३	१७
मैसुवा फैरीया ..	नैहौर	१०	—
पाइनस् इक्सैल्सा ..	कैल	—	१० से २१
पाइनस् रौक्सबर्घी ..	चीड़	२ से ३	११ से २३
पाइसीलोन्यूरौन इन्डीकम् ..	बलाघी	—	२४
शोरियारोबस्टा ..	साल	१६ से १८	—
टर्मिनेलिया माइरियोकार्पा ..	होलौक	६	१७ से १८

२. बिजली व तार-खम्भ और आधार-स्तम्भ

सयुक्त राज्य अमेरिका मे, जो भारत से लगभग तीन गुना बड़ा है, प्रति वर्ष ६० (१छ) लाख हर प्रकार के काष्ठ-खम्भो और ४० लाख काष्ठ-स्तम्भों का उपचार कर प्रयोग किया जाता है। जर्मनी मे ३० लाख उपचारित काष्ठ-खम्भ और स्तम्भ प्रयुक्त किये जाते है। स्वीडन मे राजकीय तार-विभाग द्वारा प्रति वर्ष २ लाख काष्ठ-खम्भो का उपचार कर प्रयोग किया जाता है। भारत मे मुश्किल से १० हजार काष्ठ-खम्भो का प्रति वर्ष उपचार किया जाता है। इनका प्रयोग मुख्यतः मैसूर, केरल और बिहार मे होता आया है। हाल मे ही हिमाचल प्रदेश मे काष्ठ-खम्भों का उपचार आरम्भ हुआ है।

काष्ठ-खम्भो के प्रयोग से लाभ-प्राप्ति के बारे मे पहले ही लिखा जा चुका है, अब इस पर अधिक बल देने की आवश्यकता नही है। ससार के सभी देशो का यह अनुभव है कि सेवा और मितव्ययिता की दृष्टि से बिजली और तार के लिए उपचारित काष्ठ-खम्भ सबसे अधिक उपयोगी वस्तु है। इसके अतिरिक्त काष्ठ मे उच्च पार-द्युतिक ('डाइ-इलैक्ट्रिक') गुण होने के कारण, वह विद्युत-सचार के लिए एक आदर्श सामग्री है। सामुद्रिक स्तम्भो के लिए भी धातु की अपेक्षा काष्ठ-खम्भ उपयुक्त है, क्योकि धातु मे शीघ्र ही समुद्र-जल से सक्षारण हो जाता है।

काष्ठ-खम्भो को भूमि मे गाड़ने के कारण, उन्हे काष्ठ-नाशक प्रतिकारको का अधिकतम सामना करना पड़ता है, विशेष कर भारत मे, जहाँ का जलवायु नाश-कारको के लिए अनुकूल है। अत. इनके उपचार के लिए उपयुक्त परिरक्षी और उग्र विधाओं का प्रयोग करना आवश्यक है।

काष्ठ-खम्भो को गोलाकार रूप मे ही काम मे लाते है, अतः इनमे रसकाष्ठ का एक मोटा बाह्य स्तर होता है, जो अति अल्पस्थायी है। सतोपजनक सेवा-आयु की प्राप्ति के लिए इस रसकाष्ठ का उपचार अत्यावश्यक है। खम्भ के लिए चाहे किसी भी जाति का काष्ठ छाँटा जाय, उसका उचित प्रकार से उपचार करने पर ही सफल परिणाम निकल सकते है। अधिक रसकाष्ठ होने के कारण काष्ठ-खम्भ के उपचार मे उतनी कठिनाई नही पड़ती, जितनी रेलवे-स्लीपर के उपचार मे, क्योकि रेलवे-स्लीपर मे रसकाष्ठ की मात्रा बहुधा कम रहती है और सारकाष्ठ की मात्रा अधिक। सारकाष्ठ के उपचार मे अति उग्र विधाओ का प्रयोग करना पड़ता है।

भारत में उपचारित काष्ठ-खम्भो की सेवा-आयु के बारे मे प्रगतिशील विदेशी राज्यों की तरह अधिक सामग्री प्राप्त नही है। अतः यहाँ उपचार के पश्चात् उन्ही काष्ठों का प्रयोग करना हितकारी होगा, जिनका सारकाष्ठ दीर्घ-स्थायी या सरल-उपचारणीय हो। वन-अनुसन्धान-शाला मे सेवा-आयु प्राप्ति के उद्देश्य से किये गये परीक्षणों के अनुसार परीक्षण-प्रागण में लगाये हुए उपचारित काष्ठ-खम्भो से अच्छे परिणाम निकले है। लगभग २० वर्ष पश्चात् चीड, साल और सैन के उपचारित काष्ठ-खम्भे अब भी अच्छी दशा मे है और आशा की जाती है कि वे और भी कई वर्षो तक अच्छी दशा मे रहेगे। इनका सक्षिप्त विवरण सारणी २६ (क) मे दिया गया है।

सारणी–२६ (क)

वन-अनुसन्धानशाला में उपचारित काष्ठ-खम्भों की सेवा-आयु के निश्चयनार्थ हुए प्रांगण-परीक्षणों का परिणाम

खम्भों की लम्बाई—२० फुट (६·१ मीटर) उपचार विधि—निपीड (लौरी प्रक्रिया)

क्रमांक	खम्भ की काष्ठ-जाति	प्रयुक्त परिरक्षी	प्रचूषण		खम्भ की दशा	
			पौंड प्रति घन फुट	किलोग्राम प्रति घन मीटर	सेवा-काल निकटतम	दशा
					वर्ष	
१	**पाइनस लौंगीफोलिया** (चीड)	एस्क्यू (६ प्रतिशत जल विलयन)	१·२५४	२०·०६	२२	स्वस्थ
२	,,	,,	०·८१०	१२·९६	२२	स्वस्थ
३	,,	,,	०·९१२	१४·५९	२२	स्वस्थ
४	,,	,,	०·९०	१४·४०	२२	स्वस्थ
५	,,	,,	०·९१८	१४·६९	२२	स्वस्थ
६	,,	,,	०·७८०	१२ ४८	२२	स्वस्थ
७	,,	क्रियोजोट-इन्धन तैल (४०:६०)	९·०	१४४·०	२२	स्वस्थ
८	,,	,,	१५·०	२४०·०	२२	न्यून कवक
९	,,	,,	५·०	८०·०	२२	न्यून दीमक-कवक

क्रमांक	खम्भ की काष्ठ-जाति	प्रयुक्त परिरक्षी	प्रचूषण		खम्भ की दशा	
			पौंड प्रति घन फुट	किलोग्राम प्रति घन मीटर	सेवा-काल निकटतम	दशा
१०	,,	,,	११·०	१७६ ०	२२	न्यून कवक
११	,,	,,	९·०	१४४·०	२२	स्वस्थ
१२	,,	,,	९·०	१४४·०	२२	स्वस्थ
१	शोरिया रोबस्टा (साल)	एस्क्यू (६ प्रतिशत जल विलयन)	०·३१२	४·९९	२१	स्वस्थ
२	,,	,,	० ४२६	६ ८२	२१	अति न्यून कवक
३	,,	,,	०·४८६	७ ७८	२१	स्वस्थ
४	,,	,,	०·४९२	७ ८७	२१	न्यून कवक
५	,,		०·४७४	७ ५८	२१	अति न्यून कवक
६	,,		० ४२०	६ ७२	२१	अति न्यून कवक
७	,,	क्रियोजोट-इन्धन तैल (५०:५०)	४·७	७५ २	२१	न्यून कवक
८	,,	,,	५·४	८६ ४	२१	मध्यम कवक
९	,,	,,	४·६	७३ ६	२१	न्यून कवक
१०	,,	,,	३·८	६० ८	२१	अति न्यून कवक
११	,,	,,	४·१	६५ ६	२१	न्यून कवक
१२	,,		३·८	६०·८	२१	न्यून कवक

१	टर्मिनेलिया टोमेन्टोसा (सैन)	एस्क्यू (६ प्रतिशत जल विलयन)	० ३६	५ ७६	२१	स्वस्थ
२	,,	,,	० ·४७४	७ ५८	२१	न्यून कवक
३	,,	,,	० ·३३	५ २८	२१	न्यून कवक
४	,,	,,	० ·४२	६ ७२	२१	स्वस्थ
५	,,	,,	० ·३७२	५ ९५	२१	स्वस्थ
६	,,	,,	० ·३४२	५ ४७	२१	स्वस्थ
७	,,	क्रियोजोट-इन्धन तैल (५० : ५०)	२ ·४	३८ ४	२१	न्यून कवक
८	,,	,,	२ ·९	४६ ४	२१	न्यून दीमक मध्यम कवक
९	,,	,,	३ ·७	५९ २	२१	अति न्यून कवक
१०	,,	,,	२ ०	३२ ०	२१	स्वस्थ
११	,,	,,	१ ८	२८ ८	२१	मध्यम दीमक कवक
१२	,,	,,	१ ·५	२४ ४	२१	स्वस्थ

भारत में कितने काष्ठ-खम्भों और स्तम्भों की आवश्यकता होगी, इसका अनुमान लगाना कठिन है, परन्तु जल-विद्युत योजनाओं के विकास-कार्य और समुद्रतटीय नौ-परिवहण के सुधार-कार्य के लिए एक बहुत बड़ी संख्या में काष्ठ-खम्भों और आधार काष्ठ-स्तम्भों की माँग रहेगी। कम से कम अगले पाँच-वर्षों में नगरों और ग्रामों मे बिजली लगाने के लिए प्रति वर्ष ५ लाख (१छ) खम्भों की आवश्यकता होगी। हमारे देश के लगभग २७०३ नगरों और ६५५८९२ ग्रामों को बिजली पहुँचाने के लिए प्राय: ३० लाख खम्भ चाहिए। प्राय: एक लाख आधार-स्तम्भ प्रति वर्ष हमारे बन्दरगाहों के सुधार और नये निर्माण के लिए चाहिए। एक लाख अन्य आधार-स्तम्भ नहरो, नदियों और नालों पर पुल बनाने के लिए आवश्यक होंगे, यदि नगरों और ग्रामों मे यातायात का संबन्ध स्थापित कराना हो। ग्रामीण सुधार के लिए बिजली भेजने और उचित सड़को के बनाने का प्रबन्ध अति उपयोगी है। इस कार्य के लिए शीघ्र बढनेवाले पेडो का, जिनसे काष्ठ-खम्भ प्राप्त हो सकें, उगाना श्रेयस्कर होगा। ऐसे पेड़ जगलों मे, बंजर भूमि मे, विशेष कर समुद्रतट के स्थानों मे लगाये जा सकते है। ऐसी एक काष्ठजाति **कैसुएरीना** है जो शीघ्र बढती है, पर इस काष्ठ को इन्धन के काम मे ही लाया जाता है। यदि घरेलू कार्य के लिए बिजली का प्रयोग होने लगे तो **कैसुएरीना** काष्ठ को खम्भों के कार्य मे लाया जा सकता है। कुछ अश तक खम्भों की पूर्ति **कैसुएरीना** से हो सकती है। सारणी २६ (ख) मे खम्भों के लिए उपयुक्त काष्ठजातियो की सूची दी गयी है।

सारणी २६(ग) मे भारत के विभिन्न राज्यों के विद्युत्-विभागों की खम्भो की माँग और वन-विभागों द्वारा काष्ठ-खम्भों की प्राप्यता और उनके मूल्य तथा उपचार की सुविधाओं के सम्बन्ध मे विवरण दिया गया है। ये आँकड़े इस सम्बन्ध मे निर्गत प्रश्नावली के उत्तर मे प्राप्त हुए है।

भारतीय मानक सस्था ('इन्डियन स्टैन्डर्ड्स इन्स्टीटचूशन्'), आइ० एस० ८७६–१९५७, के अनुसार खम्भ के योग्य काष्ठों को तीन समूहो ('ग्रूप्स्') मे विभाजित किया गया है। ये उनके विदारण के मापांक ('मौडचूलस् औफ रप्चर') की अर्हा पर आधारित है, जिनका निर्धारण काष्ठ की हरी अवस्था अर्थात् २५ प्रतिशत आर्द्रता से ऊपर की अवस्था मे किया गया है। ये निम्न प्रकार से है—

समूह (अ)—इसमें साल ('शोरिया रोबस्टा') जैसे अति बलिष्ठ काष्ठ हैं। इनकी मुड़न में विदारण का मापांक १२००० पौड प्रति वर्ग इंच (८५०

सारणी–२६ (ख)

खम्भों के लिए उपयुक्त काष्ठ-जातियों की सूची (अन्वीक्षात्मक 'टेन्टेटिव')

क्रमांक	काष्ठ-जाति, पारिभाषिक नाम	काष्ठ-जाति व्यापारी नाम	प्राप्ति-स्थान, भारत मे (दिशा या राज्य)	पौड मे भार प्रति घन फुट (वायु-शुष्क अवस्था में)	लगभग विदारण का मापांक ('मौडयूलस् औफ रपचर) पौड प्रति वर्ग इंच
१	एक्रोकार्पस फ्रैक्सीनीफोलिअस्	मुन्दानी	उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पश्चिम	४३	११५००
२	एनोजाइसस् लैंटीफोलिया	धौदी या बकली	प्रायः सभी भागो मे	५८	११५००
३	बोरेसस् फ्लैबीलीफर	पल्माइरा	पूर्व और दक्षिण	—	—
४	ब्रुगीरा जाति	मैन्ग्रूव्	अन्डमान	५६	१५६००
५	कैलोफिलम् जाति	पून	दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम तत्रैव	४०	९५००
६	कैसुएरीना इक्वीजैटीफोलिया	कैसुएरीना		५२	१०५००
७	चुक्रेसिया टेब्यूलैरिस	चुक्रैसी	पूर्व	४३	८५००
८	क्यूलीनिया इक्सैल्सा	करानी	दक्षिण	४०	१०५००
९	डाइकौप्सिस् इलिप्टिका	पाली	दक्षिण	३९	१००००
१०	डिप्टोकार्पस इन्डीकस्	काला डामर या धूमा	दक्षिण और अन्डमान	४८	१००००
११	गैरूगा पिनाटा	गरूगा	उत्तर-पश्चिम छोड़ प्रायः सभी भागों मे	३७	६५००

क्रमांक	काष्ठ-जाति, पारिभाषिक नाम	काष्ठ-जाति व्यापारी नाम	प्राप्ति-स्थान, भारत में (दिशा या राज्य)	पौड मे भार प्रति घन फुट (वायु-शुष्क अवस्था में)	लगभग विदारण का मापांक ('मौडयूलम् औफ रपचर) पौड प्रति वर्ग इच
१२	हैरीटीरा माइनर	सुन्द्री	पूर्व	६७	११५००
१३	होपिया पार्वीफ्लोरा	होपिया	दक्षिण-पश्चिम	६०	१३०००
१४	लैगर्स्टोमिया लैन्सियोलाटा	वैन्टीक	दक्षिण-पश्चिम	४७	१०००००
१५	मैसुवा फैरिया	मैसुवा या नैहोर	उत्तर-पूर्व और दक्षिण	६२	१६५००
१६	पाइनम् इक्सैल्सा	कैल	पजाब	३३	६०००
१७	पाइनस् रौक्सबर्गी	चीड़	उत्तरप्रदेश और पंजाब	३४	७५००
१८	पौसीलौन्यूरौन इन्डीकम्	बलागी	दक्षिण-पश्चिम	६०	१६५००
१९	पौलीऐन्थिया फ्रैगैन्स	—	दक्षिण-पश्चिम	३३	७५००
२०	टैरोकार्पस मार्स्युपियम्	बीजासाल	मध्य और दक्षिण	५२	१०५००
२१	शोरिया एसेमिका	मकई	उत्तर-पूर्व	३५	८०००
२२	शोरिया रोबस्टा	माल	मध्य,उत्तर और उत्तर-पूर्व	५७	१४०००
२३	टैक्टोना ग्रैन्डिस्	टीक	दक्षिण और मध्य	४४	११०००
२४	टर्मिनेलिया अर्जुना	अर्जुन	मध्य और दक्षिण	५२	८५००
२५	टर्मिनेलिया मन्नी	काला चुगलम	अन्डमान	५४	१२०००
२६	टर्मिनेलिया पैनीक्यूलाटा	किन्डल	दक्षिण और पश्चिम	५०	१२०००
२७	टर्मिनेलिया टोमैन्टोसा	अरना इरूल	उत्तर और पश्चिम छोड़, प्राय: सभी भागों मे	५५	११५००
२८	जाइलिया जाइलोकार्पा		दक्षिण।	५४	११५००

सारणी–२६ (ग)

राज्य	राज्य विद्युत विभागों की बिजली-खम्भो की माँग (१९५६ से १९६१ तक)	राज्य वन विभागों द्वारा काष्ठ-खम्भो की प्राप्यता और मूल्य		उपचार-सुविधाएँ तथा मूल्य	
		वार्षिक प्राप्यता	मूल्य प्रति खम्भ रुपया	उपचार-संयन्त्र	उपचार-मूल्य (रुपया) प्रति घन फुट
१	२	३	४	५	६
अण्डमान	—	३६०००	३५ से १२० रु० (लम्बाई और मोटाई के अनुसार)	एक तापन-शीतन, खला कुड	१ ·०० रु.
आन्ध्र	२१००००	कुछ नही	—	एक निपीड (पी० डब्ल्यू० डी० का)	—
आसाम	३६००	१००० (उपचारित)	—	तीन क्रियोजोटी-करण (निपीड)	१·३८ से ७ ·०० रु०
बिहार	२०००००	४७७५०	५ से १९ रु०	तीन निपीड, (एस्क्यू कृन)	१ ·५० रु०
बम्बई	—	५००००	—	कुछ नही	—
कुर्ग	—	१००० से १५००	—	कुछ नही	—
हिमाचल प्रदेश	१०५००	—	—	घाटियो मे भूमि उपचार	—
हैदराबाद	२४०००	कुछ नही	—	कुछ नही	—

१	२	३	४	५	६
जम्मू और कश्मीर	३६००	बडी संख्या मे प्राप्त	—	एक निपीड	—
मध्य भारत	८००	—	—	—	—
मध्य प्रदेश	५००००	८००० से १००००	—	कुछ नही	—
मद्रास	२०००००	३५००	१५ से ३० रु०	एक क्रियोजोटीकरण एक निपीड (एम्क्यू)	—
मैसूर	१५००००	लगभग ५०,०००	२५ से ४१ रु०	एक निपीड (क्रियो-जोटीकरण)	८ ·० मे २० ·० रु० (प्रति खम्भ)
उड़ीसा	१५०००	कुछ नही	—	एक क्रियोजोटीकरण एक निपीड (एम्क्यू)	—
मनीपुर	—	१०००	—	—	—
पैप्सू	५०००	बहुत थोड़ी सख्या मे	—	कुछ नही	—
पंजाब	२६५९०	३०००	—	एक क्रियोजोटीकरण (निपीड)	—
सौराष्ट्र	६०००	कुछ नही	—	—	—
ट्रावन्कोर-कोचीन	१५००००	सपूर्ण मॉग	३१ से ७१ रु०	कई निपीड	२ ·०० से ३ ·०० रु० (प्रति खम्भ)
उत्तर प्रदेश	—	५००० मे १००००तक	—	कुछ नही	—
विन्ध्य प्रदेश	—	२००००	—	एक निपीड	—
देहली	१०००	कुछ नही	—	—	—
राजस्थान	३००	कुछ नही	—	—	—
भोपाल	—	३००० से ५०००	६ से ७ रु०	—	—

किलोग्राम प्रति वर्ग सैन्टीमीटर) या उसमे अधिक है। इसमें पल्माइरा ताड़, ब्रुगीरा, होपिया, मैसुवा और बलागी जैसे काष्ठ है।

समूह (ब)—इसमे टीक ('टैक्टोना ग्रेन्डिस्') जैसे बलिष्ठ काष्ठ है। इनके मुड़न मे विदारण का मापांक ९००० से १२००० पौड प्रतिवर्ग इंच (६३० से ८५० किलोग्राम प्रति वर्ग सैन्टीमीटर) तक है। इसमें मुन्दानी, पून, कैसुएरीना, शीशम, गुर्जन, हौलौग, पिनै, सुन्द्री, नाना, बीजासाल, सफेद और काला चुगलम, किन्डल, सैन और इरूल जैसे काष्ठ है।

समूह (स)—इसमे चीड़ ('पाइनस् रौक्सबर्गी') जैसे साधारण बलिष्ठ काष्ठ है। इनके मुड़न में विदारण का मापांक ६५०० से ९००० पौड प्रति वर्ग इंच (४५५ से ६३० किलोग्राम प्रति वर्ग सैन्टीमीटर) तक है। इसमें देवदार, गरूगा, जारूल, पिनमा, मकई, अर्जुन, हौलौक और सफेद बौम्बवे जैसे काष्ठ है।

इसी संस्था के अनुसार ऊपर के तीनों समूह के काष्ठ खम्भों के सिरे से २ फुट (६० सैन्टीमीटर) नीचे के भार पर टूटने पर पॉच वर्गों में वर्गीकरण किया है। ये इस प्रकार है।

वर्ग १—अन्तिम त्रोटन भार ३००० पौड (१३६५ किलोग्राम) से कम नही।
वर्ग २—अन्तिम त्रोटन भार २४०० पौड (११०० किलोग्राम) से कम नहीं।
वर्ग ३—अन्तिम त्रोटन भार १९०० पौड (८६० किलोग्राम) से कम नही।
वर्ग ४—अन्तिम त्रोटन भार १६०० पौड (७२८ किलोग्राम) से कम नही।
वर्ग ५—अन्तिम त्रोटन भार १२०० पौड (५४५ किलोग्राम) से कम नही।

काष्ठ-खम्भ के उपचार करने मे क्रियोजोट-इन्धन तैल परिरक्षी का प्रयोग कर सकते हैं; विशेषकर तापन-शीतन उपचार-क्रिया में तैलीय परिरक्षी का ही प्रयोग किया जाता है। पर इस परिरक्षी को काम मे लाने से खम्भ की सतह पर तैल फैलकर निकलने के कारण मनुष्यों को ऐसे खम्भों पर चढ़ने में असुविधा रहती है। इन खम्भों का रंगों से भी लेपन नही किया जा सकता। अतः खम्भों के उपचार में बद्ध-रूपी जल विलयन परिरक्षी, जैसे एस्क्यू, कुक्रोम (सैल्क्यूयर) इत्यादि को ही मान्यता दी जाती है। इनसे उपचार करने के पश्चात् काष्ठ-खम्भों के बाहर किसी भी प्रकार का रंग-लेप किया जा सकता है। जैसा कि सारणी १५ मे बताया गया है, क्रियोजोट-इन्धन तैल (५० : ५०) का प्रचूषण १० पौड प्रति घन फुट (१६० किलोग्राम प्रति

सारणी–२७

काष्ठ-खम्भों के मापक परिमाण। (भारतीय मानक संस्था के आइ० एस्० ८७६–१९५७ के अनुसार)

संपूर्ण ऊँचाई फुट में	भूमितल से ऊँचाई फुट मे	मुण्ड-छोर से ६ फुट पर न्यूनतम गोलाई इंच मे।														
		वर्ग १			वर्ग २			वर्ग ३			वर्ग ४			वर्ग ५		
		समूह (अ)	समूह (ब)	समूह (स)	समूह (अ)	समूह (ब)	समूह (स)	समूह (अ)	समूह (ब)	समूह (स)	समूह (अ)	समूह (ब)	समूह (स)	समूह (अ)	समूह (ब)	समूह (स)
२०	१६	२४	२६	२८	२२	२४	२६	२०	२२	२५	१९	२०	२२	१९	२०	२२
२५	२०	२५	२७	३०	२३	२५	२८	२१	२३	२६	२०	२२	२४	१९	२०	२२
३०	२५	२७	२९	३३	२५	२७	३०	२३	२५	२८	२१	२३	२६	२०	२२	२४
३५	२९	२९	३१	३५	२६	२८	३२	२५	२७	३०	२३	२५	२८	२१	२३	२६
४०	३४	३०	३२	३७	२८	३०	३४	२६	२८	३२	२४	२६	२९	२२	२४	२७
४५	३८	३२	३५	३८	३०	३२	३५	२८	३०	३४	२६	२९	३०	२५	२७	३०
सब ऊँचाई के लिए सिरे पर न्यूनतम गोलाई (इंच मे)		१९	२०	२३	१७	१८	२१	१६	१७	१९	१४	१५	१७	१२	१३	१५

फुट और इंचों के क्रमशः मीटर और सैन्टीमीटरों में परिवर्तन के लिए ०.३०५ और २.५४ से गुणा करना होगा।

घन मीटर) तथा एस्क्यू और कुक्रोम (मैल्क्यूयर) का १० पौड (शुष्क लवण) प्रति घन फुट (१६ किलोग्राम प्रति घन मीटर) होना चाहिए।

काष्ठ-खम्भ के उपचार के लिए जहाँ तक सम्भव हो निपीड क्रिया ही उत्तम है। यह क्रिया सशोपित काष्ठ पर ही की जाती है। यदि ऐसा सम्भव न हो और जहां नये कटान के हरे खम्भ प्राप्य हों वहां रसकाष्ठ के उपचार के लिए बूशरी विधा उपयुक्त है, परन्तु ऐसे खम्भो के सारकाष्ठ प्राकृतिक दशा में होने चाहिए, अन्यथा सार-काष्ठ अस्थायी होने से सतोपजनक परिणाम नही निकल सकते, क्योकि बूशरी विधा मे सारकाष्ठ का उपचार होना सम्भव नही है। बूशरी विधा से अन्य लाभ यह है कि इसके लिए एक साधारण यन्त्र पर्याप्त है जो सरलता से पर्वतो या वनो मे ले जाया जा सकता है। इससे हरे बाँसो का भी सपूर्ण गोल आकार मे उपचार हो सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी विधि से संपूर्ण गोल बाँस का सफलता से उपचार कराना सम्भव नही है। आसारण विधि मे भी, जिसका वर्णन भाग २, अध्याय ३ (ङ) मे किया गया है, हरे काष्ठ खम्भो का उपचार किया जा सकता है, पर इसमे उचित बद्ध-रूपी जलविलयन परिरक्षी का ही प्रयोग किया जाना अनिवार्य है।

भारत में केरल, मैसूर, बिहार, पश्चिमी बंगाल, अण्डमान द्वीप समूह, हिमांचल प्रदेश मे खम्भ-उपचार के लिए निपीड-संयन्त्र स्थापित किये गये हैं। डाक और तार विभाग ने भी टैलीफोन और तार के खम्भों का उपचार आरम्भ कर दिया है। मध्य प्रदेश मे जबलपुर के निकटवर्त्ती स्थानो मे, डाक और तार विभाग के 'टैकनिकल डैवलप्मैन्ट मर्किल' के अन्तर्गत, उपचारित काष्ठ-खम्भो का प्रयोग टैलीफोन और तार की लाइनों के लिए किया हे। भारतीय मानक सस्था ने भी बिजली और तार खम्भों के लिए विशिष्टियाँ बनायी हैं। इनमे भिन्न-भिन्न वर्गों के काष्ठ-खम्भो के परिमाण, जाति और उपचार के सम्बन्ध मे उपयोगी सूचना दी है।

डाक्टर पंजाबराव देशमुख ने, जो केन्द्रीय भारत सरकार के कृषि मंत्री थे, वनोपयोग केन्द्रीय मन्त्रणा मण्डल की चौथी बैठक ('फोर्थ मीटिग ऑफ दी सैन्ट्रल एडवाइजरी बोर्ड ऑन फॉरेस्ट यूटीलाइजेशन') मे, जो १० जुलाई १९५८ को देहरादून की वन-अनुसन्धानशाला मे हुई थी, उद्घाटन-भाषण मे कहा था—

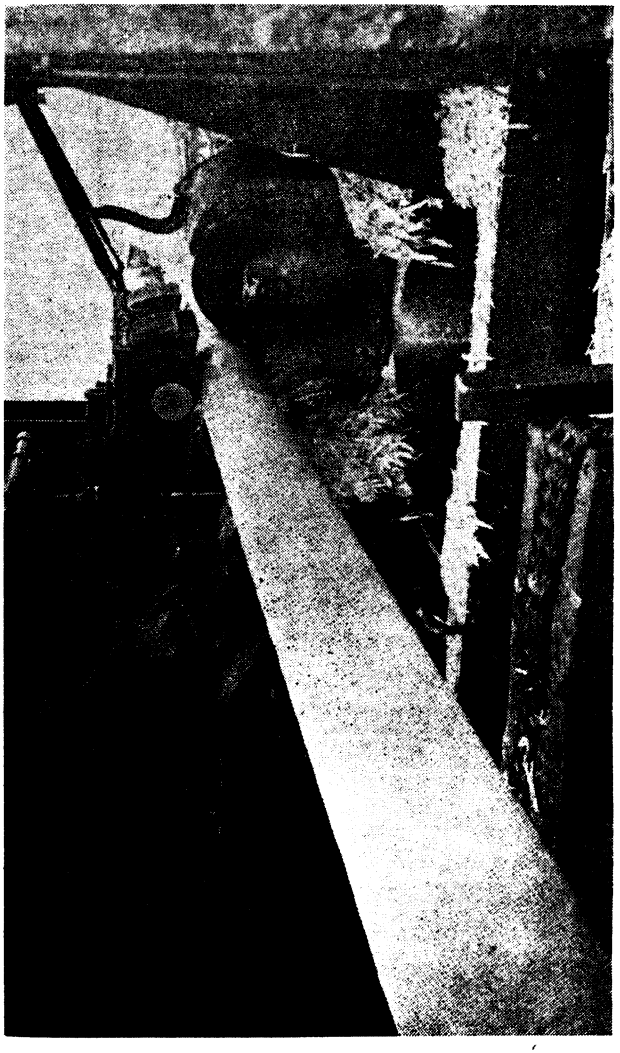
"संसार मे सबसे सस्ता इस्पात का उत्पादन बेलजियम मे होता है, पर फिर भी बेलजियम टैलीफोन और तार के खंभों के उपयोग के लिए उपचारित काष्ठ को इस्पात से कम खर्चीला पाता है। युनाइटेड किगडम मे भी ९० प्रतिशत से ऊपर टैलीफोन और तार के खम्भे काष्ठ के है जो आयात किये जाते है। संयुक्त राज्य अमेरिका में

प्रमुख रेलों मे अभी तक ८० प्रतिशत पुल उपचारित काष्ठ से बनाये जाते है, न कि इस्पात से। वहाँ रेलो मे भारत की अपेक्षा कही अधिक भारी इजनों का प्रयोग करते है। जब कि ऐसे उच्चतम उद्योगवान देश उपचारित काष्ठ को इस प्रकार के प्रयोगो मे लगा सकते है, तो भारत भी ऐसा करने का प्रयत्न क्यो न करे जबकि उसकी औद्योगिक प्रगति मुख्यतः इस्पात पर ही निर्भर है।

"वास्तव मे, जब मै नवम्बर १९४८ मे सयुक्त राज्य अमेरिका मे गया, काष्ठ का टैलीफोन, तार और बिजली के कार्य के लिए इस प्रकार का अति ही विस्तृत प्रयोग देखकर चकित रह गया, जबकि भारत मे सभी जगह इन सब कार्यो के लिए इस्पात ही प्रयुक्त होता है। ढाई साल हुए जब मै आस्ट्रिया और पूर्वीय यूरोप के देशों मे गया था, वहाँ भी मैने इस्पात के खम्भे कही नही देखे। मैने इस तथ्य का अभिलेखन अपने सहकारी शिष्टमण्डल की रूस-यात्रा की रिपोर्ट मे किया है। यह कोई अचम्भे की बात नही है कि मार्शल बुलगानिन और मिस्टर ख्रुश्चेव अपनी भारत-यात्रा में यहाँ इस्पात का ऐसा दुरुपयोग देखकर अपने भावों को प्रकट करने से न रुक सके। मैने भी कई अवसरों पर यही बात कही है, किन्तु मुझे आश्चर्य है कि इस पर बहुत कम लोगो ने ही ध्यान दिया है। निःसन्देह इस स्थिति में थोड़ा बहुत परिवर्तन हुआ है, पर अब भी हमको बहुत कुछ करना है।

"अपनी राष्ट्रीय वन-सम्पत्ति के विकास के लिए, हम केवल इस कथन को ही बारम्बार नहीं दोहरा सकते कि अधिक से अधिक भूमि वनो के अधीन लानी चाहिए। यद्यपि स्वभावतः ही हमे पिछले कई वर्षो के विवेकहीन वन-समुपयोजन के कारण खोई हुई वन संपत्ति को पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए, तथापि हमें एक नूतन वन-अर्हापण की प्रथा की भी रचना करनी चाहिए। वह यह है कि काष्ठ-उपयोजन की विचारयुक्त और सावधान विधियो का आविष्कार किया जाय और उन्हे जन-समुदाय के लिए लोकप्रिय बनाया जाय। अध. जाति अथवा निम्न श्रेणी के काष्ठों को, जिनका कोई इस समय उपयुक्त प्रयोग नहीं है, वैज्ञानिक सशोषण और उपचार द्वारा, गुणों और स्थायित्व में उन काष्ठो के तुल्य बनाया जाय जो व्यापार और उद्योग मे माननीय हैं। हमारे वनों का अधिकांश भाग इन अस्थायी जाति के काष्ठों से ही बना है और यदि इन काष्ठों को साधनों द्वारा सुधार किये गये प्रयोगों में, जैसे कि आपट्टित काष्ठ, स्तर-काष्ठ, संपीडित पट्ट, इत्यादि-इत्यादि के काम में लाया जाय तो हमारी राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में विशाल वृद्धि हो सकती है।"

उपचारित काष्ठ-स्लीपरों की भाँति उपचारित काष्ठ-खम्भ भी कम खर्चीले



चित्र ९०—काष्ठ-खम्भ को स्वच्छ, सीधा और उचित ढाल में बनाने की मशीन।

होते है। वार्षिक मूल्य की दृष्टि से उपचारित काष्ठ-खम्भ अन्य प्रकार के खंभो से, जैसे कि लोहे, सीमेट इत्यादि के खम्भों से, अल्पव्यय साध्य होते है। अमेरिका-जैसे प्रगतिशील देशो में काष्ठ-खम्भ कई हजार वोल्ट्स की विद्युत लाइनों और नगरो की रोशनी के लिए प्रयुक्त किये जाते है। वहां खम्भो को मशीनों द्वारा उचित प्रकार का ढाल दिया जाता है जिससे वे सीधे और स्वच्छ दिखाई दे। ऐसी एक मशीन चित्र ९० मे दिखलायी गयी है।

वन-अनुसन्धानशाला, देहरादून, मे कुछ विशेष प्रकार के काष्ठ-खम्भों के जोडों का आयोजन किया जा रहा है और कुछ उचित प्रकार के जोड़ बनाये गये है। ऐसा होने पर पर्वतों से छोटी लम्बाई के खम्भों के परिवाहन मे सरलता हो सकती है, और तत्पश्चात् प्रयोग-स्थानों मे ले जाकर ये जोड़ दिये जा सकते है। ऐसा करने से अधिक सख्या में काष्ठ-खम्भ प्राप्त हो सकते है, और इनके मूल्य में भी भारी कमी हो सकती है। चित्र ९१, ९२ मे एक ऐसा जोड़ दिखलाया गया है।

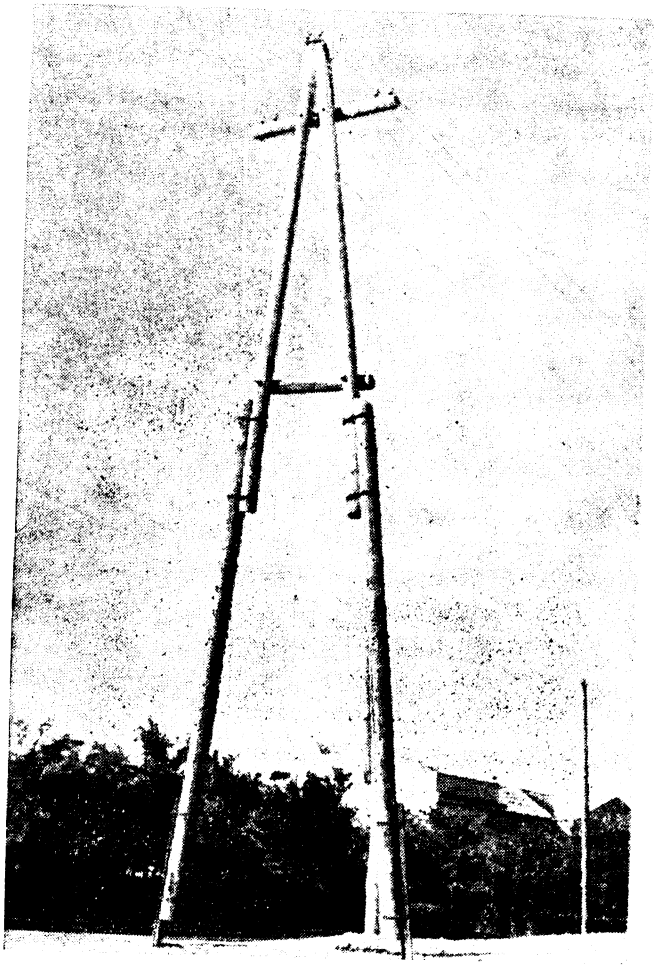
काष्ठ-खम्भ के आड़े-बत्तों ('क्रौस-आर्मस्') के लिए भी काष्ठ का उपयोग किया जाता है। यथार्थ आकार मे काटने और छिद्रण करने के पश्चात् ही इनका उपचार कराना उचित है।

काष्ठ-खम्भ को भूमि पर किसी विशेष प्रकार से स्थापन की आवश्यकता नही होती जैसे कि लोह-खम्भों के लिए आवश्यकता पड़ती है। भूमि पर यदि काष्ठ-खम्भ सड़ जाय, तो उतने ही भाग को निकाल कर एक नये उपचारित काष्ठ-खम्भ की स्थापना की जा सकती है। चित्र ९३ में इस प्रकार से पुनः स्थापन की रीति दिखलायी गयी है। यदि भूमि पर सड़न थोड़ी ही मात्रा में हो तो पट्टी-बन्धन से उसकी सेवा-आयु बढ़ा दी जा सकती है। यदि भूमि पर सड़ने के कारण खम्भ गिर गया हो तो उसका शेष भाग, सड़े हिस्से को पूर्णतया अलग कर, छोटे-मोटे उद्योग-कार्यों मे, जैसे बाड़-खम्भ इत्यादि मे लगाया जा सकता है। अतः काष्ठ-खम्भ का नाशरक्षण मूल्य अन्य प्रकार के धातु-खम्भों से अधिक होता है।

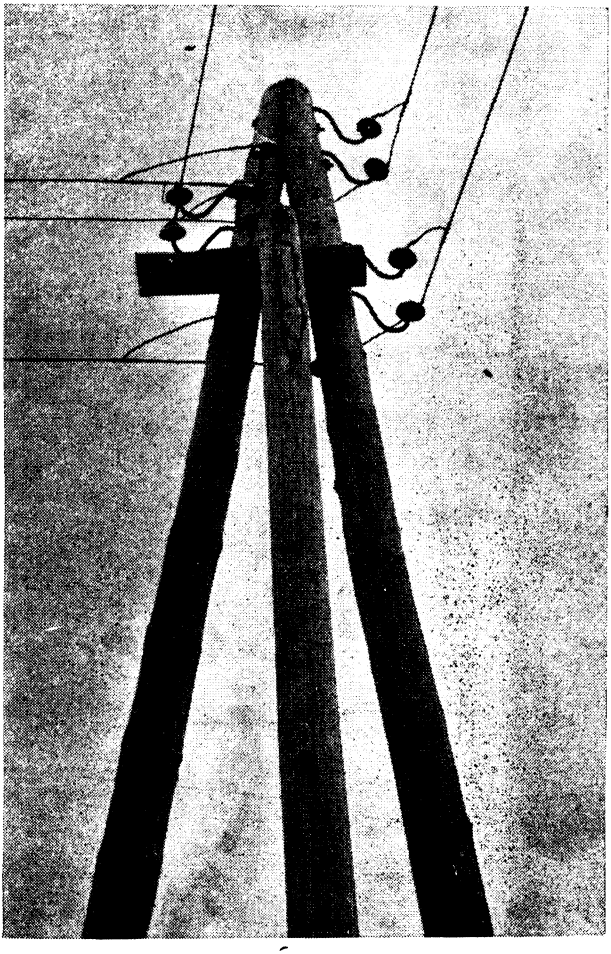
खानों के आधार-स्तम्भों के लिए भी उपचारित काष्ठ उपयुक्त है। खानों मे सड़न अवस्था अत्यधिक रहती है और यहाँ अग्नि का भी भय रहता है। अतः यहाँ के काष्ठ-आधार स्तम्भ के उपचार के लिए अग्निरोधक-परिरक्षी का प्रयोग हितकर है। खानों मे तैलीय परिरक्षी का प्रयोग अग्निभय के कारण कम करते है, यद्यपि यह भय भ्रममूलक है कि तैलीय परिरक्षी से काष्ठ अधिक प्रज्ज्वलनशील हो जाता है।

बाड़-खम्भ के लिए उपचारित काष्ठ अति उपयुक्त है। बाड़-खम्भों का बहुत

बड़ी संख्या में प्रयोग किया जाता है। गृह, उद्यान, रेल-लाइन, कृषिक्षेत्र, इत्यादि की सीमा-निर्धारण के लिए बाड़-खम्भ अति ही उपयोगी हैं। इनके उपचारण की

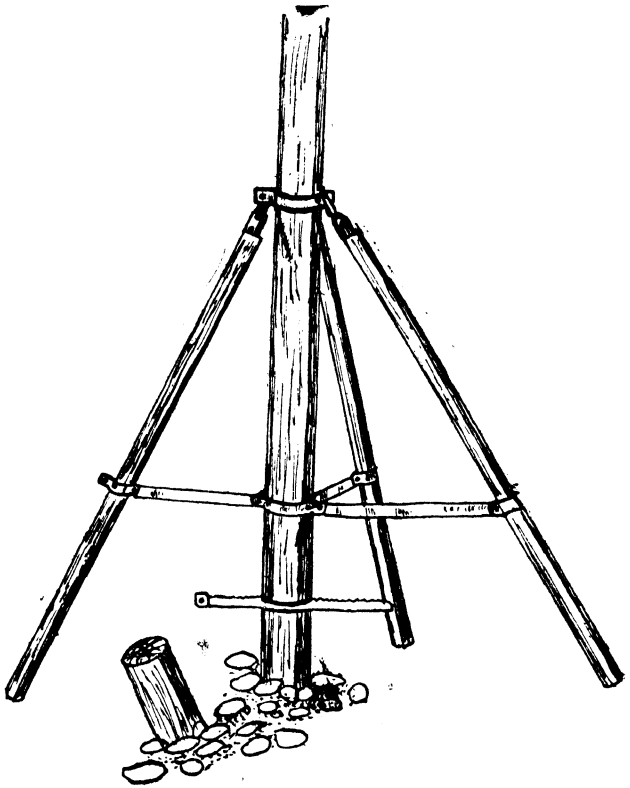


चित्र ९१—काष्ठ खम्भों का एक प्रकार का जोड़। (क)



चित्र ९२—काष्ठ-खम्भों का एक प्रकार का जोड़। (ख)

विधियाँ भी सरल हैं। वन-अनुसन्धानशाला के वनवर्धकीय खंडों में साधारण तापन और शीतन क्रिया से क्रियोजोट-इन्धन तैल द्वारा उपचारित किये कुछ बाड़-खम्भ ३० वर्ष से ऊपर के सेवाकार्य के पश्चात् अब भी अच्छी दशा में हैं। अनुपचारित काष्ठ-खम्भ यहाँ एक या दो वर्ष के अन्दर ही नष्ट हो जाते हैं।



चित्र ९३—काष्ठ-खम्भ का सड़ा भाग निकाल कर पुनः स्थापन की रीति।

३. अन्य संरचनात्मक कार्य—(क) कम खर्चवाले गृह

काष्ठ, बाँस और छादन-घास का प्रयोग बहुत बड़ी मात्रा में गृह-निर्माण के लिए किया जाता है। पूर्वकाल में जब काष्ठ-बाहुल्य था, टीक, साल और देवदार-जैसे प्रसिद्ध

और स्थायी काष्ठ विभिन्न रचनात्मक कार्यों के लिए उपलब्ध थे। इनकी माँग बढ़ने और पुराने वनों के कट जाने के कारण, ये उत्तम-काष्ठ अब अपेक्षित मात्रा में प्राप्य नहीं हैं। यदि हैं भी तो इनकी कीमतें अत्यधिक हैं। अतः द्वितीय श्रेणी के अस्थायी काष्ठों को परिरक्षोपचार से उन्नत कराने की ओर अब ध्यान आकृष्ट किया जा रहा



चित्र ९४—**छत के ट्रसों में छोटे आकार के उपचारित काष्ठ-बत्तों का डबल डिस्क जोड़ से निर्माण।**

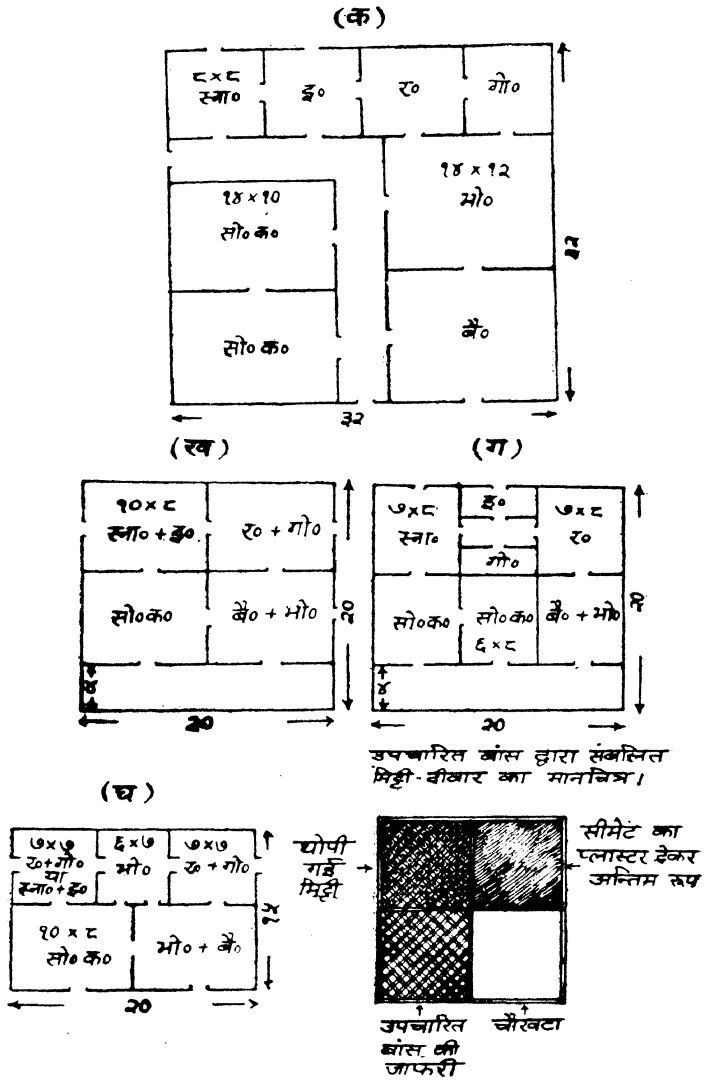
है, (सारणी ३०, परिशिष्ट ११ में देखिए)। जल-विलयन परिरक्षी, विशेषकर बाहर खुले में प्रयोग के लिए बद्धरूपी-जल-विलयन परिरक्षी, इन अस्थायी काष्ठों के उपचार के लिए उपयुक्त हैं। उपचार करने के पश्चात् इन काष्ठों से संतोषजनक परिणाम निकले हैं। अब बड़े परिमाण के काष्ठों का यथोचित आकार के निपीड-रम्भ में उपचार कराना सम्भव है। चौखट, द्वारपट्ट, बल्ली इत्यादि का उपचार करके अनुकूल दशाओं में ६०–७० वर्ष या उससे अधिक सेवा-आयु की प्राप्ति हो सकती है।

विपरीत दशाओं में ४०–५० वर्ष तक भी ये काष्ठ टिकाऊ बना दिये जा सकते हैं। काष्ठ-अभियान्त्रिकी ('टिम्बर इन्जिनियरिंग') ने इतनी प्रगति कर ली है कि उचित प्रकार से रचना करके छोटे परिमाण के काष्ठ-खम्भों से छत और पुलों के लिए ट्रसों का निर्माण किया जा सकता है। इसमें अल्पस्थायी काष्ठ, जैसे कि चीड़, आम, इत्यादि काम में लाये जा सकते हैं। चित्र ९४ में छोटे आकार के उपचारित (एस्क्यू से) काष्ठों के बत्तों को 'डबलडिस्क' जोड़ के छत के द्वारा ट्रसों का निर्माण किया है। चित्र ९५ में, बाँसों द्वारा बनाये गये ट्रसों का एक दृश्य है जिसका ज़मिया मिलिया (जमिया नगर, न्यू देहली) के स्कूल के एक भवन के लिए निर्माण में किया गया था। इसका उपचार क्रियोजोट परिरक्षी से किया गया।

वन-अनुसन्धानशाला, देहरादून ने कम लागत के गृहों को बनाने के लिए परीक्षण किये हैं। इसमें काष्ठ, बाँस और छादन-घास का उपचार करने के पश्चात् प्रयोग किया है। उपचारित काष्ठों के चौखट बनाकर उनमें शोधित बाँस के बत्तों की जाली जड़ कर बाहर से मिट्टी-लेपन किया है जो दीवार का काम दे सकती है। छतें या तो शोधित घास की बनायी हैं या अर्ध-गोल बाँसों को जोड़कर मिलाने से नालीदार छतें बनायी हैं। धुरी के लिए उपचारित पलमाइरा-ताड़ के खम्भ को अर्ध-गोलाकार रूप में अन्दर के कोमल भाग को अलग करके और तब उपचार करने पर प्रयोग किया है। भूमि के लिए उपचारित काष्ठ-गुटकों को बिछाया है। इस प्रकार के भवन अल्प खर्चवाले और सुविधाजनक होते हैं। चित्र ९६ में ऐसी कम खर्चीली गृह-संरचनाएँ दर्शायी गयी हैं। यहाँ इनके अनुविक्षेप ('प्लान') दिये गये हैं। सारणी २८ (१४ ख) में ऐसी कम लागत की संरचनाओं (गृहों) के मूल्य दिये गये हैं।



चित्र ९५--**जमिया मिलिया स्कूल (दिल्ली) के एक भवन के लिए निर्मित बांसों का ट्रस।**



उपचारित बांस द्वारा संबलित मिट्टी-दीवार का मानचित्र।

चित्र ९६—कम लागतवाली गृह-संरचनाओं के अनुविक्षेप (प्लैन)

सारणी–२८

अल्पव्ययी गृह-संरचनाओं में काष्ठ, बाँस और छादन-घास के मूल्य का विवरण, जिसमें उपचार मूल्य भी सम्मिलित है।

गृह-प्रकार (चित्र९६ देखिए)	काष्ठ की अपेक्षित मात्रा (घनफुट)		बाँसो की अपेक्षित मात्रा (सख्या)		छादन घास की अपेक्षित मात्रा	सकल अपेक्षित मात्रा			उपचार के लिए परिरक्षी (एस्क्यू) की मात्रा (पौड मे)			
	दीवारे	ट्रस	दीवारे	छत	पौड मे	काष्ठ (घनफुट) और मूल्य	बाँस (घनफुट) और मूल्य	छादनघास (पौड मे) और मूल्य	काष्ठ के लिए और मूल्य	बाँसो के लिए और मूल्य	छादन घास के लिए और मूल्य	कुल मूल्य
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
१. (क)	७०	९०	२००	१००	१००००	१६०	३००	१००००	४८	९०	३३४	—
						६४०रु०	९०रु०	३१५रु०	४८रु०	९०रु०	३३४रु०	१५१७रु०
२–(ख)	३०	४५	१००	५०	४०००	७५	१५०	४०००	२२५	४५	१३४	—
						३००रु०	४५रु०	१२६रु०	२२.५०रु०	४५रु०	१३४रु०	६७२रु०
३–(ग)	४५	४५	१००	५०	४०००	९०	१५०	४०००	२७	४५	१३४	—
						३६०रु०	४५रु०	१२६रु०	२७रु०	४५रु०	१३४रु०	३३७रु०
४–(घ)	३५	४५	१००	५०	३०००	८०	१५०	३०००	२४	४५	१००	—
						३२०रु०	४५रु०	९५रु०	२४रु०	४५रु०	१००रु०	६२९रु०

ऊपर लिखित मूल्याकन, निम्नलिखित दरो के आधार पर किये गये है।

(१) काष्ठ—चीड़ जाति का ४ रु० प्रति घन फुट के भाव से।

(२) बाँस—६ रु० प्रति २० बाँसो के हिसाब से (१ बाँस, १ घन फुट के बराबर है)।

(३) छादन घास—५० रु० प्रति १००० पूला या १६०० पौड तौल के भाव से।

(४) एस्क्यू परिरक्षी—१ रु० प्रति पौड, जिसमे भाड़ा और उपचार मूल्य भी सम्मिलित है।

(५) परिरक्षी-प्रचूषण (प्रति घन फुट)—बाँसो के लिए ०.३ पौड, प्रति १० पौड छादन घास के लिए ०.३ पौड।

(६) अनुमानित आयु—१५ वर्ष से लेकर २० वर्ष तक।

नयी दिल्ली मे कम-लागत के गृहों की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी (सन् १९५४) मे वन-अनुसन्धानशाला ने एक अल्पव्ययी गृह बनाया था। इसका मुख्य उद्देश्य निम्न श्रेणी के काष्ठों, बाँसों और छादन-घास की उपयोगिता का उपचार-पश्चात् गृह-निर्माण कार्य के लिए प्रदर्शन करना था। अत: यह गृह काष्ठ-नाशक कीट और कवको से सुरक्षित हो गया था। इस गृह के बारे मे क्षेत्र, व्यय इत्यादि के सविस्तर वर्णन की जो सूचना (भारत सरकार की १९५४ की प्रदर्शिनी-स्मारक पुस्तिका—पृष्ठ १३४ के अनुसार) प्राप्त है वह निम्न प्रकार से है—

१. भूमितल-क्षेत्रफल ('फ्लोर-एरिया')		३८६ वर्गफुट
२. न्याधार-क्षेत्रफल ('प्लिन्थ-एरिया')		४२१ वर्गफुट
३. देहरादून मे लागत (व्यय)*		२२०० रुपया
दिल्ली में लागत (व्यय)		२६८० रुपया
	देहरादून	दिल्ली
४. न्याधार-क्षेत्र की दर	५.२५ रु०	६.०० रु०
५. भूमितल-क्षेत्र की दर	५.६३ रु०	६.९४ रु०

*इसमे सेवाओ का व्यय सम्मिलित नही है।

विशिष्टियाँ—

नीव—एक फुट गहरी भूमि के नीचे ईटो की नीव और ९ इच वर्ग भूमि के ऊपर १ फुट तक ९ इंच मोटी ईटों की चिनाई।

ऊपरी रचना—उपचारित चीड़ काष्ठ, छादन-घास और बाँस मे बनाया गया। लम्बाई में किनारे की दीवारे मिट्टी की बनायी गयी जो उपचारित बाँस से

सम्बलित थी। आगे और पीछे की दीवारे काष्ठ और बाँस से बनायी गयी। हाते की दीवार चारो तरफ काष्ठ-पट्टियो ('टिम्बर पेल फैन्सिग') की थी।

दरवाजे और खिड़की—उपचारित काष्ठ के दरवाजे और काचित खिड़कियाँ।

छत—मुख्य-गृह की छत उपचारित घास की थी जो बाँसो के ट्रसो और बत्तो पर अवलम्बित थी। ट्रसों का संभार काष्ठ-खम्भों पर था। अन्दर की छत काष्ठ-तख्तों की थी। द्वारमण्डप, काष्ठ-छत-पट्टों से छादित था और पिछला बरामदा नालीदार बाँसों से।

परिरूपण—बाँस से सम्बलित मिट्टी की दीवारों के बाहर की ओर चूना-सीमेट का लेप था।

फर्श—चौड़ी ईटो की सीमेट-पॉइन्टिग की हुई थी। चित्र (९७) मे यह गृह दिखाया गया है।

वन-अनुसन्धानशाला की काष्ठ अभियान्त्रिकी शाखा ने कुछ काष्ठ-शालिकाओं[1] की रचना की है, जो त्रिकोण-नुमा, कीलो से जड़ित चाप-रूपी है। ऐसी एक शालिका का, कोयले की ईट बनाने की मशीन रखने के लिए निर्माण किया है। इसको बनाने का मूल्य ३.५० रु० प्रति वर्ग फुट न्याधार-क्षेत्रफल की दर से है। इसके सम्बन्ध में सविस्तर सूचना निम्नांकित है।

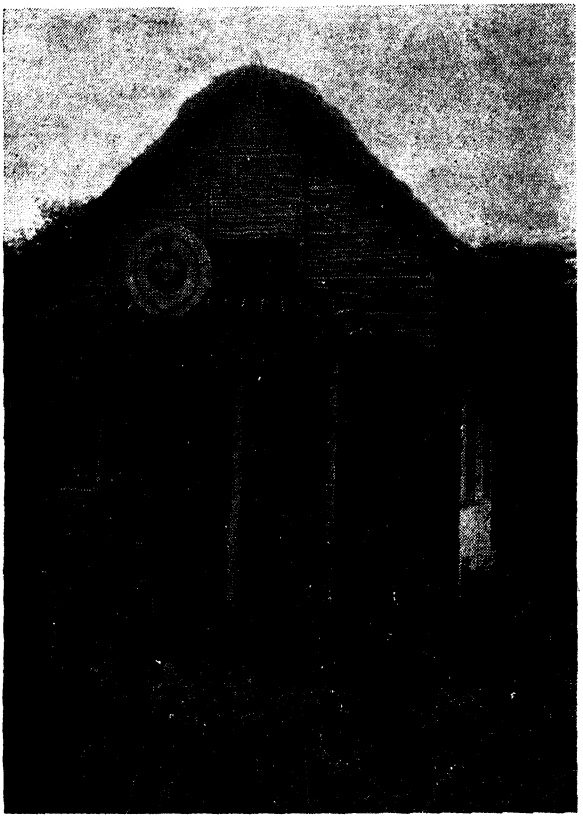
(अ) ट्रस—चाप विस्तार २४ फुट, छदितट (किनारे) की ऊँचाई १३ फुट, धुरी की ऊँचाई १९ फुट, ट्रसों मे परस्पर अन्तर १२ फुट।

(आ) भार—(अनुमानित) मृत्तिका-भार १० पौड प्रति वर्गफुट भूमि अनुविक्षेप ('प्लान') का; वायु-दबाव २ पौड प्रति वर्गफुट छततल का; वायु-चूषण ४ पौड प्रति वर्गफुट छततल का; किनारे मे (छदितट) क्षैतिज दिशा मे ३ फुट बाहर की ओर लिया है। चूँकि ३ फुट ऊँची मेड के अतिरिक्त कोई दीवारें नही है, अतः ट्रसो पर हवा का क्षैतिज दिशा मे भार नही लिया गया है।

(इ) प्रति ट्रस का घनफल—२७ घनफुट, जिसमे आड़े बत्ते और स्थिरक-पट्ट सम्मिलित है। इसका १५ प्रतिशत रूपान्तरण से निरर्थक हो जाने के कारण जोड़ देना चाहिए।

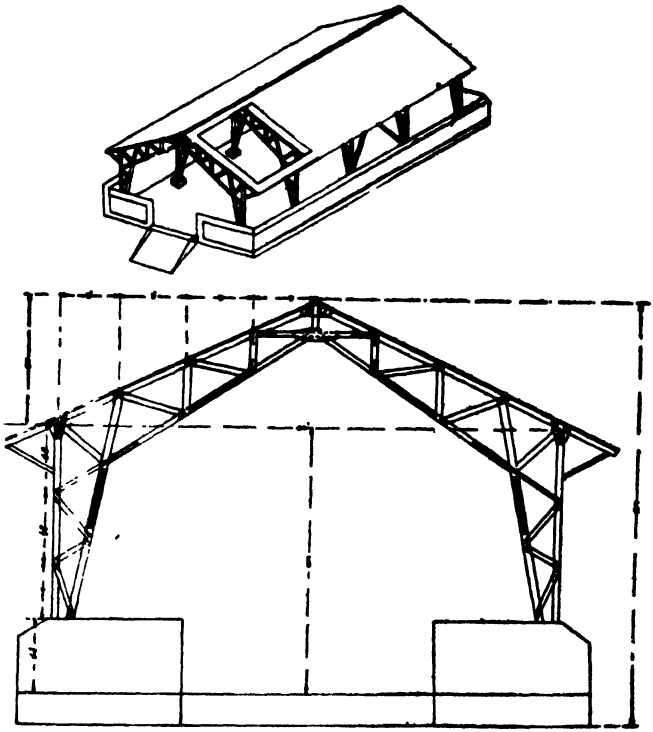
इस शालिका का प्रदर्शन चित्र ९८ मे किया गया है।

1 Sheds.



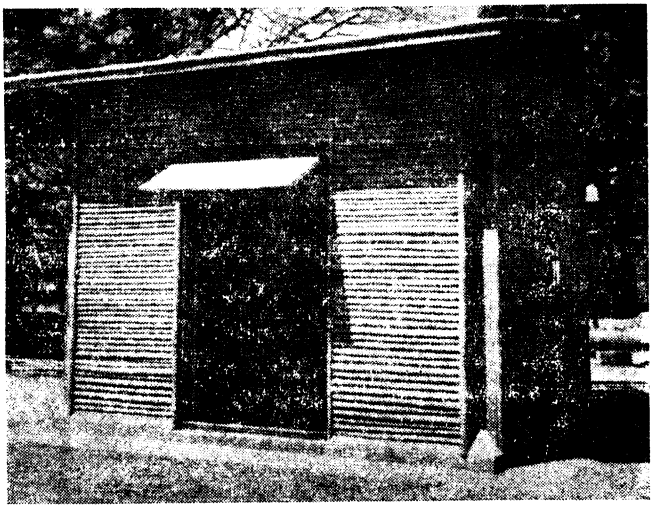
चित्र ९७—१९५४ की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी में प्रदर्शित कम लागत के गृह का नमूना।

वन-अनुसन्धानशाला की काष्ठ-परिरक्षण शाखा ने एक बाँस-गृह बनाया है, जिसमें उपचारित बाँस की अर्धगोल पट्टियों को उपचारित काष्ठ के खम्भों में जोड़-



चित्र ९८—वन-अनुसंधानशाला की काष्ठ अभियान्त्रिकी शाखा द्वारा निर्मित काष्ठशालिका।

कर और अन्दर से मिट्टी की एक मोटी तह देकर दीवारें बनायी है। इसको उपचारित काष्ठ-छत-पट्ट से छादित किया गया है। अन्दर की छत, उपचारित फर-काष्ठ के विशेष प्रकार से बनाये गये टुकड़ों को जोड़कर कश्मीर-नुमा, शोभायुक्त बनायी गयी है। इसको बनाने का व्यय ३.५० रुपया प्रति वर्गफुट के हिसाब से है। चित्र ९९ तथा १०० में यह

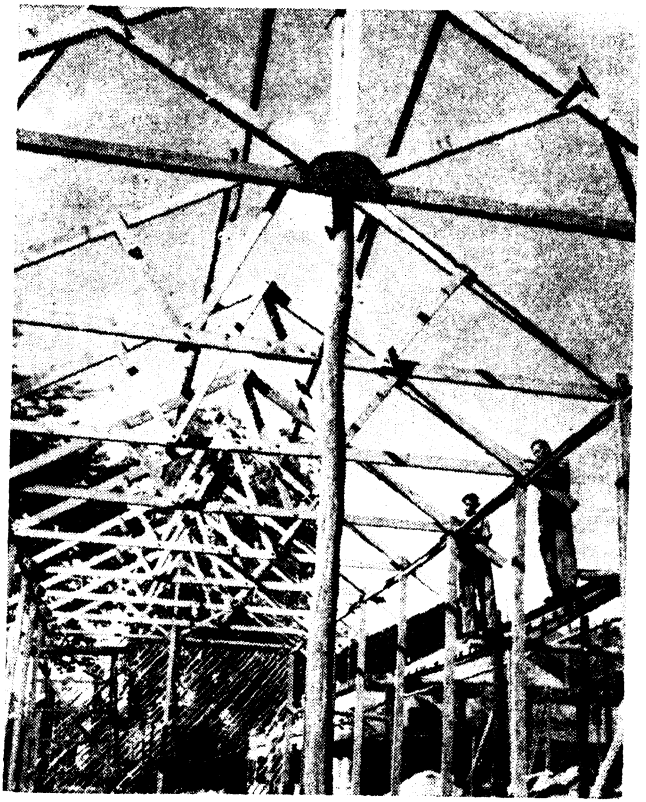


चित्र ९९—वन-अनुसंधानशाला में उपचारित बाँसगृह।



चित्र १००—उपचारित फरकाष्ठ की छत का भीतरी भाग।

गृह दिखलाया गया है। चित्र १०१ में संपूर्ण उपचारित काष्ठ की एक शालिका दर्शायी गयी है, जिसका निर्माण किया जा रहा है। इसके भूमितल का क्षेत्रफल लगभग



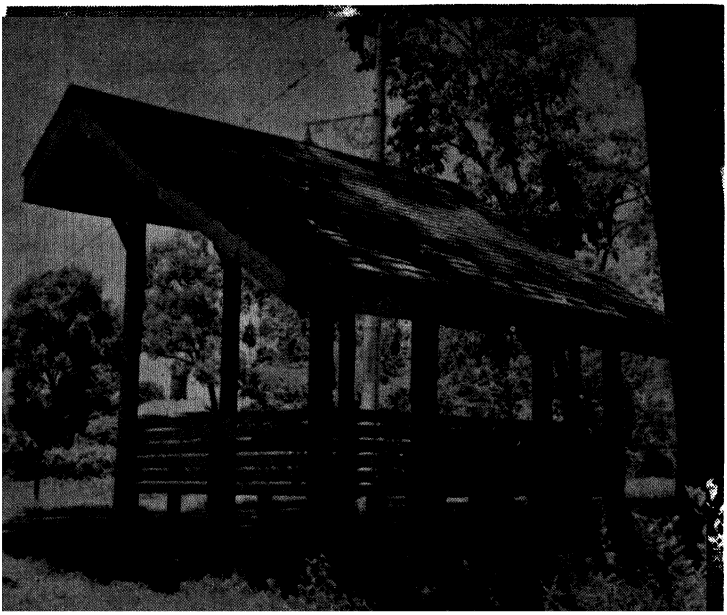
चित्र १०१—वन-अनुसंधानशाला में सम्पूर्ण उपचारित काष्ठ की बड़ी शालिका।

१२०० वर्गफुट है। इसमें विशेषता यह है कि इसके लिए कोई नींव बनाने की आवश्यकता नहीं है और यह केवल उपचारित काष्ठ-खम्भों पर ही आधारित है। चित्र १०२–१०३ में संपूर्ण उपचारित काष्ठ के बने बस-स्टैंड और आराम-गृह दर्शाये गये हैं।

(ख) काष्ठ-नाड ("वुड पाइप") और काष्ठ-कुण्ड ("वुड टैंक्स्")

काष्ठ-नाड

जलगति-संघर्ष की दृष्टि से धातुओं की अपेक्षा काष्ठ अधिक श्रेष्ठ माना गया है। एक लोह-नाड की अपेक्षा काष्ठ-नाड में से २० प्रतिशत पानी अधिक (१२ क) बहता है। इसके अतिरिक्त पपड़ी इत्यादि का, जो लोह में सामान्य प्रकार से जम जाती हैं, काष्ठ में से जलवाहन-क्षमता के लिए कोई प्रभाव नहीं होता। काष्ठ-नाड के ऊपर चूर्णीय



चित्र १०२—सम्पूर्ण उपचारित काष्ठ का बस स्टैंड।

और फॉस्फेट रसायनों के मिट्टी में रहने से भी कोई संक्षारण नहीं होता, और पानी में कार्बनिक अम्ल रहने पर भी काष्ठ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। लोह-नाडों में १५ वर्ष सेवाकाल के पश्चात् अपनी प्रारम्भिक क्षमता की केवल ४० से ५० प्रतिशत क्षमता रह जाती है, जब कि काष्ठ-नाडों में, एक १० साल पुराने लोह-नाड से १५ प्रतिशत

अधिक और २० साल पुराने से २५ प्रतिशत अधिक जल-वाहन-क्षमता (१२ क) रहती है।



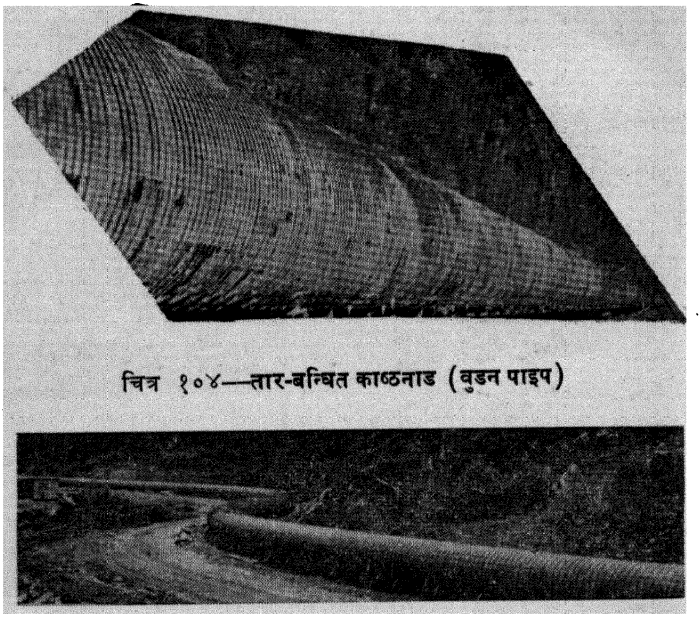
चित्र १०३—उपचारित काष्ठ और उपचारित छादन-घास का बना आराम-गृह।

काष्ठ की लघु ऊष्म-संवाहिता के कारण, काष्ठ-नाडों को ठंड में पाले से बचाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, और यदि उनमें से ऊष्म तरल पदार्थ या वाष्प ले जायी जाय तो उन पदार्थों की ऊष्मा की हानि भी नहीं होती। अतः काष्ठ-नाडों को बिना किसी भय के शीत प्रदेशों में भूमि के ऊपर लगाया जा सकता है।

काष्ठ-नाड बहुधा दो प्रकार की विधियों से (१२ख) बनाये जाते हैं, जो तार-बन्धित ('वायर वून्ड') और संतत-पट्टिका ('कन्टीन्यूअस् स्टेभ') कहलाते हैं।

तारबन्धित नाड में २ इंच × ४ इंच (५ सेन्टीमीटर × १० सेन्टीमीटर) से ६ इंच × ६ इंच (७.५ सेन्टीमीटर × ७.५ सेन्टीमीटर) तक काष्ठ-पट्टिका का प्रयोग करते

हैं। इन पट्टिकाओं में, जिस व्यास का नाड बनाना हो उसके अर्धव्यास के बाहर और भीतर की गोलाई के अनुसार मशीनों द्वारा छीलना और किनारों में जिह्वा और नाली बनानी पड़ती हैं। पट्टिकाओं को जोड़कर, तदनन्तर यन्त्र से तार को कसकर लपेटा जाता है। इनको जोड़ने की कई विधियों में से द्वि-इस्पात विधि सर्वोत्तम है। इनके सिरे काटकर, एक भारी बाह्य इस्पात-चक्र और पतले आन्तर इस्पात चक्र के मध्य में सटकर मिलाये जाते हैं। इस प्रकार से नाड सुविधा के साथ जोड़ दिये जाते हैं, जो पानी में फूलने के कारण दृढ़ता से जुड़ डाते हैं। (चित्र १०४,१०५ देखिए)।

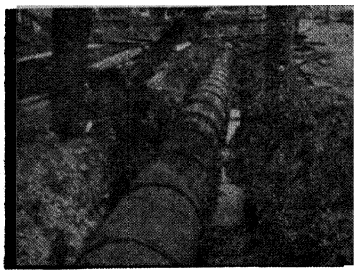


चित्र १०४—तार-बन्धित काष्ठनाड (वुडन पाइप)

चित्र--१०५ अमेरिका में काष्ठनाड का एक दृश्य।

संतत-पट्टिका-नाड में (चित्र १०६) पट्टिकाएँ इस प्रकार काटकर तैयार की जाती हैं कि जब वे मिलायी जायँ तो उनसे अभीष्ट आकार व परिमाण का नाड बन सके। नाड बनाने में पट्टिकाएँ लम्बाई में पास-पास मिला दी जाती हैं। पट्टिकाओं के सिरे के टक्कर भी एक-दूसरे से मिला दिये जाते हैं और टक्करों के मध्य में

पतली दरारें काटकर, उनमें एक पतली धातु की जिह्वा बैठा दी जाती है, जिसके कारण नाड बिना जोड़ के संतत बनी रहती है, इसी कारण से यह संतत अथवा लगातार-पट्टिका नाड कहलाती है। इस संतत-नाड का आन्तर भाग चौरस और चिकना रहने के कारण, इसमें जल-वाहन-क्षमता अन्य प्रकार के नाडों की अपेक्षा अधिक रहती है। पट्टिकाएँ अपने स्थान पर दृढ़ता से दूर-दूर गोल इस्पात पट्टियों से बंधी रहती हैं। इन इस्पात पट्टियों की चौड़ाई और दूरी, काष्ठ-नाड के व्यास और उसके सेवा-काल में आन्तरिक दबाव की व्यवस्था पर निर्भर रहती है।



चित्र १०६—संतत-पट्टिका नाड।

काष्ठ-नाड के निर्माण के लिए काष्ठ को गाँठों और लीसा-प्रणाली से रहित एवं सीधे रेशे का होना चाहिए। अमेरिका में इस कार्य के लिए 'वैस्टर्न रेड सीडार' और क्रियोजोटीकृत 'डगलस फर' का प्रयोग किया जाता है। वहाँ इस प्रकार के कई नाड हैं, जो पानी ले जाने अथवा मलप्रवाह के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। भारत में भी जल-प्रवाह के लिए टीक और साइप्रस (सारकाष्ठ) जैसे काष्ठों का प्रयोग किया जा सकता है, क्योंकि ये स्वभावतः ही स्थायी हैं, और नाड का आन्तर भाग पानी से निरन्तर भरा रहने के कारण ये सड़न अवस्था को भी प्राप्त नहीं होते। नाड के बाहर सुरक्षा के लिए, उच्च उबलन-क्रियोजोट और तत्पश्चात् कोलतार का लेप करना उचित होता है। मल-प्रवाह नाड के लिए उपचारित (क्रियोजोटीकृत) फर, स्प्रूस और देवदार उपयुक्त है।

यह कहा गया है कि अमेरिका का एक निपुण कार्यकर्त्ता १३०० फुट लम्बा नाड काष्ठ-पट्टियों को चढ़ाकर बना सकता है। सबसे बड़ा काष्ठ-नाड उत्तरी अमेरिका में है, जो क्यूबेक में बनाया गया और एक कागज की फैक्टरी के ७०,००० 'हौर्स पावर' शक्ति-गृह के लिए पानी (१२ ग) भेजता है। यह १७९५ मीटर लम्बा और ५.३ मीटर व्यास का है। इसको बनाने में १२ सेन्टीमीटर मोटी क्रियोजोटीकृत काष्ठ-पट्टियाँ प्रयुक्त की गयी हैं।

काष्ठ-नाड का मूल्य लोहे के नाड से सस्ता है। 'अमेरिकन सोसाइटी ऑफ सिविल इन्जीनियर्स' की कार्यवाही के ग्रन्थ ३१ में शूलर् का कथन है—"एक साधारण गणना के आधार पर, 'सिटिज़न वाटर कम्पनी' को उसकी मुख्य नाली के लिए काष्ठ-नाड प्रयोग में लाने से ११ लाख डालर से कम बचत नहीं रही। इस पूँजी

पर ५ प्रतिशत व्याज की दर से, प्रत्येक ५ या ६ वर्ष में मुख्य नाड का नवीकरण हो सकता है अथवा द्विगुणन हो सकता है ।"

काष्ठ-नाड को जिन मुख्य उपयोगों मे लाया जा सकता है, वे हैं—जल-विद्युत्-विकास, सिंचाई, जलशक्ति-कार्य, जलद्वार, मलवाहन, जलोत्सारण, कागज के कारखाने, और रासायनिक उद्योग ।

काष्ठ-कुण्ड

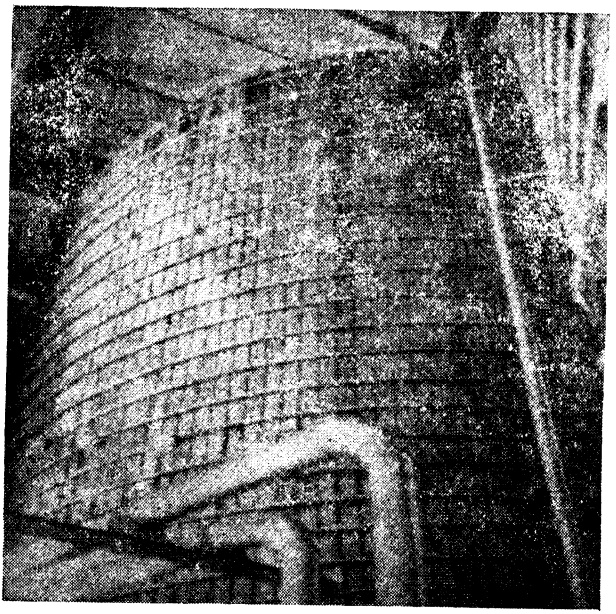
रासायनिक उद्योग में काष्ठ को निर्माण-सामग्री के लिए इसी कारण महत्त्व दिया जाता है कि वह संक्षारणरोधी होता है । काष्ठ की शारीर रचना से ही उसमें संक्षारणरोधी गुण आ जाते हैं । अन्य निर्माण-पदार्थ संक्षारण से आक्रान्त हो जाते हैं । आर्द्रता, समुद्री हवा और रासायनिक शालाओं मे लोह मे मोर्चा लग जाता है या सक्षारण हो जाता है । काष्ठ मे ऐसा नही होता। सक्षारण के कारण अत्यन्त हानि होती है । अनुमान (१२ घ) लगाया गया है कि ससार के लोह-उत्पादन का ४० प्रतिशत भाग सक्षारण द्वारा नष्ट हो जाता है । सन् १९२१ मे जर्मनी मे जब ३ करोड़ ५० लाख टन लोहा तैयार किया गया था, यह अनुमान था कि १ करोड़ १० लाख टन मोर्चा लगने से नष्ट हो गया होगा । धातुओ की सरचना मे एक प्रकार का कच्चा माल या जारेय तत्त्व ('ऑक्साइड') होता है, अतः उनमे जारेय आकार मे परिवर्तित हो जाने की प्रवृत्ति होती है । इसके विपरीत काष्ठ हवा में स्थायी रहता है । अतः काष्ठ, सक्षारण-रोधी होने के कारण, वातिशाला, कोष्ठ, कुण्ड और रासायनिक-पात्र के लिए अत्यन्त उपयोगी पदार्थ है । काष्ठ-साधित्र, कृषि और दुग्ध सम्बन्धी पदार्थो के उत्पादन और सचय के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं ।

काष्ठ विशेष प्रकार से अम्ल-रोधी होता है । कार्बनिक अम्लों का—जसे कि गैलिक, थैलिक, सैलीसिलिक, स्टियरिक और इसी प्रकार के अन्य अम्ल—काष्ठ पर व्यवहारतः कोई प्रभाव नही पड़ता । काष्ठ का प्रयोग नियमित रूप से एसीटिक अम्ल और सिरके के उत्पादन के पात्र के लिए होता है ।

एक कथन के अनुसार सयुक्त राज्य अमेरिका में १ लाख १७ हजार से भी अधिक काष्ठ-कुण्ड विभिन्न प्रयोगो के लिए विद्यमान हैं । वहाँ काष्ठ-पात्र ३.५ गुने वातिक-दबाव और ७१० मिलीमीटर पारे के शून्यक को सहन करने के योग्य बनाये जा सकते है । यह भी कहा गया है कि वहाँ १५ मीटर व्यास और १९ लाख लीटर धारिता के कुण्ड विद्यमान हैं । यूरोप मे सबसे बड़ा काष्ठ-कुण्ड कौपनहैगन की एक एसीटिक अम्ल निर्माणशाला मे बना है । यह 'औरीगोन पाइन' का बना है । इसके तल का व्यास ८.५ मीटर है, ऊँचाई ७.५६ मीटर, सिरे का व्यास ७.८ मीटर और

आयतन ३ लाख ७० हजार लीटर है। इसका भार ४० टन है, जिसमें से ४.५ टन भार लोहपट्टियों के कारण है। कैनेडा में भी ५० फुट व्यास के और २ लाख ७५ हजार इम्पीरियल गैलन के कुण्ड हैं।

काष्ठ-कुण्ड का निर्माण काष्ठ-नाड के सदृश ही किया जाता है। नाड-पट्टियों की तरह ही इसकी पट्टियाँ सही बना दी जाती हैं, किन्तु इसके नीचे के सिरों में नतोदर की दिशा की ओर गोलाकार खाँचा रहता है, जिसमें तल का भाग समा सके। तल के



चित्र १०७—**अमेरिका की पत्रनिर्माणशाला में प्रयुक्त काष्ठ की टंकी।**

पट्ट २ इंच (५ सैन्टीमीटर) से ४ इंच (१० सैन्टीमीटर) तक या उससे अधिक मोटाई के होते हैं। ये ठीक नाप के काटकर उचित प्रकार से बैठा दिये जाते हैं, जिससे कि खड़ी पट्टियों के गोल खाँचों में भी बैठ जायँ। कुण्ड को इस्पात के डंडे बाँधे रहते हैं। अम्ल और रसायनों के लिए पट्टियाँ ८ इंच (२० सैन्टीमीटर) और तल १२ इंच (३० सैन्टीमीटर) तक मोटे होते हैं। न भिगानेवाले, अक्लेद्य तैल-जैसे पदार्थ के कुण्ड

के लिए, पट्टियों मे छोटी-छोटी कुल्याएँ होती है जो पानी के नल से सबद्ध रहती हैं। इसके फलस्वरूप काष्ठ भीगा रहता है। साधारणतः यह पाया गया है कि शकुधारी काष्ठ, कुछ उरुपाती काष्ठो की अपेक्षा, रसायनो के प्रभाव को सहन करने मे अधिक समर्थ होते हैं। क्योकि उरुपाती काष्ठ सरन्ध्र होने के कारण सरलता से तरल पदार्थ और हवा को ग्रहण कर लेते है, जिसके फलस्वरूप ये आक्रमण का पात्र बन जाते हैं। अतः यह उचित होगा कि कुण्डों के लिए अप्रतिचारी काष्ठो का ही प्रयोग किया जाय। इन काष्ठो के ऊपर जहाँ उचित हो, विशेष प्रकार से उपचार करना लाभदायक सिद्ध हो सकता है। बहुधा अम्लो के और अन्य रसायनों के कुण्ड के लिए एस्फौल्ट, मोम, लाख, सश्लिष्ट उद्यास ('सिन्थैटिक रेजिन्स्'), रबड़ इत्यादि का लेप हितकर होता है। चित्र १०७ मे काष्ठ-कुण्ड का प्रदर्शन किया गया है।

रासायनिक उद्योगो मे कुण्ड, नाद और पात्रों के लिए निम्नलिखित काष्ठ परीक्षणार्थ उपयुक्त समझे गये हैं।

क्रमांक	पारिभाषिक नाम		व्यापारिक नाम
१.	**एबिस पिन्ड्रो**	...	फर
२.	**एलबीजिया प्रोसीरा**	...	सफेद सिरिस
३.	**अर्टोकार्पस जाति**	...	—
४.	**करापा मौल्यूसेन्सिस्**	...	पुसुर
५.	**सीड्रस देवदारा**	...	देवदार
६.	**कुप्रूसस् टौरूलोसा**	...	साईप्रस्
७.	**डलबर्जिया सिसू**	...	शीशम्
८.	**डाइसौक्सीलम् मैलैबैरिकम**	...	सफेद सीडार
९.	**ग्रीविया टिलीफोलिया**	...	धामन
१०.	**लैगरस्ट्रोमिया फ्लौसरैजीनी**	...	जारूल
११.	**लैगरस्ट्रोमिया पार्वीफ्लोरा**	...	लैन्डी
१२.	**लैगरस्ट्रोमिया टोमैन्टोसा**	...	लीजा
१३.	**मैशीलस् मैक्रैन्था**	...	मैशीलस्
१४.	**पाइनस् इक्सैल्सा**	...	कैल
१५.	**पाइनस् रौक्सबर्गी**	...	चीड़
१६.	**टैक्टोना ग्रैन्डिस्**	...	टीक
१७.	**टर्मिनेलिया पैनीक्यूलाटा**	...	किन्डल

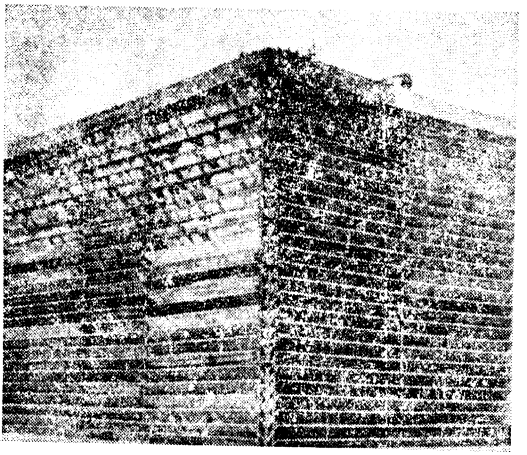
(ग) शीतन–स्तम्भ ('कूलिंग टवर्स') पुल, नाव, रेलडिब्बे, मोटर या बस-काय, कृषि और उद्यान कार्य, उपस्कर, और आपट्टित काष्ठ इत्यादि

शीतन-स्तम्भ

आधुनिक काल मे जल-शीतन-स्तम्भ के लिए काष्ठ का प्रयोग बढता जा रहा है, जहाँ जल की मात्रा औद्योगिक कार्य के लिए सीमित हो, शीतन-स्तम्भ का कार्य पानी को बिजलीघर, बडे इजन और सघनक के लिए ठडा करने का होता है, और तत्पश्चात् यह ठंडा पानी पुनः मशीनो को ठंडा करने के लिए परिवाहित किया जाता है। पानी की यह शीतन अवस्था, अंशत· जल की ऊष्मा वायु मे भेज देने और मुख्यतः जल के वाष्पीकरण से प्राप्त हो जाती है। अतः इस शीतन अवस्था की पूर्ति के लिए पानी और वायु का दक्षतापूर्वक मिलन होना चाहिए। यह व्यवस्था तभी हो सकती है जब कि पानी को स्तम्भ के ऊपर से झरने की तरह गिरने दिया जाय। इस पानी के बहाव का वेग रोकने के लिए स्तम्भ मे पट्टियों के कई स्तर क्षैतिज दिशा मे लगे रहते है, जिससे कि पानी का वितरण समानता से हो, और वाष्पीकरण मे सहायता मिले। ये पट्टियाँ कई पदार्थो जैसे कि कंक्रीट, सीमेंट, संवलित कच, इस्पात, इत्यादि से बना दी जा सकती हैं। परन्तु इनके लिए काष्ठ को ही महत्त्व दिया जाता है, क्योकि यह सस्ता है और इसका शक्ति/भार की दृष्टि से उच्च अनुपात होता है। काष्ठ को किसी भी आकार मे परिवर्तित करने मे सरलता रहती है। निरन्तर जल-परिवहन होने के कारण काष्ठ मे एक प्रकार का दोष उत्पन्न हो जाता है, जिसे कोमल अपक्षय ('सौफ्ट् रौट') कहते हैं। यद्यपि यह काष्ठनाशक अपक्षय नही है, तथा।ि काष्ठ की शक्ति पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है और कुछ काल मे काष्ठ-नाशक कवको के आक्रमण की सम्भावना हो जाती है। अतः काष्ठ को कोमल अपक्षय से सुरक्षित रखने के लिए परिरक्षी द्वारा उसका उपचार करना आवश्यक है। विदेशो मे इस प्रकार से काष्ठ-उपचार के लिए विशिष्टियाँ बनायी गयी हैं। ब्रिटिश राज्य के केन्द्रीय विद्युत प्राधिकारी ने बद्धरूपी जलविलेय परिरक्षी को इस कार्य के काष्ठ-उपचार के लिए उपयुक्त बताया है। इसका काष्ठ मे न्यूनतम १.२५ पौड (शुष्क-लवण) प्रति घन-फुट, अर्थात् २० किलोग्राम प्रति घनमीटर, प्रचूषण होना अनिवार्य है।

जैसे कि काष्ठ-नाड और कुण्ड के लिए शंकुधारी काष्ठ उपयुक्त है, उसी प्रकार शीतन-स्तम्भ के लिए भी शंकुधारी काष्ठ ठीक है। भारत मे इस कार्य के लिए

विदेशों से आयात किये गये उपचारित काष्ठ ही बहुधा प्रयुक्त किये गये हैं। कहीं-कहीं टीक (सारकाष्ठ) के प्रयोग से भी सफलता प्राप्त हुई है। परन्तु यदि शंकुधारी काष्ठ बद्धरूपी जलविलेय परिरक्षी से उपचारित किये जाने के बाद प्रयोग में लाये जायँ तो अत्यन्त सफलता प्राप्त हो सकती है। चित्र १०८ में उपचारित काष्ठ का बना एक शीतन-स्तम्भ दर्शाया गया है।

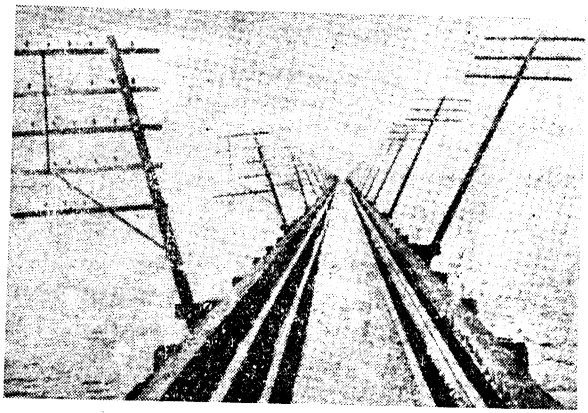


चित्र १०८—**उपचारित काष्ठ का बना शीतन-स्तंभ।**

पुल

इस कार्य के लिए उपचारित काष्ठ के महत्त्व के सम्बन्ध में पिछले प्रकरणों में उल्लेख किया गया है। यहाँ इस पर अधिक प्रकाश नहीं डाला जायगा। यहाँ पर केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में जानपद अभियन्ताओं ('सिविल इन्जीनियर्स) में उपचारित-काष्ठ के पुलों की प्ररचना करने की प्रथा प्रचलित है। चूँकि ये पुल उस देश के ऐसे दूरवर्त्ती भागों में जगह-जगह बनाये जाते हैं जहाँ निपुण कारीगरों का अभाव होता है, अतः इनकी पूर्व-विरचना की जाती है, जिसके लिए उपचारित काष्ठ एक आदर्श निर्माण-पदार्थ गिना जाता है, क्योंकि उपचारित काष्ठ शक्ति/भार के अनुपात के विचार से अति उपयोगी वस्तु है। वहाँ संसार में सबसे लम्बा और पुराना उपचारित (क्रियोजोटीकृत) काष्ठ का बना पुल ('ट्रसल') पौन्टचार्टेन झील पर बनाया गया था। यह पुल ५.८२ मील लम्बा है जिसमें रेल की लाइन दक्षिण से न्यू और-

लियन्ज को आती है। यह विद्यमान काष्ठ-रचनाओं में एक अत्यन्त ही प्रशंसनीय संरचना है। इस पुल का निर्माण फरवरी १८८२ में आरम्भ हुआ था और सितम्बर १८८३ में समाप्त हुआ। पुल का मुख्य भाग जो झील को पार करता है, ५४ वर्ष पश्चात् (सन् १९३७ में) भी सेवाकार्य के लिए समर्थ है। उसमें क्रियोजोटीकृत 'यलो पाइन' काष्ठ का प्रयोग किया गया था। उसमें काष्ठ-स्तम्भ ५० से ६८ फुट तक नीचे गाड़ दिये गये, जो भूमितल में ४० से ४८ फुट तक घुसाये गये थे और पानी की गहराई ८ से १० फुट तक थी। ये काष्ठ-स्तम्भ सिरे में चौकोर काट दिये गये थे जिनके ऊपर क्षैतिज दिशा में १२×१४ इंच की टोपियाँ स्थिर की गयी। इसके ऊपर पट्टतल और तत्पश्चात् रेलवे-स्लीपर बिछा दिये गये थे। चित्र १०९ में यह पुल दिखलाया गया है।



चित्र १०९—**अमेरिका की एक झील पर बना संसार का सबसे बड़ा उपचारित काष्ठ का पुल, जिसके ८० प्रतिशत से अधिक अंग ५४ वर्ष की सेवा के बाद भी सुरक्षित हैं।**

भारत में भी ग्राम-विकास-योजना के लिए सड़कें बनाने में नदी-नालों के ऊपर उपचारित काष्ठ के पुल आरम्भ में और अन्त में कम खर्चवाले सिद्ध हो सकते हैं। इन पुलों पर अन्य निर्माण-पदार्थों (सीमेंट, लोहा इत्यादि) की अपेक्षा संधारण व्यय भी कम रहता है, क्योंकि निपीड-उपचार करने के पश्चात् काष्ठ को किसी भी प्रकार से लेपित करने अथवा देख-रेख की कम आवश्यकता पड़ती है।

जहाज और नाव

आधुनिक काल मे उपचारित काष्ठ का प्रयोग नौ-निर्माण के लिए अधिकाधिक होता जा रहा है। जहाजों के नीचे के कमरो मे अधिक आर्द्रता रहती है और वायु-सवहन का अभाव रहता है, जिसके कारण कवको के आक्रमण की अनुकूल दशा बनी रहती है। बाह्य दिशा मे भी सामुद्रिक कीटो के आक्रमण की निरन्तर आशका रहती है। अतः यह अनिवार्य है कि ऐसे स्थानो मे प्रयोग किये जानेवाले काष्ठो का उचित प्रकार से उपचार किया जाय। इस कार्य के लिए वद्धरूपी जलविलेय या प्रागारिक विलायकरूपी परिरक्षी का प्रयोग उपयुक्त है, क्योकि इन परिरक्षियो से उपचार करने के पश्चात् काष्ठ पर रगलेप किया जा सकता है।

भारत मे समुद्रतटीय स्थानो मे हजारो की सख्या मे मछलीमार नावों ('कैटे-मैरोन') का निर्माण किया जाता है। ये नावे अस्थायी और हलके काष्ठो की बनायी जाती है, अतः कवक और समुद्री कीटो के आक्रमण के कारण इनकी आयु अत्यन्त कम होती है। इन काष्ठो का यदि बद्ध-रूपी जल-विलेय या प्रागारिक विलायकरूपी परिरक्षी से उपचार किया जाय तो इनकी आयु कई गुना बढ़ा दी जा सकती है।

रेलडब्बे, मोटर या बस-काय

ठोस या आपट्टित काष्ठ रेल-डब्बे, मोटर या बसकाय के लिए अत्यन्त उपयोगी पदार्थ है। पूर्वकाल मे टीक-जैसे स्थायी काष्ठो का प्रयोग इनके निर्माण के लिए किया जाता था। यद्यपि टीक काष्ठ एक गुणसम्पन्न स्थायी काष्ठ है, तथापि इसमें भी रेलडब्बो के स्नानागार आदि नम-स्थानो मे कवको के कारण क्षति होती पायी गयी है। अतः इसका भी योग्य परिरक्षी से उपचार करना अत्यावश्यक है। उप-चारिता की दृष्टि से यह काष्ठ परिरक्षी से अप्रवेशनीय है, परन्तु तीव्र परिरक्षी के गहरे लेपन से इसकी आयु बढ़ा दी जा सकती है। वर्त्तमान समय मे टीक काष्ठ का मूल्य अधिक बढ़ गया है। यह अपेक्षित मात्रा मे प्राप्त भी नही है और दक्षिण-पूर्व एशिया के बर्मा जैसे देशो से इसका आयात किया जा रहा है, जिसके लिए विदेशी मुद्रा की आवश्यकता है।

काष्ठ-परिरक्षण के अन्वेषण-कार्य से यह सिद्ध हो चुका है कि आयु-वृद्धि की दृष्टि से अस्थायी काष्ठ, उपचार करने के पश्चात्, टीक का स्थान ले सकते है और तदनन्तर उनसे टीक से भी अधिक सेवा-आयु प्राप्त हो सकती है। अतः द्वितीय श्रेणी अर्थात् अस्थायी काष्ठों का उपचार किये जाने पर वे रेलडब्बे, बस इत्यादि के ढाँचे

के लिए लाभप्रद होंगे। इनके लिए भी बद्धरूपी जल-विलेय और प्रागारिक विलायकरूपी परिरक्षी उपचार के लिए उपयुक्त होते है।

कृषि और उद्यान-कार्य

किसान काष्ठो को अनेक प्रकार के उपयोग मे लाता है। वह केवल गृहनिर्माण, बाड-खम्भ इत्यादि के लिए ही नही, किन्तु क्षेत्र-फाटक, गोशाला, कृषि-यन्त्र और अन्य कार्यो के लिए भी काष्ठ का प्रयोग करता है। काष्ठ के अतिरिक्त बाँस, छादन-घास और ताड के पत्तो का भी पर्याप्त मात्रा मे प्रयोग किया जाता है। अनुपचारित दशा मे इन सबकी सेवाआयु अत्यन्त कम रहती है। परिरक्षी से इनका उपचार किया जाय तो इनकी आयु बढ जाने पर किसानो की आर्थिक व्यवस्था सुधर सकती है। इसी प्रकार उद्यानविज्ञ द्वारा भी बीज-बक्सो, हरित-गृहो, और विविध उद्यान-कार्यो में प्रयोग किये जानेवाले काष्ठो का उपचार कराने पर उनकी सेवाआयु कई गुनी बढ सकती है। अत. काष्ठ-उपचार विधियों को अपनाने से आर्थिक दशा मे उचित लाभ प्राप्त हो सकता है। इसी प्रकार सुअर-गृह, मुर्गी-खाने इत्यादि के निर्माण के लिए भी काष्ठ का उपचार किया जाना लाभप्रद है।

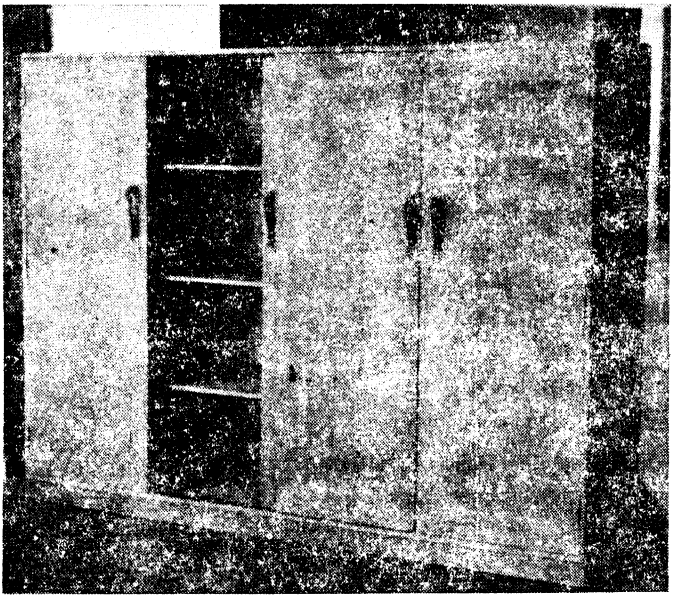
उपस्कर

यह सुज्ञात है कि उपस्कर के लिए नामी काष्ठ टीक, शीशम, रोजवुड इत्यादि हैं। पर ये काष्ठ अधिक मात्रा मे प्राप्य नही है और इनका मूल्य भी बढ़ता जा रहा है। वन-अनुसन्धानशाला की काष्ठ-परिरक्षण और काष्ठ-सशोषण शाखाओ ने निम्न जाति के काष्ठो का उपचार और भट्ठी मे सशोषण कराने के पश्चात् उपस्कर बनाये है, जिनकी सेवा-आयु नामी काष्ठो से अधिक बना दी जा सकती है। ये उपस्कर अल्प व्यय मे बन जाने वाले है। उदाहरण के लिए सारणी २९ मे निम्नजाति के काष्ठो के उपचार और सशोपण-पश्चात् बनाये गये उपस्करो और नामी काष्ठो के बने उपस्करों के मूल्य मे तुलना की गयी है। चित्र ११० मे उपाचार किये गये निम्न जाति के काष्ठ का उपस्कर दर्शाया गया है।

स्तर और आपट्टित काष्ठ

वर्तमान समय मे स्तरकाष्ठ ('प्लाइवुड') और आपट्टित काष्ठ ('लैमीनेटेड वुड') का प्रयोग अधिकाधिक होता जा रहा है। गाँठदार होने से काष्ठ निर्बल हो जाता है, जिस स्थान पर गाँठ हो वहाँ से उसके टूटने का भय रहता है। काष्ठ को पतली पट्टियों या स्तरो मे खडित कर और उसको पुनः श्लेष ('ग्लू') से जोड़कर यह दोष मिटा

दिया जा सकता है। इसे आपट्टित काष्ठ कहते हैं। इसका अन्वेषण-काय वन-अनुसन्धान-शाला, देहरादून की संयुक्त काष्ठशाला ('कम्पोज़िट वुड ब्रांच') में हो रहा है। बड़े-बड़े कारखानों और शालाओं के लिए आपट्टित काष्ठ को लम्बे चाप-विस्तार



चित्र ११०—**आम की उपचारित लकड़ी की बनी आलमारी।**

के आकार में प्रयोग करते हैं। इनकी आयु बढ़ाने के लिए परिरक्षोपचार करना आवश्यक है। नावों के लिए जल-रोधी श्लेप से जुड़े स्तरकाष्ठ का उचित परिरक्षी से उपचार कराने से लम्बी सेवा-आयु प्राप्त हो सकती है। आपट्टित काष्ठ श्लेष से जोड़ने के पूर्व जल-विलयन परिरक्षी से उपचारित किया जाता है। यदि जल-रोधी श्लेष का प्रयोग किया गया हो, तो आपट्टित काष्ठ बनाने के पश्चात् निपीड़-क्रिया द्वारा भी उपचार किया जाता है।

काष्ठ-पेटियों के लिए भी काष्ठ का उपचार करना आवश्यक है। ऐसा करने से उनकी आयु अधिक समय तक बढ़ा दी जा सकती है। इसके उपचार के लिए मन्द-निपीड़-संयन्त्र पर्याप्त हैं।

उदाहरणार्थ, उत्तर प्रदेश में विभिन्न जाति के काष्ठों के स्थायित्व, उपचारिता, प्राप्यता, मूल्य और विविध प्रयोगों के सम्बन्ध में सूचना, सारणी ३२ (परिशिष्ट १२) में दी गयी है।

सारणी–२९

टीक, शीशम, उपचारित चीड़ और उपचारित आम के बने उपस्कर के मूल्यों की परस्पर तुलना

उपस्कर-प्रकार	अनुपचारित टीक (सारकाष्ठ) का बना	अनुपचारित शीशम (सार काष्ठ) का बना	उपचारित (एस्क्यू से) चीड़ का बना	उपचारित (एस्क्यू से) आम का बना
	रुपयों में	रुपयों में	रुपयों में	रुपयों में
१	२	३	४	५
आलमारी–८×५.५ फुट×१३ इंच चौड़ी, उदग्र दिशा में खानों के ३ भाग, किनारों में दरवाजों, कब्जों पर और मध्य में रेलों पर खिसकने वाले दरवाजे।	२९०	२४०	१६१.८८	१८१.८८
मेज—	६५	४५	३०	३०
कुर्सी—	१८	१२.५०	९.३७	९.३७
कार्यालय मेज–(६×३×२.५ फुट)	—	—	१२१	—

टिप्पण—चीड़ और आम के उपस्कर के मूल्यांकन में, अनुपचारित काष्ठ व्यय के अतिरिक्त, उपचारण व्यय ०.५६ रु० प्रति घनफुट और उपचार-पश्चात् संशोषण व्यय ०.२५ रु० प्रति घनफुट की दर से सम्मिलित किया गया है।

अध्याय ३

काष्ठ-उपचार के अतिरिक्त भी काष्ठ को सुरक्षित रखने के साधन

१. कवकों से बचाव

जैसे कि भाग २ के अध्याय २ में वर्णन किया जा चुका है, कवकों के विकास के लिए चार मुख्य शर्तें हैं। ये हैं —(१) प्रचुर खाद्य (अस्थायी काष्ठ), (२) पर्याप्त आर्द्रता, (३) पर्याप्त वायु (ऑक्सिजन) और (४) अनुकूल ताप।

इन चारों में आर्द्रता का नियंत्रण करना सबसे सरल और व्यवहार्य है। काष्ठ-विनाशक कवकों के आक्रमण के लिए कम से कम २० प्रतिशत आर्द्रता (भट्ठी में सुखाये हुए भार के आधार पर) की आवश्यकता है। भली प्रकार संशोषित काष्ठ की आर्द्रता २० प्रतिशत से बहुत कम होती है, अतः ऐसा काष्ठ कवक द्वारा अपक्षय से तब तक सुरक्षित रहता है जब तक कि और अधिक आर्द्रता ग्रहण न कर ले। बहुधा अपक्षय तभी आरम्भ होता है जब काष्ठ प्रयोग में लाने के उपरान्त आर्द्रता ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार आर्द्रता का प्रचूषण दोषपूर्ण रचनात्मक विधियों से होता है। अतः अपक्षय का नियन्त्रण करने के लिए यह मूल नियम है कि काष्ठ को सदा शुष्क रखने की व्यवस्था होनी चाहिए।

गृह या अन्य संरचनाओं में काष्ठ-अपक्षय रोकने के लिए आधारभूत १० नियम संक्षेप में नीचे दिये जाते हैं।

(१) भली प्रकार जलोत्सारित भूमि पर गृह-निर्माण होना चाहिए (चित्र १११ देखिए);

(२) काष्ठ सदा शुष्क अवस्था में रहे;

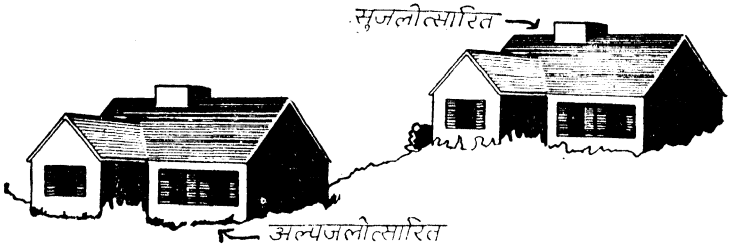
(३) अनुपचारित काष्ठ को भूमि, कंक्रीट और चिनाई के संस्पर्श में न लाया जाय;

(४) नम स्थानों में वायु के संवहन की व्यवस्था रखी जाय;

(५) अनुपचारित काष्ठ को सड़े काष्ठ के संस्पर्श में न लाया जाय;

(६) कंक्रीट या चिनाई के ऊपर काष्ठ को रखने के पूर्व गरम टार या एस्फौल्ट

का गाढ़ा लेप लगाना आवश्यक है। यह लेप वाष्प-अवरोधक ('वेपर बैरियर') कहलाता है।



चित्र १११—**सुजलोत्सारित तथा अल्पजलोत्सारित भूमि पर गृह निर्माण।**

(७) जिन स्थानों पर अपक्षय का भय हो वहाँ केवल उपचारित काष्ठ या स्थायी काष्ठ (सारकाष्ठ) का ही प्रयोग किया जाय;

(८) गृहों के नीचे रिक्त स्थानों में कंक्रीट या सीमेंट भरा जाय;

(९) छतों और बाहर की दीवारों के परनाले सदा स्वच्छ रहें;

(१०) छिद्र या दरारों से जल चूनेवाले स्थानों की तुरन्त मरम्मत कर दी जाय।

२. दीमकों से बचाव

सामान्यतः जो कवकों से सुरक्षा करने के नियम हैं, वे दीमकों के प्रति भी लागू हैं। वे मुख्य सिद्धांत, जिन पर दीमकों (विशेषतः भूमिनिवासक दीमकों) के नियन्त्रण के नियम आधारित हैं, ये हैं —

(१) वह पदार्थ या संरचना जिसको सुरक्षित रखना है, दीमकों के अनभिगम्य बनायी जाय, अर्थात् दीमकों की पहुँच से बाहर हो।

(२) केवल स्थायी या उपचारित काष्ठ का ही प्रयोग किया जाय।

(३) उस स्थान पर दीमकों की अभिजनन-क्रिया न होने दी जाय।

काष्ठ-जैसा कोषाधु[1] पदार्थ दीमकों के लिए भोजन है। इसके अतिरिक्त दीमकों को अपने जीवन के लिए आर्द्रता की आवश्यकता होती है। भूमि ही दीमकों का निवासस्थान है, जहाँ पर आर्द्रता सदा बनी रहती है। अतः दीमकों की आवश्यकता के लिए आर्द्रता का स्रोत भूमि ही है। दीमकें, जो गृहों में आक्रमण करती

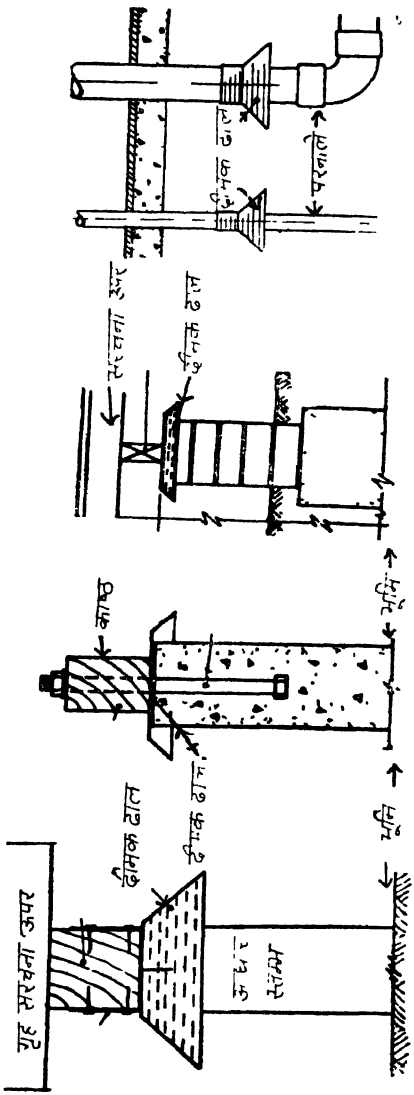
1 Cellulose.

है, अपना सम्पर्क भूमि से बनाये रखती है, यदि यह सम्पर्क तोड दिया जाय तो गृहों की सब दीमकें मर जायँगी। सबसे उत्तम दीमको का निवारक अथवा रोकने का उपाय यही है कि गृहो मे इस प्रकार की रचना की जाय कि दीमको को भूमि से, जो उनका मूल पैत्रिक स्थान है, चढने का अवकाश न मिले। ऐसा करने का एक साधारण उपाय, धातु (कुप्यातु, अथवा 'गैल्वेनाइज्ड'—लोहा या पीतल की चादर) की ढालों ('शील्ड्स') का प्रयोग है। ये ढाले कम-से-कम ३ इच (७.५ सेन्टीमीटर) तक दीवारो के बाहर निकली रहती है, जो ४५° के कोण पर नीचे को ५ सेन्टीमीटर तक झुकी रहती है। चित्र ११२ मे दीमक-ढालो का स्थिरीकरण स्थान दिखाया गया है।

दीमकों के चरित्र के सम्बन्ध मे विशेष बात यह है कि वे दीवारो और खम्भों के ऊपर चढती है और जहाँ पर मार्ग मे ढाल हो, उसके ४५° कोण के निचले भाग के किनारे तक पहुँचकर रुक जाती है। वे उस किनारे के ऊपर नही चढ सकती, अत. उनका आवागमन वही तक सीमित रहता है, जिसके कारण ढाल से ऊपर की सरचना सुरक्षित रह सकती है। दीमकों का इस प्रकार भूमि से सपर्क टूट जाने के कारण उनके आक्रमण का भय नही रहता। यहाँ पर विशेष ध्यान धातु-ढालों पर ही दिया जाता है कि कही उनका किनारा टूटकर गिर न जाय अथवा किसी और पदार्थ को छूने की व्यवस्था न हो, जिसके द्वारा दीमको को चढ़ने का अवसर मिल जाय। इस पर निरन्तर निरीक्षण की आवश्यकता है। भूमि के नीचे ऐसे पदार्थ भी एकत्रित न हो जायँ जो उनके लिए खाद्य की सामग्री हों। भूमि पर कही भी दरारे या छिद्र हो तो उनको सीमेट से भरकर बन्द कर देना आवश्यक है, क्योकि इन्ही दरारो या छिद्रो से दीमक भूमि से अपना सम्पर्क बनाये रखती है।

भूमि या दीवार के संस्पर्श मे जहाँ कही भी काष्ठ प्रयुक्त किया गया हो वह या तो भली प्रकार से उपचारित किया गया हो, अथवा टीक या साल जैसे स्थायी काष्ठ का सारकाष्ठ हो। दीमकों की सुरगा दिखाई देने पर उनके उद्गम-स्थान का निरीक्षण करना चाहिए और जहाँ से वे आरम्भ हो वहाँ पर गाढ़े परिरक्षी का लेप कर देना चाहिए। दीमकों को भी नमी की आवश्यकता होती है, अतः जहाँ तक सम्भव हो सके नमी की व्यवस्था छतो और नलो से पानी चूने के कारण न होने दी जाय।

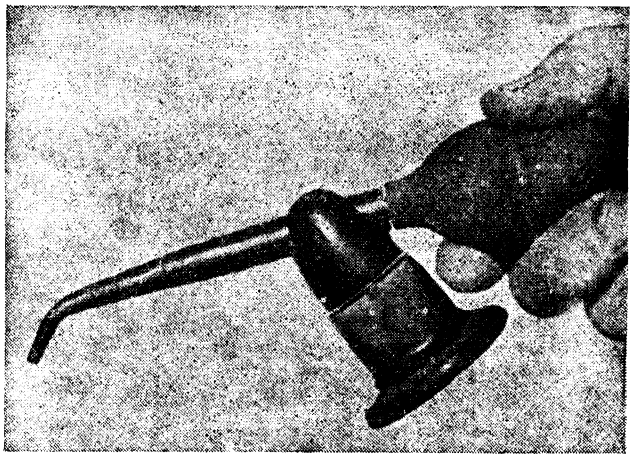
जहाँ दीमके बहुतायत से हो, वहाँ गृहो की नीव के आस-पास और नीचे की मिट्टी को विषैली बना देना लाभप्रद होता है। इसके लिए नीव के चारों ओर एक, कम-से-कम आधे मीटर गहरी सकीर्ण खाई खोद देनी चाहिए। इस खाई मे उचित रसायन को प्रचुर मात्रा मे डालकर और मिट्टी से आधा भरकर पुनः थोड़ी मात्रा मे रसायन डालते



चित्र ११२—धातु की बनी दीमक-ढालों का स्थिरीकरण स्थान।

रहना चाहिए। जो रसायन इसके लिए प्रयुक्त किये जाते हैं, वे हैं—सोडियम आर्सिनाइट, कोलतार-क्रियोजोट, ट्राइक्लोरोबैन्जीन, और्थोडाइक्लोरोबैन्जीन, पैन्टाक्लोरोफीनौल और क्लोर्डेन। पानी में सोडियम आर्सिनाइट का १० प्रतिशत विलयन, क्लोरोबैन्जीन के १ भाग में ३ भाग मृत्तैल का मिश्रण, पैन्टाक्लोरोफीनौल का मृत्तैल में ५ प्रतिशत विलयन और क्लार्डेन का १ से २ प्रतिशत जल में पायस ('इमल्शन') प्रयुक्त किया जाता है। खाई में इनकी मात्रा दीमकों की प्रचुरता के अनुसार ०.२५ गैलन से लेकर ०.५ गैलन तक प्रति फुट खाई, अर्थात् ३.७५ किलोग्राम से लेकर ७.५ किलोग्राम प्रति मीटर खाई के हिसाब से है। ये सब रसायन विषैले हैं अतः इनके प्रयोग करने में सावधानी की आवश्यकता है।

दीमकों के मण्डल को नाश करने की एक विधि है जिसे 'कौवन्स्' विधि या विष-धूलि विधि भी कहते हैं। इसमें विष के चूर्ण को दीमकों की सुरंगा में छोटे छिद्रों द्वारा एक विशेष धूलिप्रसारण-पिचकारी से फूंककर पहुँचाया जाता है। ऐसी एक फूंकनी चित्र ११३ में दिखलायी गयी है। इस फूंकनी से विष धूलि के रूप में सुरंगा में प्रविष्ट कराया



चित्र ११३—**दीमक-समूह को विष-धूलि से मारने की फुंकनी।**

जाता है। दीमकों की आदत एक-दूसरी को स्पर्श करके चलने की होती है, जिसके कारण वे संपूर्ण मंडल में विष-धूलि का प्रसारण कर देती हैं और तदनन्तर मण्डल का नाश हो

जाता है। इस विधि में इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता है कि सुरंगा को छेड़ान जाय और उस स्थान पर ही दूर-दूर छिद्र बनाये जायें जहाँ पर फूंकनी से विष-धूलि पहुँचाना हो। यदि सुरंगा अधिक छेड़ी गयी तो दीमक उस स्थान से हट जाने का प्रयत्न करती है, जिससे विष-धूलि का यथोचित प्रकार से प्रसारण नही हो सकता। विषधूलि मे पैरिस-ग्रीन, सखिया, सोडियम फ्लोसिलिकेट इत्यादि रसायनों का चूर्ण प्रयुक्त किया जाता है। गृहो मे सोडियम फ्लोसिलिकेट का प्रयोग अन्य तीव्र विष-रसायनों की अपेक्षा अधिक हितकारी होगा। विषधूलि विधि से शुष्ककाष्ठ-दीमकों के मण्डल को भी मारने मे सफलता होती है। जैसा कि वर्णन किया जा चुका है, शुष्क-काष्ठ-दीमके भूमि से सपर्क नही बनाती, वे काष्ठ के ही अन्दर प्रवेश कर अपना मडल वहाँ स्थापित करती है। अतः शुष्ककाष्ठ-दीमको के मण्डल के नाश के लिए सुरगा के स्थान पर आक्रान्त काष्ठ पर ही छिद्र बनाने पड़ते है और उन्ही छिद्रो से विषधूलि का प्रवेश कराया जाता है। यद्यपि शुष्ककाष्ठ-दीमको के लिए यह विधि प्रभावशाली है, तथापि गृहो के लिए जाली का प्रयोग हितकारी होगा, विशेष कर दीमको की उड़ान की ऋतु मे, जिससे उनको गृहो के अन्दर प्रवेश करने का अवकाश न मिले।

३. छिद्रक कीटों से बचाव

लिक्टस् प्रजाति के छिद्रक कीटो के डिम्भ द्वारा क्षति, सशोषित काष्ठ के रस-काष्ठ तक ही सीमित रहती है। बहुधा अस्थायी अथवा अरोधी काष्ठो के बने उपस्कर, हथियारो के बेटो, कृषि-सम्बन्धी यन्त्रो इत्यादि को भी इनके द्वारा पर्याप्त मात्रा में हानि पहुँचती है। ये कीट निरन्तर कार्य मे लाये जानेवाले काष्ठ-पदार्थो पर बिरले ही आक्रमण करते है, परन्तु जो काष्ठ लम्बे अवसर तक निरतर संचित किये जाते है, उन्ही पर मुख्यतः ये आक्रमण करते है।

लिक्टस् के आक्रमण से सुरक्षा के लिए उचित प्रकार से स्वच्छता-प्रबन्ध, समयानुसार निरीक्षण और लम्बे अवसर तक सचय न किये जाने की व्यवस्था होनी चाहिए। अरोधी काष्ठो के बने पदार्थो का ऐसे स्थानो मे सग्रह नही करना चाहिए जहाँ कोई कीट-सक्रात काष्ठ विद्यमान हो। सुरक्षा के लिए काष्ठो का चट्टा इस प्रकार से लगाना चाहिए कि समय-समय पर उसका भली प्रकार से निरीक्षण किया जाना सम्भव हो सके। चूँकि ये कीट धीरे-धीरे आक्रमण करते है, अतः जहाँ कही भी इनके आक्रमण का पता लगे, वहाँ तुरन्त ही सक्रान्त काष्ठ को अलग करने का प्रबन्ध कर देना चाहिए, जिससे कि और काष्ठो मे आक्रमण फैलने की सभावना न रहे। पुराने सचित काष्ठो का प्रयोग

पहले किया जाय और अनावश्यक काष्ठों को अधिक मात्रा में सचित न किया जाय। यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाय कि काष्ठ-संचय करना अनिवार्य हो, तो क्षतिरोधक उपायों का, जो सारणी १४ (परिशिष्ट २) मे दिये गये है, उपाश्रय लेना चाहिए।

यदि काष्ठ को सग्रहालय मे कीट सक्रान्त होने के बाद सेवाकार्य मे लगाया जाय तो आक्रमण की दशा बनी रहती है। अतः कार्य मे लगाने के पूर्व ही यह निश्चय कर लेना चाहिए कि काष्ठ के अन्दर जीवित कीट न हो। यदि काष्ठ पर गम्भीर आक्रमण हुआ हो तो उसे जलाकर नष्ट कर देना ही उचित होगा। अशतः हानि पहुँचे हुए काष्ठों का कम से कम ६०° सेन्टीग्रेड पर वाष्पीकरण अथवा ८५° सेन्टीग्रेड पर भट्ठी मे पूर्णतया सशोषण कर लेना चाहिए। यह तापनकाल काष्ठ के आकार, आर्द्रता और तापन-माध्य के ऊपर निर्भर रहता है। वाष्पीकरण का प्रभाव उसी तापक्रम पर शुष्क ताप की अपेक्षा अधिक रहता है।

यद्यपि ताप से काष्ठ मे विद्यमान कीटो का जीवाणु-हनन हो जाता है, तथापि वह सदा के लिए काष्ठ को आक्रमणरोधी नही बना सकता। स्थायी सुरक्षा के लिए असक्रान्त काष्ठ के बनाये पदार्थो पर रगलेप, वार्निश, अलसी-तैल या किसी और उचित लेप से सपूर्ण भाग मे पूर्णतया आवरण या लेपन किया जाय, जिससे काष्ठ-रन्ध्र या काष्ठ की तरेड़े भर जायें और उनमे प्रौढ छिद्रक कीटो को अडे देने का अवकाश न मिले। यह पहले ही वर्णन किया गया है कि ५ प्रतिशत बोरिक अम्ल या सुहागा या इन दोनो के मिश्रण के जलविलयन से निपीड-उपचार करने पर पूर्णतया सफलता मिल सकती है। इसके अतिरिक्त और भी पररिक्षी है जिनसे सफलता प्राप्त हो सकती है, पर ये विषैले है। इन्ही साधनो से अन्य प्रकार के छिद्रक कीटो से भी काष्ठ को सुरक्षित रख सकते है, पर लिक्टस् जाति का छिद्रक अन्य जाति के छिद्रक कीटों से अधिक महत्त्व रखता है।

४. सामुद्रिक कीटों से बचाव

यद्यपि तीव्र परिरक्षियो से काष्ठ मे उच्च प्रचूषण कराये जाने पर काष्ठ-आधार-स्तम्भो को सामुद्रिक कीटों से सुरक्षित करने मे अत्यन्त सफलता प्राप्त हुई है, तथापि समय-समय पर इन कीटों से काष्ठ की सुरक्षा के लिए अन्य विधियों का भी प्रयोग किया गया है। इनमे काष्ठ के बाहर से विभिन्न प्रकार के आवरणो का, जिनको कीट पार करने मे असमर्थ रहे, प्रयोग किया जाता है।

ऐसी सबसे पुरानी विधि, काष्ठ-स्तम्भ को सवल्क (बिना छाल निकाले) समुद्र मे सेवाकार्य मे लगाने की है। सामुद्रिक कीटों के लिए यह स्वाभाविक आवरण (वल्क)

रुचिकर नही होता। अतएव वल्क मे कीट उतनी सरलता से प्रविष्ट नही हो सकते जितने कि वल्करहित काष्ठ मे, अत: ये कीट वल्कसहित काष्ठ को कम क्षति पहुँचाते है। पर इस प्रकार के वल्क को काष्ठ के संपूर्ण भाग मे दृढ़ता से रहने दिया जाना कभी-कभी असम्भव-सा हो जाता है। काष्ठस्तम्भ मे जहाँ पर शाखाएँ काटे जाने के कारण गाँठे होती है और जहाँ स्तम्भ के परिवहन मे वल्क टूटकर गिर जाता है, वे स्थान नगे रहने से कीटो के आक्रमण-पात्र वन जाते है। अत: ऐसे स्थान से आक्रमण फैलकर सपूर्ण स्तम्भ को क्षति पहुँच सकती है। इसके अतिरिक्त यदि स्तम्भ पूर्ण प्रकार मे वल्क-छादित भी हो, तो सदा वल्क का काष्ठ से चिपटा रहना जल के मृदूकरण और लहरो के कारण सम्भव नही हो सकता। इस प्रकार काष्ठ-स्तम्भ का वल्क सहित प्रयोग अस्थायी रचना के लिए ही किया जाता है।

प्राचीन समय मे कीलो का प्रयोग काष्ठ-स्तम्भो की रक्षा के लिए किया जाता था, अब तक भी यह प्रथा डेनमार्क और जर्मनी मे थोड़ी-बहुत प्रयुक्त की जाती है। इसमे चौड़े सिरे वाली कीलो को काष्ठ-स्तम्भ के उस भाग मे पूर्ण प्रकार से ढककर ठोका जाता है जो कीटो के आक्रमण के समुख हो। यद्यपि कील एक-दूसरी से मिलाकर पास-पास लगायी जाती है, तथापि ये सामुद्रिक कीटो के प्रति सपूर्ण प्रकार से कवच का कार्य नही कर सकती, क्योकि इन कीटो के डिम्भ इतने छोटे होते है कि कही थोडा सा भी खुला मार्ग रह जाय तो वे उसी मे वास कर लेते है। यह भी कहा गया है कि कीलो के मोर्चा से भी थोड़ा बचाव हो जाता है, पर यह सदा सत्य नही सिद्ध हुआ है। इस बात का भी उल्लेख (४ण) है कि अमेरिका के चार्ल्स ड्राइ डौक और मशीन कम्पनी ने सन् १९१८ मे ६०० चौड़े सिर वाली कीलो को 'यलोपाइन' काष्ठ-स्तम्भो मे गाड़ा था। ये कीले १ इच लम्बे और ०.५ इच व्यास वाले सिर की थी और इनको ०.५ इच की दूरी पर लगाया गया था। यद्यपि इनके परिणामो के विषय पर कोई सविस्तर उल्लेख नही है, फिर भी यह स्पष्ट था कि इस प्रकार से लगाये गये काष्ठ-स्तम्भो से साधारण असुरक्षित काष्ठ-स्तम्भो की अपेक्षा अधिक सेवा-आयु प्राप्त हुई थी। इस प्रकार की रक्षाविधि मे यह दोष था कि कीलो को गाड़ने मे अधिक श्रम-व्यय लगता था, और दूसरी आपत्ति यह थी कि उष्ण-नम स्थानो मे ये कीले काष्ठ के उस भाग को, जो जल से ऊपर रहता था, अपक्षय से बचाने मे असमर्थ थी, जिसके कारण स्तम्भ सड़कर नष्ट हो जाता था।

प्राचीन समय मे काष्ठ-नौकाओ को सुरक्षित रखने के लिए उनके बाहरी तल मे धातु की चादर का आवरण लगाया जाता था। इसी प्रकार काष्ठस्तम्भो की

रक्षा के लिए भी उन्नीसवीं शताब्दी में धातु-चादर के आवरण का विकास हुआ। इंग्लैंड मे सन् १८३३ मे इस प्रकार से आवरण किये गये काष्ठ-स्तम्भो का प्रयोग किया गया। इसके लिए ताँबा-धातु को मान्यता दी गयी थी क्योंकि इसमे मोर्चा नही लगता था। इसके विपरीत लोह-चादरे शीघ्र ही मोर्चा लगने के कारण नष्ट हो जाती थी।

काष्ठ-स्तम्भो के ऊपर धातु-चादर चढ़ाने से पहले उनका भली प्रकार गोल और चौरस किया जाना आवश्यक है, और तब उनके ऊपर टार मे भिगोई फैल्ट लपेटने के पश्चात् धातु-चादर का दृढ़ता से कीलों द्वारा स्थिरीकरण किया जाता है। स्तम्भ का संपूर्ण भाग समुद्रतल तक लपेटा जाना आवश्यक है। इस प्रकार धातु-चादर से आवृत किये गये काष्ठ-स्तम्भो से अमेरिका मे अच्छी सेवा-आयु प्राप्त हुई है, और ४० वर्ष के उपरान्त भी इनमे से कुछ सुरक्षित अवस्था मे थे। इस विधि में कई त्रुटियाँ ओर अधिक व्यय लगने के कारण इसका प्रयोग कम होता गया।

काष्ठ-स्तम्भो की रक्षा के लिए ढलवाँ लोहे ('कास्ट-आइरन') के नाडो के प्रयोग के बारे मे भी उल्लेख हुआ है। ढलवाँ-लोहे मे मोर्चा शनैः-शनैः लगता है। इस विधि मे काष्ठ-स्तम्भो के बाहर अर्ध-नाडो को जोडकर लगाया जाता है, और नाड तथा काष्ठ के बीच मे जो रिक्त-स्थान रहता है उसमे सीमेंट का मसाला भर दिया जाता है। इस प्रकार सपूर्ण काष्ठ-स्तम्भ के बाहर नाड का आवरण किया जाता है। इससे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है, पर इसमे अधिक व्यय लगता है। इसी प्रकार ढलवाँ-लोहे के स्थान पर सवलित कक्रीट ('रीइन्फोर्स्ड कक्रीट') से काष्ठ-स्तम्भो की रक्षा करने मे सफलता मिली है। कही-कही कठोर 'एस्फौल्ट' या 'बिटचूमन' का भी गाढ़ा लेप काष्ठ-स्तम्भो की रक्षा के लिए किया जाता है। यह लेप या तो काष्ठ-स्तम्भ के बाहर अकेले, अथवा तार की जाली और कपड़ा लपेटने के पश्चात् लगाया जाता है। इन विधियो मे यही त्रुटि है कि काष्ठ-स्तम्भ का ऊपरी भाग जल से अपक्षय द्वारा नष्ट हो जाता है और इसका बार-बार नवीकरण करना पड़ता है।

नौकाओ के बाह्य तल के लिए भी आक्रमण-रोधी लेप उनकी सुरक्षा के लिए अनिवार्य है, विशेष कर उन नौकाओं के लिए, जिनका निरन्तर समुद्र मे प्रयोग किया जाता हो। इस लेप का समयानुसार पुनः स्थापन किया जाना आवश्यक होता है। बहुधा नौकाओ के तल पर तीव्र बद्ध-रूपी जलविलयन परिरक्षी से उपचारित स्तर-काष्ठ के पश्चात् इस आक्रमण-रोधी लेप के प्रयोग से नौकाओ की सेवा-आयु की वृद्धि मे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है।

५. आर्द्रता और यान्त्रिक क्षति-रोधन

सेवा-कार्य मे लगे हुए काष्ठ की आर्द्रता मे वायुमण्डलीय दशाओ के अनुसार परिवर्त्तन होता रहता है, जिसके कारण उसके आकार मे भी परिवर्तन हो जाता है, अर्थात् काष्ठ मे सिकुडन, फुल्लन, विकुञ्चन, विपटन इत्यादि दशाएँ उत्पन्न हो जाती है। अभी तक किसी ऐसे सगठन का आविष्कार नही हुआ है जो पूर्ण प्रकार से काष्ठ-आकार-दशा के परिवर्तन को रोक सके। यद्यपि इस प्रकार के कई आर्द्रता-रोधी स्वामिक पदार्थ विक्रेय रूप मे निकले है, तथापि वे काष्ठ के आकार मे होनेवाले परिवर्तन को रोकने मे अशतः ही सफल हुए है। ये पदार्थ वार्निस, तैल-लेप इत्यादि है और इनका मूल आधार मोम, अलसी-तैल, लीसा इत्यादि रहता है। आकार-परिवर्तन को रोकने के लिए काष्ठ का प्रयोग करने के पूर्व, उचित आर्द्रता पर सशोषण करने के पश्चात् योग्य आर्द्रता-रोधी लेप लगाने पर पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। इन बातो के लिए विशेष ज्ञान की आवश्यकता है। इसमे एक निपुण कार्यकर्ता को इस विषय का ध्यान रखना पडता है कि काष्ठ को प्रयोग करने के उपरान्त किन परिस्थितियो का सामना करना पड़ेगा, और उसीके अनुसार काष्ठ का सशोषण किये जाने पर उसका प्रयोग करते है। जहाँ आवश्यक हो, उसके ऊपर आर्द्रतारोधी सगठनो का निपीड या लेपन से उपचार किया जाता है। निपीड-उपचार के लिए कई प्रकार के 'फीनोल', 'यूरिया', 'डाइ-मिथाइलौल-यूरिया' इत्यादि के सश्लिष्ट लीसा[1] है, जिनका काष्ठ मे प्रचूषण कराने के उपरान्त अभिसाधन ('क्योरिग') किया जाता है। इनमे बहुधा बहुत व्यय पड़ता है। लेपन के लिए जैसा पहले लिखा जा चुका है, मौम, लीसा, अलसी-तैल, एस्फौल्ट, बिटचूमन इत्यादि के आधार पर गाढ़ा लेप होता है। वर्तमान समय मे कई उपयुक्त सश्लिष्ट लीसाओं का आविष्कार होता जा रहा है। इनका मूल सिद्धान्त यह है कि इस प्रकार के लेप से काष्ठ के ऊपर एक पट्टी-बन्धन सा हो जाता है, जिसके माध्य से आर्द्रता का प्रवेश नही हो सकता। यह पट्टी जब तक नही टूटती तभी तक प्रभाव-युक्त रहती है और इसके न रह जाने पर तुरन्त ही पुन. लेपन करना आवश्यक हो जाता है।

लट्ठो और स्लीपरों का विपटन रोकने के लिए एक कार्यक्षम लेप का सगठन यह है-कठोर ग्लौस तैल १०० भाग, बैराइटीज २५ भाग, एमबस्टीन २५ भाग और क्रिम-लिक अम्ल १५ भाग को मिलाने से बनता है। वैसे एसफौल्ट या बिटचूमन के २५

1 Synthetic resins.

प्रतिशत भाग और इन्धन तैल के ७५ प्रतिशत भाग के मिश्रण का काष्ठ-स्लीपरों और लट्ठों के टक्करों में लेपन करने से भी पर्याप्त मात्रा में विपटन कम हो जाता है।

यान्त्रिक क्षति और ऋतुक्षरण के लिए भी आर्द्रता-रोधी लेप प्रभावकारी होते हैं। परन्तु इनके लिए लेपन-पट्टी का स्तर मोटा होना चाहिए, और यह मोटी पट्टी तभी बन सकती है जब गाढ़े लेप का प्रयोग हो और लेपन दुबारा किया गया हो। संश्लिष्ट लीसा के विलायक तैलों वाले विलयन का काष्ठ में प्रचूषण कराने के बाद अभिसाधन क्रिया से काष्ठ की कठोरता में वृद्धि हो सकती है, जिसके कारण वे यान्त्रिक क्षति रोकने में समर्थ हो सकते हैं।

काष्ठों के ऊपर यान्त्रिक क्षति रोकने में बहुधा पतले धातु-चद्दर का भी प्रयोग किया जाता है, जो उनके ऊपर उचित श्लेष ('सरेस') से चिपकाया जाता है। काष्ठ के रेलवे-स्लीपरों के ऊपर पटरी-आसन में रेल-कटाव को रोकने के लिए आसन पर भारसह पट्ट ('बियरिंग प्लेट') प्रयुक्त किये जाते हैं।

अध्याय ४

भारत में उपचार-संयन्त्रों की योजना और परिरक्षी रसायनों की प्राप्ति

१. उपचार-संयन्त्र स्थापना सम्बन्धी योजना

टीक-जैसे मजबूत और मुख्य काष्ठों की प्राप्ति की कमी तथा मूल्य बढ़ने के कारण अब यह आवश्यक हो गया है कि द्वितीय श्रेणी के काष्ठों को उचित प्रकार से उपचार और संशोषण करने के उपरान्त विभिन्न कार्यों के लिए प्रयोग में लाया जाय। इसके लिए देहरादून की वन-अनुसन्धानशाला की काष्ठ-परिरक्षण और काष्ठ-संशोषण शाखाओं ने मिलकर भारत के मुख्य-मुख्य स्थानों में उपचार व संशोषण-संयन्त्रों की स्थापना की योजना बनायी है। इस योजना का यही उद्देश्य है कि काष्ठ के उपभोक्ता शासन विभाग और आम जनता को उपचारित और संशोषित द्वितीय श्रेणी के काष्ठ उपलब्ध हो सकें। इस योजना में यह भी उचित समझा गया है कि काष्ठ-परिरक्षण और संशोषण संयन्त्रों के अतिरिक्त काष्ठ-लट्ठों को प्रमाप परिमाण के आकार में काटने अथवा खण्डन करने की सुविधा भी हो, क्योंकि यह वांछनीय है कि काष्ठ को उपचार के पूर्व ही उचित प्रकार के आकारों में परिवर्तित किया जाना चाहिए, ताकि उपचार के पश्चात् काष्ठ का पुनः कर्तन न हो। इस योजना में सात प्रकार के संयन्त्र अभिस्तावित किये गये हैं, जिनका सूक्ष्म वर्णन निम्न प्रकार से है।

क्रमांक	संयन्त्र-प्रकार	संयन्त्र-वर्णन	काष्ठ की वार्षिक उत्पाद-राशि, लाख घनफुट में	संपूर्ण व्यय, लाख रुपयों में
१	(क)	आरा-घर, उपचारण और संशोषण संयन्त्र	१.०	१२.२
२	(ख)	,, ,, ,, ,,	०.५	६.०
३	(ग)	उपचारण और संशोषण संयन्त्र	१.५	७.५
४	(घ)	,, ,, ,, ,,	०.५	४.२
५	(ङ)	संशोषण संयन्त्र	१.०	५.०
६	(च)	उपचार संयन्त्र	१.५	२.०
७	(छ)	संशोषण संयन्त्र	०.५	२.५

उपरिलिखित सयन्त्र, केवल आरे और बड़े वाष्पित्र को छोड़कर स्वदेश मे प्राप्त हो सकते है, यदि सयन्त्र-निर्माताओं को आवश्यक इस्पात उपलब्ध कराया जाय। आवश्यक हो तो इन सयन्त्रों का निर्माणकार्य बढ़ाया भी जा सकता है।

उदाहरणार्थ, इनमे से एक सयन्त्र की विभिन्न मशीनो, उनके मूल्य और कार्य-व्यय के सम्बन्ध मे विस्तारपूर्वक वर्णन नीचे दिया गया है।

(क) योजना (काष्ठ की एक लाख घनफुट वार्षिक उत्पादन-राशि)

		अनुमानित मूल्य रुपयो मे
१. (अ) **आरे**		
एक उदग्र-पट्टा आरा, काष्ठलट्ठो का खण्डन करने के लिए		३००००
दो वृत्ताकार आरे	...	१५०००
एक आड़ा आरा	...	५०००
एक आरा तेज करने की मशीन	...	५०००
अतिरिक्त भाग	...	५०००
	कुल	६००००
इसमे २५ प्रतिशत आयात करने पर आशुल्क, भाड़ा और अधिष्ठापन व्यय जोड़िए	...	१५०००
एक बाड़-खम्भ छीलन मशीन	...	३०००
	कुल	७८०००
(आ) संशोषण-भट्ठी ('किल्न')		
चार छोटी भट्ठियाँ, अभिलेखक यन्त्रों सहित (२०×११×१५ फुट)	...	५८०००
एक भट्ठी (२७×११×१५ फुट)	...	१८५००
एक भट्ठी (४२×११×१५ फुट)	...	२८५००
एक वाष्पित्र, १.७५ टन वाष्प प्रति घटा	...	७५०००
प्रयोगशाला सभार	...	५०००
		१८५०००
इसका १।६ भाग परिवहन और अधिष्ठापन प्रभार के लिए जोड़िए	...	३००००
	कुल	२१५०००

(इ) उपचार संयन्त्र

	(रुपयों में)
एक निपीड रम्भ, ४ फुट व्यास और ४५ फुट लम्बा, ठेले, पम्प, कुण्ड, नाल, तापमान और निपीड अभिलेखक इत्यादि सहित ...	१६००००
एक तापन और शीतन खुला कुण्ड–(२५×४×४ फुट) वाष्पनलिका, सग्रहकुण्ड, पम्प इत्यादि सहित ...	१००००
एक महा-तुला ...	२०००
प्रयोगशाला और पुस्तकालय ...	२५००
	१७४५००
इसका १।६ भाग परिवहन और अविष्ठापनप्रभार के लिए जोड़िए ...	३००००
कुल	२०४५००

(ई) भवन-निर्माण

एक खुली शालिका ३६०×६० फुट=२१६०० वर्गफुट क्षेत्रफल की और २० फुट ऊँची, आरा, भट्ठी,उपचार-रम्भ और वायु-सशोषण के लिए...	१५००००
चार भट्ठी (प्रत्येक २०×११×१५ फुट)=८८० वर्गफुट, ९ रु० प्रति वर्गफुट की दर से ...	७९२०
एक भट्ठी (२७×११×१५ फुट)=२९७ वर्ग-फुट, ९ रु० प्रति वर्गफुट की दर से ...	२६७३
एक भट्ठी (४२×११×१५ फुट)=४६२ वर्ग-फुट, ९ रु० प्रति वर्गफुट की दर से ...	४१५८
एक वाष्पित्र कमरा (३०×३०×२५ फुट)= ९०० वर्गफुट, १५ रु० प्रति वर्गफुट की दर से ...	१३५००
कार्यालय, प्रयोगशाला, संग्रहालय (५०×५०×१२ फुट)=२५०० वर्गफुट, ९ रु० प्रति वर्ग-फुट की दर से ...	२२५००
दो शौचालय और दो चौकीदार-गृह ...	५०००
कुल	२०५७५१

		(रुपयों में)
(उ) बाड़ और फाटक	...	१५०००
(ऊ) विद्युत और जल योजन	...	१५०००
	कुल	३००००
(ए) भूमि और संचार		
दो एकड़ भूमि	...	१०००००
सड़के और ट्राम-लाइनें	...	२००००
उपस्कर, टेलीफोन इत्यादि	...	१००००
एक लॉरी	...	२५०००
एक क्रेन और ट्रौलियाँ	...	२००००
	कुल	१७५०००
२. काय पूँजी (प्रति वर्ष)		
(अ) काष्ठ, एक लाख घनफुट, ६ रु० प्रति घन-फुट की दर से	...	६०००००
इसका १० प्रतिशत बरबाद हो जाने पर जोड़िए		६००००
इसका १।३० वाँ भाग मृत-भट्ठी प्रभार जोड़िए	...	२००००
	कुल	६८००००
(आ) इन्धन	...	३००००
(इ) बिजली	...	१००००
(ई) जल	...	२०००
(उ) कार्यालय व्यय	...	२०००
(ऊ) मिला-जुला व्यय	...	१०००
(ए) अवकाश वेतन	...	६०००
(ऐ) भवन, यन्त्र इत्यादि का संधारण व्यय	...	५०००
(ओ) परिरक्षी-रसायन	...	१०००००
		८३६०००
(औ) इसका १।३ भाग अर्थात् ४ महीने की पूँजी	...	२७८६६६
	अर्थात् ...	२७९०००

३. कर्मचारी और श्रमिक-वेतन व्यय (रुपयों में)

	वेतन	
(अ) आराघर		
तीन आरा-चालक	(६०–१५०) ...	३६००
(आ) वाष्पित्र		
दो वाष्पित्र-चालक	(८०–२२०) ...	३६००
एक उप-वाष्पित्र-चालक	(६०–१५०) ...	१२६०
तीन अग्नि-ज्वालक	(३०–३५) ...	१२००
		९६६०
(इ) संशोषण-भट्ठी		
एक ज्येष्ठ भट्ठी-चालक	(१६०–३३०)...	२९४०
तीन भट्ठी-चालक	(६०–१५०) ...	३६००
दो भट्ठी-स्थापक	(४०–६०) ...	१२००
		७७४०
(ई) काष्ठ-परिरक्षण संयन्त्र		
एक ज्येष्ठ सयन्त्र-चालक	(१६०–३३०) ...	२९४०
एक संयन्त्र-चालक	(८०–२२०) ...	१८००
दो रम्भ-स्थापक	(४०–६०)	१२००
		५९४०
(उ) यान्त्रिक कर्मशाला		
दो यान्त्रिक (१ यान्त्रिक और १ विद्युत)	(६०–१५०) ...	२०००
एक लोहार	(६०–१५०) ...	१०००
		३०००
(ऊ) कार्यालय-कर्मचारी		
एक अध्यक्ष	(६००–११५०) ...	१०५००
एक लिपिक ('क्लार्क')	(५५–१३०) ...	११००
एक मुद्रलेखक ('टाइपिस्ट')	(५५–१३०)	११००

		(रुपयों में)
एक संग्रहागारिक ('स्टोरकीपर')	(६०–१५०) ...	१२६०
दो चपरासी	(३०–३५) ...	८००
एक मेहतर	(३०–३५) ...	४००
तीन चौकीदार	(३०–३५) ...	१२००
एक ड्राइवर	(८०–२२०) ...	१८००
एक क्लीनर	(३०–३५) ...	४००
अठारह खलासी	(३०–३५) ...	७३००
		५२२००
इसमे मँहगाई (५० प्रतिशत अध्यक्ष के और १०० प्रतिशत अन्य कर्मचारियो के वेतन पर)	...	४६८५०
		९९०५०
इसका १।३ अर्थात् चार महीने का चालू व्यय	...	३३०१७
	अर्थात् ...	३३०००

४. सकल व्यय

पूँजीगत

(अ) आरा	...	७८०००
(आ) सशोषण भट्ठी	...	२१५०००
(इ) उपचार सयन्त्र	...	२०४५००
(ई) भवन	...	२०६०००
(उ) बाड़ और फाटक	...	१५०००
(ऊ) विद्युत और जलयोजन	...	१५०००
(ए) भूमि और संचार	...	१७५०००
	कुल	९०८५००
	अर्थात् ...	९.१० लाख

५. चालू व्यय

		(रुपयों में)
चार महीने की कार्य-पूँजी, पूर्वोक्त २ (अ) से (आ)	...	२७९०००
चार महीने का कर्मचारी और श्रमिक व्यय, २(औ)	...	३३०००
	कुल	३१२०००
	महायोग	१२२०५००
	अर्थात्	१२.२० लाख

६. वार्षिक व्यय

पूँजी पर ६ प्रतिशत की दर से अवमूल्यन	...	४८५१०
पूँजी पर ४ प्रतिशत की दर से ब्याज	...	३६३४०
कार्य-व्यय पर ४.५ प्रतिशत की दर से ब्याज	...	१४०४०
एक वर्ष का सकल चालू व्यय	...	९३४९५०
	कुल	१०३३८४०

७. आमदनी अथवा प्राप्ति

काष्ठ-विक्रय	...	६८००००
काष्ठ-सशोषण मूल्य १.७५ रु० प्रति घनफुट की दर से	...	१७५०००
काष्ठ-उपचार मूल्य १.०० रु० प्रति घनफुट की दर से	...	१०००००
चिरान मूल्य ०.५० रु० प्रति घनफुट की दर से	...	५००००
काष्ठ मूल्य पर १० प्रतिशत की दर से लाभ	...	६८०००
	कुल	१०७३०००

८. लाभ

पूर्वोक्त पद (७–६)	...	३९१६०
अनपेक्षित हानि	...	६१६०
वास्तविक लाभ	...	३३०००

जो लगभग २.७५ प्रतिशत है।

पूर्वोक्त योजना मे उपभोक्ताओं के आवश्यकतानुसार काष्ठों को लट्ठे, बिजली व बाड-खम्भ के रूप में मोल लेने और तब उचित निर्माण आकार मे आरा व वल्क-छीलन मशीन द्वारा परिवर्तन करने का निर्देश है। इसमे परिवर्तन करने के उपरान्त काष्ठ को भट्ठी या वायु मे सशोषण करने के भी साधन बतलाये गये है। काष्ठ के आवश्यकतानुसार उचित परिरक्षी (तैल, जल-विलयन या प्रागारिक विलायक रूपी) से उपचार भी कराया जा सकता है। अतः सशोषण और उपचार-व्यय, जिसका उपरिलिखित पद ७ (आमदनी अथवा प्राप्ति) मे उल्लेख है, घट-बढ़ सकता है। यह काष्ठ के अन्तिम प्रयोगो के ऊपर निर्भर है। सशोषण व उपचार सयन्त्रों का उत्पादन दो या तीन पारी काम करने से बढाया जा सकता है। उचित मूल्य पर परिवर्तित काष्ठो का संशोषण और उपचार किये जाने की व्यवस्था भी इस योजना मे है।

उपरिलिखित योजना के (क) से लेकर (छ) तक के किसी भी सयन्त्र-प्रकार की स्थापना करनी हो तो उसी के काष्ठ की वार्षिक उत्पादराशि के अनुसार विभिन्न सयन्त्रो को, इस उदाहरण मे विस्तारपूर्वक दिये गये विवरण से, चुनना पड़ेगा। इस सम्बन्ध मे वन-अनुसन्धानशाला की काष्ठ-परिरक्षण और काष्ठ-सशोषण शाखाओं से मन्त्रणा लेना उचित होगा।

२. सामुदायिक विकास के लिए तापन-शीतन विधि द्वारा काष्ठ-उपचार की योजना (३ ग)

(क) प्रस्थापना

तापन-शीतन विधि, काष्ठ-उपचार की विधियों में सब से सरल विधि है। इसमें क्रियोजोट-इन्धन तैल के (५० : ५०) मिश्रण से खुले कुण्ड मे काष्ठ-उपचार किया जाता है।

भारत मे, विशेष कर सामुदायिक योजना-प्रशासन के अन्तर्गत ग्रामों में, बड़ी मात्रा मे काष्ठ और फाड़े हुए बाँसो का प्रयोग गृह और पुल निर्माण, बाड़-खम्भों इत्यादि के लिए होता है। इस निर्माण-सामग्री का यदि क्रियोजोट-इन्धन तैल (५० : ५०) मिश्रण से तापन-शीतन विधि द्वारा उपचार कराया जाय तो इससे बनायी गयी संरचनाएँ कई वर्षों तक सुरक्षित रखी जा सकती है, जिसके फलस्वरूप भवन अथवा भूमि के स्वामी को पर्याप्त मात्रा मे बचत हो सकती है, और साथ-साथ काष्ठ-प्रदाय का संरक्षण भी किया जा सकता है। इस योजना का सविस्तर वर्णन नीचे किया गया है। इस योजना में १०००० रु० की पूंजी लगाने से, २५० रु० का मासिक वास्त-

विक लाभ प्राप्त हो सकता है, जिससे एक पढ़ा-लिखा ('इन्टर साइन्स' पास) व्यक्ति शिष्ट जीवन व्यतीत कर सकता है। यद्यपि इसके लिए उपचार-कुण्ड ईंट और सीमेंट का बनाया जाता है, जो चित्र ५८ ख मे दर्शाया गया है, तथापि इसको इस्पात-चादरों से भी बना सकते हैं, जो कि एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाया जा सके। यदि आरम्भकाल मे इस्पात-कुण्ड बना सकने के लिए पूँजी प्राप्त हो सके, तो इसे इस्पात का ही बनाना अधिक व्यवहार्य होगा।

देहरादून मे साल-बल्लियों का मूल्य इस प्रकार है—

२५ फुट से ३० फुट तक के बिजली-खम्भ, जिनका मुण्ड-छोर व्यास ६ इंच और शीर्ष ३ इंच है	...	३० रु० प्रति खम्भ
१२ फुट लम्बी बल्ली	...	३.७५ रु० प्रति बल्ली
१५ फुट लम्बी बल्ली	...	५ रु० प्रति बल्ली
१५ फुट लम्बी बल्ली (५ इंच मुण्ड छोर व्यास की)	...	४ रु० प्रति बल्ली

(ख) उपचारित काष्ठ की अनुमानित मांग

इस गणना के लिए यह अनुमान लगाया गया है कि प्रत्येक गृह के लिए ५० बल्लियों की आवश्यकता होगी, और प्रत्येक गाँव मे ५० ऐसे गृह सम्मिलित होंगे। ऐसे ५ गांवो के लिए १२५०० बल्लियों की आवश्यकता होगी। १५ मील अर्धव्यास के घेरे मे ऐसे २५ गाँव आसानी से हो सकते हैं। अतः उस स्थान पर ५ वर्ष तक इस सयन्त्र मे पूर्ण क्षमता से कार्य हो सकता है।

(ग) संयन्त्र-क्षमता

इस गणना के लिए २५ फुट लम्बे और ६ इंच माध्य व्यास के साल-खम्भ, जिनका मूल्य ५ रु० प्रति खम्भ है, लिये गये है। १२००० खम्भों, अर्थात् लगभग ५०००० घनफुट काष्ठ प्रति वर्ष के उपचार के लिए, ३०० दिन प्रति वर्ष काम करने पर २० फुट लम्बे, ४ फुट चौड़े और ५ फुट गहरे परिमाण वाले कुण्ड की आवश्यकता होगी।

(घ) परिरक्षी प्रचूषण

काष्ठ मे ५ पौड प्रति घनफुट, अर्थात् ८० किलोग्राम प्रति घनमीटर क्रियोजोट-इन्धनतैल (५०: ५०) मिश्रण के प्रचूषण की व्यवस्था की गयी है। इससे यह आशा की जाती है कि उपचारित खम्भ से लगभग ३० वर्ष की सेवा-आयु प्राप्त हो सकती

है, जब कि अनुपचारित खम्भ की लगभग ५ वर्ष की ही सेवा-आयु रहती है। काष्ठ-खम्भों मे ५० से ७० प्रतिशत तक रसकाष्ठ रहता है जो अत्यन्त अल्पस्थायी होता है।

(ङ) योजना की आर्थिक व्यवस्था

(अ) भूमि और बाड़ लगाने पर पूजी नियोजन	३०० रु०
(आ) भवन-निर्माण—	४०० रु०
(इ) कुण्ड और नाल—	६०० रु०
(ई) एक मास के लिए परिरक्षी-सामग्री	३००० रु०
(उ) दो श्रमिकों का २ रु० प्रति दिन के हिमाब से एक मास का वेतन, और तापन के लिए इन्धन—	५०० रु०
कुल	४८०० रु०
अर्थात्	५००० रु०

(च) उपचार-व्यय

उपचार-व्यय जिसमे श्रम और इन्धन सम्मिलित है	०.१२ रु० प्रति घनफुट
संभाव्यता व्यय	०.०६५ रु० ,, ,,
लाभ	०.०६५ रु० ,, ,,
कुल	०.२५ रु० प्रति घनफुट
परिरक्षी का मूल्य—	०.७५ रु० प्रति घनफुट
सकल उपचारव्यय	१.०० रु० प्रति घनफुट

(छ) वार्षिक मूल्य

अनुपचारित काष्ठ-खम्भ का मूल्य	५.०० रु०
उपचारित काष्ठ-खम्भ का मूल्य	९.०० रु०
अनुपचारित काष्ठ-खम्भ की सेवा-आयु	५ वर्ष
उपचारित काष्ठ-खम्भ की सेवा-आयु	३० वर्ष
अनुपचारित काष्ठ-खम्भ का वार्षिक मूल्य	१.५५ रु० (सारणी ६
उपचारित काष्ठ-खम्भ का वार्षिक मूल्य	०.५८५ रु० के अनुसार)

अतः उपचार किये जाने पर प्रति खम्भ पर प्रति वर्ष ०.९६५ रु० की बचत रही।

(ज) वास्तविक लाभ

प्रति घनफुट पर ०.०६५ रु० लाभ की दर से और ५०००० घनफुट उपचारित काष्ठ की अनुमानित माँग के अनुसार प्रति वर्ष ३२२५ रु० का वास्तविक लाभ प्राप्त

हो सकता है, अर्थात् प्रति मास २६९ रु० का वास्तविक लाभ प्राप्त हुआ। यदि कुछ अचानक हानि भी हो जाय, तो इस वास्तविक लाभ की गणना २५० रु० प्रति मास तक की जा सकती है। यह अच्छा होगा यदि ५००० रु० की पूंजी आवश्यक पदार्थों के खरीदने के लिए प्राप्त रहे, क्योंकि ग्राहकों से मूल्य इकट्ठा करने मे विलम्ब हो सकता है।

३. उपचार-संयन्त्र निर्माताओं के पते और मूल्यकथन

काष्ठ-उपचार-साधक संयन्त्रों की धारिता और मूल्य मे अत्यन्त विभिन्नता है, जो काष्ठ की उपचार-विधियों और वार्षिक उपचार-मात्रा पर निर्भर रहता है। एक ओर तो तापन-शीतन उपचार के लिए साधारण खुले कुण्ड के सयन्त्र है, जिनका मूल्य अपेक्षाकृत कम है, और दूसरी ओर जटिल एवं विस्तृत निपीड सयन्त्र है, जिनका मूल्य कई गुना अधिक होता है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के श्रम बचाने की मशीने भी होती है, जिनका मूल्य कई हजार रुपयों तक होता है। अतः काष्ठ-उपचार सयन्त्रों की स्थापना के लिए इस सम्बन्ध मे विशेष ज्ञान की आवश्यकता है। कम खर्च की दृष्टि से काष्ठ-उपचार सयन्त्र इतना बड़ा भी नही होना चाहिए कि उसमे पूर्ण-क्षमता से कार्य करने के लिए उचित मात्रा मे काष्ठ उपलब्ध न हो, और न सयन्त्र इतना छोटा ही हो कि उससे बड़ी मात्रा मे सामर्थ्य से अधिक काष्ठ-उपचार कराने के लिए बाध्य होना पड़े। इसके अतिरिक्त इस पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है कि काष्ठ का कितनी अवधि तक की रक्षा के लिए उपचार करना अनिवार्य है।

निम्नलिखित प्रकरणों मे विभिन्न क्षमता के काष्ठ-उपचार संयन्त्रों की प्राप्ति के सम्बन्ध मे निर्माताओ के पते और लगभग मूल्य कथन की सूचना दी गयी है। जब से (सन् १९५२ से) इस विषय पर सूचना प्राप्त हुई है, इस्पात-चादरों की, जो उपचार सयन्त्रो के निर्माण के लिए आवश्यक और मुख्य पदार्थ है, उपलब्धि मे परिवर्तन होते जा रहे है और सयन्त्रों के मूल्य में भी वृद्धि होती जा रही है। अतः इन मूल्यों की स्वीकृति के लिए सावधानी की आवश्यकता है। यह उचित होगा कि संयन्त्रों के मूल्य निम्नाकित निर्माताओ से नये प्रकार से मँगाये जायँ।

(क) निपीड संयन्त्र

वर्तमान समय मे भारत मे बड़े व्यास वाले निपीड-रम्भ के, जो इन संयन्त्रों का मुख्य भाग है, निर्माता नही है। इस्पात की मोटी चादरों को मोड़ने के साधन यहाँ नही है, और न उचित प्रकार की पीड़ित-इस्पात चादरे ही उपयुक्त मात्रा मे उपलब्ध है। यद्यपि छोटे व्यास वाले (५ फुट अर्थात् १.५२ मीटर से कम) रम्भ के कुछ

निर्माता भारत मे विद्यमान है, यदि उनको आवश्यक इस्पात उपलब्ध कराया जाय, तथापि बड़े व्यासवाले रम्भों का आयात विदेशो से किया जाना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त पम्प, नाड, अभिलेख यन्त्र इत्यादि-इत्यादि भी विदेशों से ही प्राप्त हो सकते है। वाष्पित्र भी, जो क्रियोजोटीकरण संयन्त्र के लिए आवश्यक अंग है, भारत मे छोटे परिमाण के, थोड़ी ही संख्या मे निर्माण किये जाते है और इनकी माँग भी बहुत है, जिसके कारण ये समय पर उपलब्ध नही हो सकते। अतः इनका भी आयात किया जाना आवश्यक है। निर्माताओं के पते और मूल्यकथन निम्न लिखित है।

(अ) विदेशी निर्माता (१ ज)—

(१) महोदय प्रैट्चिट ब्रदर्स लिमिटेड, डैन्टन् आइरन वर्क्स, कार्लिस्ली (यूनाइटेड किग्डम्)

(भारत मे इनके प्रतिनिधि, महोदय ग्रीव्स् कौटन एन्ड कम्पनी लिमिटेड, १ फौरबैस स्ट्रीट, पोस्टबौक्स् ५१, बम्बई १, है)

संयन्त्र-परिमाण (विशिष्टि-अनुसार अन्य यन्त्रों, वाष्पित्र द्वारा चलित पम्प, इजन सहित)	(सन् १९५२ मे) मूल्य
निपीड रम्भ, व्यास ८ फुट (२.४४ मीटर) और लम्बाई ४५ फुट (१३.७२ मीटर)	१९३३३३.३ रु०
,, व्यास ७ फुट (२.१३ मीटर) और लम्बाई ४५ फुट (१३.७२ मीटर)	१७३३३३.३ रु०
,, व्यास ६ फुट (१.८३ मीटर) और लम्बाई ४५ फुट (१३.७२ मीटर)	१६०००.० रु०
,, व्यास ६ फुट (१.८३ मीटर) और लम्बाई ८५ फुट (२५.९१ मीटर)	२१३३३३.३ रु०
वाष्पित्र अनेक नाड वाला, उदग्र, व्यास ७ फुट (२.१३ मीटर) और ऊँचाई १५ फुट (४.५७ मीटर)	३६००० रु०
तैल-संचय कुण्ड, ३ लाख गैलन का	१६०००० रु०
तैल-संचय कुण्ड, १ लाख ५० हजार गैलन का	८०००० रु०

(२) महोदय जे० एन्ड जे० हॉर्सफील्ड लिमिटेड, वलकन आइरन वर्क्स, डघूसबर्ग, यॉर्कशायर, (यूनाइटेड किग्डम्)

संयन्त्र परिमाण (विशिष्टि-अनुसार अन्य यन्त्रो, वाष्पित्र द्वारा चालित पम्प, इंजन सहित) (सन् १९५२ में) मूल्य

निपीड रम्भ (वाष्पित्र सहित), व्यास ६.५ फुट (१.९८ मीटर) और लम्बाई ६२ फुट (१८.९० मीटर) २२१८०० रु०

" " व्यास ६.५ फुट (१.९८ मीटर) और लम्बाई ८२ फुट (२४.९९ मीटर) २५५६६६.७ रु०

" " व्यास ६.५ फुट (१.९८ मीटर), और लम्बाई ४५ फुट (१३.७२ मीटर) २०१७६० रु०

(३) महोदय बोर्सिग, एक्टीगिसैलसैफ्ट्–टेगल (वेस्ट जर्मनी)

(भारत मे प्रतिनिधि–महोदय के० जी० खोसला एन्ड कम्पनी, प्राइवेट लिमिटेड, १ देशबन्धु गुप्त रोड, नयी दिल्ली १)

संयन्त्र परिमाण (विशिष्टि-अनुसार अन्य यन्त्रों सहित वल्क छीलन मशीन, क्रेन इत्यादि)

निपीड रम्भ, व्यास २.२ मीटर (७.२ फुट) और लम्बाई २५ मीटर (८२.१ फुट) ६,९१,४०० रु० (सन् १९५२ मे)

संयन्त्र परिमाण (विशिष्टि-अनुसार केवल पम्प, ट्रालियाँ, तुला, तैल-तापन यन्त्र इत्यादि सहित)

निपीड रम्भ, व्यास १.३ मीटर (४.३ फुट) और लम्बाई ११.७ मीटर (३८.४ फुट) १७५६०० रु० (सन् १९५६ मे)

(४) महोदय बस लिमिटेड, बैसिल २, स्विटजरलैड

संयन्त्र परिमाण (विशिष्टि-अनुसार यन्त्र, वाष्पित्र द्वारा चालित पम्प इत्यादि) (सन् १९५२ में) मूल्य कथन स्विस फ्रैन्क

निपीड रम्भ, व्यास २.४४ मीटर (८ फुट) और लम्बाई १३.७५ मीटर (४५ फुट) २६०००० रु०

" " व्यास १.८३ मीटर (६ फुट) और लम्बाई १३.७५ मीटर (४५ फुट) २१०००० रु०

" " व्यास २.१३ मीटर (७ फुट) और लम्बाई १३.७५ मीटर (४५ फुट) २३४००० रु०

निपीड रम्भ	व्यास २.४४ मीटर (८ फुट) और लम्बाई २५ मीटर (८२ फुट)	३०९००० रु०
,, ,,	व्यास १.८३ मीटर (६ फुट) और लम्बाई १९ मीटर (६२ ४ फुट)	२२७००० रु०
	२४ ट्रालियाँ	२६०० रु०
	मिश्रणकुण्ड (२५ घनमीटर)	५८०० रु०
	अभिलेखक; तापमान और निपीडक (प्रत्येक दो)	३१०० रु०
	तुला	११३०० रु०
	वाष्पित्र (१०.५ वायुमण्डल सेवा दबाव)	५५००० रु०
	दो वर्ष के लिए अतिरिक्त भाग	३५००० रु०

(५) महोदय बौलीडौन्स् ग्रभाक्टीबोलाग, स्टौकहोम, स्वीडन

(भारत में प्रतिनिधि—महोदय भल्कन ट्रेडिग कम्पनी, प्राइवेट लिमिटेड, इन्डस्ट्रियल प्लान्ट डिवीजन, ८।९ थाम्बू चेट्टी स्ट्रीट, मद्रास १)

संयन्त्र परिमाण (अन्य यन्त्र सहित) (सन् १९५७)

रम्भ व्यास		रम्भ लम्बाई		मूल्य, स्वीडिश क्राउन मे (स्वीडिश बन्दरगाह पर)
मीटर	इंच	मीटर	फुट	
१.०	४०	५	१७	२१०००
१.२	४८	६	२०	३३०००
१.२	४८	८	२७	३७५००
१.५	६०	१०	३३	४७०००
१.५	६०	१५	५०	५६०००
१.५	६०	२२	७३	६७०००

पूर्वोक्त रम्भो मे एक ही द्वार होगा। यदि दो द्वारो के रम्भ की आवश्यकता हो तो उसका मूल्य १.५ मीटर व्यास के रम्भ के लिए ५००० स्वीडिश क्राउन अधिक होगा। इसमे तापन के साधन सम्मिलित नही हैं।

(६) महोदय हिक्सन टिम्बर इम्प्रेग्नेटिग कम्पनी लिमिटेड, लडन (यू० के०)

(भारत मे प्रतिनिधि—श्री जी० एल० हन्डा, पो० बोक्स १५६, नयी दिल्ली)

निपीड रम्भ व्यास ४.५ फुट (१.३५ मी०) लम्बाई ३६ (फुट (११.० मीटर) (सन् १९५७) मूल्य ७९३७० रु० (बम्बई मे)

(आ) **स्वदेशी निर्माता**

(१) महोदया वेस्टर्न मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी, पोस्ट बौक्स् १२३०, बम्बई १

संयन्त्र परिमाण (वाष्पित्र छोड़कर, अन्य यन्त्र सहित विशिष्टि-अनुसार) (सन् १९५८) मूल्य

निपीड रम्भ, व्यास ५ फुट (१.५२ मीटर), लम्बाई ४५ फुट (१३.७ मीटर) ११०००० रु०

निपीड रम्भ, व्यास ४ फुट (१.२२ मीटर), लम्बाई ४५ फुट (१३.७ मीटर) ८५००० रु०

(२) महोदय एस्क्यू वुड प्रौडक्टस्, २६ चौरंगी रोड, कलकत्ता १३ (प्रतिनिधि—महोदय विलियम् जैक्स् एन्ड कम्पनी, पोस्ट बौक्स् ३६९, कलकत्ता १)

संयन्त्र परिमाण (वाष्पित्र छोड़कर अन्य यन्त्र सहित, विशिष्टि-अनुसार) (सन् १९५७) मूल्य

निपीड रम्भ, व्यास ४ फूट (१.२२ मीटर), लम्बाई ४० फुट (१२.२ मीटर) ७३००० रु०

निपीड रम्भ, व्यास ३ फुट (०.९१ मीटर) और लम्बाई ३५ फुट (१०.७ मीटर) २२७५० रु०

(३) महोदय किन्लैब (प्राइवेट) लिमिटेड, १५१ कार्नानी मैनीशन, पार्कस्ट्रीट, कलकत्ता १६

संयन्त्र परिमाण (वाष्पित्र छोड़कर अन्य यन्त्र सहित विशिष्टि-अनुसार) (सन् १९५७) मूल्य

निपीड रम्भ, व्यास ४ फुट (१.२२ मीटर), लम्बाई ४० फुट (१२.२ मीटर) ६०००० रु०

निपीड रम्भ, व्यास ३ फुट (०.९१ मीटर), लम्बाई ३६ फुट (११.० मीटर) ४०००० रु०

(ख) **अनिपीड संयन्त्र—तापन-शीतन खुला कुण्ड**

(१) महोदय किन्लैब (प्राइवेट) लिमिटेड, १५७ कार्नानी मैनीशन्, पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता १६

संयन्त्र परिमाण (विशिष्टि-अनुसार, पम्प, सेवाकुण्ड इत्यादि सहित)

आयताकार, मृदु-इस्पात-चादर (३।१६ इंच अथवा ४.७६ मिलीमीटर) का बना कुण्ड–	(सन् १९५७) मूल्य
लम्बाई–३१ फुट (९.४५ मीटर)	
चौड़ाई–४ फुट (१.२२ मीटर)	
गहराई–४ फुट (१.२२ मीटर)	१८००० रु०

(२) निम्नलिखित निर्माताओं से पूछताछ करने और उनको यथोचित मात्रा मे मृदु-इस्पात चादरें उपलब्ध कराने पर, तापन-शीतन उपचार के लिए खुले कुण्ड बनाये जा सकते है। यह उचित होगा कि इस सम्बन्ध में उनसे मूल्याकलन मँगाये जायँ।

सर्वश्री विलियम जैक्स एन्ड कम्पनी लिमिटेड, १६, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता १; सर्वश्री वैस्टर्न मैन्यूफैक्चरिग कम्पनी, हसन चैम्बर्स, पार्सी बाजार स्ट्रीट, फोर्ट, बम्बई १

—कॉर्पोरेटेड इन्जीनियर (इन्डिया) लिमिटेड, ७ चित्तरञ्जन एवेन्यू, चौरंगी स्क्वायर, कलकत्ता १३

—टी० ई० टौम्पसन् एन्ड कम्पनी, ९ ए इस्प्लैनेड ईस्ट, कलकत्ता १

—ग्रीव्स् कौटन एन्ड कम्पनी लिमिटेड, १ फोरबेस स्ट्रीट, पोस्ट बौक्स ९१, बम्बई १

—एलकौक, एशडउन एन्ड कम्पनी लिमिटेड, डिफैन्स् वर्कस्, मझगांव, बम्बई १०

इसके अतिरिक्त और भी यान्त्रिक अभियान्त्रिकी-फर्मों ('मिकैनिकल इन्जीनियरिंग फर्म्स') से इस सम्बन्ध में पत्रव्यवहार करने और संयन्त्रों की उचित विशिष्टि देने पर, अनिपीड साधारण काष्ठ-उपचार संयन्त्रों का निर्माण कराया जा सकता है।

(३) मन्द निपीड (० से लेकर ५० पौड प्रति वर्ग इंच, अर्थात् ० से लेकर ३.५१ किलोग्राम प्रति वर्ग सेन्टीमीटर) के रम्भ, जो पेटियों के बक्स और गृह-छत-निर्माण तख्तों और तनु-बाड़-खम्भों के उपचार के लिए उपयुक्त होते है, और जो इधर-उधर ले जाने के लिए भी सुविधाजनक है, अपेक्षाकृत कम मूल्य पर निर्माण कराये जा सकते हैं। उपर्युक्त खंड (२) मे दिये गये निर्माता इस प्रकार के संयन्त्र बनाने में समर्थ हो सकते हैं। इसके लिए हाथ से चलाये जानेवाले निपीड-पम्प कार्य कर सकते हैं। ऐसे एक ३ फुट (०.९१ मीटर) व्यास और

१२ फुट (३.६६ मीटर) लम्बाई के रम्भ उपचार-सयन्त्र की मेसर्स एस्क्यू वुड प्रौडक्टस् ने विरचना की है। इसका मूल्य (सन् १९५३ मे) लगभग ५००० रु० था।

यदि ये छोटे परिमाण के रम्भ पहियों के ऊपर धारण कराये जायँ तो ये सुवाह्य बन सकते हैं और इनसे पृथक्-पृथक् स्थानों मे शीघ्र ही काष्ठ-उपचार किया जा सकता है। चित्र ७४ मे ऐसे वाह्य-निपीड-सयन्त्र दर्शाये गये हैं।

(४) बूशरी प्रक्रिया से हरे काष्ठ-खम्भ और गोल बाँसो के उपचार के लिए मन्द-निपीडक कुण्ड (जो चित्र ५५ मे दिखाये गये है) किसी भी यान्त्रिकी शाला मे पतली इस्पात चादरो से बनाये जा सकते हैं। देहरादून मे एक १ घनफुट (लगभग २८ लीटर) का कुण्ड (कपाट इत्यादि सहित), प्रायः १०० रु० मे बनाया गया गया था।

(ग) उपसाधित्र

(क) **वाष्पित्र**

(स्वदेशी निर्माता)

सर्वश्री बैबकॉक एन्ड विलकॉक्ष औफ इन्डिया लिमिटेड, ४, बैंकशौल स्ट्रीट, कलकत्ता।

—गैनन्, डन्कर्ले एन्ड कम्पनी लिमिटेड, ४ लायन्स् रेन्ज, कलकत्ता।

—टैक्समटाइल मैशीनरी कॉर्पोरेशन लिमिटेड, पो० ओ० बेलघरिया, २४ परगना, कलकत्ता।

—जौन टॉम्पसन् (इन्डिया) प्राइवेट लिमिटेड, ४ फेयर्ली प्लेस, कलकत्ता।

—स्टैन्डर्ड इन्जीनियर्स एन्ड को०, ११६ जी० टी० रोड कानपुर।

—टैक्समैको, ८ इन्डिया इक्सचेन्ज प्लेस, कलकत्ता १।

(ख) **खम्भ-छीलन मशीन** (विदेशी निर्माता)

सर्वश्री एल्बर्ट बैजनर, रेबन्सबर्ग (वुर्थ), फर्नरूफ नर २१०६ (वेस्ट जर्मनी), मूल्य लगभग ५८०३ डालर।

—जौन पिकल्स् एन्ड सन्स्, हैल्डन ब्रिज, इंग्लैंड, मूल्य लगभग १३०० पौड।

(ग) **चट्टे लगाने की मशीन**

मेसर्स बौलीडौन्स ग्रूभाक्टिबोल्गा, ए० बी० स्वीडन, मूल्य लगभग १८०० स्वीडिश क्राउन।

(घ) **पम्प इत्यादि** (स्वदेशी निर्माता)

मेसर्स टी० ई० टॉमसन एन्ड कम्पनी लिमिटेड, ९ ए इस्प्लेनेड ईस्ट, पो० औ० १९३, कलकत्ता १।

मेसर्स के० जी० खोसला एन्ड को०, १ देशबन्धु गुप्त रोड, नयी देहली।

„ वर्थिङ्टन एन्ड सिम्पसन लिमिटेड, १०४ अपौलो स्ट्रीट, बम्बई १।

„ माथर एन्ड प्लाट लिमिटेड, ७ हेयर स्ट्रीट, कलकत्ता।

„ ब्रिटिश इलैक्ट्रिकल्स् एन्ड पम्पस् लिमिटेड, १–१ बी मिशन रो इक्सटैन्सन, कलकत्ता।

(ङ) **अभिलेखक तापमान और निपीडक**

मेसर्स लार्सन एन्ड टोब्रू लिमिटेड, १ सी हाउस, दुगल रोड, बलार्ड इस्टेट, बम्बई १।

„ के ओर ब्रदर्स, पी ३६, रोयल इक्सचेन्ज प्लेस इक्सटैन्सन्, कलकत्ता १।

„ टोशनीवाल ब्रदर्स लिमिटेड, १९८ जमशेदजी टाटा रोड, फोर्ट, बम्बई १।

४. परिरक्षी रसायनों के निर्माता, उत्पादन और मूल्य

सारणी–३१

(सन् १९५३ में)

क्रमांक	परिरक्षी रसायन	निर्माता	लगभग प्रति वर्ष उत्पादन (स्वदेशी या आयातित)	मूल्य
१	२	३	४	५
		तैल-रूपी		
१	कोलटार क्रियोजोट	मेसर्स शाल्मीमार टार प्रौडक्टस् (१९३५) लि०, ६ लियोन्स् रेन्ज, कलकत्ता।	४००० टन (स्वदेशी)	१२·३७ रु० प्रति हन्डरवेट
२	क्रियोजैन्ट	,, ,,	—	४ रु० प्रति गैलन
३	कोलटार क्रियोजोट	१. — वरारी कोक कम्पनी लि० ४, क्लाइव रो, कलकत्ता।		
		२. — नाग कैमिकल इन्डस्ट्रीज ४ मन्डेभिले गार्डन, बेलीगंज, कलकत्ता।	९० टन (स्वदेशी)	
४	सौलिग्नम्	१. — आर० के० एन्ड जे० के० डौम, वार्डलेहाउस, २५ स्वालो लेन, कलकत्ता १।	(आयातित)	७ रु० प्रति गैलन
		२. — ग्लैडस्टोन लायल एन्ड को लि०, ४ फेयर्ली प्लेस, कलकत्ता।		

क्रमांक	परिरक्षी-रसायन	निर्माता	लगभग प्रति वर्ष उत्पादन (स्वदेशी या आयातित)	मूल्य
१	२	३	४	५
५	स्लीपर ऑइल वुड-ऑइल अर्थ ऑइल	मेसर्स बर्मा ऑइल कम्पनी (इन्डिया-ट्रेडिंग) लि०, दिगबौय, आसाम।	९३८५२ गैलन ४६४२९ गैलन ११५३९ गैलन (स्वदेशी)	इन तैलों में कुछ क्रियोजोट (०·५ प्रतिशत तक) मिला रहता है।
६	अर्थ ऑइल, फ्यूयल ऑइल और फर्नेस ऑइल (इन्धन तैल)	१. — स्टेन्डर्ड वैकुअम ऑइल कम्पनी। २. — बर्मा-शैल क०	बड़ी मात्रा में प्राप्त (आयातित)	१३१·०६ रु० प्रति टन (टैंक वैगन मे)।
		प्रांगारिक-विलायक-रूपी		
१	कॉपर नैप्थीनेट (२००-यस)	— स्टेन्डर्ड वैकुअम् ऑइल कम्पनी, क्यूनस्वे, न्यू देहली।	—	८६·९० रु० प्रति हडरवेट। २ प्रतिशत ताम्र धातु वाला
२	कॉपर नैप्थीनेट	— जैन्सन एन्ड निकल्सन् (इन्डिया) लि०, २ फेयर्ली प्लेस, कलकत्ता १।	३ टन (आयातित)	८ प्रतिशत ताम्र धातु वाला।
	जिक नैप्थीनेट	,, ,,	२ टन (आयातित)	१२ प्रतिशत जिक धातु वाला
३	कॉपर और जिक नैप्थीनेट (हार्डीप्रूफ)	— एडिसन पेन्टस् एन्ड कैमीकल्स् लि०, मैम्बियाम, मद्राम-११।	स्टेन्डर्ड हार्डीप्रूफ-२३२३ गैलन	१२ रु० प्रतिगैलन

१	२	३	४	५
			कौन्स० हार्डीप्रूफ १५५४ गैलन (स्वदेशी)	
४	कॉपर और जिक नैप्थीनेट	मेसर्स कलकत्ता इन्डस्ट्रियल कैमीकल्स् एन्ड मिनरल्स को० लि०, ४३ धरमतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता-१३।	—	—
५	पैन्टाक्लोरोफीनौल	१. — मौन्सेन्टो कैमिकल्स् ऑफ इन्डिया लि० पो० बॉक्स ३४४-ए, बम्बई १। २. — अल्टा लेबोरेटरीज़, बम्बई	२७३०० पौंड (आयातित) (स्वदेशी)	२२७·६० रु० प्रति हन्डरवेट
		जल-विलयन रूपी		
१	आर्सनिक पैन्टोक्साइड	१. — इम्पीरियल कैमिकल इन्डस्ट्रीज (इन्डिया) लि०। २. — सुरेश एन्ड को० लि०, ५७ लोहार स्ट्रीट, बम्बई-२।	(आयातित) (आयातित)	
२	आर्सनिक ट्राइऑक्साइड	१. — इम्पीरियल कैमिकल इन्डस्ट्रीज (इन्डिया) लि०। २. — सुरेश एन्ड को० लि०, ५७ लोहार स्ट्रीट, बम्बई-२।	(आयातित) (आयातित)	
३	कॉपर सल्फेट	१. — शंभूनाथ एन्ड सन्स् लि०, जी० टी० रोड, अमृतसर। २. — मैसूर कैमीकल्स एन्ड फर्टीलाइजर लि०, मानीभिलास रोड, मैसूर।	१९४९ टन (स्वदेशी)	

क्रमांक	परिरक्षी-रसायन	निर्माता	लगभग प्रतिवर्ष उत्पादन (स्वदेशी या आयातित)	मूल्य
१	२	३	४	५
		३. मेसर्स इक्सल इन्डस्ट्रीज, जोगेस्वरी, बम्बई। ४. — मैसूर कैमिकल मैन्यूफेक्चरर्स चिकबनाभर (मैसूर)। ५. — केमर सुगर वर्क्स, ४५–४७ अपोलो स्ट्रीट, फोर्ट, बम्बई। ६. — पिटलाड टर्की रैड डाइ वर्कस् को० लि०, पिटलाड। ७. — शभूनाथ कैमिकल वर्कस्, एच० ब्लाक, कैनॉट सर्कस, न्यू देहली। ८ — इन्डिया एल्कैलीज, ४ गार्स्टनी प्लेस, कलकत्ता। ९. — राम्को कैमिकल वर्कस्, कपासिया बाजार, अहमदाबाद। १०. — इम्पीरियल कैमिकल इन्डस्ट्रीज (इन्डिया) लि०। ११. — सुरेश एन्ड को० लि०, ५७ लोहार स्ट्रीट, बम्बई-२। १२. — बगाल कैमिकल एन्ड फार्मास्यूटिकल वर्कस् लि०, कलकत्ता।	८८ रु० प्रति हन्डरवेट।	

१	२	३	४	५
४	सोडियम और पोटासियम् डाइक्रोमेटस्	१. — कैमिकल इन्डस्ट्रीज को० लि०, २९ स्ट्रैन्ड रोड, कलकत्ता।		
		२. — कानपुर कैमिकल वर्कस्, अनवरगंज, कानपुर।		
		३. — हिन्दुस्तान कैमिकल वर्कस् लि० अदभानी चैम्बर्स, सर पी० एम० रोड, बम्बई।	संपूर्ण उत्पादन लगभग १४६० टन।	८५ रु० प्रति हुडरवेट (बड़ी मात्रा मे)।
		४. — पाइनियर क्रोमेट वर्कस् लि०, करीमभोय हाउस, ईस्ट औट्राम्-रोड, फोर्ट, बम्बई।		
		५. — प्रीमियर क्रोमेट एन्ड केमिकल वर्कस्, ४०२ कैडल रोड, बम्बई।		
		६. — गवर्मेंट डाइक्रोमेट फैक्टरी, बेलागुला (मैसूर)।		
		७. — गोल्डन कैमिकल लि०, १५६ घोबन्दर रोड, भिल्लेपार्ले, बम्बई।		
		८. — बकिंघम एन्ड कर्नाटक को० लि०, पी० बी० ६६, मद्रास-१।		
५	जिंक क्लोराइड	१. — टाटा कैमिकल लि०, मिटियापुर, सौराष्ट्र।	(स्वदेशी) लगभग ३८४ टन।	
		२. — बंगाल कैमिकल एन्ड फार्मास्यूटिकल वर्कस् लि०, ९४ चितरञ्जन एवेन्यू, कलकत्ता।		
६	जिंक सल्फेट	१. — पिटलाड टर्की रैड डाइ वर्कस् को० लि०, पिटलाड।		

१	२	३	४	५
		२. मेसर्स फोनिक्स कैमिकल वर्कस्, आगरा रोड, ओल्ड कुरला, बम्बई।	(स्वदेशी) लगभग ६० टन।	
		३. — इक्सैल इन्डस्ट्रीज,जोगेश्वरी, बम्बई।		
		४. — इन्डिया कैमिकल इन्डस्ट्रीज, १०५ कॉटन स्ट्रीट, कलकत्ता।		
		५. — इन्डिया एल्कैलीज लि०, ५ गार्स्टन प्लेस, कलकत्ता।		
		६. — बंगाल कैमिकल एन्ड फार्मास्यूटिकल वर्कस् लि०, कलकत्ता।		
७	बोरिक एसिड और बोरैक्स (सुहागा)।	१. — शंभुनाथ कैमिकल वर्कस्, कैनाट सर्कस, न्यू देहली।	(आयातित)	३६·५० रु० प्रति हन्डरवेट।
		२. — इम्पीरियल कैमिकल इन्डस्ट्रीज (इन्डिया) लि०।		
		३. — सुरेश एन्ड को० लि०, ५७ लोहार स्ट्रीट, बम्बई-२।		
८	सोडियम पैन्टाक्लोरोफीनेट	— मौनसान्टो कैमिकल्स् ऑफ इन्डिया लि०, बम्बई-१।	(आयातित) ११९६७२ पौड	२४१ ५० रु० प्रति हन्डरवेट।
		जल-विलयन (बद्ध) रूपी—एकस्वीकृत		
१	ऐस्क्यू ..	— एस्क्यू वुड प्रौडक्टस्, २६ चौरंगी कलकत्ता १३।	(स्वदेशी)	
२	कुक्रोम ..	— किन्लब (प्राइवेट) लि०, १५७ कार्नानी मैनीशन,पार्क स्ट्रीट,कलकत्ता १६।	(स्वदेशी)	
३	बौलीडौन सौल्ट (एस० २५)	— लार्सन एन्ड टौब्रू लि०, इन्जीनियर्स, पौ० बौ० ९८, बगलौर-१।	(आयातित)	१५७·६३ रु० प्रति हन्डरवेट।

निर्देश-सूची

१ (च) पुरुषोत्तम, ए; पांडे, जे० एन०; जादव, वाई० जी०; भारतीय वन विवरणिका ('इन्डियन फौरेस्ट बुलेटिन'), नं० १६८, १९५३, पृष्ठ ९।

१ (छ) तत्रैव पृष्ठ ११।

१ (ज) तत्रैव पृष्ठ ६७–६८।

१ (झ) तत्रैव पृष्ठ ४०–४८।

३ (ख) काष्ठ-प्रचूषक और परिरक्षक संस्था की पत्रिका ('जर्नल् ऑफ दी टिम्बर ड्रायर्स एन्ड प्रीजरवर्स एसोसियेशन् ऑफ इन्डिया) जनवरी १९५४, पृष्ठ ६।

३ (ग) तत्रैव जनवरी १९५५, पृष्ठ १७।

४ (ठ) हन्ट, जी० एम०; गैरेट, जी० ए०; काष्ठ परिरक्षण ('वुड प्रीजरवेशन'), मैकग्रौहिल बुक कम्पनी, इक, न्यूयार्क, १९५३, पृष्ठ ३१७।

४ (ड) तत्रैव पृष्ठ २७१।

४ (ढ) तत्रैव पृष्ठ ३५३–५४।

४ (ण) तत्रैव पृष्ठ ३५७।

११. नारायणमूर्ति, डी०, भारतीय वन महाविद्यालय, ('इन्डियन फौरेस्ट कॉलेज') के विद्यार्थियों के लिए व्याख्यान टिप्पण।

१२ (क) नारायणमूर्ति, डी०, भारतीय वन विवरणिका, ('इन्डियन फौरेस्ट बुलेटिन') ११९, 'काष्ठ, यान्त्रिक और रासायनिक अभियन्त्रिकी मे, १९४८ पृष्ठ ३।

१२ (ख) तत्रैव पृष्ठ ४।

१२ (ग) तत्रैव पृष्ठ ५।

१२ (घ) तत्रैव पृष्ठ ८।

१२ (ङ) तत्रैव पृष्ठ १३।

१३. काष्ठ परिरक्षण समाचार ('वुड प्रीज़र्विंग न्यूज'), अमेरिकन काष्ठ परिरक्षण सस्था द्वारा प्रकाशित, मार्च १९३७, पृष्ठ ३०।

१४ (क) पुरुषोत्तम, ए०; सूदन, एस० के०; और विद्यासागर; भारतीय वन विवरणिका ('इन्डियन फौरेस्ट बुलैटिन'), १७८, १९५४, पृष्ठ ९।

१४ (ख) तत्रैव पष्ठ १९।

परिशिष्ट १

सारणी ११

परिरक्षी-प्रवेशन के दृश्यता-निश्चायक प्रतिकर्ता रसायन

यदि क्रियोजोट-जैसे तैलीय परिरक्षी से काष्ठ का उपचार किया गया हो तो काष्ठ में इसके प्रवेशन का निश्चयन गहरा रंग होने के कारण सरलता से किया जा सकता है। कॉपर नैफ्थीनेट जैसे प्रांगारिक विलायक रूपी परिरक्षी भी रंगीन होते हैं, अतः इनका प्रवेशन भी काष्ठ के अन्दर स्पष्ट ज्ञात हो जाता है, परन्तु अन्य विलायक और जल-विलेय परिरक्षियों का स्पष्टीकरण, जो हलके रंग के अथवा रंगहीन होते हैं, निम्नलिखित प्रतिकर्ता रसायनों की सहायता से किया जा सकता है।

१. जिंक क्लोराइड अथवा क्रोमेटेड-जिंक क्लोराइड परिरक्षी

प्रतिकर्ता रासायनिक घोल

(क) १ ग्राम पोटैसियम् फैरीसाइनाइड, १०० घन सेन्टीमीटर पानी में

(ख) १ ग्राम पोटैसियम् आयोडाइड्, १०० घन सेन्टीमीटर पानी में

(ग) ५ ग्राम घुलनशील स्टार्च, १०० घन सेन्टीमीटर पानी में

स्टार्च को उबलते पानी में डालकर भली प्रकार घोल बना लेना चाहिए। यह घोल अधिक समय तक नहीं रखा जा सकता, क्योंकि इसके खट्टा हो जाने का भय है।

लगाने की रीति—उपरिलिखित तीनों घोल (क), (ख) और (ग) प्रत्येक की १० घन सेन्टीमीटर मात्रा को भली प्रकार मिला लें और उपचारित काष्ठ के स्वच्छ अनुप्रस्थ छेद अथवा संछिद्रित डट्टा के ऊपर शीकरन या लेपन द्वारा लगा दें। उपचारित भाग तुरन्त नीले रंग का हो जायगा और अनुपचारित भाग कुछ समय उपरान्त तक रंगहीन ही रहेगा।

२. एस्क्यू या सैल्क्यूलर परिरक्षी

प्रतिकर्ता रासायनिक घोल

०.५ ग्राम एस० डाइफिनाइल कार्बजाइड को ५० घन सेन्टीमीटर आइसोप्रोपाइल एल्कोहोल और ५० घन सेन्टीमीटर डिस्टिल्ड जल में घोलिए।

लगाने की रीति—उपचारित काष्ठ के अनुप्रस्थ छेद अथवा डट्टा के स्वच्छ भाग के ऊपर शीकरन या लेपन द्वारा उपरिलिखित घोल को लगाइए। उपचारित काष्ठ गुलाबी रंग का हो जायगा और अनुपचारित काष्ठ का रंग वैसा ही रहेगा।

३. जिंक मैटाआर्सिनाइट परिरक्षी

प्रतिकर्ता रासायनिक घोल

(क) १ ग्राम आयोडीन और ५ ग्राम पोटैसियम् आयोडाइड को १०० घन सेन्टीमीटर पानी में घोलिए।

(ख) ४ ग्राम घुलनशील स्टार्च और ८ ग्राम सोडियम बाइकार्बोनेट को १०० घन सेन्टीमीटर पानी में घोलिए। स्टार्च को उबलते पानी में घोलना चाहिए और तब कमरे के तापक्रम तक ठंडा हो जाने पर सोडियम बाइ-कार्बोनेट डालिए।

लगाने की रीति—उपचारित काष्ठ के अनुप्रस्थ छेद या संछिद्रित डट्टा के तल पर उपरिलिखित (क) और (ख) घोल की बराबर मात्रा को मिलाकर शीकरन या लेपन से लगा दिया जाय। उपचारित काष्ठ तुरन्त रंगहीन हो जायगा और अनुपचारित भाग का रंग कुछ समय तक वैसा ही रहेगा।

४. पैन्टाक्लोरोफीनौल परिरक्षी

प्रतिकर्ता रासायनिक घोल

कॉपर एसीटेट के १ प्रतिशत घोल को रैक्टीफाइड स्पिरिट में बनाइए।

लगाने की रीति—कूंची द्वारा उपरिलिखित घोल को स्वच्छ उपचारित काष्ठ के अनुप्रस्थ छेद या संछिद्रित डट्टा के ऊपर लेपन कीजिए। उपचारित काष्ठ भूरे रंग का हो जायगा।

परिशिष्ट २

सारणी १४

क्षतिरोधक उपायों का विवरण

(काष्ठ और बाँसों के कटान के तुरन्त पश्चात्)

प्राचीन काल में जब काष्ठ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था, तब टीक, साल, देवदार-जैसे स्थायी काष्ठों के रसकाष्ठ को निकालकर प्रयोग में लाया जाता था। अब काष्ठ की माँग अत्यन्त बढ़ गयी है, अतः न केवल द्वितीय श्रेणी के अस्थायी काष्ठ को ही, किन्तु सभी काष्ठों के रसकाष्ठ को भी प्रयोग में लाने लगे हैं। यद्यपि इस पर संतोष होता है कि काष्ठ-संपत्ति का उचित प्रकार से प्रयोग किया जा रहा है, तथापि सभी काष्ठों के रसकाष्ठ और द्वितीय श्रेणी के अस्थायी काष्ठों के सारकाष्ठ भी कवक और कीटों के आक्रमण को रोक नहीं सकते, जिसके कारण अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती रहती हैं। इसके अतिरिक्त अभिरञ्जक कवकों से भी काष्ठ को पर्याप्त मात्रा में क्षति पहुँचती है। बाँस आदि भी इसी प्रकार आक्रमण के ग्रास बन जाते हैं, विशेष कर छिद्रक कीटों (घुन) के। यह आक्रमण-काल वर्षा ऋतु में उग्र रहता है, जब मौसम की दशा उष्ण-नम रहती है। इस प्रकार का आक्रमण कुछ काल तक क्षतिरोधक उपायों से रोका जा सकता है, अर्थात् क्षतिरोधक उपायों के समय-समय पर पुनरावर्तन से काष्ठ को तब तक सुरक्षित रख सकते हैं जब तक कि स्थायी रूप से उसका उपचार न किया जाय। ये उपाय काष्ठ के लट्ठों के कटान के तुरन्त पश्चात् वल्करहित करने पर परिरक्षी से शीकरन या लेपन करने से सफल होते हैं। यहाँ पर यह विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है कि काष्ठ का प्रत्येक भाग पूर्णतया परिरक्षी से आवृत हो। जिस काष्ठ में अधिक विपटन[1] हो उसको धूप से बचाना चाहिए और उसके टक्कर में परिरक्षी के अतिरिक्त विपटन-रोधी संगठनों का लेप करना भी अनिवार्य होता है।

निम्नलिखित सारणी में क्षतिरोधक परिरक्षी, उनकी मात्रा और मूल्य का विवरण दिया गया है।

1 Splitting.

सारणी–१४

क्रमांक	परिरक्षी और उसका संगठन	परिरक्षी का जल मे प्रतिशत संकेन्द्रण	चार गैलन टीन मे जल-विलयन परिरक्षी बनाने की मात्रा	उपचार के लिए			
				१००० बी० जी० स्लीपरो का		१००० वर्गफुट काष्ठ-तल का	
				परिरक्षी विलयन की मात्रा, गैलन मे	परिरक्षी का मूल्य	परिरक्षी विलयन की मात्रा, गैलन में	परिरक्षी का मूल्य
					रु० न.पै.		रु. न.पै.
१	क्रियोजोट का जल मे पायस ('इमल्सन्')	२५	—	२००	१२५ ·००	१०	६ ·२५
२	एस्क्यू आर्सनिक पैन्टोक्साइड—१ भाग कॉपर सल्फेट—३ भाग सोडियम डाइक्रोमेट—४ भाग	६	२ ·४ पौड (१ ·१ किलोग्राम)	२००	१२० ·००	१०	६ ·००
३	बोरिक अम्ल—१ भाग जिंक क्लोराइड—३ भाग सोडियम डाइक्रोमेट–४ भाग	८	३ ·२ पौड (१ ·५ किलोग्राम)	२००	१५० ·००	१०	७ ·५०
४	गैमक्सेन— १ भाग (एग्रोसाइड, जल-वितरण वाला चूर्ण) सोडियम पैन्टाक्लोरोफीनेट १ भाग	२	० ·७५ पौड (० ·३४ किलोग्राम)	२००	१२८ ·७५	१०	६ ·४४

टिप्पणी —

(१) परिरक्षी को लगाने की विधि या तो उसके विलयन मे काष्ठ को ५ मिनट तक डुबाये रखने की है, या काष्ठ-दल पर परिरक्षी-विलयन के दो उदार लेप कूँची से लगाये जायँ (दूसरे लेप को तभी लगाना चाहिए जब पहला लेप सूख जाय)। तीसरी विधि यह है कि काष्ठ-तल पर परिरक्षी-विलयन का पिचकारी से अच्छी तरह शीकरन किया जाय।

(२) काष्ठ-स्लीपरों को 'नौ मे एक' विधि से और तख्तो के बीच मे बत्ते लगाकर चट्टा लगाना चाहिए। प्रत्येक दशा मे काष्ठ का भूमि से १८ इच उठे हुए आधारस्तम्भो पर, जो ईंट अथवा उपचारित काष्ठ के बने हों, चट्टा लगाना चाहिए।

(३) काष्ठ-प्रागण को सदा स्वच्छ रखना चाहिए और समय-समय पर चट्टो का निरीक्षण करते रहना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो तीन महीने के बाद क्षति-रोधक उपचार का पुन. प्रयोग करना वाछनीय है।

(४) काष्ठ के तल पर बुरादा दिखलाई देने पर यह सकेत मिलता है कि छिद्रक कीटों का आक्रमण होने लगा है। अभिरञ्जक या काष्ठ-नाशक कवको के आक्रमण से काष्ठ-तल पर फफूँदी या दाग उत्पन्न होने लगता है। यदि काष्ठ पर आक्रमण अधिक मात्रा मे हो गया हो, तो उसको जलाकर भस्म कर देना उचित होगा।

(५) यदि बहुत बड़ी सख्या मे काष्ठ को सुरक्षित रखना हो तो उपचार की शीकरन विधि सर्वश्रेष्ठ है। इस विधि से कार्य करनेवाले श्रमिको को ऐसे आवरण पहन लेने चाहिए जिससे उनकी नाक और आँखों का बचाव हो सके।

(६) काष्ठ-लट्ठो के लिए यह सर्वोत्तम है कि उनको पूर्णतया वल्क-रहित किया जाय और तब उदारता से सपूर्ण भाग मे परिरक्षी-शीकरन किया जाय। २ फुट व्यास और १४ फुट लम्बे आकार वाले लट्ठे की सतह को शीकरित करने के लिए १०० वर्ग-फुट काष्ठ-तल माना जाता है। काष्ठ को परिरक्षी से शीकरन करने के उपरान्त एक सप्ताह तक वर्षा या पानी से बचाना चाहिए।

(७) काष्ठ-स्लीपरो के लिए उपरिलिखित १ क्रमाक का परिरक्षी-सगठन उपयुक्त है। अन्य कार्य के काष्ठों के लिए २ और ३ क्रमाक के परिरक्षी उतरती दक्षता के अनुसार अभिस्तावित किये गये है। छिद्रक कीटो और अभिरञ्जक कवको के आक्रमण को रोकने के लिए ४ क्रमाक का परिरक्षी-सगठन उपयुक्त है। दूसरे प्रकार के परिरक्षियो को, जो कि सैल्क्यूलर, पैन्टाक्लोरोफीनौल, डीलिड्रन-पी० सी० पी०, इत्यादि-इत्यादि है, क्षतिरोधक परिरक्षी के रूप मे भी प्रयोग कर सकते है। यह सब काष्ठ के आकार-प्रकार, स्थान, जलवायु, रक्षणकाल, आक्रमण अभिकर्त्ता और काष्ठ के अन्तःप्रयोग के ऊपर निर्भर है।

परिशिष्ट ३

सारणी १६

वन-अनुसन्धान-शाला, देहरादून में किये गये परीक्षणों के अनुसार काष्ठ की प्राकृतिक दशा में प्रज्वलन-गति की सूची, जो काष्ठ के उतरते अर्थात् अवरोही अग्निरोधी गुणों के क्रमानुसार है–

श्रेणी १

१. हार्डविकिया बिनाटा, २. डायोस्पीरौस् जाति।

श्रेणी २

३. होपिया पार्वीफ्लोरा, ४. टर्मिनेलिया टोमेन्टोसा, ५. टर्मिनेलिया पैनीक्यूलाटा, ६. यूकेलिप्टस् ग्लौब्यूलस्, ७. शोरिया रोबस्टा (रसकाष्ठ), ८. बर्या एमोनिला।

श्रेणी ३

९. बिस्वोफिया जैभेनिका, १०. क्लोरोक्सीलौन स्वीटेनिया।

श्रेणी ४

११. बोरैसस् फ्लैबीलीफर, १२. करापा मौल्यूसेन्सिस्, १३. अर्टोकार्पस् हिर्स्यूटा, १४. एनोजाइसस् लैटीफोलिया, १५. टैक्टोना ग्रैन्डिस्, १६. क्वर्कस इलैक्स।

श्रेणी ५

१७. स्कीमा वालिची, १८. एकेशिया एरेबिका, १९. पाइनस् लौंगीफोलिया, २०. स्टीरियोस्पर्मम् सैलोनीइडीज, २१. टोडेलिया बाइलोक्यूलैरिस, २२. डायोस्पीरौस जाति (रसकाष्ठ), २३. लैगस्ट्रोमिया जाति, २४. डिप्टैरोकार्पस जाति, २५. टैरोकार्पस मार्स्यूपियम्, २६. एल्बीजिया लैबैक्, २७. टैरोकार्पस् डल्बर्जियोइड्स्, २८. डल्बर्जिया सिसू, २९. टर्मिनेलिया बैलैरिका।

श्रेणी ६

३०. प्रूनस् पैडम्, ३१. डलबर्जिया लैंटीफोलिया, ३२. एल्बीजिया ओडोराटिसिमा, ३३. कैलोफिलम् टोम्यनटोसम्, ३४. कुप्रूसस् टौरूलोसा, ३५. एडीना कौर्डीफोलिया, ३६. होमैलियम् टोमैन्टोसम्, ३७. सैड्रैला तूना।

श्रेणी ७

३८. जुग्लान्स रेजिया, ३९. हाइमैनोडिक्टयौन इक्सैल्सम्, ४०. टैट्रैमलस् न्यूडीफ्लोरा, ४१. टर्मिनेलिया बियालाटा।

श्रेणी ८

४२. पीसिया मोरिन्डा, ४३. स्वीटेनिया जाति, ४४. टर्मिनेलिया माइरियोकार्पा, ४५. मैंगीफरा इन्डिका, ४६. मोरस् जाति, ४७. पाइनस् इक्सैल्सा।

श्रेणी ९

४८. मौरिंगा जाति, ४९. एन्थोसिफैलस् कदम्बा, ५०. बौम्बैक्स मैलैबैरिकम्, ५१. इन्डौस्पर्मम् मैलैसैन्स्, ५५. एरीथ्रौना इन्डिका, ५६. क्रिप्टोमैरिया जैपोनिका।

परिशिष्ट ४

सारणी १८

खुले कुण्ड में तापन और शीतन उपचार संयन्त्र की विशिष्टि

१. एक पीडित इस्पात-चादर का बना कुण्ड, जिसका परिमाण ४० फुट (१२·२ मीटर) लम्बा, ६ फुट (१·८ मीटर) चौड़ा और ६ फुट (१·८ मीटर) गहरा हो। यह किनारों पर भली प्रकार संधानित और संवलित हो, ताकि यह काष्ठ-प्रभार और परिरक्षी का भार सहन करने योग्य हो और चूनेवाला न हो।

२. कुण्ड की संपूर्ण लम्बाई में सवा इंची (३·२ सेन्टीमीटर) मृदु-इस्पात के बने वाष्प-तापन-नाल हों और १.५ इंच (३.८ सेन्टीमीटर) के मोड़ ('यूनियन') हों। कुण्ड के तल पर कम-से-कम ऐसे १४ नाल होने चाहिए।

३. एक उसी परिमाण का (ऊपर १ पद में लिखा, लगभग ९००० गैलन अर्थात् ४०९१४ लीटर का) नीचे सेवाकुण्ड हो, जो ईंट और सीमेंट का भी बनाया जा सकता है। इसमें परिरक्षी-द्रव को उपचार-कुण्ड से, काष्ठ-प्रभार को उतारते और लादते समय, रिक्त कर संग्रह कर सकते हैं।

४. एक 'सैन्ट्रीफ्यूगल पम्प' जो द्रव को सेवा-कुण्ड से खींचकर उपचार-कुण्ड में भर दे।

५. मृदु-इस्पात चादर के बने लगभग २०,००० गैलन (९०९१९ लीटर) के दो संग्रह कुण्ड। इनके तले में गरम करने के लिए वाष्प-तापन-नाल भी होने चाहिए।

६. एक उपयुक्त वाष्पित्र।

७. दो तापमान-अभिलेखक (०° से १००° सेन्टीग्रेड)।

८. एक क्रेन जो काष्ठ-प्रभार को लादने और उतारने के लिए समर्थ हो।

९. अन्य विविध उपकरण, जैसे कि तुला, वाष्पजल-स्रावी ('स्टीम ट्रैप'), वाल्व, काष्ठ-प्रभार को दबाने के लिए लोह-दंड, इत्यादि-इत्यादि।

१०. एक उपयुक्त परिमाण का परिरक्षी-मिश्रण बनाने का कुण्ड।

उपरिलिखित संयन्त्र की वार्षिक उपचार-धारिता १२००० काष्ठ-खम्भ या ७२००० बी० जी० स्लीपर या २ लाख घनफुट काष्ठ की है।

परिशिष्ट ५

सारणी २०

एक आदर्श निपीड-उपचार-संयन्त्र की विशिष्टि

१. **रम्भ**—रम्भ मृदुपीडित-इस्पात चादर का बना हो, जिसका व्यास प्रायः ६ से ८ फुट (१·८ से २.४ मीटर) तक और लम्बाई ४५ फुट (१३·७ मीटर) हो और जिसके एक या दोनों सिरों में द्वार हों। द्वारों पर जिह्वा और नाली का प्रबन्ध हो, जिसको वोल्टों द्वारा बन्द करने से ३० इंच (७६·२ सेंटीमीटर) पारे का शून्यक और २०० पौंड प्रति वर्ग इंच (१४·०६ किलोग्राम प्रति वर्ग ९ सेन्टी-मीटर) का कर्मयोज्य दबाव (जलशक्ति द्वारा) संधारण हो सके। रम्भ ३६० प्रति वर्ग इंच (२५·३१ किलोग्राम प्रति वर्गसेन्टीमीटर) के अधिकतम दबाव के प्रति परिरक्षित किया गया हो। यह द्वि-रिभटों से जड़ित या संधानित हो। इसकी संपूर्ण लम्बाई में 'मीटर गेज' या 'नैरो गेज' की पटरियाँ इस प्रकार रक्षक पटरियों से बिछी हों कि उन पर ट्रौलियाँ निपीड क्रिया में उठ न सकें। द्वारों को खोलने और बन्द करने के लिए आवश्यक क्रेन हों।

रम्भ के तले में तापन के लिए वाष्पनाल की कम-से-कम चार कतारें हों और एक नाल नीचे सजीव वाष्प के लिए हो। रम्भ में अन्य उपकरण, शून्यक-मान, निपीडक-मान, तलमान, अभय-कपाट ('सेफ्टीवाल्व') और रिक्त करने के लिए तल पर ६ इंच (१५ सेन्टीमीटर) व्यास का संछिद्र और शून्यक के लिए ४ इंच (१० सेन्टी-मीटर) व्यास का और निपीड के लिए २.५ इंच (६.२५ सेन्टीमीटर) व्यास का संछिद्र-संयोजन हो और आवश्यक नाल-कपाट इत्यादि हों।

२. **आधार-धरण**—नीचे सेवाकुण्ड के ऊपर कुछ (लगभग ६) लोहे के धरण हों, जिनके ऊपर रम्भ स्थित हो।

३. **शून्यक पम्प**—एक वायु-निपीडक हो जो उलटा चलाने पर शून्यक पम्प का कार्य भी कर सके। यह रम्भ में, जो आधा भरा हो, आधे घंटे में ६० पौंड प्रति वर्ग-

इंच (४.२२ किलोग्राम प्रति वर्गसेन्टीमीटर) का वायु-दबाव दे सके। रम्भ को आरम्भ काल मे परिरक्षी से खाली करने के उपरान्त यह शून्यक पम्प भी २५ से ३० इंच (६३.५ से ७६.२ सेन्टीमीटर) पारे का दबाव देने मे समर्थ हो।

४. **द्रव-निपीडक पम्प**—यह ६० से १८० पौड प्रति वर्गइंच (४.२२ से १२.६६ किलोग्राम प्रति वर्गसेन्टीमीटर) का आधे घंटे मे तरल दबाव दे सके।

५. **सेन्ट्रीफ्यूगल पम्प**—एक पम्प जो गड्ढों से या नीचे कुण्ड से द्रव परिरक्षी को उठा सके।

६. **संघनक और नाल**—एक जल द्वारा उपयुक्त परिमाण का शीतन संघनक, जो तैल, जल और अन्य विलायकों की वाष्प को सघनित कर सके।

७. **नाल**—उपयुक्त नाल भी हों, जो रम्भ, सेवाकुण्ड, संग्रहकुण्ड, पम्प, संघनक इत्यादि से कपाटों द्वारा संयोजित हो सकें। एक हंस की गर्दन–जैसा नाल (४० फुट ऊँचा) जो रम्भ और सघनक के मध्य मे स्थित हो।

८. **सेवाकुण्ड**—एक मृदु इस्पात चादर का बना, रम्भ के समान धारिता का कुण्ड हो। इसके तल मे उपयुक्त वाष्प-नाल तापन-क्रिया के लिए स्थित हों। इसमे तैरने वाला मापक हो जिससे परिरक्षी द्रव का प्रचूषण ज्ञात हो सके। इसमे से उचित नाल, रम्भ, पम्प, संघनक, निपीडक इत्यादि के साथ सयोजित हों।

९. **ट्रौलियाँ**—लगभग २४ ट्रौलियाँ (४ पहियेवाली) हों जिनसे काष्ठ-प्रभार रम्भ के बाहर और भीतर ले जाया जा सके।

१०. **संग्रह-कुण्ड**—उपयुक्त धारिता के संग्रहकुण्ड हो, जिनमे लगभग तीन लाख गैलन तक प्रत्येक क्रियोजोट और इन्धन तैल संग्रह किये जा सके। एक ५००० गैलन का मिश्रणकुण्ड भी होना चाहिए। इनके तलो मे वाष्पनाल द्वारा तापन का प्रबन्ध हो।

११. यथोचित अभिलेखक, तापमान, निपीडकमान और शून्यकमान के भी हों।

१२. एक चलित चार टन भार उठानेवाला क्रेन हो।

१३. काष्ठ को तोलने के लिए मच-तुला भी हो।

१४ एक छीलन, छिद्रण और भेदन मशीन भी हो।

१५. एक काष्ठ-प्रभार को खीचनेवाला चल-यन्त्र ('लोकोमोटिव इजन') भी हो।

१६. एक उपयुक्त वाष्पित्र, जो लगभग २००० पौड वाष्प प्रति घटा धारिता का हो।

उपरिलिखित उपचारसंयन्त्र की धारिता ११०० घनफुट की है, अर्थात् ३६० बी० जी० काष्ठ-स्लीपर या ७२ काष्ठ-खम्भ (८ इंच व्यास और ४० फुट लम्बाई के) प्रत्येक प्रभार में। क्रियोजोट से प्रति दिन एक पारी ८ घंटा काम करने पर २ या ३ काष्ठ-प्रभारों का उपचार किया जा सकता है और जल-विलयन परिरक्षी से ३ या ४ प्रभार किये जा सकते हैं। यदि इस संयन्त्र में २४ घंटे (३ पारी) कार्य किया जाय तो उपचार में खर्च कम हो सकता है।

परिशिष्ट ६

सारणी–२१ (खंड १)

वन-अनुसन्धानशाला के अन्तर्गत किये गये परीक्षण के अनुसार उपचारित और अनुपचारित काष्ठ-स्लीपरों की सेवा-आयु का विवरण (खाने ८ से १५ तक पृ० ८२–८३ पर)

क्रमाक	काष्ठ-जाति	स्लीपरों का आकार और संख्या	उपचारित या अनुपचारित	प्रयुक्त परिरक्षी	उपचार विधि	परिरक्षी प्रचूषण पौंड प्रति घन फुट
१	२	३	४	५	६	७
१	**पाइनस् लोंगीफोलिया (चीड़)**	१५२ बी० जी०	उपचारित	पौवल विलयन	तापन-शीतन	ज्ञात नही
२	,,	१०० बी० जी०	उपचारित	एस्क्यू (८ प्रतिशत)	निपीड	३/८ से १/२ पौड शुष्क लवण (३/२ ± १/२ पौड विपटन रोधी माध्य)
३	,,	१०० बी० जी	उपचारित	क्रियोजोट-इन्धन तैल (४० : ६०)।	निपीड	४ ·७६
४	**पाइनस् जाति**	११ एम० जी०	अनुपचारित	—	—	—
५	**टर्मिनेलिया टोम्यन्टोसा (सैन)**	१३१ बी० जी०	उपचारित	पौवल विलयन	तापन-शीतन	ज्ञात नहीं

१	२	३	४	५	६	७
६	वही	२५० एम० जी०	अनुपचारित	—	—	—
७	टर्मिनेलियामाइरियो-कार्पा (होलीक)।	१५१ एम० जी०	उपचारित	क्रियोजोट-इन्धन तैल (१:१) (१:२) (१:३)	निपीड	६ ·५ से ९ ·३
८	,,	२२ एम० जी	अनुपचारित	—	—	—
९	डिप्ट्रोकार्पस मैक्रोकार्पस (होलोंग)।	१४२ एम० जी०	उपचारित	क्रियोजोट-इन्धन तैल (१:१) (१:२) (१:३)	निपीड	४ ९ से ११ १
१०	लैग्रस्ट्रोमिया फ्लौस रैंजिनी (जारूल)	१५० एम० जी०	उपचारित	क्रियोजोट-इन्धन तैल (१.१)	निपीड	० ·०७ से १ ·८
११	,,	१०० एम० जी०	अनुपचारित	—	—	—
१२	सीड्रस देवदारा (देवदार)	१०० बी० जी०	उपचारित	एस्क्यू (८ प्रतिशत)	निपीड	३/८ से १/२ पौड शुष्क लवण (३/२ से १/२ पौड विपटन– रोधी माध्य)
१३	,,	१०० बी० जी०	उपचारित	क्रियोजोट-इन्धन तैल (४० · ६०)	निपीड	३.३०
१४	शोरिया रोबस्टा (साल)।	४६ एम० जी० (अर्ध गोल)	उपचारित	एस्क्यू (८ प्रतिशत) + (विपटन रोधी माध्य)	निपीड	—
१५	,,	३०० एम० जी० (अर्ध गोल)	उपचारित	क्रियोजोट-इन्धन तैल (७० : ३०)(५० :५०)	निपीड	—
१६	,,	१०० एम० जी०	अनुपचारित	—	—	—

सारणी–२१ (खंड २)

क्रमांक	काष्ठ-जाति	स्थान जहाँ लगाये गये	लगाने का दिनांक	निरीक्षण का दिनांक	स्लीपर की विद्यमान संख्या	निकाले गये स्लीपरों की प्रति शत संख्या	औसत सेवा-आयु		
							मेडीसन वक्र के अनुसार (चित्र ८९)	गणित	
								वर्ष	मास
१	२	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
१	पाइनस् लोंगीफोलिया (चीड़)	हरिद्वार-लक्सर (उत्तरी रेलवे)	जनवरी १९१२	दिसम्बर १९२७	शून्य	१००	—	१५	५
२	,,	देहली (उत्तरी रेलवे)	मार्च १९३७	मई १९५०	९१	९	२१	—	—
३	,,	,,	,,	,,	९५	५	२३	—	—
४	पाइनस् जाति	मील २२१ (बर्मा रेलवे)	सितम्बर १९०७	अगस्त १९०९	शून्य	१००	—	२ (लगभग)	—
५	टर्मिनेलिया टोम्यन्टोसा (सैन)	हरिद्वार-लक्सर (उत्तरी रेलवे)	सितम्बर १९११	दिसम्बर १९२७	शून्य	१००	—	१५	५
६	,,	मोरियानी (उत्तर पूर्वी सीमा रेलवे)	मई १९१४	अक्टूबर १९२२	१७	९४	६	—	—
७	टर्मिनेलियामाइरियो-कार्पा (होलौक)।	,,	जनवरी १९२५	फरवरी १९५१	शून्य	१००	—	१९	१०
८	,,	,,	नवम्बर १९१५	अक्टूबर १९२२	शून्य	१००	—	५(लगभग)	—

१	२	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
९	डिप्ट्रोकार्पस मैक्रोकार्पस (होलोंग)।	मोरियानी के निकट (उत्तर पूर्वी सीमा रेलवे)	जनवरी १९२५	दिसम्बर १९४२	६१	५१	१९	—	—
१०	लैग्रस्ट्रोमिया फ्लौस रेजिनी (जारूल)	,,	मई १९२५	फरवरी १९५१	६	९६	१९	—	—
११	,,	,,	मार्च १९१८	दिसम्बर १९२३	८७	१३	७	—	—
१२	सीड्रस देवदारा (देवदार)	देहली भाग (उत्तरी रेलवे)	मार्च १९३७	मई १९५०	९५	५	२३	—	—
१३	,,	,,	,,	,,	९७	३	२६	—	—
१४	शोरिया रोबस्टा (साल)।	मैलानी और मथुरा (उत्तर-पूर्वी रेलवे)	फरवरी-मार्च १९४०	अप्रैल-जुलाई १९५१	४६	शून्य	—	११ (आज तक)	२ से ४
१५	,,	,,	फरवरी-मार्च १९४०	अप्रैल-जुलाई १९५१	२९९	० ३	--	,,	—
१६	,,	मोरियानी निकट (उत्तर पूर्वी सीमा रेलवे)	सितम्बर १९१९	दिसम्बर १९२३	९१	९	७	—	—

परिशिष्ट ७

सारणी–२३

रेलवे विभाग के अन्तर्गत धिलवां स्थान पर क्रियोजोटी-करण संयन्त्र में स्लीपरों के उपचार-मूल्य का विवरण

(स्लीपर पूल कमेटी की १९३७–३८ की रिपोर्ट से लिया गया)

सविस्तर वर्णन	उपचार किये गये बी० जी० काष्ठ स्लीपर			
	चीड़	देवदार	कैल	फर
सन् १९३७-३८ मे उपचारित स्लीपरों की संख्या	२४८०५३	९२६७०	१९५९५	८७३४६
औसतन तैल-मिश्र की प्रति स्लीपर प्रचूषण मात्रा	१४·८८ पौड	१०·४४ पौड	१४·८४ पौड	१५·१३ पौड
तैल-मिश्र–(भाड़ा अनन्य) ४० प्रतिशत क्रियोजोट, दर १२·०५ पाई प्रति पौंड ६० प्रतिशत इन्धन तैल, दर २·०४ पाई प्रति पौड				
	प्रति स्लीपर (बी० जी०) उपचार मूल्य।			
	रु० आ० पा०	रु० आ० पा०	रु० आ० पा०	रु० आ० पा०
१. प्रति स्लीपर क्रियोजोट का मूल्य	० ५ ११·७	० ४ २·३	० ६ ०	० ६ ०·९
२. प्रति स्लीपर इन्धन तैल का मूल्य	० १ ६·२	० १ ०·८	० १ ६·२	० १ ६·५
३. क्रियोजोट पर वाहन व्यय, २·३२ पा० प्रति पौड की दर से	० १ १·८	० ० ९·७	० १ १·८	० १ २·०

४. इन्धन तैल पर वाहन व्यय, ०·५१ पा० प्रति पौड की दर से	०	०	४·६	०	०	३·२	०	०	४·५	०	०	४·६
५. सामग्री का मूल्य ..	०	०	६·३	०	०	६·३	०	०	६·३	०	०	६·३
६. स्लीपरों का घिलवाँ तक वाहन व्यय	०	९	५·४	०	२	०	०	२	६·७	०	१	८·४
७. स्लीपरों का उतारना, चढ़ाना, पुनः चढ़ाना, कर्तन, छीलन, छिद्रण, हस्तन इत्यादि व्यय	०	०	३·७	०	०	३·७	०	०	३·७	०	०	३·७
८. श्रम व्यय ..	०	१	११·३	०	१	११·३	०	१	११·३	०	१	११·३
९. स्लीपरों की सामग्री पर अवमूल्यन	०	०	०·८	०	०	१·४	०	०	१·७	०	०	१·१
१०. पूँजी पर अवमूल्यन और व्याज ..	०	२	३·५	०	२	३·५	०	२	३·५	०	२	३·५
११. उपरि-व्यय ..	०	०	८·२	०	०	८·२	०	०	८·२	०	०	८·२
१२. आकस्मिक और मिश्रित व्यय ..	०	०	१·०	०	०	१·०	०	०	१·०	९	०	१·०
१३. तैल उद्वाष्पन व्यय ..	०	०	०·६	०	०	०·६	०	०	०·६	०	●	०·६
१४. स्लीपरो के सिरों पर टारीकरण व्यय	०	०	०·२	०	०	०·२	०	०	०·२	०	०	०·२
कुल ..	१	८	५·३	०	१४	४·२	१	१	७·७	१	०	१०·३
सामग्री पर कर्तन से रकम प्राप्त ..	०	०	६·७	०	०	०	०	०	०	०	१	०·१
प्रति स्लीपर पर वास्तविक उपचार व्यय (जिसमें घिलवाँ तक वाहन व्यय भी सम्मिलित है)	१	७	१०·६	०	१४	४·२	१	१	७·७	०	१५	१०·२
पूर्णांकन व्यय ..	१	७	११	०	१४	४	१	१	८	०	१५	१०·२

सन् १९५२-५३ में धिलवां में उपचार किये गये स्लीपरों की संख्या और उपचार-व्यय

प्रयुक्त परिरक्षी—क्रियोजोट ४० प्रतिशत +
इन्धन तैल ६० प्रतिशत।

	चीड				फर				कल		
	बी० जी०	एम० जी०	एन० जी०	सिरे ३ फुट के	बी० जी०	एम० जी०	एन० जी०	सिरे ३ फुट के	बी० जी०	एम० जी०	एन० जी०
१. उपचार किये गये स्लीपरों की संख्या	१२०३४	५४६५८	२९६६२	१६८५	४४९	२९८	११७	२०१६	५०	३१७२	४०
२. स्लीपर (प्रति) का उपचार मूल्य रुपयो में।	४१९	२·३७	२·२१	१४१	४·५४	२·८०	२·६१	१५९	४४७	२·५६	२·५
३. तैल मिश्र का प्रति घन फुट प्रचूषण (पौंड में)	५·३०				६·४३				६·५३		

सन् १९५२–५३ में नहरकटिया के निपीड-उपचार संयन्त्र में निम्नलिखित उपचार किये गये स्लीपरों की काष्ठ-जाति, संख्या और उपचार-मूल्य

प्रयुक्त परिरक्षी—क्रियोजोट ५० प्रतिशत और इन्धन तैल ५० प्रतिशत।

काष्ठ जाति—हौलौंग, मकई, हौलौक और जुटिली।

संख्या—५२०१३ बी० जी० और ७७३०९ एम० जी०।

औसतन प्रचूषण मात्रा— ६ ·२ पौंड प्रति घनफुट, अर्थात्
९९ ·२ किलोग्राम प्रति घनमीटर।

उपचार मूल्य, प्रति स्लीपर—४ ·८७ रु० प्रति बी० जी० स्लीपर,
२ ·३७ रु० प्रति एम० जी० स्लीपर।

परिशिष्ट ८

सारणी २४ (क)

स्लीपरों के लिए उपयुक्त काष्ठ जातियाँ

१. काष्ठ-जातियाँ, जो स्लीपरों के लिए अभी तक उपचार-पश्चात् परीक्षित किये जाने पर उपयुक्त पायी गयी हैं—

१. एबिस पिन्ड्रो (भेदन पश्चात्)
२. एक्रोकार्पस फ्रैक्सीनीफोलिअस्
३. एल्बीजिया प्रोसीरा
४. अल्टिन्जिया इक्सैल्सा
५. कैस्टैनौपसिस् हिस्ट्रिक्स्
६. सीड्रस देवदारा
७. डलबर्जिया लैटीफोलिया*
८. डिप्ट्रोकार्पस इन्डीकस्
९. डिप्ट्रोकार्पस मैक्रोकार्पस्
१०. डिप्ट्रोकार्पस टयूबर्क्यूलेटस्
११. डिप्ट्रोकार्पस टर्बिनेटस्
१२. हार्डविकिया बिनाटा *
१३. होपिया जाति*
१४. लैगर्स्ट्रोमिया फ्लौसरैजिनी
१५. लैगर्स्ट्रोमिया लैन्सियोलाटा *
१६. लैगर्स्ट्रोमिया पार्भीफ्लोरा
१७. मैंगीफरा इन्डीका
१८. मैसुवा फैरिया*
१९. पीसिया मौरिन्डा (भेदन पश्चात्)
२०. पाइनस् रौक्सबर्गी (लौंगीफोलिया)
२१. पाइनस इक्सैल्सा (भेदन पश्चात्)
२२. स्कीमा वालीची
२३. साइलीचरा त्रिजुगा
२४. शोरिया एसेमिका
२५. शोरिया रोबस्टा*
२६. स्टीरियोस्पर्मम् शैलैनौइडिस्
२७. टैक्टोना ग्रन्डिस्*
२८. टर्मिनेलिया अर्जुना
२९. टर्मिनेलिया बैलैरिका
३०. टर्मिनेलिया माइरियोकार्पा
३१. टर्मिनेलिया पैनीक्यूलाटा
३२. टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा
३३. जाइलिया जाइलोकार्पा *

२. काष्ठ-जातियाँ, जो उपचार और स्थायिता की दृष्टि से उपचार-पश्चात् स्लीपरों के लिए उपयुक्त मानी गयी हैं—

१. एल्बीजिया ओडोराटिसिमा (भेदन पश्चात्)
२. एडीना कोर्डीफोलिया
३. अर्टोकार्पस चपलाशा
४. चुक्रेशिया टेब्यूलैरिस
५. कुलीनिया इक्सेल्सा
६. साइनोमीट्रा पौलीआन्ड्रा
७. डाइकौप्सिस इलिप्टिका (भेदन पश्चात्)
८. डिलीनिया इन्डीका
९. यूजीनिया गार्डनैरी (भेदन पश्चात्)
१०. यूजीनिया जम्बोलाना (भेदन पश्चात्)
११. ग्रीविया टिलीफोलिया (भेदन पश्चात्)
१२. कैंइया एसमिका (भेदन पश्चात्)
१३. लैंगर स्ट्रोमिया टोम्यनटोसा (भेदन पश्चात्)
१४. मैंग्नोलिया जाति
१५. मिट्रैंजाइना डाइभर्सीफोलिया
१६. मिट्रैंजाइना पार्भीफोलिया
१७. पोसीलोन्यूरौन इन्डीकम्
१८. टैरोकार्पस मार्स्यूपियम *
१९. टैरोसपर्मम् एसैरीफोलियम्
२०. टर्मिनेलिया मनी

३. काष्ठ जातियाँ, जो उपचार-पश्चात् स्लीपरों के लिए परीक्षा करने योग्य हैं—

१. एग्लैइया जाति (भेदन पश्चात्)
२. एमूरा वालीची (भेदन पश्चात्)
३. कैनैरियम् जाति
४. डायोस्पीरौस जाति (भेदन पश्चात्)
५. ड्रिप्टस् जाति
६. इलैक्स जाति
७. मैन्सोनिया जाति (भेदन पश्चात्)
८. भैटिका लैन्सीफोलिया (भेदन पश्चात्)

टिप्पण —

* यदि स्लीपरों के लिए संपूर्ण सार-काष्ठों का ही प्रयोग किया जाय तो उनका उपचार कराना आवश्यक नहीं है।

परिशिष्ट ९

सारणी–२४ (ख)

भारत में अनुपचारित काष्ठ-स्लीपरों की प्राप्यता

(साख्यिकी १९५२ मे प्राप्त) (१झ)

क्रमांक	प्रदेश	काष्ठ जाति		स्लीपरो की प्राप्य सख्या (लगभग)			
		पारिभाषिक नाम	स्थानीय (व्यापारी) नाम	ब्राड गेज	मीटर गेज	नैरो गेज	अर्धगोल मीटर गेज
१	२	३	४	५	६	७	८
			उत्तरी कटिबन्ध				
१	कश्मीर	**एबिस पिन्ड्रो**	पडतल	८०००००	–	–	–
		पीसिया मोरिन्डा	पड़तल				
		सीड्रस देवदारा	देवदार	६०००००	–	–	–
		पाइनस् इक्सेल्सा	कैल	४०००००	–	–	–
		पाइनस् लौंगीफोलिया	चीड़	५००००	–	–	–
२	हिमांचल प्रदेश	**एबिस पिन्ड्रो**	पडतल	३४००००	१६०००	–	६२००
		सीड्रस देवदारा	देवदार	६३५००	६७४७५	–	१३५००
		पीसिया मोरिन्डा	राई	१४७५००	४९४२५	–	१००००
		पाइनस् लौंगीफोलिया	चीड़	२५५००	९५००	–	२५००
		पाइनस् इक्सेल्सा	कैल	११२०००	४५७००	–	१३०००
		शोरिया रोबस्टा	साल	३०००००	१२०००	–	१३०००

१	२	३	४	५	६	७	८
३	पंजाब	एबिस पिन्ड्रो	फर	८५००	२३००	१२००	३००
		एबिस वीबियाना	फर				
		पीसिया मोरिन्डा	स्प्रूस	१३००००	१००००	—	—
		एल्बीजिया लैंबैक	सिरिस	४०००	१५००	१०००	४००
		सीड्रस देवदारा	देवदार	३१०००	३०००	—	—
		पाइनस् इक्सैल्सा	कैल	४२०००	३०००	—	—
		पाइनस् लौंगीफोलिया	चीड	५७०००	११२००	८५००	४७००
४	उत्तर प्रदेश	शोरिया रोबस्टा	साल	७५०००	२५५०००	११००००	१३००००
		पाइनस् रोक्सबर्गी	चीड़	२५५०००	८००००	—	—
		टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा	मैन	१००००	५००००	१५०००	२००००
		सीड्रस देवदारा	देवदार	२००००	१००००	—	—
		पाइनस् इक्सैल्सा	कैल	१००००	५०००	—	—
		टैक्टोना ग्रैन्डिस	टीक	—	—	२०००	—
		एबिस पिन्ड्रो	फर	५०००	—	—	—
			पूर्वी कटिबन्ध				
५	पश्चिमी बंगाल (दार्जिलिंग सभाग)	कैस्टैनोप्सिस हिस्ट्रिक्स	केटस	१२५	७१०	११२५	६५०
		गरूगा पिनाटा	डाब्डाबी	२००	४००	४००	—
		मैग्नोलिया टेरोकार्पस्	पाटपाटे	१५०	३००	३००	—
		टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा	पकासाज	३००	५००	४००	—
		स्कीमा वालीची	चिलौनी	४००	८००	५००	—
		एक्रोकार्पस फ्रैक्सीनीफोलिअस	मुन्दानी	१००	२००	२००	—
		एल्बीजिया प्रोसीरा	मेनोमिरिस	१००	२००	२००	—
		लैंडाक्टोमिया पार्भीफ्लोरा	मीधा	५०	१००	१००	—
		स्टीरियोस्पर्मम चैलैनौइडीज	परारी	५०	१००	१००	—

क्रमांक	प्रदेश	काष्ठ-जाति		स्लीपरों की प्राप्य संख्या (लगभग)			
		पारिभाषिक नाम	स्थानीय (व्यापारी) नाम	ब्राड गेज	मीटर गेज	नैरो गेज	अर्धगोल मीटर गेज
१	२	३	४	५	६	७	८
		मैग्नोलिया कैम्बलाइ	चम्प	—	—	५००	—
		एबिस डैन्सा	सिल्वर फर	२००	४००	१००	२००
		पाइनस् लौंगीफोलिया	चीड़	—	५००	—	१०००
	(कलिम्पौग सभाग)	एक्रोकार्पस फ्रैक्सीनीफोलिअस्	मुन्दानी	२००	१४००	१०००	२००
		अर्टोकार्पस चपलाशा	चपलाश	१००	२५०	१५०	—
		स्कीमा वालीची	चिलौनी	३००००	२५०००	३५००	१००००
		शोरिया रोबस्टा	साल	—	७०००	७०००	—
		टर्मिनेलिया बैलैरिका	बहेड़ा	२००	२५००	९००	५००
		टर्मिनलिया टोम्यनटोसा	पकासाज	२००	२८००	१२००	५००
		कैस्टैनौप्सिस हिस्ट्रिक्स	केटस	१००	६००	५००	१००
		एल्बीजिया प्रोसीरा	सिरिस	—	२००	—	—
		शोरिया रोबस्टा	साल	२८७४९	२८०४६	२४८००	१३३५०
	(कुर्मोंग संभाग)	अर्टोकार्पस चपलाशा	चपलाश	६५	४३८	८४	७२
		कैस्टैनौप्सिस हिस्ट्रिक्स	केटस	८	५२७	५४६	६४
		एल्बीजिया प्रोसीरा	कोको	२६४०	५९२	३२०	१३६
		लैगस्ट्रोमिया पार्वीफ्लोरा	लैन्डी	१२३०	१३८५	३८७	१७०
		स्कीमा वालीची	चिलौनी	१२३०	१२८५	११९०	६१२
		टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा	लौरल	१०८५	१७४०	१२५६	५०४
		टर्मिनेलिया बैलैरिका	बहेड़ा	१८००	४०१८	१६७५	३६२

१	२	३	४	५	६	७	८
		एक्रोकार्पस फ्रैक्सीनीफोलिअस्	मुन्दानी	१००	२९९	३२५	१००
		स्टीरियोस्पर्मम् चैलैनोइडीज	–	८३५	४८३	१५०	–
	(जालपाइगुड़ी संभाग)	शोरिया रोबस्टा	साल	१५०००	३००००	–	–
	(बुक्सा सभाग)	एलबीजिया ओडोराटिसिमा	सिरिस	५००	७५०	–	–
		कैस्टनौप्सिस हिस्ट्रिक्स	केटस	५०००	१०००	–	–
		डिलीनिया इन्डीका	चल्टा	१००	१००	–	–
		लैगर्स्ट्रोमिया पार्भीफ्लोरा	सीधा	२०००	१०००	–	–
		शोरिया रोबस्टा	साल	३०००	२००००	१००००	–
		स्टीरियोस्पर्मम चैलैनौइडिस	परारी	१००	२००	–	–
६	मनीपुर	एल्बीजिया लबैक	सिरिस	–	–	–	–
		एल्बीजिया प्रोसीरा	करोई	–	–	–	–
		अर्टोकार्पस चपलाशा	चम्प	–	–	–	–
		कस्टेनौप्सिस हिस्ट्रिक्स	ओक जाति	–	–	–	–
		साइनोमीट्रा पौलीआन्ड्रा	पिंग	–	–	–	–
		डिप्ट्रोकार्पस टर्बिनटस	गौर्गोन	–	–	–	–
		लैगर्स्ट्रोमिया फ्लोसरैजिनी	जारूल	–	–	–	–
		मैसुआ फैरिआ	नहोर	–	–	–	–
		पाइनस इक्सैल्सा	पाइन	–	–	–	–
		स्कीमा वालिची	मोकरिआसाल	–	–	–	–
		टैक्टोना ग्रैन्डिस्	टीक	–	–	–	–
७	आसाम	एल्बीजिया प्रोसीरा	कोराइ	–	७७०	–	–
	(सदिया संभाग)	अर्टोकार्पस चपलाशा	साम	३१६६	१५८३	–	–
		कैस्टेनौप्सिस हिस्ट्रिक्स	हिंगोरी	–	१४१४	–	–

क्रमांक	प्रदेश	काष्ठ-जाति		स्लीपरों की प्राप्य संख्या (लगभग)			
		पारिभाषिक नाम	स्थानीय (व्यापारी) नाम	ब्राड गेज	मीटर गेज	नैरो गेज	अर्धगोल मीटर गेज
१	२	३	४	५	६	७	८
		मैसुआ फैरिआ	नैहोर	—	४३७०	—	—
		स्टीरियोस्पर्मम चैलैनौइडिस	परोली	१११५	२२३०	—	—
		डिलीनिया इन्डीका	औटगा	—	१९७४०	—	—
	(लखीमपुर	**अल्टिजिया इक्वैल्सा**	जुटिली	१०००	११३००	—	—
	संभाग)	**अर्टोकार्पस चपलाशा**	साम	१०००	७५००	१०००	१०००
		मैसुआ फैरिआ	नहोर	१०००	१०२००	२०००	—
		शोरिआ एसैमिका	मकई	६०००	२९०००	२०००	२०००
		डिप्ट्रोकार्पस मैक्रोकार्पस	हौलौग	५०००	३५०००	५०००	५०००
		स्टीरियोस्पर्मम चैलैनौइडिस	परौली	—	५०००	—	—
		लैगर्स्ट्रोमिया फ्लौसरैजिनी	अझर	—	—	—	—
		टर्मिनेलिया बैलैरिका	भोमोरा	—	—	—	—
		मैग्नोलिया जाति	सोपा	—	—	—	—
		टर्मिनेलिया माइरियोकार्पा	होलौक	—	—	—	—
	(शिवसागर	**अर्टोकार्पस चपलाशा**	चाम	३०००	३०००	—	—
	सभाग)	**डिलीनिया इन्डीका**	औटेगा	३०००	३०००	—	—
		लैगर्स्ट्रोमिया फ्लौसरैजिनी	अझर	१०००	१०००	—	—
		मैसुआ फैरिआ	नैहोर	५०००	९०००	१८०००	५०००
	(नौगाँव	**डिप्ट्रोकार्पस मैक्रोकार्पस**	हौलौग	१००००	१६०००	—	—
	संभाग)	**शोरिया रोबस्टा**	साल	—	—	—	—

१	२	३	४	५	६	७	८
		लैगर्स्ट्रोमिया फ्लौसरैजिनी	अझर	४४०	६९०	१३६०	५१०
		लैगर्स्ट्रोमिया पार्भीफ्लोरा	सीदा	३१८	९१५	८१०	१०२५
		एल्बीजिया प्रोसीरा	करोई	३३०	७१८	१२१२	३५०
		अर्टोकार्पस चपलाशा	साम	७००	११००	४००	३००
		टर्मिनेलिया बैलैरिका	भोमोरा	४००	६००	८००	२००
		स्कीमा वालिची	नागाभर	५००	१०००	१०००	५००
		टैरोकार्पस एसरीफोलिअस्	हट्टीपेला	१००	२००	२००	१००
	(गारो पहाड संभाग)	लैगर्स्ट्रोमिया फ्लौसरैजिनी	जारूल	४००	८००	—	—
		लैगर्स्ट्रोमिया पार्भीफ्लोरा	मीदा	५००	१०००	—	—
		स्कीमा वालिची	चिलौनी	१०००	१५००	—	—
		शोरिया रोबस्टा	साल	४०००	६०००	—	—
		टर्मिनेलिया बैलैरिका	बहेड़ा	५००	१०००	—	—
	(कछार संभाग)	अर्टोकार्पस चपलाशा	साम	५३२००	७३१५०	५२५५०	२०८००
		लैगर्स्ट्रोमिया फ्लोसरैजिनी	जारूल	४८५०	१८०२५	१६५५०	४१७५
		मैसुवा फैरिया	नागेश्वर	२४५००	३५४००	३१५००	११४००
		एल्बीजिया प्रोसीरा	करोई	१००००	३१०००	३६०००	२००००
		एल्सीयोडैफनी औडेनी	सुन्दी	९१००	१११५०	१८५०	५००
		टैलोमा फिलोकार्पा	सुन्दी	३५७५	३०५०	१५२३	१००
		डिप्टोकार्पस टर्बिनेटस्	गूजन	३०००	७०००	२०००	१००
		टर्मिनेलिया बैलैरिका	बहेडा	२०००	३०००	५५००	—
		स्टीरियोस्पर्मम् क्रैलैनौइडीस	अवाल	७०००	५०००	९५००	४०००
		डिलीनिया इन्डीका	चलीता	१०००	४०००	२०००	२०००
		यूजीनिया जानि	जामन	५००	१०००	१०००	—
		कैलोफिलम पौलीएन्थम्	टल्म्	३००	५५००	५०००	१५०

क्रमांक	प्रदेश	काष्ठ-जाति		स्लीपरों की प्राप्य संख्या (लगभग)			
		पारिभाषिक नाम	स्थानीय (व्यापारी) नाम	ब्राड गेज	मीटर गेज	नैरो गेज	अर्धगोल मीटर गेज
१	२	३	४	५	६	७	८
	(धानसिरी घाटी संभाग)	साइनोमीट्रा पौलीएन्ड्रा	पिग	१०००	५०००	५०००	१००००
		स्कीमा वालीची	चिलौनी	३५५००	५५००	७०५००	६००००
		टर्मिनेलिया अर्जुना	अर्जुन	—	१००	—	—
		चुक्रेसिया टैब्यूलैरिस	हटिया	१०००	१०००	१०००	१५०
		टर्मिनेलिया माइरियोकार्पा	होलौक	१००	२००	—	—
		अर्टोकार्पस चपलाशा	चाम	२००	२००	—	—
		डिलीनिया इन्डीका	औटैंगा	—	१००	—	३००
		लैगर्स्ट्रोमिया फ्लोसरेजिनी	अझर	—	—	—	१००
			दक्षिणी कटिबन्ध				
८	मैसूर	डिप्ट्रोकार्पस इन्डीकस्	धूप	—	५००००	—	—
		जाइलिया जाइलोकार्पा	इरूल	—	५०००	—	—
		होपिया पार्वीफ्लोरा	होपिया	—			
		मैसुवा फैरीआ	मसुआ	—	५०००	—	—
९	त्रिवांकुर	एल्बीजिया ओडोराटिसिमा	काला सिरिस	२५०	४३०	१०२०	५००
		एल्बीजिया प्रोसीरा	सफेद सिरिस	९६०	१११०	२१०	१००
		डल्बर्जिया लैटीफोलिया	रोजवुड	५१००	१३४००	२८५०	२००
		डिप्ट्रोकार्पस इन्डीकस	गूर्जन	५०००	५०००	३०००	—
		होपिया पार्वीफ्लोरा	होपिया	२३०००	४३८३०	८१७३०	१००

१	२	३	४	५	६	७	८
		लैगर्स्ट्रोमिया फ्लौसरैजिनी	जारूल	१६३४०	१६०२०	१२७०	२००
		लैगर्स्ट्रोमिया लैन्सियोलाटा	बैन्टीक	१७७००	२७९००	२७३००	२००
		मैसुवा फैरिया	मैसुवा	९६०	१३००	१८००	१००
		टैरोकार्पस मार्स्यूपियम्	बीजासाल	२०२४५०	४१२१५०	८०१५५०	२००
		साइलीचरा त्रिजुगा	कुसुम	१२००	६००	६००	—
		स्टीरियोस्पर्मम् चैलैनौइडीस्	—	१०	१००	१००	१००
		टैक्टोना ग्रेन्डिस्	टीक	१०००	१३३००	४७००	४००
		टर्मिनेलिया बैलैरिका	बहेड़ा	४६००	९८००	३२००	४००
		टर्मिनेलिया पैनीक्यूलाटा	किन्डल	४६८००	३९३००	७५०००	४००
		टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा	लौरल	६४३००	११००००	२१०००	४००
		जाइलिया जाइलोकार्पा	इरूल	६१००	५८५०	७५०	—
१०	हैदराबाद	टैक्टोना ग्रैन्डिस	टीक	६३७५८	१४६११२	२६२८२५	१४०६९६
		टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा	मड्डी	१८५३७२	२३४०१५	१३१९२४	८९६८२
		टैरोकार्पस मार्स्यूपियम्	बीजासाल	१३७५५	२०२६७	१२२१०	१४४६४
		डल्बर्जिया लैटीफोलिया	शीशम	१०४	२३०	३३३	२२२
		हार्डविकिया बिनाटा	इप्पा	२५२५७८	३४२२०४	३००२७८६	३५१७७२
		टर्मिनेलिया बैलैरिका	टानी	४६५	४७९	१०२८	४७३
		जाइलिया जाइलोकार्पा	बोज्जा	—	११२	८७	—
		टर्मिनेलिया अर्जुना	एरा मड्डी	६१४९	२६९०	४०९०	२८०१
		डल्बर्जिया सिसू	चिनागी	१३४७	२२३४	६०८७	२४४६
		लैगर्स्ट्रोमिया पार्वीफ्लोरा	सिसू	५००	८००	१०००	८००
११	कुर्ग	मैसुवा फैरिया	लोह काष्ठ	४०००	—	—	—
		होपिया पार्वीफ्लोरा	होपिया	१०००	—	—	—
		अर्टोकार्पस हिर्स्यूटा	एनी	५००	—	—	—

क्रमांक	प्रदेश	काष्ठ-जाति		स्लीपरों की प्राप्य संख्या (लगभग)			
		पारिभाषिक नाम	स्थानीय (व्यापारी) नाम	ब्राड गेज	मीटर गेज	नैरो गेज	अर्धगोल मीटर गेज
१	२	३	४	५	६	७	८
		कैलोफिलम टोमैन्टोसम्	पून	३५००	—	—	—
		जाइलिया जाइलोकार्पा	इरुल	३५००	—	—	—
		डिप्टोकार्पस इन्डीकस्	गुर्जन	१२००	—	—	—
			पश्चिमी कटिबन्ध				
१२	बम्बई	एल्बीजिया लैबैक	कोको	२०२८६	२०५०६	३००८३	८८०१
		एल्बीजिया ओडोराटिसिमा	काला सिरिस	१८३२०	३४१९६	१६१०४	२२९४४
		एल्बीजिया प्रोसीरा	सफद सिरिस	३४४०७	३४६४१	३५९२३	१९७७१
		डल्बर्जिया लैटीफोलिया	रोजवुड	९६२५	३६४३०	४१४८०	८७४०
		डिलीनिया पैन्टैजाइना	डिलीनिया	१२००	१४००	१५००	२०११
		डिप्टोकार्पस इन्डीकस	गुर्जन	१०००	१५००	१०००	३०००
		हार्डविकिया बिनाटा	अन्जन	४००	४५०	६५०	५००
		होपिया जाति	होपिया	३४४९	६८८०	२५८०	४३००
		लैगर्स्ट्रोमिया फ्लौसरैजिनी	जारूल	१२७२९५	२५३६३९	१२१४६८	१५११२८
		लैगर्स्ट्रोमिया लैन्सियोलाटा	बन्टीक	६९१०००	१३८१७४८	८७८३९१	८५६५९४
		लैगर्स्ट्रोमिया पार्भीफ्लोरा	लैन्डी	२५८४५	१७६२४	२५४९५	६९८८
		मैसुवा फैरिया	मैसुवा	१००	२००	२००	३००
		ओजीनिया डल्बर्जियोइडिस्	सांदन	१५६०	८१६०	१३१८	४४१६
		टैरोकार्पस मार्स्यूपियम	बीजासाल	१२२००	२५५६५	३४८३५	१२५२५

१	२	३	४	५	६	७	८
		साइलीचरा त्रिजुगा	कुसुम	९५०५०	१९४८१७	८१८२३	११६२७३
		स्टीरियोस्पर्मम चैलैनौइडिस्	—	१०	२०	२०	२०
		टैक्टोना ग्रैन्डिस	टीक	२४१७९०	२८८३००	३१४४४५	१२२२५०
		टर्मिनेलिया अर्जुना	अर्जुन	४४००	५१५०	७३६५	१५५०
		टर्मिनेलिया बैलैरिका	बहेडा	२८०४१२	४५१२५२	३०६३५५	२४२०५३
		टर्मिनेलिया पैनीक्यूलाटा	किन्डल	६९५८५४	१२९६९१०	७५००७७	७६९७३१
		टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा	लौरल	४००६३५	५८३३८८	६३७९७०	९३१८५
		जाइलिया जाइलोकार्पा	इरूल	४७३२२५	१०३७६२६	६६२९०६	५६१०१३

अन्य प्रदेशों से प्राप्यता के सम्बन्ध मे सूचना प्राप्त नही है, परन्तु यह आशा की जाती है कि इन प्रदेशों मे भी उसी काष्ठ-जाति के स्लीपर पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हो सकते हैं जो उन सम्पर्गीय प्रदेशों मे, जिनके सम्बन्ध मे ऊपर सूचना दी गयी है, प्राप्य है।

परिशिष्ट १०

सारणी–२४ (ग)

भारत के विभिन्न साधन-संयन्त्रों के अनुसार उपचार-मूल्य

क्रमांक	उपचार करने वाली संस्था	उपचारणार्थ काष्ठ-जाति	उपचारित काष्ठ मात्रा और आकार	साधन संयन्त्र और उपचार विधि	प्रयुक्त परिरक्षी	उपचार मूल्य
१	२	३	४	५	६	७
१	मेसर्स जौन टैलर एन्ड सन्स् (इन्डिया) लि०, कोलर गोल्ड फील्डस् (मैसूर)	**कैसुएरीना** जाति	१८८४ घन फुट प्रति मास (सन् १९५५ में)	रम्भ, निपीड विधा	जिंकसल्फेट-२ ·२५ प्रतिशत सोडियम फ्लोराइड-० ·६५ प्रतिशत विलयन जल में	औसतन ० ·१० रु० प्रति घनफुट
२	उत्तरी रेलवे, धिलवाँ (पंजाब)	**पाइनस् लौंगीफोलिया** (चीड़) **सीड्रस** देवदारा (देवदार) **पाइनस् इक्सैल्सा** (कल)	लगभग ४ लाख बी० जी० स्लीपर प्रतिवर्ष और कुछ खम्भ	रम्भ, निपीड विधा	क्रियोजोट और इन्धन तल (४० : ६०)	औसतन् ३ ·७५ रु० प्रति घन फुट

१	२	३	४	५	६	७
३	उत्तर-पूर्वी रेलवे, क्लटरबकगंज (उत्तर प्रदेश)	मुख्यतः **पाइनस् लौंगीफोलिया** (चीड़)	बी० जी०स्लीपर	रम्भ, निपीड विधा।	क्रियोजोट और इन्धन तैल (५०:५०)	३ ·४४ रु० प्रति बी०जी० स्लीपर (लगभग)
४	उत्तर-पूर्वी सीमान्त रेलवे, नहर-कटिया (आसाम)	**डिप्ट्रोकार्पस मैक्रोकार्पस** (हौलौंग) **टर्मिनेलिया माइरियोकार्पं** (हौलौक) **अल्टिन्तिया इक्सैल्सा** (जुटीली) **शोरिया एसैमिका** (मकई)	७०,००० बी० जी० स्लीपर प्रति वर्ष	रम्भ, निपीड विधा	क्रियोजोट और इन्धन तल (५०:५०)	५ ·७५ रु० प्रति बी० जी० स्लीपर
५	वन विभाग, बलहारशाह	**टर्मिनोलिया टोम्यन्टोसा** (लौरल)	१०७१ बी० जी० और २१८०० एम० जी० स्लीपर (५ वर्ष में, सन् १९५० से १९५५ तक)	खुला-कुण्ड, तापन-शीतन विधा	क्रियोजोट और इन्धन तैल (५०:५०)	२·२५ रु० प्रति बी० जी० स्लीपर

क्रमांक	उपचार करने वाली संस्था	उपचारणार्थ काष्ठ-जाति	उपचारित काष्ठ मात्रा और आकार	साधन संयन्त्र और उपचार विधि	प्रयुक्त परिरक्षी	उपचार मूल्य
१	२	३	४	५	६	७
६	मेसर्स आर० मैन एन्ड को०, १०/१ इल्गिन रोड, कलकत्ता	**शोरिया रोबस्टा** (साल)	२४४० खम्भ (३० फुट लम्बे और ८ इंच व्यास के) प्रति वर्ष (१९५५ में)	रम्भ, निपीड विधा	एस्क्यू ..	३ ·५६ रु० प्रति, घनफुट
७	(१) वन विभाग, बिहार, लटेहर और विहटा (२) विद्युत विभाग, हजारी-बाग (बिहार)	**शोरिया रोबस्टा** (साल) **टर्मिनलिया टोम्यनटोसा** (मैन)	६००० खम्भ प्रति वर्ष	रम्भ निपीड-विधा	एस्क्यू ..	१ ·२५ से १ ·५० रु० प्रति घन फुट
८	विद्युत विभाग, केरल	**टैक्टोना ग्रैन्डिस** (टीक)	१,८६,००० खम्भ प्रति वर्ष	रम्भ, निपीड विधा	एस्क्यू	० ·२८ से ० ·३२ रु० प्रति घन फुट

१	२	३	४	५	६	७
९	वन विभाग भद्रावती । (मैसूर)	**डाइकौप्सिस इलिप्टिका** (हडासला) **पोसीलोन्यूरौन इन्डीकम** (बलागी) **मैशीलस मैफ़ान्या** (गुलमैरी) **ऐलीकार्पस टघूनर्क्यूलेटस** (सट्टागा) **कैनेरियम स्ट्रिक्टम्** (कधूपा) **टर्मिनेलिया वैलेरिका** (टारे)	स्लीपर, खम्भ और मिश्रित काष्ठ	रम्भ, निपीड विधा	सन् १९३६ से ५२ तक एस्क्यू सन् १९५२ से क्रियोजोट और इन्धन तैल (५०:५०)	० ·८० रु० प्रति घनफुट १ ·७५ रु० प्रति घनफुट

परिशिष्ट ११

सारणी ३०

अभिस्तावित काष्ठ, जो संशोषण और उपचार किये जाने के उपरान्त टीक और साल-जैसे स्वाभाविक स्थायी (टिकाऊ) काष्ठों का स्थान ले सकते हैं।

१ पूर्वी कटिबन्ध

आसाम, मनीपुर, त्रिपुरा, पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, नेपाल, सिकिम, भूटान और अन्डमान।

क्रमांक	काष्ठ-जाति		व्यापारी नाम	प्रयोग
१	*** एकेशिया एरेबिका	(ब)	बाबुल	क$_१$, ख$_१$।
२	* एलबीजिया लैबेक	(स)	कोको	क$_१$, ख$_१$, ग$_१$, घ$_१$, ङ$_१$
३	** एलबीजिया प्रोसीरा	(स)	सिरिस (सफेद)	क$_२$, ख$_२$, ग$_२$, घ$_२$, ङ$_२$।
४	* एलबीजिया ओडोराटिसिमा	(इ)	सिरिस (काला)	क$_१$, ख$_१$, ग$_२$, घ$_२$, ङ$_२$।
५	*** एनोजाइसस् लेटीफोलिया	(इ)	बकली	क$_१$, ख$_१$, घ$_१$।
६	** अर्टोकार्पस चपलाशा	(द)	चपलाश	क$_२$, ख$_१$, ग$_१$, घ$_२$, ङ$_१$।
७	** ब्रीडीलिया रेटूसा	—	कासी	क$_१$, ख$_१$, घ$_२$।
८	** कैसिया फैस्चूला	—	राजबृख (अमलतास)	क$_१$, ख$_१$, घ$_१$।
९	*** सैड्रीला टूना	(स)	तून	ग$_१$, ङ$_१$।
१०	*** चुक्रेसिया टेब्यूलैरिस्	(स)	चिकरासी	क$_२$, ख$_१$, ग$_१$, घ$_२$, ङ$_१$।
११	*** साइनोमीट्रा पौलीएन्ड्रा	(ब)	पिंग	क$_१$, ख$_१$, घ$_१$।
१२	** डल्बर्जिया सिसू	(इ)	सिसू	ख$_१$, ङ$_१$।
१३	*** डिलीनिया जाति	(द)	डिलीनिया	क$_१$, ख$_१$, ग$_२$, घ$_१$, ङ$_१$।
१४	*** डिप्ट्रोकार्पस मैक्रोकार्पस्	(अ)	होलौंग	क$_१$, ख$_१$, ग$_२$, घ$_१$।
१५	*** डिप्ट्रोकार्पस जाति (अ)(ब)	(स)	गुर्जन	क$_१$, ख$_१$, ग$_२$, घ$_२$।
१६	** लैगस्ट्रोमिया हाइपोल्यूका	—	पिन्मा	क$_१$, ख$_१$, ग$_२$, घ$_१$।
१७	*** लैगस्ट्रोमिया पार्वीफ्लोरा	(इ)	लैन्डी	क$_१$, ख$_१$, घ$_२$।
१८	** लैगस्ट्रोमिया स्पीसियोसा	—	जारूल	क$_१$, ख$_१$, घ$_२$।
१९	* मधूका लैटीफोलिया	—	महुवा	क$_२$, ख$_२$, घ$_२$।

क्रमांक	काष्ठ-जाति		व्यापारी नाम	प्रयोग
२०	* मैसुवा फैरिया	(इ)	मैसुवा	$क_१$, $ख_१$, $घ_१$।
२१	* ओजीनिया डल्बर्जियोडीज	–	सांदन	$क_१$, $ख_१$, $घ_१$।
२२	* टैरोकार्पस डल्बर्जियोडीज	(स)	पैंडौक	$क_१$, $ख_१$, $ग_१$, $घ_१$, $ङ_१$।
२३	* टैरोकार्पस मार्स्यूपियम	(इ)	बीजासाल	$क_१$, $ख_१$, $ङ_१$।
२४	*** स्कीमा वालीची	(द)	चिलौनी	$क_१$, $ख_१$, $ग_१$, $घ_१$।
२५	*** शोरिया एसैमिका	(स')	मकई	$क_२$, $ख_२$, $ग_२$।
२६	* शोरिया रोबस्टा	(इ)	साल	$क_१$, $ख_१$ $घ_१$।
२७	*** टर्मिनेलिया बियालाटा	(इ)	सफेदचुगलम	$क_२$, $ख_२$, $ग_१$, $घ_२$, $ङ_१$।
२८	*** टर्मिनेलिया मनी	(अ)	काला चुगलम	$क_२$, $ख_३$, $ग_१$, $घ_३$, $ङ_१$।
२९	*** टर्मिनेलिया माइरियोकार्पा	(अ)	होलौक	$क_३$, $ख_३$, $ग_१$, $घ_३$, $ङ_१$।
३०	*** टर्मिनेलिया प्रोसीरा	(ब)	सफेद बौम्बवे	$क_३$, $ख_३$, $ग_३$, $ङ_३$।
३१	** टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा	(ब)	लौरल	$क_१$, $ख_१$, $घ_१$।
३२	*** एडीना कौर्डीफोलिया	(अ)	हल्दू	$ख_३$, $ग_३$, $ङ_३$।
३३	*** मंगीफरा इन्डीका	(अ)	आम	$क_३$, $ख_३$, $ग_३$, $ङ_३$।
३४	*** मकीलिया जाति	(इ)	चम्प	$क_३$, $ख_१$, $ग_१$, $घ_३$, $ङ_१$।
३५	*** फोबी जाति	(स)	बौनसम्	$क_३$, $ख_३$, $ग_१$, $घ_३$, $ङ_१$।

टिप्पणी—

$क_१$—प्रथम चुनाव, बल्ली, कड़ी, शहतीर और ट्रसो के लिए।

$क_२$—द्वितीय चुनाव, ,, ,,

$क_३$—तृतीय चुनाव, ,, ,,

$ख_१$—प्रथम चुनाव, चौखट के लिए।

$ख_२$—द्वितीय चुनाव, ,,

$ख_३$—तृतीय चुनाव, ,,

$ग_१$—प्रथम चुनाव, दरवाजे, खिड़की के फलक और अन्तश्छद के लिए।

$ग_२$—द्वितीय चुनाव, ,, ,,

$ग_३$—तृतीय चुनाव, ,, ,,

$घ_१$—प्रथम चुनाव, सपीडाक और स्तम्भो के लिए।

$घ_२$—द्वितीय चुनाव, ,, ,,

$घ_३$—तृतीय चुनाव, ,, ,,

$ङ_१$—प्रथम चुनाव, उपस्कर के लिए।

$ङ_२$—द्वितीय चुनाव, ,,

$ङ_३$—तृतीय चुनाव, ,,

(अ)—सरलता से परिरक्षी द्वारा प्रवेशनीय काष्ठ (सारकाष्ठ)।

(ब)—परिरक्षी द्वारा प्रवेशनीय, पर पूर्णतया नहीं, काष्ठ (सारकाष्ठ)।

(स)—परिरक्षी द्वारा अंशतः प्रवेशनीय काष्ठ (सारकाष्ठ)।

(द)—परिरक्षी द्वारा अप्रवेशनीय, २ सेन्टीमीटर प्रवेशनार्थ भेदन अनिवार्य, काष्ठ (सारकाष्ठ)।

(इ)—परिरक्षी द्वारा अति अप्रवेशनीय, पार्श्व और छोर प्रवेशन शून्य, काष्ठ (सारकाष्ठ)।

उन काष्ठों के लिए, जिनका प्रयोग खम्भ और स्तम्भ के रूप मे बाहर खुले में किया जाता है और जहाँ काष्ठ-नाशक अभिकर्त्ताओं की व्यवस्था अति तीव्र रहती है, यह अति उत्तम होगा यदि उनका उपचार निपीड-क्रिया से किया जाय। तथापि तापन-शीतन क्रिया से भी (खुले कुण्ड में) निम्नलिखित काष्ठों का उपचार किया जा सकता है।

(१) जो काष्ठ उपरिलिखित श्रेणी (अ) के अन्तर्गत है,

(२) जो काष्ठ श्रेणी (ब) में है यदि उनका सारकाष्ठ स्थायी हो, अर्थात् वे काष्ठ जो रेलवे-स्लीपर, पुल-निर्माण इत्यादि-इत्यादि के लिए हो।

श्रेणी (स) और (द) के काष्ठों का यदि बाहर खुले में प्रयोग किया जाय तो उनका निपीड-क्रिया से उपचार कराना अनिवार्य है। तथापि श्रेणी (स) के काष्ठो का यदि छादित स्थानों के नीचे, जैसे कि गृह-निर्माण और उपस्कर के लिए, प्रयोग किया जाय तो तापन-शीतन विधि से उपचार-क्रिया का प्रयोग कर सकते है।

श्रेणी (इ) के काष्ठों का छादित स्थानों के नीचे भी निपीड उपचार कराने पर ही प्रयोग कर सकते है। तापन-शीतन विधि का प्रयोग तभी हो सकता है यदि संपूर्ण काष्ठ रसकाष्ठ का बना हो, और तदनन्तर छादित स्थानो पर ही काम मे लाया जाय।

* इन काष्ठो के सारकाष्ठ अति स्थायी है, अतः इनके परिरक्षोपचार की आवश्यकता नही है।

** इन काष्ठो के सारकाष्ठ मध्यम-स्थायी है, अत. इनको हलके परिरक्षोपचार की आवश्यकता होती है।

*** इन काष्ठों के सारकाष्ठ अल्पस्थायी हैं, अतः इनको तीव्र परिरक्षोपचार की आवश्यकता है।

२. उत्तरी कटिबन्ध

कश्मीर, पंजाब, हिमांचल प्रदेश, दिल्ली, उत्तर प्रदेश और राजस्थान

क्रमाक		काष्ठ जाति		व्यापारी नाम	प्रयाग
१	***	एबिस पिन्ड्रो	(द)	फर	$क_३$,$ख_३$,$ग_३$,$घ_३$, $ङ_३$।
२	*	सीड्रस देवदारा	(स)	देवदार	$क_१$, $ख_१$, $ग_१$,$घ_१$, $ङ_०$।
३	***	पीसिया मोरिन्डा	(द)	स्प्रूस	$क_३$,$ख_३$,$ग_३$, $घ_३$, $ङ_३$।
४	***	पाइनस् रोक्सबर्गी	(ब)	चीड	$क_२$,$ख_२$,$ग_२$, $घ_२$, $ङ_२$।
५	***	पाइनस् इक्सेल्सा	(स)	कैल	$क_३$, $ख_२$, $ग_२$,$घ_३$,$ङ_३$।
६	***	एकेशिया अरेबिका	(ब)	बाबुल	$क_१$, $ख_१$।
७	***	एडीना कौर्डीफोलिया	(अ)	हल्दू	$ख_२$, $ग_२$, $ङ_२$।
८	**	एल्बीजिया प्रोसीरा	(स)	सफेद सिरिह	$क_२$, $ख_२$, $ग_२$, $घ_२$,$ङ_२$।
९	***	एनोजाइसस् लैटीफोलिया	(इ)	धौरी	$क_१$, $ख_१$, $घ_१$।
१०	**	ब्रिडीलिया रेंटूसा	—	कासी	$क_१$, $ख_१$, $घ_२$।
११	***	सेंड्रीला तूना	(स)	तून	$ग_१$, $ङ_१$।
१२	**	डल्बर्जिया सिसू	(इ)	शीशम	$ङ_१$।
१३	***	मंगीफरा इन्डीका	(अ)	आम	$क_२$, $ख_२$, $ग_२$, $ङ_२$।
१४	*	शोरिया रोबस्टा	(इ)	साल	$क_१$, $ख_१$, $घ_१$।
१५	**	यूजीनिया जम्बोलाना	(इ)	जामन	$क_१$।
१६	***	टर्मिनेलिया बैलैरीका	(ब)	बहेडा	$क_२$, $ख_१$, $घ_१$।
१७	**	टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा	(ब)	लौरल	$क_१$, $ख_१$, $घ_१$।
१८	***	होपिया इन्टीग्रीफोलिया	(ब)	कान्जू	$ङ_२$।
१९	*	टैक्टोना ग्रेन्डिस	(इ)	टीक	$क_१$, $ख_१$, $ग_१$, $घ_१$, $ङ_१$।
२०	*	ओजीनिया डल्बर्जियोइडिस्	—	सादन	$क_१$, $ख_१$, $घ_१$।
२१	***	हाइमेनोडिक्टयौन इक्सेल्सम्	(स)	कुथान	$ग_१$, $ङ_३$।
२२	***	जुग्लान्स जाति	—	अखरोट	$ङ_१$।
२३	*	टैरोकार्पस मार्स्युपियम्	(इ)	बीजासाल	$क_१$, $ख_१$, $ङ_१$।

३. मध्य कटिबन्ध

मध्य प्रदेश और आन्ध्र प्रदेश

१	***	एकेशिया अरेबिका	(ब)	बाबुल	$क_१$, $ख_१$।
२	***	एनोजाइसस् लैटीफोलिया	(इ)	धोरा	$क_१$ $ख_१$, $घ_१$।
३	***	क्लोरोक्सीलौन स्वीटेनिया	—	सैटिन काष्ठ	$क_२$, $ख_२$, $घ_२$, $ङ_२$
४	*	डल्बर्जिया लैटीफोलिया	—	रोजवुड	$ङ_१$।
५	***	डायोस्पीरौस मैलैनौक्सीलौन	—	एबौनी	$क_२$, $ख_२$, $घ_२$।
६	*	मिलीनिया अर्बोरिया	—	गमारी	$ग_१$, $ङ_१$।
७	*	हार्डविकिया बिनाटा	(इ)	अन्जन	$क_१$, $ख_१$, $घ_२$।

क्रमांक	काष्ठ-जाति		व्यापारी नाम	प्रयोग
८	*** लेगर्स्ट्रोमिया पार्वीफ्लोरा	(इ)	लैन्डी	क$_१$, ख$_१$, घ$_२$।
९	* ओजीनिया डल्बर्जियौइडीज	–	सौंदन	क$_१$, ख$_१$, घ$_२$।
१०	* टैरोकार्पस मार्स्युपियम्	(इ)	बीजासाल	क$_१$, ख$_१$, ङ$_१$।
११	* शोरिया रोबस्टा	(इ)	साल	क$_१$, ख$_१$, घ$_१$।
१२	** यूजीनिया जम्बोलाना	(इ)	जामन	क$_१$।
१३	* टैक्टोना ग्रैन्डिस	(इ)	टीक	क$_१$, ख$_१$, ग$_१$, घ$_१$, ङ$_१$।
१४	** टर्मिनेलिया अर्जुना	(ब)	अर्जुन	क$_१$, ख$_१$, घ$_२$।
१५	*** टर्मिनेलिया बैलैरिका	(ब)	बहेडा	क$_२$, ख$_२$, घ$_२$।
१६	* मधूका लैटीफोलिया	–	महुवा	क$_२$, ख$_२$, घ$_२$।
१७	*** एडीना कौर्डीफोलिया	(अ)	हल्दू	ख$_२$, ग$_२$, ङ$_२$।
१८	*** मिट्रैजाइना पार्वीफीलिया	(ब)	कैम	ख$_२$, ग$_२$, ङ$_२$।

४. पश्चिमी कटिबन्ध

बम्बई प्रदेश

क्रमांक	काष्ठ-जाति		व्यापारी नाम	प्रयोग
१	*** एकेशिया अरेबिका	(ब)	बाबुल	क$_१$, ख$_१$।
२	*** अर्टोकार्पस हिरस्यूटा	–	एनी	ख$_१$, ग$_१$, ङ$_१$।
३	** कैलोफिलम् जाति	(इ)	पून	क$_२$, ख$_२$, ग$_२$, ङ$_२$।
४	*** सैड्रैला तूना	(स)	तून	ग$_१$, ङ$_१$।
५	* डल्बर्जिया लैटीफोलिया	–	रोज वुड	ङ$_१$।
६	*** डिलीनिया जाति	(द)	डिलीनिया	क$_३$, ख$_३$, ग$_२$, घ$_३$,
७	*** डायोस्पीरौस मैलैनौक्सीलौन	–	एबौनी	क$_२$, ख$_२$, घ$_२$।
८	** ग्रीविया जाति	(द)	धामन	क$_१$, ख$_१$, घ$_१$।
९	* लेगर्स्ट्रोमिया लैन्सियोलाटा	(इ)	बैन्टीक	क$_१$,ख$_१$,ग$_२$, घ$_१$,ङ$_२$।
१०	* टैरोकार्पस मार्स्युपियम्	(इ)	बीजासाल	क$_१$, ख$_१$, ङ$_१$।
११	** यूजीनिया जम्बोलाना	(इ)	जामन	क$_१$।
१२	* टैक्टोना ग्रैन्डिस	(इ)	टीक	क$_१$, ख$_१$,ग$_१$,घ$_१$, ङ$_१$।
१३	*** टर्मिनेलिया बैलैरिका	(ब)	बहेड़ा	क$_२$, ख$_२$, घ$_२$।
१४	** टर्मिनेलिया पैनीक्यूलाटा	(स)	किन्डल	क$_२$, ख$_२$, घ$_२$।
१५	** टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा	(ब)	लौरल	क$_१$, ख$_१$, घ$_१$।
१६	* जाइलिया जाइलोकार्पा	(इ)	इरुल	क$_१$, घ$_१$।
१७	*** एडीना कौर्डीफोलिया	(अ)	हल्दू	ख$_२$, ग$_२$, ङ$_२$।
१८	* डाइसौक्सीलम् मैलैबैरिकम	–	सफेद सीडार	ग$_१$, ङ$_१$।
१९	*** मैंगीफरा इन्डीका	(अ)	आम	क$_२$, ख$_२$, ग$_२$, घ$_२$।
२०	*** मिट्रैजाइना पार्वीफोलिया	(ब)	कैम	ख$_२$, ग$_२$, ङ$_२$।

५. दक्षिणी कटिबन्ध

मद्रास, मैसूर और केरल

क्रमांक	काष्ठ-जाति		व्यापारी नाम	प्रयोग
१	*** एकेशिया अरेबिका	(ब)	बाबुल	क$_१$, ख$_१$।
२	*** एक्रोकार्पस फ्रैक्सीनीफोलिअस	(स)	मुन्दानी	ग$_२$।
३	*** एडीना कौर्डीफोलिया	(अ)	हल्दू	ख$_२$, ग$_२$, ङ$_२$।
४	* एल्बीजिया लैबैक	(स)	कोको	क$_१$, ख$_१$, ग$_१$, घ$_१$, ङ$_१$।
५	* एल्बीजिया ओडोराटिसिमा	(इ)	काला सिरिस	क$_१$, ख$_१$, ग$_२$, घ$_२$ ङ$_२$।
६	*** एनोजाइसस् लैंटीफोलिया	(इ)	धौरी	क$_१$, ख$_१$, घ$_१$।
७	* अर्टोकार्पस हिटीरोफिलस	–	कठल	क$_२$, ख$_२$।
८	*** अर्टोकार्पस हिर्स्यूटा	–	एनी	ख$_१$, ग$_१$, ङ$_१$।
९	** ब्रीडीलिया रेटघूसा	–	काशी	क$_१$, ख$_१$, घ$_२$।
१०	** कैलोफिलम् जाति	(इ)	पून	क$_२$, ख$_२$, ग$_२$, ङ$_२$।
११	*** क्लोरोक्सीलौन स्वीटेनिया	–	सैटिन काष्ठ	क$_२$, ख$_२$, घ$_२$, ङ$_२$।
१२	*** कुलीनिया इक्सैल्सा	(ब)	करानी	ख$_१$, ग$_२$।
१३	* डल्बर्जिया लैटीफोलिया	–	रोज वुड	ङ$_१$।
१४	*** डायोस्पीरौस जाति	–	एबौनी	क$_२$, ख$_२$, घ$_२$।
१५	** डिप्ट्रोकार्पस इन्डीकस	(ब)	गुर्जन	क$_१$, ख$_१$, ग$_२$, घ$_२$।
१६	* मैलीना अर्बोरिया	–	गमारी	घ$_१$, ङ$_१$।
१७	** ग्रीविया टिलीफोलिया	(ब)	धामन	क$_१$, ख$_१$, घ$_१$।
१८	* डार्डविकिया बिनाटा	(इ)	अन्जन	क$_१$, ख$_१$, घ$_२$।
१९	* हार्डविकिया पिनाटा	–	पिने	ख$_२$।
२०	* होपिया जाति (स)	(इ)	होपिया	क$_१$, ख$_१$, घ$_१$।
२१	* लैगर्स्ट्रोमिया लैन्सियोलाटा	(इ)	बैन्टीक	क$_१$, ख$_१$, ग$_२$, घ$_१$, ङ$_२$।
२२	* मधूका जाति	–	महुवा	क$_२$, ख$_२$, घ$_२$।
२३	* मीम्यूसौप्स् जाति	–	बुलैट वुड	क$_१$, ख$_१$, घ$_१$।
२४	** पैलैक्यूअम् इलिप्टिकम्	–	पाली	ख$_१$, ग$_१$।
२५	** पोसौलोन्यूरौन इन्डीकम्	(इ)	बलागी	क$_१$।
२६	* टैरोकार्पस् मार्स्युपियम	(इ)	बीजासाल	क$_१$, ख$_१$, ङ$_१$।
२७	** साईजीगियम (यूजीनिया) जाति- (द)	(इ)	जामन	क$_१$।
२८	*** साइलीचरा ओलियोसा (सा० त्रिजुगा अ)		कुसुम	क$_१$।
२९	*** टैमैरिन्डस इन्डीका	–	इमली	क$_१$।
३०	* टैक्टोना ग्रैन्डिस	(इ)	टीक	क$_१$, ख$_१$, ग$_१$, घ$_१$, ङ$_१$
३१	** टर्मिनेलिया अर्जुना	(ब)	अर्जुन	क$_१$, ख$_१$, घ$_२$।

क्रमांक	काष्ठ-जाति		व्यापारी नाम	प्रयोग
३२	** टर्मिनेलिया पैनीक्यूलाटा	(स)	किन्डल	$क_२$, $ख_२$, $घ_२$।
३३	** टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा	(ब)	लौरल	$क_१$, $ख_१$, $घ_१$।
३४	* जाइलिया जाइलोकार्पा	(इ)	इरूल	$क_१$, $घ_१$।
३५	* मैसुवा फेरिया	(इ)	मैसुवा	$क_१$, $ख_१$ $घ_१$।
३६	*** मैंगीफरा इन्डीका	(अ)	आम	$क_२$ $ख_२$, $ग_२$, $ङ_२$।
३७	*** सैंड्रीला तूना	(स)	तून	$ग_१$, $ङ_१$।
३८	* डाइसौक्सीलम् मैलैबैरिकम्	–	सफेद सीडार	$ग_१$, $ङ_१$।
३९	*** मिट्रैजाइना पार्वीफोलिया	(ब)	कैम	$ख_२$, $ग_२$, $ङ_२$।
४०	** जैन्थौक्साइलम् रहैट्सा	–	मुलीलाम	$ख_१$, $ग_१$, $ङ_१$। समाप्त।

(यह वर्गीकरण वन-अनुसंधान-शाला की काष्ठ शारीर, काष्ठ संशोषण, काष्ठ परिक्षण और काष्ठ अभियांत्रिकी शाखाओं ने मिलकर तैयार किया है।)

परिशिष्ट १२

सारणी–३२

उत्तर प्रदेश के मुख्य काष्ठों की प्राकृतिक स्थायिता, प्राप्यता, उपचार, मूल्य और विभिन्न प्रयोगों के सम्बन्ध में सूचना

('टिम्बर ड्रायर्स एन्ड प्रीजर्वर्स एसोसिएशन ऑफ इन्डिया' के 'क्वार्टर्ली न्यूज बुलैटिन' के जुलाई १९५५ के अंक में प्रकाशित)

क्रमाक	काष्ठ-जाति	व्यापार नाम	उपज स्थान	सारकाष्ठ की प्राकृतिक स्थायिता	सारकाष्ठ का उपचारिता	प्राप्य मात्रा १००० घन फुट मे	प्रति घन फुट का औसतन् मूल्य	विभिन्न प्रयोग, आवश्यकतानुसार उपचार के पश्चात्
१	२	३	४	५	६	७	८	९
				वर्ग			रु०	
१	**एबिस पिन्ड्रो**	फर, टौस, मौरिडा	उच्च पर्वतों मे, विशेष कर टेहरी, गढ़वाल।	५	(द)	३००	३ ००	१, ८, १२, १३, १६ और १७।
२	**एकेशिया एरेबिका**	कीकर, बाबूल	तराई और भूमि प्रबन्धक सभाग।	५	(ब)	३०	३ ·००	१, ४, १४, १८ और १९।
३	**एकेशिया कैटेच्यू**	खैर	मुख्यतः अधः पर्वतीय और तराई सभाग।	१	—	३०	२ ००	१ से १२, १४, १९, २० और २१।
४	**एसर जाति**	मेपल, कैन्जू	उच्च पर्वत।	६	—	३	५ ·००	२२ और २३।
५	**एडीना कौर्डीफोलिया**	हल्दू	मुख्यत· अध. पर्वतीय सभाग।	५	(अ)	१२०	३ ·५०	१२, १४, १६, २३, २५ और २९।

क्रमांक	काष्ठ-जाति	व्यापार नाम	उपज स्थान	सारकाष्ठ की प्राकृतिक स्थायिता	सारकाष्ठ की उप-चारिता	प्राप्य मात्रा १००० घन फुट में	प्रति घन फुट का औसतन् मूल्य	विभिन्न प्रयोग आवश्यकता-नुसार उपचार के पश्चात्
१	२	३	४	५	६	७	८	९
				वर्ग			रु०	
६	**एनोजाइसस् लैंटीफोलिया**	बकली, घाऊ	मुख्यतः अधः पर्वतीय संभाग।	५	(इ)	३०	३·००	१ से ४, ६, ७, ८, ९, ११, १२, १४, १८ और २४।
७	**सैंड्रीला तूना**	तून	मुख्यतः अधः पर्वतीय सभाग।	५	(स)	१०	४·५०	१, २, १२, १९ और २३।
८	**सीड्रस देवदारा**	देवदार	उच्च पर्वत, विशेष कर टेहरी सर्कल।	२	(स)	३००	५·५०	१, ६, ८, ११, १२, १९, २५ और २७।
९	**कुप्रुसस् टौरूलोसा**	साइप्रस, सुराइ	उच्च पर्वत, विशेष कर कुमाऊं सर्कल।	१	(इ)	५	४·००	१, ३, ६, ११, १९ और २७।
१०	**इलबर्जिया सिसू**	शिशू, शीशम	मुख्यतः अधः पर्वत, तराई और भूमि प्रबन्धक संभाग।	१	(इ)	२००	६·००	१ से ७, ९, १२, १४, १८, १९ और २३।
११	**होलोप्टिलिया इन्टीग्रीफोलिया**	काँजू, पपरी	मुख्यतः अधः पर्वतीय संभाग।	५	(ब)	१००	२·००	७, १६, १८, १९ और २३।
१२	**हाइमैनोडिक्टयौन इक्सैल्सम**	वौरंग, भुरकुल	मुख्यतः अधः पर्वतीय संभाग।	६	(स)	५	४·००	७, १६, २३, २५ और २९।

१	२	३	४	५	६	७	८	९
				वर्ग			रु०	
१३	जुग्लान्स् रेजिया	अखरोट	उच्च पर्वत, टेहरी और कुमाऊं सर्कल।	६	—	१	६·५०	१२ और २२।
१४	ओजीनिया डल्बर्जियौ-इड्स	साँदन, पाँदन	मुख्यतः अधः पर्वतीय और तराई संभाग।	–	—	३०	३·५०	४, ९, १२, १४, १८ और १९।
१५	पीसिया स्मीथियाना (पर्याय पी० मोरिन्डा	स्प्रूस, राइ	उच्च पर्वत, मुख्यतः टेहरी सर्कल।	६	(द)	३००	३·००	२, ६, ८, १२, १३, १६ और १७।
१६	पाइनस् रौक्सबर्गी पर्याय पा० लौंगी फोलिया)	चीड़	पर्वत,विशेष कर कुमाऊं और टेहरी सर्कल।	५	(ब)	३,४००	३·००	१ से १२, १६ १९ और २४।
१७	पाइनस् वालीचियाना (पर्याय पा० इक्सेल्सा)	नीला पाइन, कैल	उच्च पर्वत, विशेष कर चकराता संभाग।	५	(स)	१५०	३·००	१, २, ६, ८, १२, १६, १७, १९ और २५।
१८	प्रूनस कौर्नूटा	बर्डचैरी,जमोइ	उच्च पर्वत	–	—	२	५·००	२२।
१९	साल्मेलिया मैलैबैरिका (पर्याय बौम्बेक्स मैलैबैरिकम्)	सीमल	अधः पर्वतीय और तराई सभाग।	६	(अ)	२००	२·००	२३, २६ और २८।
२०	शोरिया रोबस्टा	साल, साखू	सर्व अध. पर्वतीय और तराई संभाग, अन्यत्र स्थानीय।	१	(इ)	४०००	६·००	१ से ९, ११,१२, १९ और २४।
२१	साइचीगियम क्यूमीनी (पर्याय यूजीनिया जम्बोलाना)	जामन	मुख्यतः मैदान वन।	३ और ४	—	५	४·५०	१ से ४, ८, १४, १८ और २८।
२२	टैक्टोना ग्रैन्डिस्	टीक, सागौन	मुख्यतः बुन्देलखन्ड, अन्य छोटे रोपित वन।	२	(इ)	८	८·००	१ से १२, १९, २३ और २४।

क्रमांक	काष्ठ-जाति	व्यापार नाम	उपज स्थान	सारकाष्ठ की प्राकृतिक स्थायिता	सारकाष्ठ की उपचारिता	प्राप्य मात्रा १०० घन फुट में	प्रति घन फुट का औसतन् मूल्य	विभिन्न प्रयोग आवश्यकता-नुसार उपचार के पश्चात्
१	२	३	४	५	६	७	८	९
				वर्ग			रु०	
२३	टर्मिनेलिया ऐलाटा (पर्याय ट० टोम्यन-टोसा)।	सैन, असना	सर्व अधः पर्वतीय, तराई और विन्ध्यान सभाग।	४	(ब)	४००	४·५०	१, २, ४, ८, ९, ११, १४, १८, १९ और २४।
२४	ट्रीविया न्यूडीफ्लोरा	ग्यूटैल	मुख्यतः मैदान वन	—	—	३०	२·५०	१६, २३ और २६।

व्याख्या-टिप्पण—१—ऊपर ५ स्तम्भ मे लिखित सारकाष्ठ की प्राकृतिक स्थायिता, सारणी ८ (भाग २, अध्याय ३) में दी गयी वर्ग-संख्या के अनुसार है।

२—उपचार, सारणी ३० (परिशिष्ट ११) के टिप्पण में दिये गये अक्षरांकित के अनुसार है।

३—विभिन्न प्रयोग निम्नप्रकार से हैं—

(१) छत, (२) अन्तश्छद, (३) ट्रस, (४) बाड-खम्भ, (५) दीवार, (६) फर्श, (७) बाड़-पट्टियाँ, (८) रेलवे स्लीपर, (९) बिजली व तार खम्भ और स्तम्भ, (१०) नौ-निर्माण, (११) पुल इत्यादि—जैसे भारी निर्माण कार्य, (१२) उपस्कर, (१३) हवाई-जहाज, (१४) कृषि औजार, (१५) खेल-सामग्री, (१६) आधान अथवा पात्र, (१७) पत्र-गोर्द, (१८) गाड़ी-निर्माण, (१९) गृह-निर्माण, (२०) कोलू, (२१) कत्था-उत्पादन, (२२) बन्दूक-भाग, (२३) स्तर और आपट्टित काष्ठ, (२४) बल्लियाँ, (२५) गणित उपकरण, (२६) दियासलाई, (२७) पैन्सिल, (२८) कुंआ-कार्य और (२९) बौबिन।

(हस्ताक्षरित) डी० एल० साह,
आई० एफ० एस्०,
मुख्य वन-संरक्षक, उत्तर प्रदेश, नैनीताल।

पारिभाषिक शब्दावली

पारिभाषिक शब्दावली

हिन्दी-अंग्रेजी

अं

अंगार राल–Coal tar.

अंश–Members.

अ

अकार्बनिक–Inorganic.

अग्निरक्षा–Fireprotection.

अग्निरोधी–Fireproof.

अग्निरोधी-स-परिरक्षी मिश्र–Fire-proofing *cum* antiseptic-composition.

अछादित कुण्ड–Open tank.

अनुकूलतम—Optimum.

अनुमानित–Estimated.

अनुप्रस्थ–Transverse.

अन्तःप्रेषण–Inject.

अन्तर्गत–Indoor.

अन्तःप्रवेशन–Penetration.

अन्तराकोश–Intercellular.

अन्तर्भूमिक–Subterranean.

अन्वायुक्तियाँ–Fittings.

अन्वेषण–Research.

अपक्षय–Rot.

अपेक्षया–Relatively.

अप्रतिचारी–Refractory.

अप्रांगारिक–Inorganic.

अभिकर्ता–Agent.

अभिज्वाल्यता–Inflammability.
ज्वलनशीलता

अभिस्तावित–Recommended.

अभिरञ्जन–Stain.

अभिलेख–Records.

अयोग्यता–Rejection.

अरन्ध्री, निरन्ध्र–Nonporous.

अरीय–Radial.

अल्प–Low.

अल्पउपचार–Temporary protection.

अवस्था–Condition.

अवमूल्यन–Depreciation.

अवह्रास–Deterioration.

अवयव–Members.

अवशोषण–Absorption. (प्रचूषण)

अस्थायी–Nondurable.

अस्वीकृति–Rejection.

आ

आँकड़े–Statistics.

आड़ा–Horizontal.
आड़े बत्ते–Cross-arms,Crossers.
आदहन–Charring.
आर्द्रता–Moisture.
आधार–Foundation.
आन्तरकाष्ठ–Heartwood.
आपाक संशोषण–Kiln-Seasoning.
आपट्टित काष्ठ–Laminated wood.
आयु–Life.
आर्द्रताग्राही–Hygroscopic.
आलग–Viscous, श्यान, गाढा
आलगत्व–Viscosity. श्यानता
आलोकन–Note.
आवर्द्धक कांच–Magnifyingglass.
आविष्कार–Discovery.
आसारण–Osmosis.

इ

इस्पात–Steel.

उ

उच्च–High.
उत्पत–Volatile.
उत्पत तेल–दे० 'गधतेल'
उदग्र–Vertical.
उदञ्च–Pump.
उद्विकाश–Evolution.
उद्विलयन–Leach.
उद्भिद समूह–Vegetation.
उद्भिद् सम्बन्धी–Vegetative.
उपचार करना–Treat.
उपचार ग्रहणीय–Treatable.
उपचारिता–Treatability.
उपचारित–Treated.
उपसाधन–Accessories.
उपस्कर–Furniture.
उपसृष्ट पदार्थ–By-products,उपजात
उरुपाती (चौड़ी पत्तीवाले)–Broad-leaved.
उरुपाती काष्ठ–Hardwood.
उषकरी अर्हा– ऊष्मीय मान
उष्म सवाहिता–Thermal conductivity.

ऊ

ऊति–Tissue.

ऋ

ऋतुक्षरण–Weathering.

ए

एकस्व–Patent.
एकस्वीकरण–Patenting.

औ

औसत–Average.

क

कन्दु–Oven.
कपाट–Valve.
कर्मी–Workers.
कला—Membrane.
कवक–Fungus.
कवकमार–Fungicide.
कवकसूत्र–Hypha.
कवकसूत्र जाल–Mycelium.
कार्बनिक–Organic.

कार्बनीकरण–Carbonisation.
कारक–Agency, factors.
काष्ठ—Wood, timber.
किनारीदार गर्त—Bordered pit.
कीटनाशक–Insecticide.
कुल–Family.
कुल्या–Canal.
कूर्चन–Brushing.
कूची–Brush.
कूप–Cavity.
कूपी–Bottle, बोतल
केन्द्रापग उदञ्च Centrifugal pump.
केशाल-क्रिया–Capillary action.
कोशा—Cell.
कोशाधु–Cellulose.
कोशाभित्ति–Cell-wall.
क्रिया–Process.
क्रियोजोटीकृत–Creosoted.
क्रिजोटीकरण–Creosoting.

ख

खड़ा–Vertical.
खम्भ–Pole.
खुला कुण्ड–Open tank.
खूँटी–Stakes.

ग

गर्त, गढ़ा–Pit.
गंधतेल–Essential oil, वाष्पशील तेल
गाढ़ा–Viscous. श्यान
गाढापन–Viscosity, श्यानता
ग्रीष्मकाष्ठ–Summer-wood.
गुणक–Coefficient.
गुहारुध–Tyloses.
गौण–Secondary.

घ

घनत्व–Density.

च

चूर्ण–Powder.
चूषण–Soaking.

छ

छतपट्ट–Shingles.
छादन-घास–Thatch grass.
छादित–Indoor.
छाल–Bark.
छिद्रकीट–Borers.
छीलन–Debarking.
छेदन–Section.
छोर–End.

ज

जल निपीडक–Hydraulic pump.
जल-विलेय–Watersoluble
जल-विलेयबद्ध प्रतिरूप–Water soluble fixed type.
जाति–Species.
जीवनकाल–Life.
जीवितक–Parenchyma.
जैविक–Biological.
ज्वलनशीलता–Inflammability

ट

टक्कर–Cross-section.

टिकाऊ–Durable.
टूट-फूट–Wear and tear.

ड

डिम्भ–Larva.

त

तर्कुरूप किरणे–Fusiform rays.
तत्त्व–Element.
तनु छोर–Thin end.
तन्तु–Fibre.
तन्तु परिपूर्णक बिन्दु–Fibre saturation point.
तरल–Liquid.
तल–Surface.
तलछट–Precipitate.
तापन और शीतन–Heating and cooling.
ताल–Lens.
तिरछा–Transverse.
तिर्यक् छेद–Cross-section.
तीव्रता–Intensity.
तुलनात्मक–Comparative.
तैल-विलेय–Oil-soluble.

द

दबन–Collapse.
दबाव–Pressure.
दरार–Cracks.
दशा–Condition.
दक्षता–Efficiency.
द्वितीय–Secondary.
दीमक–White ants, termites.
दीर्घित–Elongated.
दृढ़ता–Strength, toughness.

ध

धारिता–Capacity.
धावन–Leaching.
धूल-विष–Dust-poison.

न

नाड–Pipe.
नाशन–Destruction.
नाशरक्षण शुल्क–Salvage value.
निर्देश–Reference.
निपीड—Pressure.
निम्न लागत–Low-cost.
निराल–pitch, डामर
निरंध्र–Nonporons.
निर्माता–Manufacturers.
निर्माणशाला–Factory.
निर्माण-रचिति–Mill construction.
नियन्त्रण–Control.
निरीक्षण–Observation, inspection.
निस्सादन–Precepitation, तलछट
निस्सार–extractive.
निश्चयन–Determination.
न्यादर्श–Specimen. (प्रादर्श)
न्यून–Slight.

प

पंक्तियाँ–Rows.
पट्टीबन्धन–Bandaging.
पर्यवेक्षण–Supervision.
परिरक्षी–Preservative.

परिरक्षण–Preservation.
परिरक्षोपचार–Preservative treatment.
परिवर्तन करना–Convert.
परिव्यय–Cost.
परिशिष्ट–Appendix.
परिष्करण–Refining.
परीक्षण–Experiments.
परीक्षण-आगन–Test-yard.
पर्णशाद–Chlorophyll, पर्णहरित
पाचन–Digest.
पाद-प्रहार–Kick-back.
पारिभाषिक नाम–Botanical name.
पारी–Shift.
पारेषण खम्भे–Transmission poles.
पार्श्व–Side.
पूर्णकोशा–Full Cell.
पेटी–Packing case.
प्रकाष्ट–Timber.
प्रकील–Spyke.
प्रक्रिया–Process.
प्रचूषण–Absorption.
प्रजनन–Reproductive.
प्रजाति–Genus.
प्रति–Against.
प्रतिधारण–Retention.
प्रतिरूप–Type.
प्रत्याशित–Anticipated, expected.
प्रदर्शन–Demonstration.
प्रनिलम्ब–Emulsion. (पायस)
प्रभार–Charge.
प्रमाप–Standard.
प्रवेश्य–Permeable.
प्रवेश्यता–Penetrability.
प्रवेश्यमाप–Permeability.
प्रसारण–Diffusion.
प्रसृत रन्ध्र–Diffuse porous.
प्रसृत, प्रसारित–Diffused.
प्राकृतिक स्थायित्व–Natural-durability.
प्रांगण–Yard.
प्रागारण–दे० कार्बनीकरण
प्रांगारिक–Organic.
प्रादर्श–Specimen.
प्रासव–Spirit.
प्रौढ़–Adult.

फ

फफूंद–Mould.
फलन काय–Fruiting body.
फूंकनी–Blower.

ब

बद्ध–Fixed.
बद्धकरण–Fixation.
बन्ध्य–Sterile.
बभ्रु अपक्षय–Brown rot.
बाड़ खम्भ–Fence post.
बाह्यकाष्ठ–Sapwood.
बीजाणुधर–Sporophore.
बेंत–Cane.
बोल्टन–Boulton.

भ

भंजन–Cracking (of oil).
भरणतट–Wharf.
भवन-निर्माण–Building work.
भाग–Member.
भित्ति–Wall.
भूतैल–Petroleum.
भेदन–Incising.

म

मध्यक–Pith.
मध्यम–Moderate.
मध्या–Median.
मण्ड–Starch.
महानुमाप–Large scale.
मात्रा–Quantity, amount.
माध्य–Average.
माध्यम–Medium.
मिश्र–Composition.
मुण्डछोर–Butt-end.
मूल्य कथन–Quotation.
मोटाई–Thickness.
मृत्तैल–Petroleum, भूतैल
मृदाबीजाणुहनन–Soil-sterilisation.

य

यन्त्र–Equipment.
यान्त्रिक विघर्षण-Mechanical wear.
यौगिक–Compound.

र

रंगलेप–Paint.
रद्द–Rejection, waste.
रन्ध्र–Pore.
रन्ध्री–Porous, सरन्ध्र
रम्भ–Cylinder.
रस–Sap.
रसकाष्ठ–Sapwood.
रसविस्थापन–Sap dis-placement.
रसायन, रसद्रव्य–Chemicals.
रासायनिक सगठन–Chemical composition.
राशि–Amount.
रिक्त कोशा–Empty cell.
रीति–Method.
रूपिग–Rueping.
रेल-आसन–Rail-Seat.
रेशा–Fibre.
रोधी–Resistant.

ल

लक्षण–Characteristics.
लगुडि–Lignin.
लघु अनुमाप–Small scale.
लवण—Salts.
लागत–Cost.
लीसा प्रणाली–Resin duct.
लौरी–Lowry.

व

वनकला–Silviculture.
वर्गीकरण–Classification.
वद्धगति–Accelerated.
वयन–Grain.
वल्क–Bark.

वलय–Ring.
वलय-रन्ध्र–Ring porous.
वसन्तकाष्ठ–Spring-wood.
वातिक, वायवीय–Pneumatic.
वायु-संपीडक–Air Compressor.
वाष्पित्र–Boiler.
वाष्पीकरण–Steaming.
वास्तविक–Net.
वाहिनी–Vessels.
वाहिकोशा-Tracheid, दारु वाहिनिकी
विकर–Enzyme.
विधायित काष्ठ–Processed timber.
विपटन–Splitting.
विलयन की प्रबलता–Strength of solution.
विलायक–Solvent.
विवरण–Statement.
विवरणिका–Bulletin.
विविध, विभिन्न–Various.
विवेचन–Discussion.
विश्लेषण–Analysis.
विशिष्टि–Specification.
विशेष कथन–Remarks.
विषम रूप–Heterogeneous.
विषालु–Toxic.
विषालुता परीक्षण–Toxicity tests.
वेगकालीन–Accelerated, वृद्धिगत
व्यावसायिक–Commercial.
व्यापन–Impregnate.
व्यापारिक नाम–Trade name.
वृद्धिवलय–Growth ring.

श

शंकुधारी काष्ठ–Soft wood.
शर्करा–Sugar.
शवागण–Graveyard.
शाखा -Branch.
शारीर रचना-Anatomical structure
शाला, शालिका–Shed.
शिशु–Nymph.
शीकरन–Spraying.
शुष्क–Dry.
शून्यक–Vacuum.
शोधन करना–Treat.
शोधित–Treated.
श्लेष–Glue.
श्वेत अपक्षय–White rot.

स

सक्रात–Attacked.
सक्रान्त, ग्रस्त–Infected.
सकेन्द्रित–Concentrated.
सघनक–Condenser.
संग्रह-कुण्ड–Storage tank.
संधि-स्तम्भ–Culms.
संधारी शक्ति–Mechanical strength.
संभार–Equipment.
सभावित–Approximate.
सपत्ति–Asset.
संयन्त्र–Plant.
संयोग–Compound.

संयोजन–Combining.
संरचना–Structure.
संरचनात्मक–Structural.
संरक्षण–Conservation.
संवर्ध–Culture.
संवधार्श–Culture medium.
संशोषण–Seasoning.
संश्लिष्ट–Synthetic.
संक्षरण–Corrosion.
संक्षारक–Corrosive.
सकल–Gross.
सड़न–Decay..
सपक्ष–Alate.
समंक–Statistics.
समरूप–Homogeneous.
समशीतोष्ण–Temperate.
समाई–Capacity, धारिता
समुचितोपचार–Conditioning treatment.
समुद्रतटघाट–Wharf.
सम्बलित–Reinforced.
सांख्यिकी–Statistics.
साधारण गर्त–Simple pit.
सामग्री–Data.
सामुद्रिक–Marine.
सार–Summary.
सारकाष्ठ–Heartwood.
सारणी–Table.
सिद्धि–Accomplishment.
सेवा-आयु–Service life.
सेवाकालीन परीक्षण–Service tests.
सुउपचारित–Well-treated.
सुवाह्य–Portable.
स्पर्शीय–Tangential.
स्तम्भ–Pile.
स्तरकाष्ठ–Plywood.
स्थायी–Durable.
स्थायित्व–Durability.
स्थापना–Establishing.
स्थूलक–Torous.
स्लीपर–Sleeper.
स्फट–Crystal मणिभ
स्थिर–Fixed.
स्थिरीकरण–Fixation.
स्वाभाविक स्थायीपन–Natural durability.
स्वामिक–Proprietary.
स्वस्थ–Sound.
स्वस्थानीय–In situ.

क्ष

क्षतिरोधक उपाय–Prophylactic measures.
क्षेत्र–Area.
क्षैतिज–Horizontal.

अंग्रेजी-हिन्दी

A

Absorption–प्रचूषण; अवशोषण
Accessories–उपसाधन
Accomplishment–सिद्धि, परिपूर्ति
Adult–प्रौढ़
Against–प्रति
Agent–कारक, अभिकर्ता
Air-Compressor–वायु-सपीडक
Alate–सपक्ष
Amount–मात्रा, राशि
Analysis–विश्लेषण
Anatomical structure–शारीर-रचना
Annual ring–वार्षिक वलय
Anticipated–प्रत्याशित
Appendix–परिशिष्ट
Approximate–सम्भावित, सन्निकट
Area–क्षेत्र, प्रदेश
Arranged–क्रमबद्ध
Asset–सम्पत्ति
Attacked–सक्रान्त
Average–माध्य, औसत

B

Bandaging–पट्टीबन्धन
Bark–वल्क, छाल
Biological–जैविक
Blower–फूँकनी
Boiler–वाष्पित्र
Bordered pit–किनारीदार गर्त
Borers–छिद्रक कीट
Botanical name–पारिभाषिक नाम
Bottle–कूपी, बोतल
Boulton–बोल्टन
Branch–शाखा
Broad leaved–पृथुपाती
Brown rot–बभ्रु अपक्षय
Brush–कूची
Brushing–कूचन
Building work–भवन-निर्माण
Bulletin–विवरणिका
Butt end–मुड छोर
By-products–उपसृष्ट पदार्थ, उपजात

C

Canals–कुल्या
Cane–बन
Capacity–समाई, धारिता
Capillary action–केशाल क्रिया
Cavity–कूप
Cell–कोशा
Cellulose–कोशाधु
Cell-wall–कोशाभित्ति
Centrifugal pump–केन्द्रापग-उदञ्च
Characteristics–लक्षण
Charge–प्रभार
Charring–आदहन
Chemical composition–रासायनिक सगठन
Classification–वर्गीकरण

Coal tar–अगार राल
Coefficient–गुणक
Collapse–दबन
Combine–सयोजन
Commercial–वाणिज्यिक, व्यावसायिक
Comparative–तुलनात्मक
Compete–स्पर्धा करना
Compound–सयोग, यौगिक
Composition–मिश्र
Concentrated–सकेन्द्रित
Condenser–संघनक
Condition–दशा, अवस्था
Conditioning treatment–समुचितोपचार
Coniferous–शकुधारी
Conservation–सरक्षण
Control–नियन्त्रण
Convert–परिवर्तन करना
Corrosion–संक्षरण
Corrosive–संक्षारक
Cost–परिव्यय, लागत
Cracks–दरार
Creosoted–क्रियोजोटीकृत
Creosoting–क्रियोजोटीकरण
Cross arms–आड़े-बत्ते
Crossers–आड़े-बत्ते
Cross-Section–तिर्यक् छेद, टक्कर
Culture–संवर्ध
Culture medium–संवर्धाश
Culms–सधिस्तम्भ
Cylinder–रम्भ

D

Data–सामग्री
Debarking–छीलन
Decay–सड़न
Demonstration–प्रदर्शन
Density–घनत्व
Depreciation–अवमूल्यन
Deterioration–अवह्रास
Determination–निश्चयन, निर्धारण
Diffused–प्रसृत, प्रसारित
Diffuse porous–प्रसृत रन्ध्र
Diffusion–प्रसारण
Discovery–आविष्कार
Discussion–विवेचन
Dry–शुष्क
Durability–स्थायित्व
Durable–स्थायी, टिकाऊ
Dust poison–धूल विष

E

Efficiency–दक्षता
Element–तत्त्व
Elongated–दीर्घित
Empty cell–रिक्त कोशा
Emulsion–प्रनिलम्ब, पायस
End–छोर
Enzyme–विकर
Equipment–संभार, यन्त्र
Establish–स्थापना करना

Estimated–अनुमानित
Evolution–उद्विकाश
Expected–प्रत्याशित
Experiments–परीक्षण

F

Factors–कारक
Factory–निर्माणशाला
Family–कुल
Fence post–बाड़-खम्भ
Fibre–तन्तु, रेशा
Fibre saturation point–तन्तु परिपूर्णक बिन्दु
Fire-proof–अग्निरोधी
Fireproofing *cum* antiseptic-composition–अग्निरोधी-स-परिरक्षी मिश्र
Fire protection–अग्निरक्षा
Fixation–स्थिरीकरण, बद्धकरण
Fixed–स्थिर, बद्ध
Foundation–आधार
Fruiting body–फलन काय
Full cell–पूर्ण कोशा
Fungicide–कवक मार
Fungus–कवक
Furniture–उपस्कर
Fusiform rays–तर्कुरूप किरणें

G

Genus–प्रजाति
Glue–श्लेष
Grain–वयन
Graveyard–शवागण
Gross–सकल
Growth ring–वृद्धि वलय

H

Hardwood–उरुपानी काष्ठ, कठोर-काष्ठ
Heartwood–सारकाष्ठ, आन्तर काष्ठ
Heating and cooling–तापन और शीतन
Heterogeneous–विषमरूप
High–उच्च
Homogeneous–समरूप
Horizontal–क्षैतिज, आडा
Hydraulic pump–जलनिपीड़क
Hypha–कवक सूत्र

I

Impregnate–व्यापन करना
Incising–भेदन
Indoor–अन्तर्गत, छादित
Infected–सक्रान्त, ग्रस्त
Inflammability–अभिज्वाल्यता
Inject–अन्तःप्रेषण
Inorganic–अप्रागारिक, अकार्बनिक
Insecticide–कीटनाशक
Insitu–स्वस्थानीय
Inspection–निरीक्षण
Intensity–तीव्रता
Intercellular–अन्तराकोश

K

Kick back–पादप्रहार

Kiln Seasoning–आपाक-सशोपण

L

Laminated wood–आपट्टित काष्ठ
Large Scale–महानुमाप
Larva–डिम्भ
Leach–उद्विलयन
Leaching–धावन, धोना
Lens–ताल
Life–जीवनकाल, आयु
Lignin–लगुडि
Liquid–तरल
Low–अल्प
Lowcost house–कम लागतवाले गृह
Lowry–लौरी

M

Magnifying lens–आवर्धक काँच
Manufacturers–निर्माता
Marine–सामुद्रिक, समुद्रीय
Mechanical Strength–सधारी शक्ति
Mechanical wear–यान्त्रिक विघर्षण
Median–मध्या
Medium–माध्यम
Members–भाग, अश, अवयव
Membrane–कला
Method–रीति
Mill construction–निर्माण-रचिति
Moderate–मध्यम
Moisture–आद्रता
Mould–फफूद
Mycelium–कवकसूत्र जाल

N

Natural durability–प्राकृतिक स्थायित्व
Net–वास्तविक
Non-durable–अस्थायी
Non-porous–(अरन्ध्री), निरन्ध्र
Note–आलोकन
Nymph–शिशु

O

Observation–निरीक्षण
Oil-soluble–तैल-विलेय
Open tank–अछादित कुड, खुला कुड
Optimum–अनुकूलतम
Organic Solvent–प्रागारिक (कार्बनिक) विलायक
Osmose–आसारण
Oven–कन्दु

P

Packing case–पेटी
Paint–रगलेप
Parenchyma–जीवितक
Patent–एकस्व
Patented–एकस्वीकरण किया गया
Penetrability–प्रवेश्यता
Penetration–अन्त.प्रवेशन
Permeable–प्रवेश्य
Permeability–प्रवेश्यमाप
Petroleum–मृत्तैल, भूतैल
Pile–स्तम्भ
Pipe–नाड

Pit–गढ़ा, गर्त
Pith–मध्यक
Plant–संयन्त्र
Plywood–स्तरकाष्ठ
Pneumatic–वातिक, वायवीय
Pole–खम्भ
Pore–रन्ध्र
Porosity–रन्ध्रिता, सरन्ध्रता
Porous–रन्ध्री, सरन्ध्र
Portable–सुवाह्य
Powder–चूर्ण
Precipitate–निस्सादन, तलछट
Precipitation–निस्साद, अवक्षेपण
Preliminary–प्रारम्भिक
Preservative treatment–परिरक्षोपचार
Pressure–निपीड, दबाव
Private–निजी
Process–क्रिया, प्रक्रिया
Processed timber–विधायित काष्ठ
Prophylactic measures–क्षतिरोधक उपाय
Proprietary–स्वामिक
Pump–उदञ्च

Q

Quantity–मात्रा, राशि
Quotation–मूल्य-कथन

R

Radial–अरीय
Rail seat–रेल-आसन
Recommended–अभिस्तावित
Records–अभिलेख
Reference–निर्देश
Refining–परिष्करण
Refractory–अप्रतिचारी
Reinforced–सम्बलित
Rejection–अस्वीकृति, रद्द, अयोग्यता
Relatively–अपेक्षया
Remarks–विशेष कथन
Reproductive–प्रजनन
Research–अन्वेषण
Resin ducts–लीसा प्रणाली
Resistant–रोधी
Retention–प्रतिधारणा
Ring–वलय
Ring porous–वलय रन्ध्र
Rot–अपक्षय
Rows–पंक्तियाँ
Rueping–रूपिग

S

Salvage value–नाशरक्षणशुल्क
Sap–रस
Sap dis-placement–रस-विस्थापन
Sapwood–रसकाष्ठ, बाह्यकाष्ठ
Seasoning–शशोषण
Secondary–द्वितीय, गौण
Section–छेद
Service life–सेवा-आयु
Service tests–सेवाकालीन परीक्षण
Shed–शाला, शालिका

Shift–पारी
Shingles–छतपट्ट
Side–पार्श्व
Simple pit–साधारण गर्त
Sleeper–स्लीपर
Slight–न्यून
Small scale–लघु अनुमाप
Soaking–चूषण
Softwood–शंकुधारी काष्ठ (कोमल काष्ठ)
Soil sterilisation–मृदाजीवाणु-हनन
Solvent–विलायक
Sound–स्वस्थ
Species–जाति
Specification–विशिष्टि
Specimen–न्यादर्श, आदर्श
Spirit–प्रासव
Splitting–विपटन
Sporophore–बीजाणुधर
Spray–शीकरन
Spring wood–वसन्त काष्ठ
Stain–अभिरञ्जन
Stakes–खूँटी
Standard–प्रमाप
Starch–मण्ड
Statement–विवरण
Statistics–आँकड़े, साँख्यिकी
Steaming–वाष्पीकरण
Steel–इस्पात
Sterile–बन्ध्य
Storage tank–संग्रह कुंड
Strength–दृढ़ता, बल
Strength of solution–विलयन की प्रबलता
Structural–संरचनात्मक
Structures–सरचना
Subterranean–अन्तर्भूमिक
Sugar–शर्करा
Summary–सार
Summerwood–ग्रीष्मकाष्ठ
Supervision–पर्यवेक्षण
Surface–तल
Synthetic–संश्लिष्ट

T

Table–सारणी
Tangential–स्पर्शीय
Temperate–समशीतोष्ण
Temporary protection–अल्प-उपचार
Termites–दीमक
Test-yard–परीक्षण आँगन
Thatch grass–छादन-घास
Thermal conductivity–उष्म सवाहिता
Thin end–तनु छोर
Timber–प्रकाष्ठ
Tissue–ऊति
Torus–स्थूलक
Toughness–दृढ़ता
Toxic–विषालु

Toxicity tests–विषालुता-परीक्षण
Tracheid–वाहिकोशा, दारु वाहिनिकी
Trade name–व्यापारिक नाम
Transmission poles–पारेषण खम्भ
Transverse–अनुप्रस्थ, तिरछा
Treat–उपचार करना, शोधन करना
Treatability–उपचारिता
Treatable–उपचारग्रहणीय
Treated–उपचारित, शोधित
Tyloses–गुहारुध
Type–प्रतिरूप

V

Vacuum–शून्यक
Valve–कपाट
Various–विभिन्न, विविध
Vegetation–उद्भिद समूह
Vegetative–उद्भिद सम्बन्धी
Vertical–उदग्र, खड़ा
Vessels–वाहिनी
Viscosity–आगलत्व, गाढ़ापन, श्यानता
Viscous–आलग, गाढ़ा, श्यान
Volatile–उत्पत

W

Wall–भित्ति
Water Soluble–जलविलेय
Water Soluble fixed type–जल-विलेय बद्ध प्रतिरूप
Wear and tear–टूटफूट
Weathering–ऋतुक्षरण
Well-treated–सु-उपचारित
Wharf–समुद्रतट घाट, भरण-तट
White ants–दीमक
White rot–श्वेत अपक्षय
Wood–काष्ठ
Workers–कर्मी

Y

Yard–प्रांगण